नमोकार को जैन परंपरा ने महामंत्र कहा है। पृथ्वी पर दस-पांच ऐसे मंत्र हैं जो नमोकार की हैसियत के हैं। असल में प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र अनिवार्य है, क्योंकि उसके इर्द-गिर्द ही उसकी सारी व्यवस्था, सारा भवन निर्मित होता है।

ये महामंत्र करते क्या हैं, इनका प्रयोजन क्या है, इनसे क्या फलित हो सकता है? आज साउंड-इलेक्ट्रानिक्स, ध्वनि-विज्ञान बहुत से नए तथ्यों के करीब पहुंच रहा है। उसमें एक तथ्य यह है कि इस जगत में पैदा की गई कोई भी ध्वनि कभी भी नष्ट नहीं होती—इस अनंत आकाश में संग्रहीत होती चली जाती है। ऐसा समझें कि जैसे आकाश भी रिकार्ड करता है, आकाश पर भी किसी सूक्ष्म तल पर अग्रूव्ज बन जाते हैं। इस पर रूस में इधर पंद्रह वर्षों से बहुत काम हुआ है। उस काम पर दो-तीन बातें खयाल में ले लेंगे तो आसानी हो जाएगी।

अगर एक सदभाव से भरा हुआ व्यक्ति, मंगल-कामना से भरा हुआ व्यक्ति आंख बंद करके अपने हाथ में जल से भरी हुई एक मटकी ले ले और कुछ क्षण सदभावों से भरा हुआ उस जल की मटकी को हाथ में लिए रहे—तो रूसी वैज्ञानिक कामेनिएव और अमरीकी वैज्ञानिक डा. रुडोल्फ किर, इन दो व्यक्तियों ने बहुत से प्रयोग करके यह प्रमाणित किया है कि वह जल गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाता है। केमिकली कोई फर्क नहीं होता। उस भली भावनाओं से भरे हुए, मंगल-आकांक्षाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में जल का स्पर्श जल में कोई केमिकल, कोई रासायनिक परिवर्तन नहीं करता, लेकिन उस जल में फिर भी कोई गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। और वह जल अगर बीजों पर छिड़का जाए तो वे जल्दी अंकुरित होते हैं, साधारण जल की बजाय। उनमें बड़े फूल आते हैं, बड़े फल लगते हैं। वे पौधे ज्यादा स्वस्थ होते हैं, साधारण जल की बजाय।

कामेनिएव ने साधारण जल भी उन्हीं बीजों पर, वैसी ही भूमि में छिड़का है और यह विशेष जल भी। और रुग्ण, विक्षिप्त, निगेटिव-इमोशंस से भरे हुए व्यक्ति, निषेधात्मक-भाव से भरे हुए व्यक्ति, हत्या का विचार करनेवाले, दूसरे को नुकसान पहुंचाने का विचार करनेवाला, अमंगल की भावनाओं से भरे हुए व्यक्ति के हाथ में दिया गया जल भी बीजों पर छिड़का है—या तो वे बीज अंकुरित ही नहीं होते, या अंकुरित होते हैं तो रुग्ण अंकुरित होते हैं।

पंद्रह वर्ष हजारों प्रयोगों के बाद यह निष्पत्ति ली जा सकी कि जल में अब तक हम सोचते थे 'केमिस्ट्री' ही सब कुछ है, लेकिन 'केमिकली' तो कोई फर्क नहीं होता, रासायनिक रूप से तीनों जलों में कोई फर्क नहीं होता, फिर भी कोई फर्क होता है; वह फर्क क्या है? और वह फर्क जल में कहां से प्रवेश करता है? निश्चित ही वह फर्क, अब तक जो भी हमारे पास उपकरण हैं, उनसे नहीं जांचा जा सकता। लेकिन वह फर्क होता है, यह परिणाम से सिद्ध होता है। क्योंकि तीनों जलों का आत्मिक रूप बदल जाता है। 'केमिकल' रूप तो नहीं बदलता, लेकिन तीनों जलों की आत्मा में कुछ रूपांतरण हो जाता है।

अगर जल में यह रूपांतरण हो सकता है तो हमारे चारों ओर फैले हुए आकाश में भी हो सकता है। मंत्र की प्राथमिक आधारशिला यही है। मंगल भावनाओं से भरा हुआ मंत्र, हमारे चारों ओर के आकाश में गुणात्मक अंतर पैदा करता है। 'क्वालिटेटिव ट्रांसफार्मेशन' करता है। और उस मंत्र से भरा हुआ व्यक्ति जब आपके पास से भी गुजरता है, तब भी वह अलग तरह के आकाश से गुजरता है। उसके चारों तरफ शरीर के आसपास एक भिन्न तरह का आकाश, 'ए डिफरेंट क्वालिटी आफ स्पेस' पैदा हो जाती है।

एक दूसरे रूसी वैज्ञानिक किरलियान ने 'हाई फ्रिक्वेंसी फोटोग्राफी' विकसित की है। वह शायद आने वाले भविष्य में सबसे अनूठा प्रयोग सिद्ध होगा। अगर मेरे हाथ का चित्र लिया जाए, 'हाई फ्रिक्वेंसी फोटोग्राफी' से, जो कि बहुत संवेदनशील प्लेट्स पर होती है, तो मेरे हाथ का चित्र सिर्फ नहीं आता, मेरे हाथ के आसपास जो किरणें मेरे हाथ से निकल रही हैं, उनका चित्र भी आता है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर मैं निषेधात्मक विचारों से भरा हुआ हूं तो मेरे हाथ के आसपास जो विद्युत-पैटर्न, जो विद्युत के जाल का चित्र आता है, वह रुग्ण, बीमार, अस्वस्थ और 'केआटिक', अराजक होता है—विक्षिप्त होता है। जैसे किसी पागल आदमी ने लकीरें खींची हों। अगर मैं शुभ भावनाओं से, मंगल-भावनाओं से भरा हुआ हूं, आनंदित हूं, 'पाजिटिव' हूं, प्रफुल्लित हूं, प्रभु के प्रति अनुग्रह से भरा हुआ हूं, तो

मेरे हाथ के आसपास जो किरणों का चित्र आता है, किरलियान की फोटोग्राफी से, वह 'रिदमिक', लयबद्ध, सुंदर, 'सिमिट्रिकल', सानुपातिक, और एक और ही व्यवस्था में निर्मित होता है।

किरलियान का कहना है—और किरलियान का प्रयोग तीस वर्षों की मेहनत है—किरलियान का कहना है कि बीमारी के आने के छह महीने पहले शीघ्र ही हम बताने में समर्थ हो जाएंगे कि यह आदमी बीमार होनेवाला है। क्योंकि इसके पहले कि शरीर पर बीमारी उतरे, वह जो विद्युत का वर्तुल है उस पर बीमारी उतर जाती है। मरने के पहले, इसके पहले कि आदमी मरे, वह विद्युत का वर्तुल सिकुड़ना शुरू हो जाता है और मरना शुरू हो जाता है। इसके पहले कि कोई आदमी हत्या करे किसी की, उस विद्युत के वर्तुल में हत्या के लक्षण शुरू हो जाते हैं। इसके पहले कि कोई आदमी किसी के प्रति करुणा से भरे, उस विद्युत के वर्तुल में करुणा प्रवाहित होने के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।

किरलियान का कहना है कि कैंसर पर हम तभी विजय पा सकेंगे जब शरीर को पकड़ने के पहले हम कैंसर को पकड़ लें। और यह पकड़ा जा सकेगा। इसमें कोई विधि की भूल अब नहीं रह गई है। सिर्फ प्रयोगों के और फैलाव की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य अपने आसपास एक आभामंडल लेकर, एक ऑरा लेकर चलता है। आप अकेले ही नहीं चलते, आपके आसपास एक विद्युत-वर्तुल, एक 'इलेक्ट्रो-डायनेमिक-फील्ड' प्रत्येक व्यक्ति के आसपास चलता है। व्यक्ति के आसपास ही नहीं, पशुओं के आसपास भी, पौधों के आसपास भी। असल में रूसी वैज्ञानिकों का कहना है कि जीव और अजीव में एक ही फर्क किया जा सकता है, जिसके आसपास आभामंडल है वह जीवित है और जिसके पास आभामंडल नहीं है, वह मृत है।

जब आदमी मरता है तो मरने के साथ ही आभामंडल क्षीण होना शुरू हो जाता है। बहुत चकित करनेवाली और संयोग की बात है कि जब कोई आदमी मरता है तो तीन दिन लगते हैं उसके आभामंडल के विसर्जित होने में। हजारों साल से सारी दुनिया में मरने के बाद तीसरे दिन का बड़ा मूल्य रहा है। जिन लोगों ने उस तीसरे दिन को—तीसरे को इतना मूल्य दिया था, उन्हें किसी न किसी तरह इस बात का अनुभव होना ही चाहिए, क्योंकि वास्तविक मृत्यु तीसरे दिन घटित होती है। इन तीन दिनों के बीच, किसी भी दिन वैज्ञानिक उपाय खोज लेंगे, तो आदमी को पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। जब तक आभामंडल नहीं खो गया, तब तक जीवन अभी शेष है। हृदय की धड़कन बंद हो जाने से जीवन समाप्त नहीं होता। इसलिए पिछले महायुद्ध में रूस में छह व्यक्तियों को हृदय की धड़कन बंद हो जाने के बाद पुनरुज्जीवित किया जा सका। जब तक आभामंडल चारों तरफ है, तब तक व्यक्ति सूक्ष्म तल पर अभी भी जीवन में वापस लौट सकता है। अभी सेतु कायम है। अभी रास्ता बना है वापस लौटने का।

जो व्यक्ति जितना जीवंत होता है, उसके आसपास उतना बड़ा आभामंडल होता है। हम महावीर की मूर्ति के आसपास एक आभामंडल निर्मित करते हैं—या कृष्ण, या राम, क्राइस्ट के आसपास—तो वह सिर्फ कल्पना नहीं है। वह आभामंडल देखा जा सकता है। और अब तक तो केवल वे ही देख सकते थे जिनके पास थोड़ी गहरी और सूक्ष्म-दृष्टि हो—मिस्टिक्स, संत; लेकिन 1930 में एक अंग्रेज वैज्ञानिक ने अब तो केमिकल, रासायनिक प्रक्रिया निर्मित कर दी है जिससे प्रत्येक व्यक्ति—कोई भी—उस माध्यम से, उस यंत्र के माध्यम से दूसरे के आभामंडल को देख सकता है।

आप सब यहां बैठे हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी आभामंडल है। जैसे आपके अंगूठे की छाप निजी-निजी है वैसे ही आपका आभामंडल भी निजी है। और आपका आभामंडल आपके संबंध में वह सब कुछ कहता है जो आप भी नहीं जानते। आपका आभामंडल आपके संबंध में बातें भी कहता है जो भविष्य में घटित होंगी। आपका आभामंडल वे बातें भी कहता है जो अभी आपके गहन अचेतन में निर्मित हो रही हैं, बीज की भांति, कल खिलेंगी और प्रकट होंगी।

मंत्र आभामंडल को बदलने की आमूल प्रक्रिया है। आपके आसपास की स्पेस, और आपके आसपास का 'इलेक्ट्रो-डायनेमिक-फील्ड' बदलने की प्रक्रिया है। और प्रत्येक धर्म के पास एक महामंत्र है। जैन परंपरा के पास नमोकार है—आश्चर्यकारक घोषणा—एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो। सब पाप का नाश कर दे, ऐसा महामंत्र है नमोकार। ठीक नहीं लगता। नमोकार से कैसे पाप नष्ट हो जाएगा? नमोकार से सीधा पाप नष्ट नहीं होता, लेकिन नमोकार से आपके आसपास 'इलेक्ट्रो-डायनेमिक-फील्ड' रूपांतरित होता है और पाप करना असंभव हो जाता है।

क्योंकि पाप करने के लिए आपके पास एक खास तरह का आभामंडल चाहिए। अगर इस मंत्र को सीधा ही सुनेंगे तो लगेगा कैसे हो सकता है? एक चोर यह मंत्र पढ़ लेगा तो क्या होगा? एक हत्यारा यह मंत्र पढ़ लेगा तो क्या होगा? कैसे पाप नष्ट हो जाएगा? पाप नष्ट होता है इसलिए, कि जब आप पाप करते हैं, उसके पहले आपके पास एक विशेष तरह का, पाप का आभामंडल चाहिए—उसके बिना आप पाप नहीं कर सकते—वह आभामंडल अगर रूपांतरित हो जाए तो असंभव हो जाएगी बात, पाप करना असंभव हो जाएगा।

यह नमोकार कैसे उस आभामंडल को बदलता होगा? यह नमस्कार है, यह नमन का भाव है। नमन का अर्थ है समर्पण। यह शाब्दिक नहीं है। यह नमो अरिहंताणं, यह अरिहंतों को नमस्कार करता हूं, यह शाब्दिक नहीं है, ये शब्द नहीं हैं, यह भाव है। अगर प्राणों में यह भाव सघन हो जाए कि अरिहंतों को नमस्कार करता हूं, तो इसका अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ होता है जो जानते हैं उनके चरणों में सिर रखता हूं। जो पहुंच गए हैं, उनके चरणों में समर्पित करता हूं। जो पा गए हैं, उनके द्वार पर मैं भिखारी बनकर खड़ा होने को तैयार हूं।

किरलियान की फोटोग्राफी ने यह भी बताने की कोशिश की है कि आपके भीतर जब भाव बदलते हैं तो आपके आसपास का विद्युत-मंडल बदलता है। और अब तो ये फोटोग्राफ उपलब्ध हैं। अगर आप अपने भीतर विचार कर रहे हैं चोरी करने का, तो आपका आभामंडल और तरह का हो जाता है—उदास, रुग्ण, खूनी रंगों से भर जाता है। आप किसी को, गिर गए को उठाने जा रहे हैं—आपके आभामंडल के रंग तत्काल बदल जाते हैं।

रूस में एक महिला है, नेल्या माइखालोवा। इस महिला ने पिछले पंद्रह वर्षों में रूस में आमूल क्रांति खड़ी कर दी है। और आपको यह जानकर हैरानी होगी कि मैं रूस के इन वैज्ञानिकों के नाम क्यों ले रहा हूं। कुछ कारण हैं। आज से चालीस साल पहले अमरीका के एक बहुत बड़े प्रोफेट एडगर केयसी ने, जिसको अमरीका का 'स्लीपिंग प्रोफेट' कहा जाता है; जो कि सो जाता था गहरी तंद्रा में, जिसे हम समाधि कहें, और उसमें वह जो भविष्यवाणियां करता था वह अब तक सभी सही निकली हैं। उसने थोड़ी भविष्यवाणियां नहीं कीं, दस हजार भविष्यवाणियां कीं। उसकी एक भविष्यवाणी चालीस साल पहले की है—उस वक्त तो सब लोग हैरान हुए थे—उसने यह भविष्यवाणी की थी कि आज से चालीस साल बाद धर्म का एक नवीन वैज्ञानिक आविर्भाव रूस से प्रारंभ होगा। रूस से? और एडगर केयसी ने चालीस साल पहले कहा, जबकि रूस में तो धर्म नष्ट किया जा रहा था, चर्च गिराए जा रहे थे, मंदिर हटाए जा रहे थे, पादरी-पुरोहित साइबेरिया भेजे जा रहे थे। उन क्षणों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि रूस में जन्म होगा। रूस अकेली भूमि थी उस समय जमीन पर जहां धर्म पहली दफे व्यवस्थित रूप से नष्ट किया जा रहा था, जहां पहली दफा नास्तिकों के हाथ में सत्ता थी। पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में जहां पहली बार नास्तिकों ने एक संगठित प्रयास किया था—आस्तिकों के संगठित प्रयास तो होते रहे हैं। और केयसी की यह घोषणा कि चालीस साल बाद रूस से जन्म होगा!

असल में जैसे ही रूस पर नास्तिकता अति आग्रहपूर्ण हो गई तो जीवन का एक नियम है कि जीवन एक तरह का संतुलन निर्मित करता है। जिस देश में बड़े नास्तिक पैदा होने बंद हो जाते हैं, उस देश में बड़े आस्तिक भी पैदा होने बंद हो जाते हैं। जीवन एक संतुलन है। और जब रूस में इतनी प्रगाढ़ नास्तिकता थी तो 'अंडरग्राउंड', छिपे मार्गों से आस्तिकता ने पुनः आविष्कार करना शुरू कर दिया। स्टेलिन के मरने तक सारी खोजबीन छिपकर चलती थी, स्टेलिन के मरने के बाद वह खोजबीन प्रकट हो गई। स्टेलिन खुद भी बहुत हैरान था। वह मैं बात आपसे करूंगा।

यह माइखालोवा पंद्रह वर्ष से रूस में सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। क्योंकि माइखालोवा सिर्फ ध्यान से किसी भी वस्तु को गतिमान कर पाती है। हाथ से नहीं, शरीर के किसी प्रयोग से नहीं। वहां दूर, छह फीट दूर रखी हुई कोई भी चीज, माइखालोवा सिर्फ उस पर एकाग्र चित्त होकर उसे गतिमान—या तो अपने पास खींच पाती है, वस्तु चलना शुरू कर देती है, या अपने से दूर हटा पाती है, या 'मैग्नेटिक नीडल' लगी हो तो उसे घुमा पाती है, या घड़ी हो तो उसके कांटे को तेजी से चक्कर दे पाती है, या घड़ी हो तो बंद कर पाती है—सैकड़ों प्रयोग। लेकिन एक बहुत हैरानी की बात है कि अगर माइखालोवा प्रयोग कर रही हो और आसपास संदेहशील लोग हों तो उसे पांच घंटे लग जाते हैं, तब वह हिला पाती है। अगर आसपास मित्र हों, सहानुभूतिपूर्ण हों, तो वह आधे घंटे में हिला पाती है। अगर आसपास श्रद्धा से भरे लोग हों

तो पांच मिनट में। और एक मजे की बात है कि जब उसे पांच घंटे लगते हैं किसी वस्तु को हिलाने में तो उसका कोई दस पौंड वजन कम हो जाता है। जब उसे आधा घंटा लगता है तो कोई तीन पौंड वजन कम होता है। और जब पांच मिनट लगते हैं तो उसका वजन कम नहीं होता है।

ये पंद्रह सालों में बड़े वैज्ञानिक प्रयोग किए गए हैं। दो नोबल प्राइज विनर वैज्ञानिक डा. वासीलिएव और कामेनिएव और चालीस और चोटी के वैज्ञानिकों ने हजारों प्रयोग करके इस बात की घोषणा की है कि माइखालोवा जो कर रही है, वह तथ्य है। और अब उन्होंने यंत्र विकसित किए हैं जिनके द्वारा माइखालोवा के आसपास क्या घटित होता है, वह रिकार्ड हो जाता है। तीन बातें रिकार्ड होती हैं। एक तो जैसे ही माइखालोवा ध्यान एकाग्र करती है, उसके आसपास का आभामंडल सिकुड़कर एक धारा में बहने लगता है—जिस वस्तु के ऊपर वह ध्यान करती है, जैसे लेसर रे की तरह, एक विद्युत की किरण की तरह संगृहीत हो जाता है। और उसके चारों तरफ किरलियान फोटोग्राफी से, जैसे कि समुद्र में लहरें उठती हैं, ऐसा उसका आभामंडल तरंगित होने लगता है। और वे तरंगें चारों तरफ फैलने लगती हैं। उन्हीं तरंगों के धक्के से वस्तुएं हटती हैं या पास खींची जाती हैं। सिर्फ भाव मात्र—उसका भाव कि वस्तु मेरे पास आ जाए, वस्तु पास आ जाती है। उसका भाव कि दूर हट जाए, वस्तु दूर चली जाती है।

इससे भी हैरानी की बात जो तीसरी है वह यह कि रूसी वैज्ञानिकों का खयाल है कि यह जो एनर्जी है, यह चारों तरफ जो ऊर्जा फैलती है, इसे संगृहीत किया जा सकता है, इसे यंत्रों में संगृहीत किया जा सकता है। निश्चित ही जब एनर्जी है तो संगृहीत की जा सकती है। कोई भी ऊर्जा संगृहीत की जा सकती है। और इस प्राण-ऊर्जा का, जिसको योग 'प्राण' कहता है, यह ऊर्जा अगर यंत्रों में संगृहीत हो जाए, तो उस समय जो मूलभाव था व्यक्ति का, वह गुण उस संगृहीत शक्ति में भी बना रहता है।

जैसे, माइखालोवा अगर किसी वस्तु को अपनी तरफ खींच रही है, उस समय उसके शरीर से जो ऊर्जा गिर रही है—जिसमें कि उसका तीन पौंड या दस पौंड वजन कम हो जाएगा—वह ऊर्जा संगृहीत की जा सकती है। ऐसे रिसेप्टिव यंत्र तैयार किए गए हैं कि वह ऊर्जा उन यंत्रों में प्रविष्ट हो जाती है और संगृहीत हो जाती है। फिर यदि उस यंत्र को इस कमरे में रख दिया जाए और आप कमरे के भीतर आएं तो वह यंत्र आपको अपनी तरफ खींचेगा। आपका मन होगा कि पास जाएं—यंत्र के, आदमी वहां नहीं है। और अगर माइखालोवा किसी वस्तु को दूर हटा रही थी और शक्ति संगृहीत की है, तो आप इस कमरे में आएंगे और तत्काल बाहर भागने का मन होगा।

क्या भाव शक्ति में इस भांति प्रविष्ट हो जाते हैं?

मंत्र की यही मूल आधारशिला है। शब्द में, विचार में, तरंग में भाव संगृहीत और समाविष्ट हो जाते हैं। जब कोई व्यक्ति कहता है—नमो अरिहंताणं, मैं उन सबको जिन्होंने जीता और जाना अपने को, उनकी शरण में छोड़ता हूं, तब उसका अहंकार तत्काल विगलित होता है। और जिन-जिन लोगों ने उस जगत में अरिहंतों की शरण में अपने को छोड़ा है, उस महाधारा में उसकी शक्ति सम्मिलित होती है। उस गंगा में वह भी एक हिस्सा हो जाता है। और इस चारों तरफ आकाश में, इस अरिहंत के भाव के आसपास जो ग्रूव्ज़ निर्मित हुए हैं, जो स्पेस में, आकाश में जो तरंगें संगृहीत हुई हैं, उन संगृहीत तरंगों में आपकी तरंग भी चोट करती है। आपके चारों तरफ एक वर्षा हो जाती है जो आपको दिखाई नहीं पड़ती। आपके चारों ओर एक और दिव्यता का, भगवत्ता का लोक निर्मित हो जाता है। इस लोक के साथ, इस भाव लोक के साथ आप दूसरे तरह के व्यक्ति हो जाते हैं।

महामंत्र स्वयं के आसपास के आकाश को, स्वयं के आसपास के आभामंडल को बदलने की कीमिया है। और अगर कोई व्यक्ति दिन-रात जब भी उसे स्मरण मिले, तभी नमोकार में डूबता रहे, तो वह व्यक्ति दूसरा ही व्यक्ति हो जाएगा। वह वही व्यक्ति नहीं रह सकता, जो वह था।

पांच नमस्कार हैं। अरिहंत को नमस्कार। अरिहंत का अर्थ होता है: जिसके सारे शत्रु विनष्ट हो गए; जिसके भीतर अब कुछ ऐसा नहीं रहा जिससे उसे लड़ना पड़ेगा। लड़ाई समाप्त हो गई। भीतर अब क्रोध नहीं है, जिससे लड़ना पड़े; भीतर अब काम नहीं है, जिससे लड़ना पड़े; अज्ञान नहीं है। वे सब समाप्त हो गए जिनसे लड़ाई थी।

अब एक 'नान-कानफ्लिक्ट', एक निद्व□द्व अस्तित्व शुरू हुआ। अरिहंत शिखर है, जिसके आगे यात्रा नहीं है। अरिहंत मंजिल है, जिसके आगे फिर कोई यात्रा नहीं है। कुछ करने को न बचा जहां, कुछ पाने को न बचा जहां, कुछ छोड़ने को भी न बचा जहां—जहां सब समाप्त हो गया—जहां शुद्ध अस्तित्व रह गया, 'प्योर एग्जिस्टेंस' जहां रह गया, जहां ब्रह्म मात्र रह गया, जहां होना मात्र रह गया, उसे कहते हैं अरिहंत।

अदभुत है यह बात भी कि इस महामंत्र में किसी व्यक्ति का नाम नहीं है—महावीर का नहीं, पार्श्वनाथ का नहीं, किसी का नाम नहीं है। जैन परंपरा का भी कोई नाम नहीं। क्योंकि जैन परंपरा यह स्वीकार करती है कि अरिहंत जैन परंपरा में ही नहीं हुए हैं और सब परंपराओं में भी हुए हैं। इसलिए अरिहंतों को नमस्कार है—किसी अरिहंत को नहीं है। यह नमस्कार बड़ा विराट है।

संभवतः विश्व के किसी धर्म ने ऐसा महामंत्र—इतना सवा□गीण, इतना सर्वस्पर्शी—विकसित नहीं किया है। व्यक्तित्व पर जैसे ख्याल ही नहीं है, शक्ति पर खयाल है। रूप पर ध्यान ही नहीं है, वह जो अरूप सत्ता है, उसी का ख्याल है—अरिहंतों को नमस्कार।

अब महावीर को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए महावीर को नमस्कार; बुद्ध को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए बुद्ध को नमस्कार; राम को जो प्रेम करता है, कहना चाहिए राम को नमस्कार—पर यह मंत्र बहुत अनूठा है। यह बेजोड़ है। और किसी परंपरा में ऐसा मंत्र नहीं है, जो सिर्फ इतना कहता है—अरिहंतों को नमस्कार; सबको नमस्कार जिनकी मंजिल आ गई है। असल में मंजिल को नमस्कार। वे जो पहुंच गए, उनको नमस्कार।

लेकिन अरिहंत शब्द निगेटिव है, नकारात्मक है। उसका अर्थ है—जिनके शत्रु समाप्त हो गए; वह पाजिटिव नहीं है, वह विधायक नहीं है। असल में इस जगत में जो श्रेष्ठतम अवस्था है उसको निषेध से ही प्रकट किया जा सकता है, 'नेति-नेति' से उसको विधायक शब्द नहीं दिया जा सकता। उसके कारण हैं। सभी विधायक शब्दों में सीमा आ जाती है, निषेध में सीमा नहीं होती। अगर मैं कहता हूं—'ऐसा है', तो एक सीमा निर्मित होती है। अगर मैं कहता हूं—'ऐसा नहीं है', तो कोई सीमा नहीं निर्मित होती। नहीं की कोई सीमा नहीं है, 'है' की तो सीमा है। तो 'है' तो बहुत छोटा शब्द है। 'नहीं' है बहुत विराट। इसलिए परम शिखर पर रखा है अरिहंत को। सिर्फ इतना ही कहा है कि जिनके शत्रु समाप्त हो गए, जिनके अंतद्व□द्व विलीन हो गए—नकारात्मक—जिनमें लोभ नहीं, मोह नहीं, काम नहीं—क्या है, यह नहीं कहा; क्या नहीं है जिनमें, वह कहा।

इसलिए अरिहंत बहुत वायवीय, बहुत 'एब्सट्रेक्ट' शब्द है और शायद पकड़ में न आए, इसलिए ठीक दूसरे शब्द में 'पाजिटिव' का उपयोग किया है—नमो सिद्धाणं। सिद्ध का अर्थ होता है वे, जिन्होंने पा लिया। अरिहंत का अर्थ होता है वे, जिन्होंने कुछ छोड़ दिया। सिद्ध बहुत 'पाजिटिव' शब्द है। सिद्धि, उपलब्धि, 'अचीवमेंट', जिन्होंने पा लिया। लेकिन ध्यान रहे, उनको ऊपर रखा है जिन्होंने खो दिया। उनको नंबर दो पर रखा है जिन्होंने पा लिया। क्यों? सिद्ध अरिहंत से छोटा नहीं होता—सिद्ध वहीं पहुंचता है जहां अरिहंत पहुंचता है, लेकिन भाषा में पाजिटिव नंबर दो पर रखा जाएगा। 'नहीं', 'शून्य' प्रथम है, 'होना' द्वितीय है, इसलिए सिद्ध को दूसरे स्थल पर रखा। लेकिन सिद्ध के संबंध में भी सिर्फ इतनी ही सूचना है: पहुंच गए, और कुछ नहीं कहा है। कोई विशेषण नहीं जोड़ा। पर जो पहुंच गए, इतने से भी हमारी समझ में नहीं आएगा। अरिहंत भी हमें बहुत दूर लगता है—शून्य हो गए जो, निर्वाण को पा गए जो, मिट गए जो, नहीं रहे जो। सिद्ध भी बहुत दूर हैं। सिर्फ इतना ही कहा है, पा लिया जिन्होंने। लेकिन क्या? और पा लिया, तो हम कैसे जानें? क्योंकि सिद्ध होना अनभिव्यक्त भी हो सकता है, 'अमेनिफेस्ट' भी हो सकता है।

बुद्ध से कोई पूछता है कि आपके ये दस हजार भिक्षु—हां, आप बुद्धत्व को पा गए—इनमें और कितनों ने बुद्धत्व को पा लिया है? बुद्ध कहते हैं: बहुतों ने। लेकिन वह पूछनेवाला कहता है—दिखाई नहीं पड़ता। तो बुद्ध कहते हैं: मैं प्रकट होता हूं, वे अप्रकट हैं। वे अपने में छिपे हैं, जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो। तो सिद्ध तो बीज जैसा है, पा लिया। और बहुत बार ऐसा होता है कि पाने की घटना घटती है और वह इतनी गहन होती है कि प्रकट करने की चेष्टा भी उससे पैदा नहीं होती। इसलिए सभी सिद्ध बोलते नहीं, सभी अरिहंत बोलते नहीं। सभी सिद्ध, सिद्ध होने के बाद जीते भी नहीं।

इतनी लीन भी हो सकती है चेतना उस उपलब्धि में कि तत्क्षण शरीर छूट जाए। इसलिए हमारी पकड़ में सिद्ध भी न आ सकेगा। और मंत्र तो ऐसा चाहिए जो पहली सीढ़ी से लेकर आखिरी शिखर तक, जहां जिसकी पकड़ में आ जाए, जो जहां खड़ा हो वहीं से यात्रा कर सके। इसलिए तीसरा सूत्र कहा है, 'आचार्यों को नमस्कार।'

आचार्य का अर्थ हैः वह जिसने पाया भी और आचरण से प्रकट भी किया। आचार्य का अर्थः जिसका ज्ञान और आचरण एक है। ऐसा नहीं है कि सिद्ध का आचरण ज्ञान से भिन्न होता है। लेकिन शून्य हो सकता है। हो ही न, आचरण-शून्य ही हो जाए। ऐसा भी नहीं है कि अरिहंत का आचरण भिन्न होता है, लेकिन अरिहंत इतना निराकार हो जाता है कि आचरण हमारी पकड़ में न आएगा। हमें फ्रेम चाहिए जिसमें पकड़ में आ जाए। आचार्य से शायद हमें निकटता मालूम पड़ेगी। उसका अर्थ हैः जिसका ज्ञान आचरण है। क्योंकि हम ज्ञान को तो न पहचान पाएंगे, आचरण को पहचान लेंगे।

इससे खतरा भी हुआ। क्योंकि आचरण ऐसा भी हो सकता है जैसा ज्ञान न हो। एक आदमी अहिंसक न हो, अहिंसा का आचरण कर सकता है। एक आदमी अहिंसक हो तो हिंसा का आचरण नहीं कर सकता—वह तो असंभव है—लेकिन एक आदमी अहिंसक न हो और अहिंसा का आचरण कर सकता है। एक आदमी लोभी हो और अलोभ का आचरण कर सकता है। उलटा नहीं है, 'द वाइस वरसा इज़ नाट पासिबल'। इससे एक खतरा भी पैदा हुआ। आचार्य हमारी पकड़ में आता है, लेकिन वहीं से खतरा शुरू होता है; जहां से हमारी पकड़ शुरू होती है, वहीं से खतरा शुरू होता है। तब खतरा यह है कि कोई आदमी आचरण ऐसा कर सकता है कि आचार्य मालूम पड़े। तो मजबूरी है हमारी। जहां से सीमाएं बननी शुरू होती हैं, वहीं से हमें दिखाई पड़ता है, वहीं से हमारे अंधे होने का डर है।

पर मंत्र का प्रयोजन यही है कि हम उनको नमस्कार करते हैं जिनका ज्ञान उनका आचरण है। यहां भी कोई विशेषण नहीं है। वे कौन? वे कोई भी हों।

एक ईसाई फकीर जापान गया था और जापान के एक झेन भिक्षु से मिलने गया। उसने पूछा झेन भिक्षु को कि जीसस के संबंध में आपका क्या खयाल है? तो उस भिक्षु ने कहा, मुझे जीसस के संबंध में कुछ भी पता नहीं, तुम कुछ कहो ताकि मैं खयाल बना सकूं। तो उसने कहा कि जीसस ने कहा है, जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना। तो उस झेन फकीर ने कहाः आचार्य को नमस्कार। वह ईसाई फकीर कुछ समझ न सका। उसने कहा, जीसस ने कहा है कि जो अपने को मिटा देगा, वही पाएगा। उस झेन फकीर ने कहाः सिद्ध को नमस्कार। वह कुछ समझ न सका। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं? उस ईसाई फकीर ने कहा कि जीसस ने अपने को सूली पर मिटा दिया, वे शून्य हो गए, मृत्यु को उन्होंने चुपचाप स्वीकार कर लिया, वे निराकार में खो गए। उस झेन फकीर ने कहाः अरिहंत को नमस्कार।

आचरण और ज्ञान एक हैं जहां, उसे हम आचार्य कहते हैं। वह सिद्ध भी हो सकता है, वह अरिहंत भी हो सकता है। लेकिन हमारी पकड़ में वह आचरण से आता है। पर जरूरी नहीं है, क्योंकि आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है और हम बड़ी स्थूल बुद्धि के लोग हैं। आचरण बड़ी सूक्ष्म बात है! तय करना कठिन है कि जो आचरण है...अब जैसे महावीर को खदेड़ कर भगाया गया, गांव-गांव महावीर पर पत्थर फेंके गए। हम ही लोग थे, हम ही सब यह करते रहे। ऐसा मत सोचना कोई और। महावीर की नग्नता लोगों को भारी पड़ी, क्योंकि लोगों ने कहा यह तो आचरणहीनता है। यह कैसा आचरण? आचरण बड़ा सूक्ष्म है। अब महावीर का नग्न हो जाना इतना निर्दोष आचरण है, जिसका हिसाब लगाना कठिन है। हिम्मत अदभुत है। महावीर इतने सरल हो गए कि छिपाने को कुछ न बचा। अब महावीर को इस चमड़ी और हड्डी की देह का बोध मिट गया और वह जो, जिसको रूसी वैज्ञानिक 'इलेक्ट्रोमैग्नेटिक-फील्ड' कहते हैं, उस प्राण-शरीर का बोध इतना सघन हो गया कि उस पर तो कोई कपड़े डाले नहीं जा सकते, कपड़े गिर गए। और ऐसा भी नहीं कि महावीर ने कपड़े छोड़े, कपड़े गिर गए।

एक दिन गुजरते हुए एक राह से चादर उलझ गई है एक झाड़ी में, तो झाड़ी के फूल न गिर जाएं, पत्ते न टूट जाएं, कांटों को चोट न लग जाए, तो आधी चादर फाड़कर वहीं छोड़ दी। फिर आधी रह गई शरीर पर। फिर वह भी गिर गई।

वह कब गिर गई, उसका महावीर को पता न चला। लोगों को पता चला कि महावीर नग्न खड़े हैं। आचरण सहना मुश्किल हो गया।

आचरण के रास्ते सूक्ष्म हैं, बहुत कठिन हैं। और हम सब के आचरण के संबंध में बंधे-बंधाए खयाल हैं। ऐसा करो—और जो ऐसा करने को राजी हो जाते हैं, वे करीब-करीब मुर्दा लोग हैं। जो आपकी मानकर आचरण कर लेते हैं, उन मुर्दों को आप काफी पूजा देते हैं। इसमें कहा है, आचार्यों को नमस्कार। आप आचरण तय नहीं करेंगे, उनका ज्ञान ही उनका आचरण तय करेगा। और ज्ञान परम स्वतंत्रता है। जो व्यक्ति आचार्य को नमस्कार कर रहा है, वह यह भाव कर रहा है कि मैं नहीं जानता क्या है ज्ञान, क्या है आचरण, लेकिन जिनका भी आचरण उनके ज्ञान से उपजता और बहता है, उनको मैं नमस्कार करता हूं।

अभी भी बात सूक्ष्म है; इसलिए चौथे चरण में, उपाध्यायों को नमस्कार। उपाध्याय का अर्थ है—आचरण ही नहीं, उपदेश भी। उपाध्याय का अर्थ है—ज्ञान ही नहीं, आचरण ही नहीं, उपदेश भी। वे जो जानते हैं, जानकर वैसा जीते हैं; और जैसा वे जीते हैं और जानते हैं, वैसा बताते भी हैं। उपाध्याय का अर्थ है—वह जो बताता भी है। क्योंकि हम मौन से न समझ पाएं। आचार्य मौन हो सकता है। वह मान सकता है कि आचरण काफी है। और अगर तुम्हें आचरण दिखाई नहीं पड़ता तो तुम जानो। उपाध्याय आप पर और भी दया करता है। वह बोलता भी है, वह आपको कहकर भी बताता है।

ये चार सुस्पष्ट रेखाएं हैं। लेकिन इन चार के बाहर भी जानने वाले छूट जाएंगे। क्योंकि जानने वालों को बांधा नहीं जा सकता 'कैटेगरीज़' में। इसलिए मंत्र बहुत हैरानी का है। इसलिए पांचवें चरण में एक सामान्य नमस्कार है—'नमो लोए सव्वसाहूणं'। लोक में जो भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार। जगत में जो भी साधु हैं, उन सबको नमस्कार। जो उन चार में कहीं भी छूट गए हों, उनके प्रति भी हमारा नमन न छूट जाए। क्योंकि उन चार में बहुत लोग छूट सकते हैं। जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है, कैटेगराइज़ नहीं किया जा सकता, खांचों में नहीं बांटा जा सकता। इसलिए जो शेष रह जाएंगे, उनको सिर्फ साधु कहा—वे जो सरल हैं। और साधु का एक अर्थ और भी है। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि उपदेश देने में भी संकोच करे। इतना सरल भी हो सकता है कोई कि आचरण को भी छिपाए। पर उसको भी हमारे नमस्कार पहुंचने चाहिए।

सवाल यह नहीं है कि हमारे नमस्कार से उसको कुछ फायदा होगा, सवाल यह है कि हमारा नमस्कार हमें रूपांतरित करता है। न अरिहंतों को कोई फायदा होगा, न सिद्धों को, न आचार्यों को, न उपाध्यायों को, न साधुओं को—पर आपको फायदा होगा। यह बहुत मजे की बात है कि हम सोचते हैं कि शायद इस नमस्कार में हम सिद्धों के लिए, अरिहंतों के लिए कुछ कर रहे हैं, तो इस भूल में मत पड़ना। आप उनके लिए कुछ भी न कर सकेंगे, या आप जो भी करेंगे उसमें उपद्रव ही करेंगे। आपकी इतनी ही कृपा काफी है कि आप उनके लिए कुछ न करें। आप गलत ही कर सकते हैं। नहीं, यह नमस्कार अरिहंतों के लिए नहीं है, अरिहंतों की तरफ है, लेकिन आपके लिए है। इसके जो परिणाम हैं, वह आप पर होने वाले हैं। जो फल है, वह आप पर बरसेगा।

अगर कोई व्यक्ति इस भांति नमन से भरा हो, तो क्या आप सोचते हैं उस व्यक्ति में अहंकार टिक सकेगा? असंभव है।

लेकिन नहीं, हम बहुत अदभुत लोग हैं। अगर अरिहंत सामने खड़ा हो तो हम पहले इस बात का पता लगाएंगे कि अरिहंत है भी? महावीर के आसपास भी लोग यही पता लगाते-लगाते जीवन नष्ट किए—अरिहंत है भी? तीथ□कर है भी? और आपको पता नहीं है, आप सोचते हैं कि बस तय हो गया, महावीर के वक्त में बात इतनी तय न थी। और भी भीड़ें थीं, और भी लोग थे जो कह रहे थे—ये अरिहंत नहीं हैं, अरिहंत और हैं। गोशालक है अरिहंत। ये तीथ□कर नहीं हैं, यह दावा झूठा है।

महावीर का तो कोई दावा नहीं था। लेकिन जो महावीर को जानते थे, वे दावे से बच भी नहीं सकते थे। उनकी भी अपनी कठिनाई थी। पर महावीर के समय पर चारों ओर यही विवाद था। लोग जांच करने आते कि महावीर अरिहंत हैं या नहीं, वे तीथ□कर हैं या नहीं, वे भगवान हैं या नहीं। बड़ी आश्चर्य की बात है, आप जांच भी कर लेंगे और सिद्ध भी हो

जाएगा कि महावीर भगवान नहीं हैं, आपको क्या मिलेगा? और महावीर भगवान न भी हों और आप अगर उनके चरणों में सिर रखें और कह सकें, नमो अरिहंताणं, तो आपको मिलेगा। महावीर के भगवान होने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

असली सवाल यह नहीं है कि महावीर भगवान हैं या नहीं, असली सवाल यह है कि कहीं भी आपको भगवान दिख सकते हैं या नहीं—कहीं भी—पत्थर में, पहाड़ में। कहीं भी आपको दिख सके तो आप नमन को उपलब्ध हो जाएं। असली राज तो नमन में है, असली राज तो झुक जाने में है—असली राज तो झुक जाने में है। वह जो झुक जाता है, उसके भीतर सब कुछ बदल जाता है। वह आदमी दूसरा हो जाता है। यह सवाल नहीं है कि कौन सिद्ध हैं और कौन सिद्ध नहीं हैं—और इसका कोई उपाय भी नहीं है कि किसी दिन यह तय हो सके—लेकिन यह बात ही 'इरेलेवेंट' है, असंगत है। इससे कोई संबंध ही नहीं है। न रहे हों महावीर, इससे क्या फर्क पड़ता है। लेकिन अगर आपके लिए झुकने के लिए निमित्त बन सकते हैं तो बात पूरी हो गई। महावीर सिद्ध हैं या नहीं, यह वे सोचें और समझें, वह अरिहंत अभी हुए या नहीं यह उनकी अपनी चिंता है, आपके लिए चिंतित होने का कोई भी तो कारण नहीं है। आपके लिए चिंतित होने का अगर कोई कारण है तो एक ही कारण है कि कहीं कोई कोना है इस अस्तित्व में जहां आपका सिर झुक जाए। अगर ऐसा कोई कोना है तो आप नए जीवन को उपलब्ध हो जाएंगे।

यह नमोकार, अस्तित्व में कोई कोना न बचे, इसकी चेष्टा है। सब कोने जहां-जहां सिर झुकाया जा सके—अज्ञात, अनजान, अपरिचित—पता नहीं कौन साधु है, इसलिए नाम नहीं लिए। पता नहीं कौन अरिहंत है। पर इस जगत में जहां अज्ञानी हैं, वहां ज्ञानी भी हैं। क्योंकि जहां अंधेरा है, वहां प्रकाश भी है। जहां रात, सांझ होती है, वहां सुबह भी होती है। जहां सूरज अस्त होता है, वहां सूरज उगता भी है। यह अस्तित्व द्वंद्व की व्यवस्था है। तो जहां इतना सघन अज्ञान है, वहां इतना ही सघन ज्ञान भी होगा ही। यह श्रद्धा है। और इस श्रद्धा से भरकर जो ये पांच नमन कर पाता है, वह एक दिन कह पाता है कि निश्चय ही मंगलमय है यह सूत्र। इससे सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं।

ध्यान ले लें, मंत्र आपके लिए है। मंदिर में जब मूर्ति के चरणों में आप सिर रखते हैं, तो सवाल यह नहीं है कि वे चरण परमात्मा के हैं या नहीं, सवाल इतना ही है कि वह जो चरण के समक्ष झुकनेवाला सिर है वह परमात्मा के समक्ष झुक रहा है या नहीं। वे चरण तो निमित्त हैं। उन चरणों का कोई प्रयोजन नहीं है। वह तो आपको झुकने की कोई जगह बनाने के लिए व्यवस्था है। लेकिन झुकने में पीड़ा होती है। और इसलिए जो भी वैसी पीड़ा दे, उस पर क्रोध आता है। जीसस पर या महावीर पर या बुद्ध पर जो क्रोध आता है, वह भी स्वाभाविक मालूम पड़ता है। क्योंकि झुकने में पीड़ा होती है। अगर महावीर आएं और आपके चरण पर सिर रख दें तो चित्त बड़ा प्रसन्न होगा। फिर आप महावीर को पत्थर न मारेंगे! फिर आप महावीर के कानों में कीले न ठोकेंगे; कि ठोकेंगे? लेकिन महावीर आपके चरणों में सिर रख दें तो आपको कोई लाभ नहीं होता। नुकसान होता है। आपकी अकड़ और गहन हो जाएगी।

महावीर ने अपने साधुओं को कहा है कि वह गैर-साधुओं को नमस्कार न करें। बड़ी अजीब सी बात है! साधु को तो विनम्र होना चाहिए। इतना निरहंकारी होना चाहिए कि सभी के चरणों में सिर रखे। तो साधु गैर-साधु को, गृहस्थ को नमस्कार न करे—यह तो महावीर की बात अच्छी नहीं मालूम पड़ती। लेकिन प्रयोजन करुणा का है। क्योंकि साधु निमित्त बनना चाहिए कि आपका नमस्कार पैदा हो। और साधु आपको नमस्कार करे तो निमित्त तो बनेगा नहीं, आपकी अस्मिता और अहंकार को और मजबूत कर देगा। कई बार दिखती है बात कुछ और, होती है कुछ और। हालांकि, जैन साधुओं ने इसका ऐसा प्रयोग किया है, यह मैं नहीं कह रहा हूं। असल में साधु का तो लक्षण यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है। साधु का लक्षण तो यही है कि जिसका सिर अब सबके चरणों पर है। फिर भी साधु आपको नमस्कार नहीं करता है। क्योंकि निमित्त बनना चाहता है। लेकिन अगर साधु का सिर आप सबके चरणों पर न हो और फिर वह आपको अपने चरणों में झुकाने की कोशिश करे तब वह आत्महत्या में लगा है। पर फिर भी आपको चिंतित होने की कोई भी जरूरत नहीं है। क्योंकि आत्महत्या का प्रत्येक को हक है। अगर वह अपने नरक का रास्ता तय कर रहा है तो उसे करने दें। लेकिन नरक जाता हुआ आदमी भी अगर आपको स्वर्ग के इशारे के लिए निमित्त बनता हो तो अपना निमित्त लें, अपने

मार्ग पर बढ़ जाएं। पर नहीं, हमें इसकी चिंता कम है कि हम कहां जा रहे हैं, हमें इसकी चिंता ज्यादा है कि दूसरा कहां जा रहा है।

नमोकार नमन का सूत्र है। यह पांच चरणों में समस्त जगत में जिन्होंने भी कुछ पाया है, जिन्होंने भी कुछ जाना है, जिन्होंने भी कुछ जीया है, जो जीवन के अंतर्तम गूढ़ रहस्य से परिचित हुए हैं, जिन्होंने मृत्यु पर विजय पाई है, जिन्होंने शरीर के पार कुछ पहचाना है, उन सबके प्रति—समय और क्षेत्र दोनों में। लोक दो अर्थ रखता है। लोक का अर्थः विस्तार में जो हैं वे, स्पेस में, आकाश में जो आज हैं वे—लेकिन जो कल थे वे भी और जो कल होंगे वे भी। लोक—सव्व लोएः सर्व लोक में, सव्वसाहूणंः समस्त साधुओं को। समय के अंतराल में पीछे कभी जो हुए हों वे, भविष्य में जो होंगे वे, आज जो हैं वे, समय या क्षेत्र में कहीं भी जब भी कहीं कोई ज्योति ज्ञान की जली हो, उस सबके लिए नमस्कार। इस नमस्कार के साथ ही आप तैयार होंगे। फिर महावीर की वाणी को समझना आसान होगा। इस नमन के बाद ही, इस झुकने के बाद ही आपकी झोली फैलेगी और महावीर की संपदा उसमें गिर सकती है।

नमन है 'रिसेप्टिविटी', ग्राहकता। जैसे ही आप नमन करते हैं, वैसे ही आपका हृदय खुलता है और आप भीतर किसी को प्रवेश देने के लिए तैयार हो जाते हैं। क्योंकि जिसके चरणों में आपने सिर रखा, उसको आप भीतर आने में बाधा न डालेंगे, निमंत्रण देंगे। जिसके प्रति आपने श्रद्धा प्रकट की, उसके लिए आपका द्वार, आपका घर खुला हो जाएगा। वह आपके घर, आपका हिस्सा होकर जी सकता है। लेकिन ट्रस्ट नहीं है, भरोसा नहीं है, तो नमन असंभव है। और नमन असंभव है तो समझ असंभव है। नमन के साथ ही 'अंडरस्टेंडिंग' है, नमन के साथ ही समझ का जन्म है।

इस ग्राहकता के संबंध में एक आखिरी बात और आपसे कहूं। मास्को यूनिवर्सिटी में 1966 तक एक अदभुत व्यक्ति थाः डा. वार्सिलिएव। वह ग्राहकता पर प्रयोग कर रहा था। 'माइंड की रिसेप्टिविटी', मन की ग्राहकता कितनी हो सकती है। करीब-करीब ऐसा हाल है जैसे कि एक बड़ा भवन हो और हमने उसमें एक छोटा-सा छेद कर रखा हो और उसी छेद से हम बाहर के जगत को देखते हैं। यह भी हो सकता है कि भवन की सारी दीवारें गिरा दी जाएं और हम खुले आकाश के नीचे समस्त रूप से ग्रहण करने वाले हो जाएं। वार्सिलिएव ने एक बहुत हैरानी का प्रयोग किया—और पहली दफा। उस तरह के बहुत से प्रयोग पूरब में—विशेषकर भारत में, और सर्वाधिक विशेषकर महावीर ने किए थे। लेकिन उनका 'डायमेंशन', उनका आयाम अलग था। महावीर ने जाति-स्मरण के प्रयोग किए थे कि प्रत्येक व्यक्ति को आगे अगर ठीक यात्रा करनी हो तो उसे अपने पिछले जन्मों को स्मरण और याद कर लेना चाहिए। उसको पिछले जन्म याद आ जाएं तो आगे की यात्रा आसान हो जाए।

लेकिन वार्सिलिएव ने एक और अनूठा प्रयोग किया। उस प्रयोग को वे कहते हैंः 'आर्टिफिशियल रीइनकारनेशन'। 'आर्टिफिशियल रीइनकारनेशन', कृत्रिम पुनर्जन्म या कृत्रिम पुनरुज्जीवन—यह क्या है? वार्सिलिएव और उसके साथी एक व्यक्ति को बेहोश करेंगे, तीस दिन तक निरंतर सम्मोहित करके उसको गहरी बेहोशी में ले जाएंगे, और जब वह गहरी बेहोशी में आने लगेगा, और अब यह यंत्र हैं—ई.ई.जी. नाम का यंत्र है, जिससे जांच की जा सकती है कि नींद की कितनी गहराई है। अल्फा नाम की वेव्स पैदा होनी शुरू हो जाती हैं, जब व्यक्ति चेतन मन से गिरकर अचेतन में चला जाता है। तो यंत्र पर, जैसे कि कार्डियोग्राम पर ग्राफ बन जाता है, ऐसा ई.ई.जी. भी ग्राफ बना देता है, कि यह व्यक्ति अब सपना देख रहा है, अब सपने भी बंद हो गए, अब यह नींद में हैं, अब यह गहरी नींद में है, अब यह अतल गहराई में डूब गया। जैसे ही कोई व्यक्ति अतल गहराई में डूब जाता है, उसे सुझाव देता था वार्सिलिएव। समझ लें कि वह एक चित्रकार है, छोटा-मोटा चित्रकार है, यह चित्रकला का विद्यार्थी है, तो वार्सिलिएव उसको समझाएगा कि तू माइकल एंजिलो है, पिछले जन्म का, या वानगाग है। या कवि है तो वह समझाएगा कि तू शेक्सपीयर है, या कोई और। और तीस दिन तक निरंतर गहरी अल्फा वेव्स की हालत में उसको सुझाव दिया जाएगा कि वह कोई और है, पिछले जन्म का। तीस दिन में उसका चित्त इसको ग्रहण कर लेगा।

तीस दिन के बाद बड़ी हैरानी के अनुभव हुए, कि वह व्यक्ति जो साधारण सा चित्रकार था, जब उसे भीतर भरोसा हो गया कि मैं माइकल एंजिलो हूं तब वह विशेष चित्रकार हो गया—तत्काल। वह साधारण सा तुकबंद था, जब उसे भरोसा हो गया कि मैं शेक्सपीयर हूं तो शेक्सपीयर की हैसियत की कविताएं उस व्यक्ति से पैदा होने लगीं।

हुआ क्या? वार्सिलिएव तो कहता था—यह 'आर्टिफिशियल रीइनकारनेशन' है। वार्सिलिएव कहता था कि हमारा चित्त तो बहुत बड़ी चीज है। छोटी-सी खिड़की खुली है, जो हमने अपने को समझ रखा है कि हम यह हैं, उतना ही खुला है, उसी को मानकर हम जीते हैं। अगर हमें भरोसा दिया जाए कि हम और बड़े हैं, तो खिड़की बड़ी हो जाती है। हमारी चेतना उतना काम करने लगती है।

वार्सिलिएव का कहना है कि आने वाले भविष्य में हम जीनियस निर्मित कर सकेंगे। कोई कारण नहीं है कि जीनियस पैदा ही न हों। सच तो यह है कि वार्सिलिएव कहता है, सौ में से कम से कम नब्बे बच्चे प्रतिभा की, जीनियस की क्षमता लेकर पैदा होते हैं, हम उसकी खिड़की छोटी कर देते हैं। मां-बाप, स्कूल, शिक्षक, सब मिल-जुलकर उनकी खिड़की छोटी कर देते हैं। बीस-पच्चीस साल तक हम एक साधारण आदमी खड़ा कर देते हैं, जो कि क्षमता बड़ी लेकर आया था, लेकिन हम उसका द्वार छोटा करते जाते हैं, छोटा करते जाते हैं। वार्सिलिएव कहता है, सभी बच्चे जीनियस की तरह पैदा होते हैं। कुछ जो हमारी तरकीबों से बच जाते हैं वह जीनियस बन जाते हैं, बाकी नष्ट हो जाते हैं। पर वार्सिलिएव का कहना है—असली सूत्र है 'रिसेप्टिविटी'। इतना ग्राहक हो जाना चाहिए चित्त कि जो उसे कहा जाए, वह उसके भीतर गहनता में प्रवेश कर जाए।

इस नमोकार मंत्र के साथ हम शुरू करते हैं महावीर की वाणी पर चर्चा। क्योंकि गहन होगा मार्ग, सूक्ष्म होंगी बातें। अगर आप ग्राहक हैं—नमन से भरे, श्रद्धा से भरे—तो आपके उस अतल गहराई में बिना किसी यंत्र की सहायता के—यह भी यंत्र है, इस अर्थ में, नमोकार—बिना किसी यंत्र की सहायता के आप में अल्फा वेव्स पैदा हो जाती हैं। जब कोई श्रद्धा से भरता है तो अल्फा वेव्स पैदा हो जाती हैं—यह आप हैरान होंगे जानकर कि गहन सम्मोहन में, गहरी निद्रा में, ध्यान में या श्रद्धा में ई.ई.जी. की जो मशीन है वह एक सा ग्राफ बनाती है। श्रद्धा से भरा हुआ चित्त उसी शांति की अवस्था में होता है जिस शांति की अवस्था में गहन ध्यान में होता है, या उसी शांति की अवस्था में होता है, जैसा गहन निद्रा में होता है, या उसी शांति की अवस्था में होता है, जैसा कि कभी भी आप जब बहुत 'रिलैक्स्ड' और बहुत शांत होते हैं।

जिस व्यक्ति पर वार्सिलिएव काम करता था, वह है निकोलिएव नाम का युवक, जिस पर उसने वर्षों काम किया। निकोलिएव को दो हजार मील दूर से भी भेजे गए विचारों को पकड़ने की क्षमता आ गई है। सैकड़ों प्रयोग किए गए हैं जिसमें वह दो हजार मील दूर तक के विचारों को पकड़ पाता है। उससे जब पूछा जाता है कि उसकी तरकीब क्या है तो वह कहता है—तरकीब यह है कि मैं आधा घंटा पूर्ण 'रिलैक्स', शिथिल होकर पड़ जाता हूं और 'एक्टिविटी' सब छोड़ देता हूं, भीतर सब सक्रियता छोड़ देता हूं, 'पैसिव' हो जाता हूं। पुरुष की तरह नहीं, स्त्री की तरह हो जाता हूं। कुछ भेजता नहीं, कुछ आता हो तो लेने को राजी हो जाता हूं। और आधा घंटे में ई.ई.जी. की मशीन जब बता देती है कि अल्फा वेव्स शुरू हो गइ□, तब वह दो हजार मील दूर से भेजे गए विचारों को पकड़ने में समर्थ हो जाता है। लेकिन जब तक वह इतना रिसेप्टिव नहीं होता, तब तक यह नहीं हो पाता।

वार्सिलिएव और दो कदम आगे गया। उसने कहा—आदमी ने तो बहुत तरह से अपने को विकृत किया है। अगर आदमी में यह क्षमता है तो पशुओं में और भी शुद्ध होगी। और इस सदी का अनूठे से अनूठा प्रयोग वार्सिलिएव ने किया कि एक मादा चूहे को, चुहिया को ऊपर रखा और उसके आठ बच्चों को पानी के भीतर, पनडुब्बी के भीतर हजारों फीट नीचे सागर में भेजा। पनडुब्बी का इसलिए उपयोग किया कि पानी के भीतर पनडुब्बी से कोई रेडियो-वेव्स बाहर नहीं आतीं, न बाहर से भीतर जाती हैं। अब तक जानी गई जितनी वेव्स वैज्ञानिकों को पता हैं, जितनी तरंगें, वे कोई भी पानी के भीतर इतनी गहराई तक प्रवेश नहीं करतीं। एक गहराई के बाद सूर्य की किरण भी पानी में प्रवेश नहीं करती।

तो उस गहराई के नीचे पनडुब्बी को भेज दिया गया, और उस चुहिया की खोपड़ी पर सब तरफ इलेक्ट्रोड्स लगाकर ई.ई.जी. से जोड़ दिए गए—मशीन से, जो चुहिया के मस्तिष्क में जो वेव्स चलती हैं उसको रिकार्ड करे। और बड़ी अदभुत बात हुई। हजारों फीट नीचे, पानी के भीतर एक-एक उसके बच्चे को मारा गया खास-खास मोमेंट पर नोट किया गया—जैसे ही वहां बच्चा मरता, वैसे ही यहां उसकी ई.ई.जी. की वेव्स बदल जातीं—दुर्घटना घटित हो गई। ठीक छह घंटे में उसके बच्चे मारे गए—खास-खास समय पर, नियत समय पर। उस नियत समय का ऊपर कोई पता नहीं है। नीचे जो वैज्ञानिक है उसको छोड़ दिया गया है कि इतने समय के बीच वह कभी भी, पर नोट कर लें मिनट और सैकंड। जिस मिनट और सैकंड पर नीचे चुहिया के बच्चे मारे गए, उस मां ने उसके मस्तिष्क में उस वक्त धक्के अनुभव किए। वार्सिलिएव का कहना है कि जानवरों के लिए टैलिपैथिक सहज सी घटना है। आदमी भूल गया है, लेकिन जानवर अभी भी टैलिपैथिक जगत में जी रहे हैं।

मंत्र का उपयोग है, आपको वापस टैलिपैथिक जगत में प्रवेश—अगर आप अपने को छोड़ पाएं, हृदय से, उस गहराई से कह पाएं जहां कि आपकी अचेतना में डूब जाता है सब—'नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूणं, यह भीतर उतर जाए तो आप अपने अनुभव से कह पाएंगेः 'सव्वपावप्पणासणो', यह सब पापों का नाश करने वाला महामंत्र है।

ओशो

महावीर-वाणी

प्रवचन 1 (संस्करणः 1988)

शरणागति : धर्म का मूल आधार

आप 'ट्रांसैंड' कर जाते हैं, अतिक्रमण कर जाते हैं— साधारण तथाकथित नियमों का— जो हमें बांधे हुए हैं।और तीसरी बात— शरणागति आपके जीवन द्वारों को परम ऊर्जा की तरफ खोल देती है जैसे कि कोई अपनी आंख को सूरज की तरफ उठा ले। सूरज की तरफ पीठ करने की भी हमें स्वतंत्रता है। सूरज की तरफ पीठ करके भी हम खड़े हो सकते हैं। सूरज की तरफ मुंह करके भी आंख बंद रख सकते हैं। सूरज का अनंत प्रकाश बरसता रहेगा और हम वंचित रह जाएंगे। लेकिन एक आदमी सूरज की तरफ घूम जाता है, जैसे कि सूरजमुखी का फूल घूम गया हो। आंख खोल लेता है, द्वार खुले छोड़ देता है। सूरज का प्रकाश उसके रोएं-रोएं, रंध्र-रंध्र में पहुंच जाता है। उसके हृदय के अंधकारपूर्ण कक्षों तक भी प्रकाश की खबर पहुंच जाती है। वह नया और ताजा, पुनरुज्जीवित हो जाता है। ठीक ऐसे ही विश्व-ऊर्जा के स्रोत हैं और उन विश्व-ऊर्जा के स्रोतों की तरफ स्वयं को खोलना हो तो शरण में जाने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

इसलिए अहंकारी व्यक्ति दीन से दीन व्यक्ति है, जिसने अपने को समस्त स्रोतों से तोड़ लिया है। जो सिर्फ अपने पर ही भरोसा कर रहा है। वह ऐसा फूल है जिसने जड़ों से अपने संबंध त्याग दिये। और जिसने सूरज की तरफ मुंह फेरने से अकड़ दिखायी। वर्षा आती है तो अपनी पंखुड़ियां बंद कर लेता है। सड़ेगा, उसका जीवन सिर्फ सड़ने का एक क्रम होगा। उसका जीवन मरने की एक प्रक्रिया होगी। उसका जीवन परम जीवन का मार्ग नहीं बनेगा। लेकिन फूल पाता है रस— जड़ों से, सूयोच से, चांद-तारों से। अगर फूल समर्पित है तो प्रफुल्लित हो जाता है। सब द्वारों से उसे रोशनी, प्रकाश, जीवन मिलता है।

शरणागति का तीसरा और गहनतम जो रूप है, वह प्रकाश, जीवन-ऊर्जा के जो परम स्रोत हैं, जो एनर्जी सोसच हैं— उनकी तरफ अपने को खोलना है।

इस पावलिटा का मैंने नाम लिया, इसके नाम से एक यंत्र वैज्ञानिक जगत में प्रसिद्ध है। वह कहलाता है, पावलिटा जनरेटर। बड़े छोटे-छोटे उसने यंत्र बनाये हैं। बहुत संवेदनशील पदाथोच से बहुत छोटी-छोटी चीजें बनायी हैं, और अभूतपूर्व काम उन यंत्रों से पावलिटा कर रहा है। वह उन यंत्रों पर कहता है कि आप सिर्फ अपनी आंख गड़ाकर खड़े हो

जाएं, पांच क्षण के लिए— कुछ न करें, सिर्फ आंख गड़ाकर उन यंत्रों के सामने खड़े हो जाएं। वह यंत्र आपकी शक्ति को संगृहीत कर लेते हैं और तत्काल उस शक्ति का उपयोग किया जा सकता है। और जो काम आपका मन कर सकता था, बहुत दूर तक वही काम अब वह यंत्र कर सकता है। पांच मिनट पहले उस यंत्र को आप हाथ में उठाते तो वह मुर्दा था। पांच मिनट बाद आप उसको हाथ में उठाएं तो आपके हाथ में उस शक्ति का अनुभव होगा। पांच मिनट पहले आप जिसे प्रेम करते हैं, अगर आपने वह यंत्र उसके हाथ में दिया होता तो वह कहता, ठीक है। यह व्यक्ति कहता या वह स्त्री कहती कि ठीक है। लेकिन पांच ि मिनट उसे आप गौर से देख लें और आपकी ध्यान-ऊर्जा उससे संयुक्त हो जाए तो आप उस यंत्र को अपने प्रेमी के हाथ में दे दें — वह फौरन पहचानेगा कि आपकी प्रतिध्वनि उस यंत्र से आ रही है। अगर क्रोध और घृणा से भरा हुआ व्यक्ति उस यंत्र को देख ले तो आप उसको हाथ से अलग करना चाहेंगे। अगर प्रेम और दया और सहानुभूति से भरा व्यक्ति देख ले तो आप उसे संभालकर रखना चाहेंगे।

पावलिटा ने तो एक बहुत अदभुत घोषणा की है। उसने कहा— बहुत शीघ्र भीड़ को छांटने के लिए गोली और लाठी चलाने की जरूरत न होगी। हम ऐसे यंत्र बना सकेंगे जो पंद्रह मिनट में वहां खड़े कर दिये जाएं तो लोग भाग जाएंगे। इतनी घृणा विकीर्णित की जा सकेगी। अभी उसके प्रयोग तो सफल हुए हैं उसने प्रयोग बताये हैं, लोगों को करके, और वे सफल हुए हैं। अब उसने नवीनतम जो यंत्र बनाया है वह ऐसा है कि आपको देखने की भी जरूरत नहीं है। आप सिर्फ एक विशेष सीमा के भीतर उसके पास से गुजर जाएं, वह आपको पकड़ लेगा।

मैंने कल कहा था कि स्टेलिन ने एक आदमी की हत्या करवा दी थी— कार्ल आटोविच झीलिंग की, 1937 में। वह आदमी 1937 में यही काम कर रहा था, जो पावलिटा अब कर पाया है। बीस साल, तीस साल व्यर्थ पिछड़ गयी बात। झीलिंग अदभुत व्यक्ति था। वह अंडे को हाथ में रखकर बता सकता था कि इस अंडे से मुर्गी पैदा होगी या मुर्गा, और कभी गलती नहीं हुई। पर यह तो बड़ी बात नहीं, क्योंकि अंडे के भीतर आखिर जो प्राण हैं, स्त्री और पुरुष की विद्युत में फर्क हैं, उनके विद्युत कंपन में फर्क है। वही उनके बीच आकर्षण है। वह निगेटिव-पाजिटिव का फर्क है। तो अंडे के ऊपर अगर संवेदनशील व्यक्ति हाथ रखे तो जो ऊर्जा-कण निकलते रहते हैं, वह बता सकता है।

लेकिन झीलिंग— चित्र को ढंक दें आप— वह चित्र, ढंके हुए चित्र पर हाथ रखकर बता सकता था कि चित्र नीचे स्त्री का है कि पुरुष का। झीलिंग का कहना था कि जिसका चित्र लिया गया है, उसके ि विद्युत कण उस चित्र में समाविष्ट हो जाते हैं, जितनी देर लिया जाता है। और इसलिए समाविष्ट हो जाते हैं कि जब किसी का ि चत्र लिया जाता है, तो वह कैमरा-कांशस हो जाता है, उसका ध्यान कैमरे पर अटक जाता है और धारा प्रवाहित हो जाती है। वह जो पावलिटा कह रहा है कि एक तरफ देखने से आपकी ऊर्जा चली जाती है; आपके चित्र में भी आपकी ऊर्जा चली जाती है।

पर यह तो कुछ भी नहीं है। झीलिंग की सबसे अदभुत बात जो थी, वह यह है कि किसी आइने पर हाथ रखकर वह बता सकता था कि आखिरी जो व्यक्ति, इस आइने के सामने से निकला, वह स्त्री थी या पुरुष। क्योंकि आइने के सामने भी आप मिरर-कांशस हो जाते हैं। जब आप आइने के सामने होते हैं तब जितने एकाग्र होते हैं, शायद और कहीं नहीं होते। आपके बाथरूम में लगा आइना आपके संबंध में किसी दिन इतनी बातें कह सकेगा कि आपको अपना आइना बचाना पड़ेगा कि कोई ले न जाए उठाकर। वे सब रहस्य खुल जाएंगे, जो आपने किसी को नहीं बताए। जो सिर्फ आपका बा थरूम और आपके बाथरूम का आइना जानता है। क्योंकि जितने ध्यानमग्न होकर आप आइने को देखते हैं, शायद किसी चीज को नहीं देखते। आपकी ऊर्जा प्रविष्ट हो रही है।

अगर आपसे ऊर्जा प्रविष्ट होती है ध्यानमग्न होने से, तो क्या इससे विपरीत नहीं हो सकता? वह विपरीत ही शरणागति का राज है। कि अगर आप ध्यानमग्न होते हैं, बहुत छोटे-से ऊर्जा के केन्द्र हैं आप। और अगर आपसे भी ऊर्जा प्रवाहित हो जाती है, तो क्या परम शक्ति के प्रति आप समर्पित होकर, उसकी ऊर्जा को अपने में समाविष्ट नहीं कर सकते? ऊर्जा के प्रवाह हमेशा दोनों तरफ होते हैं। जो ऊर्जा आपसे बह सकती है, वह आपकी तरफ भी बह सकती है। और अगर गंगाएं सागर की तरफ बहती हैं तो क्या सागर गंगा की तरफ नहीं बह सकता? यह शरणागति, सागर को गंगा की गंगोत्री की तरफ बहाने की प्रक्रिया है।

हम तो सब बह-बहकर सागर में गिर ही जाते हैं, लड़-लड़कर बचाने की कोशिश में हैं। जीसस ने कहा है— 'जो भी अपने को बचाएगा, वह मिट जाएगा। और धन्य हैं वे जो अपने को मिटा देते हैं, क्योंकि उनको मिटाने की फिर किसी की सामर्थ्य नहीं है।' गंगा तो लड़ती होगी, झगड़ती होगी, सागर में गिरने के पहले, सभी झगड़ते और लड़ते हैं। भयभीत होती होगी, मिटी जाती होगी। मौत से हमारा डर यही तो है। मौत का मतलब, सागर के किनारे पहुंच गयी गंगा। मरे, बचा रहे हैं। लड़ते-लड़ते गिर जाते हैं। तब गिरने का जो मजा था, उससे भी चूक जाते हैं और पीड़ा भी पाते हैं।

शरणागति कहती है, लड़ो ही मत। गिर ही जाओ, और तुम पाओगे कि जिसकी शरण में तुम गिर गये हो, उससे तुमने कुछ नहीं खोया— पाया। सागर आया गंगोत्री की तरफ — वह जो अमृत का स्रोत है, चारों तरफ, जीवन का रहस्य स्रोत। ये तो प्रतीक शब्द हैं—अरिहंत, सिद्ध, साधु। ये हमारे पास आकृतियां हैं, उस अनन्त स्रोत की। ये हमारे निकट, जिन्हें हम पहचान सकें। परमात्मा निराकार में खड़ा है, उसे पहचानना बहुत मुश्किल होगा। जो पहचान सके, धन्यभागी है।

48

शरणागति : धर्म का मूल आधार

लेकिन आकार में भी परमात्मा की छवि बहुत बार दिखाई पड़ती है— कभी किसी महावीर में, कभी किसी बुद्ध में, कभी किसी क्राइस्ट में, कभी उस परमात्मा की, उस निराकार की छवि दिखाई पड़ती है। लेकिन हम उस निराकार को तब भी चूकते हैं, क्योंकि हम आकृति में कोई भूल निकाल लेते हैं। कहते हैं कि जीसस की नाक थोड़ी कम लंबी है। यह परमात्मा की नहीं हो सकती। या महावीर को तो बीमारी पकड़ती है, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? कि बुद्ध भी तो मर जाते हैं, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? आपको खयाल नहीं कि यह आप आकृति की भूलें निकाल रहे हैं और आकृति के बीच जो मौजूद था, उससे चूके जा रहे हैं।

आप वैसे आदमी हैं, जो कि दीये की मिट्टी की भूलें निकाल रहे हैं, तेल की भूलें निकाल रहे हैं और वह जो ज्योति चमक रही है, उससे चूके जा रहे हैं। होगी दीये में भूल। नहीं बना होगा पूरा सुघड़। पर प्रयोजन क्या है? तेल भर लेता है, काफी सुघड़ है। वह जो ज्योति बीच में जल रही है, वह जो निराकार ज्योति है, स्रोत-रहित—उसे तो देखना कठिन है। उसे भी देखा जा सकता है। लेकिन अभी तो प्रारंभिक चरण में उसे अरिहंत में, उसे सिद्ध में, उसे साधु में, उसे जाने हुए लोगों के द्वारा कहे गये धर्म में देखने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि अगर कृष्ण बोल रहे हों तो हम यह फिक्र कम करेंगे कि उन्होंने क्या कहा। हम इसकी फिक्र करेंगे कि कोई व्याकरण की भूल तो नहीं थी। ऐसे लोग हैं!

हम जिद्द किये बैठे हैं, चूकने की कि हम चूकते ही चले जाएंगे। और जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, उनसे ज्यादा बुद्धिहीन खोजना मुश्किल है, क्योंकि वे चूकने में सर्वाधिक कुशल होते हैं। वे महावीर के पास जाते हैं तो वे कहते हैं कि सब लक्षण पूरे हुए कि नहीं? पहले लक्षण जो शास्त्र में लिखे हैं— वे पूरे होते हैं कि नहीं। वे दीयों की नाप-जोख कर रहे हैं, तेल का पता लगा रहे हैं। और तब तक ज्योति विदा हो जाएगी। और जब तक वे तय कर पाएंगे कि दीया बिलकुल

ठीक है, तब तक ज्योति जा चुकी होगी। और तब दीये को हजारों साल तक पूजते रहेंगे। इसलिए मरे हुए दीयों का हम बड़ा आदर करते हैं। क्योंकि जब तक हम तय कर पाते हैं कि दीया ठीक है, या अपने को तय कर पाते हैं कि चलो ठीक है, तब तक ज्योति तो जा चुकी होती है।

इस जगत में, जिंदा तीथच्कर का उपयोग नहीं होता, सिर्फ मुर्दा तीथच्कर का उपयोग होता है। क्योंकि मुर्दा तीथच्कर के साथ, भूल-चूक निकालने की सुविधा नहीं रह जाती। अगर महावीर के साथ आप रास्ते पर चलते हों, और देखें कि महावीर भी थककर और वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं, शक पकड़ेगा कि अरे महावीर तो कहते थे अनंत ऊर्जा है, अनंत शक्ति है, अनंत वीर्य है। कहां गयी अनंत ऊर्जा? यह तो थक गये। दस मील चले और पसीना निकल आया। साधारण आदमी हैं। दीया थक रहा है। महावीर जिस अनंत ऊर्जा की बात कर रहे हैं वह ज्योति की बात है। दीये तो सभी के थक जाएंगे और गिर जाएंगे।

लेकिन ये सारी बातें हम क्यों सोचते हैं? यह हम सोचते हैं, इसलिए कि शरण से बच सकें।इसके सोचने का लाजिक है। इसके सोचने का तर्क है। इसके सोचने का रैशनलाइजेशन है। यह हम सोचते इसर्ािलए हैं ताकि हमें कोई कारण मिल सके और कारण के द्वारा, हम अपने को रोक सकें— शरण जाने से। बुद्धिमान वह है जो कारण खोजता है शरण जाने के लिए। और बुद्धिहीन वह है जो कारण खोजता है शरण से बचने के लिए। दोनों खोजे जा सकते हैं।

महावीर जिस गांव से गुजरते हैं, सारा गांव उनका भक्त नहीं हो जाता । उस गांव में भी उनके शत्रु होते ही हैं। जरूर वे भी अकारण नहीं होते होंगे। उनको भी कारण मिल जाता है। वे भी खोज लेते हैं कि महावीर को, कहते हैं कि जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है वह सर्वज्ञ हो जाता है। और अगर महावीर सर्वज्ञ हैं तो वे उस घर के सामने भिक्षा क्यों मांगते थे, जिसमें कोई है ही नहीं? इन्हें तो पता होना ही चाहिए न कि घर में कोई भी नहीं है! सर्वज्ञ? ये खुद ही कहते हैं, जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। और हमने इनको ऐसे घर के सामने भीख मांगते देखा, जिसमें पता चला कि घर खाली है। घर में कोई है ही नहीं। नहीं,

लेकिन आकार में भी परमात्मा की छवि बहुत बार दिखाई पड़ती है— कभी किसी महावीर में, कभी किसी बुद्ध में, कभी किसी क्राइस्ट में, कभी उस परमात्मा की, उस निराकार की छवि दिखाई पड़ती है। लेकिन हम उस निराकार को तब भी चूकते हैं, क्योंकि हम आकृति में कोई भूल निकाल लेते हैं। कहते हैं कि जीसस की नाक थोड़ी कम लंबी है। यह परमात्मा की नहीं हो सकती। या महावीर को तो बीमारी पकड़ती है, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? कि बुद्ध भी तो मर जाते हैं, ये परमात्मा कैसे हो सकते हैं? आपको खयाल नहीं कि यह आप आकृति की भूलें निकाल रहे हैं और आकृति के बीच जो मौजूद था, उससे चूके जा रहे हैं।

आप वैसे आदमी हैं, जो कि दीये की मिट्टी की भूलें निकाल रहे हैं, तेल की भूलें निकाल रहे हैं और वह जो ज्योति चमक रही है, उससे चूके जा रहे हैं। होगी दीये में भूल। नहीं बना होगा पूरा सुघड़। पर प्रयोजन क्या है? तेल भर लेता है, काफी सुघड़ है। वह जो ज्योति बीच में जल रही है, वह जो निराकार ज्योति है, स्रोत-रहित—उसे तो देखना कठिन है। उसे भी देखा जा सकता है। लेकिन अभी तो प्रारंभिक चरण में उसे अरिहंत में, उसे सिद्ध में, उसे साधु में, उसे जाने हुए लोगों के द्वारा कहे गये धर्म में देखने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन हम ऐसे लोग हैं कि अगर कृष्ण बोल रहे हों तो हम यह फिक्र कम करेंगे कि उन्होंने क्या कहा। हम इसकी फिक्र करेंगे कि कोई व्याकरण की भूल तो नहीं थी। ऐसे लोग हैं!

हम जिद्द किये बैठे हैं, चूकने की कि हम चूकते ही चले जाएंगे। और जिनको हम बुद्धिमान कहते हैं, उनसे ज्यादा बुद्धिहीन खोजना मुश्किल है, क्योंकि वे चूकने में सर्वाधिक कुशल होते हैं। वे महावीर के पास जाते हैं तो वे कहते हैं कि सब लक्षण पूरे हुए कि नहीं? पहले लक्षण जो शास्त्र में लिखे हैं— वे पूरे होते हैं कि नहीं। वे दीयों की नाप-जोख कर रहे हैं, तेल का पता लगा रहे हैं। और तब तक ज्योति विदा हो जाएगी। और जब तक वे तय कर पाएंगे कि दीया बिलकुल ठीक है, तब तक ज्योति जा चुकी होगी। और तब दीये को हजारों साल तक पूजते रहेंगे। इसलिए मरे हुए दीयों का हम बड़ा आदर करते हैं। क्योंकि जब तक हम तय कर पाते हैं कि दीया ठीक है, या अपने को तय कर पाते हैं कि चलो ठीक है, तब तक ज्योति तो जा चुकी होती है।

इस जगत में, जिंदा तीथच्कर का उपयोग नहीं होता, सिर्फ मुर्दा तीथच्कर का उपयोग होता है। क्योंकि मुर्दा तीथच्कर के साथ, भूल-चूक निकालने की सुविधा नहीं रह जाती। अगर महावीर के साथ आप रास्ते पर चलते हों, और देखें कि महावीर भी थककर और वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं, शक पकड़ेगा कि अरे महावीर तो कहते थे अनंत ऊर्जा है, अनंत शक्ति है, अनंत वीर्य है। कहां गयी अनंत ऊर्जा? यह तो थक गये। दस मील चले और पसीना निकल आया। साधारण आदमी हैं। दीया थक रहा है। महावीर जिस अनंत ऊर्जा की बात कर रहे हैं वह ज्योति की बात है। दीये तो सभी के थक जाएंगे और गिर जाएंगे।

लेकिन ये सारी बातें हम क्यों सोचते हैं? यह हम सोचते हैं, इसलिए कि शरण से बच सकें।इसके सोचने का लाजिक है। इसके सोचने का तर्क है। इसके सोचने का रैशनलाइजेशन है। यह हम सोचते इसर्ा लए हैं ताकि हमें कोई कारण मिल सके और कारण के द्वारा, हम अपने को रोक सकें— शरण जाने से। बुद्धिमान वह है जो कारण खोजता है शरण जाने के लिए। और बुद्धिहीन वह है जो कारण खोजता है शरण से बचने के लिए। दोनों खोजे जा सकते हैं।

महावीर जिस गांव से गुजरते हैं, सारा गांव उनका भक्त नहीं हो जाता । उस गांव में भी उनके शत्रु होते ही हैं। जरूर वे भी अकारण नहीं होते होंगे। उनको भी कारण मिल जाता है। वे भी खोज लेते हैं कि महावीर को, कहते हैं कि जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है वह सर्वज्ञ हो जाता है। और अगर महावीर सर्वज्ञ हैं तो वे उस घर के सामने भिक्षा क्यों मांगते थे, जिसमें कोई है ही नहीं? इन्हें तो पता होना ही चाहिए न कि घर में कोई भी नहीं है! सर्वज्ञ? ये खुद ही कहते हैं, जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। और हमने इनको ऐसे घर के सामने भीख मांगते देखा, जिसमें पता चला कि घर खाली है। घर में कोई है ही नहीं। नहीं,

है। किसी दिन जब मेरी सामर्थ्य आ जाएगी कि जब मैं शून्य में गिर पाऊंगा— उन चरणों में, जो दिखाई भी नहीं पड़ते; उन चरणों में, जिन्हें छुआ भी नहीं जा सकता। लेकिन जो चरण चारों तरफ मौजूद हैं— जब मैं उस कास्मिक—उस विराट अस्तित्व, निराकार को सीधा ही गिर पाऊंगा। पर जरा गिरने का मुझे आनंद लेने दो। अगर इन दिखाई पड़ते हुए चरणों में इतना आनंद है, उसका मुझे थोड़ा स्वाद आ जाने दो, तो फिर मैं उस विराट में भी गिर जाऊंगा।

इसलिए बुद्ध का जो सूत्र है— 'बुद्धं शरणं गच्छामि' वह बुद्ध से शुरू होता है, व्यक्ति से। 'संघं शरणं गच्छामि'— समूह पर बढ़ता। संघ का अर्थ है— उन सब साधुओं का, उन सब साधुओं के चरणों में। और फिर धर्म पर— 'धम्मं शरणं गच्छामि' फिर वह समूह से भी हट जाता है। फिर वह सिर्फ स्वभाव में, फिर निराकार में खो जाता है। वही, अरिहंत के चरण गिरता हूं; स्वीकार करता हूं, अरिहंत की शरण। सिद्ध की शरण स्वीकार करता हूं, साधु की शरण स्वीकार करता हूं। और अंत में केवलिपन्नत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि— धर्म की, जाने हुए लोगों के द्वारा बताये गये ज्ञान की शरण स्वीकार

करता हूं। सारी बात इतनी है कि अपने को अस्वीकार करता हूं। और जो अपने को अस्वीकार करता है वह स्वयं को पा लेता है और जो स्वयं को ही पकड़कर बैठा रह जाता है वह सब तो खो देता है, अंत में स्वयं को भी नहीं पाता। स्वयं को पाने की यह प्रक्रिया बड़ी पैराडाक्सिकल है, बड़ी विपरीत दिखाई पड़ेगी। स्वयं को पाना हो तो स्वयं को छोड़ना पड़ता है। और स्वयं को मिटाना हो तो स्वयं को खूब जोर से पकड़े रहना पड़ता है।

दो सूत्र अब तक विकसित हुए हैं जैसा मैंने कहा— एक, सिद्ध की तरफ से कि मेरी शरण आ जाओ। दो, शव□च्0;00च्च्10388306च्0च्00च्0च्च्87च्00□च्00च्7च्70च्0च्च्0च्08च्70;1च्0च्0च्च्च्0च्च्0च्0च्0च्0च्36च्च्08800च् 08च्30;00च्च्10च्110च्830च्0च्0च्80च्08च्30;00च्च्10च्11च्30च्01038807च्30;*च्0□0च्00च्20□10च्00□000च् 0च्0□0च्00च्20□10च्00च्0च्3च्0च्0च्0□0च्00च्208च्10च्00च्च्च्0च्0च्0च्8च्20'1च्30;00च्च्10च्110च्830च्0च्084 8च्04च्0च्7ची श्रद्धा। समर्पण यानी शरणागति। समर्पण यानी अहंकार विसर्जन। नमोकार इस पर पूरा होता है।

कल से हम महावीर की वाणी में प्रवेश करेंगे। लेकिन वे ही प्रवेश कर पाएंगे जो अपने भीतर शरण की आकृति निर्मित कर पाएंगे। चौबीस घंटे के लिए एक प्रयोग करना। जब भी खयाल आये तो मन में कहना — 'अरिहंते शरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहू शरणं पवज्जामि, केवलिपन्नत्तं धम्मं शरणं पवज्जामि'। इसे दोहराते रहना चौबीस घंटे। रात सोते समय इसे दोहराकर सो जाना। रात नींद टूट जाए तो इसे दोहरा लेना। सुबह नींद खुले तो पहले इसे दोहरा लेना। कल यहां आते वक्त इसे दोहराते आना। अगर वह शरण की आकृति भीतर बन जाए तो महावीर की वाणी में हम किसी और ढंग से प्रवेश कर सकेंगे— जैसा पच्चीस सौ वर्ष में संभव नहीं हुआ है।

आज इतना ही।

अब हम यह शरण की आकृति और इसकी ध्वनि में थोड़ा प्रवेश करें। कोई जाए न, बैठ जाएं और सम्मिलित हों।

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किच्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

54

□

धर्म : स्वभाव में होना

चौथा प्रवचन

दिनांक 21 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला, पाटकर हाल, बम्बई।

53

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है — तो अमंगल क्या है, दुख क्या है, मनुष्य की पीड़ा और संताप क्या है? उसे न समझें तो 'धर्म मंगल है, शुभ है, आनंद है'— इसे भी समझना आसान न होगा। महावीर कहते हैं— धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। जीवन में जो भी आनंद की संभावना है, वह धर्म के द्वार से ही प्रवेश करती है। जीवन में जो भी स्वतंत्रता उपलब्ध होती है वह धर्म के आकाश में ही उपलब्ध होती है। जीवन में जो भी सौंदर्य के फूल खिलते हैं वे धर्म की जड़ों से ही पोषित होते हैं। और जीवन में जो भी दुख है वह किसी न किसी रूप में धर्म से च्युत हो जाने में, या अधर्म में संलग्न हो जाने में है। महावीर की दृष्टि में धर्म का अर्थ है— जो मैं हूं, उस होने में ही जीना है। जो मैं हूं, उससे जरा भी, इंच-भर भी च्युत न होना है।
जो मेरा होना है, जो मेरा अस्तित्व है उससे जहां मैं बाहर जाता हूं, सीमा का उल्लंघन करता हूं। जहां मैं विजातीय से संबंधित होता हूं, जहां मैं उससे संबंधित होता हूं जो मैं नहीं हूं, वहीं दुख का प्रारंभ हो जाता है। और दुख का प्रारंभ इसलिए हो जाता है कि जो मैं नहीं हूं, उसे मैं कितना ही चाहूं, वह मेरा नहीं हो सकता। जो मैं नहीं हूं, उसे मैं कितना ही बचाना चाहूं, उसे मैं बचा नहीं सकता। वह खोयेगा ही। जो मैं नहीं हूं, उस पर मैं कितना ही श्रम और मेहनत करूं, अंततः मैं पाऊंगा वह मेरा नहीं सिद्ध हुआ। श्रम हाथ लगेगा, चिंता हाथ लगेगी, जीवन का अपव्यय होगा और अंत में मैं पाऊंगा कि मैं खाली का खाली रह गया हूं। मैं केवल उसे ही पा सकता हूं जिसे मैंने किसी गहरे अर्थ में सदा से पाया ही हुआ है। मैं केवल उसका ही मालिक हो सकता हूं जिसका मैं जानूं न जानूं, अभी भी मालिक हूं। मृत्यु जिसे मुझसे नहीं छीन सकेगी, वही केवल मेरा है। देह मेरी गिर जाएगी तो भी जो नहीं गिरेगा, वही केवल मेरा है। रुग्ण हो जाएगा सब कुछ, दीन हो जाएगा सब कुछ, नष्ट हो जाएगा सब कुछ— फिर भी जो नहीं म्लान होगा, वही मेरा है। गहन अंधकार छा जाए, अमावस आ जाए जीवन में चारों तरफ— फिर भी जो अंधेरा नहीं होगा वही मेरा प्रकाश है।
लेकिन हम सब, जो मैं नहीं हूं, वहां खोजते हैं स्वयं को। वहीं से िवफलता, वहीं से फ्रस्ट्रेशन, वहीं से विषाद जन्मता है। जो भी हम चाहते हैं, वह स्वयं को छोड़कर सब हम चाहते हैं। हैरानी की बा त है, इस जगत में बहुत कम लोग हैं जो स्वयं को चाहते हैं। शायद आपने इस भांति नहीं सोचा होगा कि आपने स्वयं को कभी नहीं चाहा, सदा किसी और को चाहा।
वह और, कोई व्यक्ति भी हो सकता है; वस्तु भी हो सकती है, कोई पद भी हो सकता है, कोई स्थिति भी हो सकती है; लेकिन सदा कोई और है, अन्य है— दि अदर। स्वयं को हममें से कोई भी कभी नहीं चाहता। और केवल एक ही संभावना है जगत मेंकि हम स्वयं को पा सकते हैं, और कुछ पा नहीं सकते। सिर्फ दौड़ सकते हैं। जिसे हम पा नहीं सकते और केवल दौड़ सकते हैं,

55

महावीर-वाणी भाग : 1

उससे दुख आएगा। उससे डिसइल्युजनमेंट होगा, कहीं न कहीं भ्रम टूटेगा और ताश के पत्तों का घर गिर जाएगा। और कहीं न कहीं नाव डूबेगी, क्योंकि वह कागज की थी। और कहीं न कहीं हमारे स्वप्न बिखरेंगे और आंसू बन जाएंगे। क्योंकि वे स्वप्न थे।

सत्य केवल एक है, और वह यह कि मैं स्वयं के अतिरिक्त इस जगत में और कुछ भी नहीं पा सकता हूं। हां, पाने की कोशिश कर सकता हूं। पाने का श्रम कर सकता हूं, पाने की आशा बांध सकता हूं, पाने के स्वप्न देख सकता हूं। और कभी-कभी ऐसा भी अपने को भरमा सकता हूं कि पाने के बिलकुल करीब पहुंच गया हूं। लेकिन कभी पहुंचता नहीं, कभी पहुंच नहीं सकता हूं।

अधर्म का अर्थ है, स्वयं को छोड़कर और कुछ भी पाने का प्रयास। अधर्म का अर्थ है, स्वयं को छोड़कर 'पर' पर दृष्टि। और हम सब 'दि अदर ओरिएंटेड' हैं। हमारी दृष्टि सदा दूसरे पर लगी है। और कभी अगर हम अपनी शक्ल भी देखते हैं तो वह भी दूसरे के लिए। अगर आइने के सामने खड़े होकर भी अपने को देखते हैं तो वह किसी के लिए— कोई जो हमें देखेगा— उसके लिए हम तैयारी करते हैं। स्वयं को हम सीधा कभी नहीं चाहते।और धर्म तो स्वयं को सीधे चाहने से उत्पन्न होता है। क्योंकि धर्म का अर्थ है स्वभाव — दि अल्टीमेट नेचर। वह जो अंततः, अंततोगत्वा मेरा, मेरा होना है, जो मैं हूं।

सार्त्र ने बहुत कीमती सूत्र कहा है। कहा है— दि अदर इज हैल। वह जो दूसरा है, वही नरक है हमारा। सार्त्र ने किसी और अर्थ में कहा है। लेकिन महावीर भी किसी और अर्थ में राजी हैं। वे भी कहते हैं कि दि अदर इज हैल, बट दि इंफेसिस इज नाट आन दि अदर ऐज हैल, बट आन वनसेल्फ ऐज दि हैवन। दूसरा नरक है, यह महावीर नहीं कहते हैं क्योंकि इतना कहने में भी दूसरे को चाहने की आकांक्षा और दूसरे से मिली विफलता छिपी है। महावीर कहते हैं— 'स्वयं होना मोक्ष है। धर्म है मंगल'।

सार्त्र के इस वचन को थोड़ा समझ लें। सार्त्र का जोर है यह कहने में कि दूसरा नर्क है। लेकिन दूसरा नर्क क्यों मालूम पड़ता है, यह शायद सार्त्र ने नहीं सोचा। दूसरा नर्क इसीलिए मालूम पड़ता है कि हमने दूसरे को स्वर्ग मानकर खोज की। हम दूसरे के पीछे गये, जैसे वहां स्वर्ग है। वह चाहे पत्नी हो, चाहे पति, चाहे बेटा हो, चाहे बेटी। चाहे मित्र, चाहे धन, चाहे यश। वह कुछ भी हो दूसरा, जो मुझसे अन्य है। सार्त्र को कहने में आता है कि दूसरा नर्क है क्योंकि दूसरे में स्वर्ग खोजने की कोशिश की गई है।अगर स्वर्ग नहीं मिलता तो नरक मालूम पड़ता है। महावीर नहीं कहते कि दूसरा नरक है। महावीर कहते हैं— 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं'— धर्म मंगल है। अधर्म अमंगल है, ऐसा भी नहीं कहते। कि यह 'दूसरा' नरक है, ऐसा भी नहीं कहते हैं। स्वयं का होना मुक्ति है, मोक्ष है, मंगल है, श्रेयस है।

इसमें फर्क है। इसमें फर्क यही है कि दूसरे नरक हैं यह जानना दूसरे में स्वर्ग को मानने से दिखाई पड़ता है। अगर मैंने दूसरे से कभी सुख नहीं चाहा तो मुझे दूसरे से कभी दुख नहीं मिल सकता। हमा री अपेक्षाएं ही दुख बनती हैं — ऐक्सपेक्टेशन्स डिसइल्यूजन्ड। अपेक्षाओं का भ्रम जब टूटता है तो विपरीत हाथ लगता है। दूसरा नरक नहीं है। अगर महावीर को ठीक समझें तो सार्त्र से कहना पड़ेगा कि दूसरा नरक नहीं है। लेकिन तुमने चूंकि दूसरे को स्वर्ग माना इसलिए दूसरा नरक हो जाता है। लेकिन तुम स्वयं स्वर्ग हो।

और स्वयं को स्वर्ग मानने की जरूरत नहीं है। स्वयं का स्वर्ग होना स्वभाव है।दूसरे को स्वर्ग मानना पड़ता है और इसलिए फिर दूसरे को नरक जानना पड़ता है। वह हमारे ही भाव हैं। जैसे कोई रेत से तेल निकालने में लग गया हो, तो उसमें रेत का तो कोई कसूर नहीं है। और जैसे कोई दीवार को दरवाजा मानकर निकलने की को शिश करने लगे तो दीवार का तो कोई दोष नहीं है। और अगर दीवार दरवाजा सिद्ध न हो और सिर टूट जाए और लहूलुहान हो जाए तो क्या आप नाराज होंगे? और कहेंगे कि दीवार दुष्ट है? सार्त्र वही कह रहा है। वह कह रहा है, दूसरा नरक है। इसमें दूसरे का कंडेम्नेशन है, इसमें दूसरे की निंदा है और दूसरे पर क्रोध

शरणागति : धर्म का मूल आधार

कोई कारण नहीं होता। जितना कारण होता है उतना तो बा गच्न हो जाता है, उतना तो सौदा हो जाता है। शरणागति नहीं रह जाती। बुद्ध मुदच को उठा रहे हैं तो नमस्कार तो करना ही पड़ेगा। इसमें आ पकी खूबी नहीं है। इसमें तो कोई भी नमस्कार कर लेगा। इसमें अगर कोई खूबी है तो बुद्ध की है। आपका इसमें कुछ भी नहीं है। लेकिन अदभुत लोग थे, इस दुनिया में। एक वृक्ष को जाकर नमस्कार करते थे, एक पत्थर को। तब— तब खूबी आपकी होनी शुरू हो जा ती है। अकारण, जितनी अकारण होगी— शरण की भावना— उतनी गहरी होगी। जितनी सकारण होगी, उतनी उथली हो जाएगी। जब कारण बिलकुल साफ होते हैं तब बिलकुल तर्कयुक्त हो जाते हैं, उसमें कोई छलांग नहीं रह जाती।और जब बिलकुल कारण नहीं होता, तभी छलांग घटित होती है।

तर्तूलियन ने, एक ईसाई फकीर ने कहा है कि मैं परमात्मा को मानता हूं क्योंकि उसके मानने का कोई भी कारण नहीं है, कोई प्रमाण नहीं है, कोई तर्क नहीं है। अगर तर्क होता, प्रमाण होता, कारण होता— तो जैसे आप कमरे में रखी कुर्सी को मानते हैं, उससे ज्यादा मूल्य परमात्मा का भी नहीं होता।

मार्क्स मजाक में कहा करता था कि 'मैं तब तक परमात्मा को न मानूंगा, जब तक प्रयोगशाला में, टेस्ट-ट्यूब में उसे पकड़कर सिद्ध करने का कोई प्रमाण न मिल जाए। जब हम प्रयोगशाला में उसकी जांच-परख कर लेंगे, थर्मामीटर लगाकर सब तरफ से नाप-तौल कर लेंगे, मेजरमेंट ले लेंगे, तराजू पर रखकर नाप लेंगे, एक्सरे से आप बाहर-भीतर सब उसको देख लेंगे, तब मैं मानूंगा।' और वह कहता था, 'लेकिन ध्यान रखना, अगर हम परमात्मा के साथ यह सब कर सके, तो एक बात तय है कि वह परमात्मा नहीं रह जाएगा— एक साधारण वस्तु हो जाएगी।क्योंकि, जो हम वस्तु के साथ कर पाते हैं— वस्तुओं का तो पूरा प्रमाण है। यह दीवार पूरी तरह है।

लेकिन इससे क्या होगा? महावीर के सामने खड़े होकर शरीर तो पूरी तरह होता है। दिखाई पड़ रहा है, पूरे प्रमाण होते हैं। लेकिन वह जो भीतर जलती ज्योति है, वह उतनी पूरी तरह नहीं होती है। उसमें तो आपको छलांग लगानी पड़ती है— तर्क के बाहर, कारण के बाहर। और जिस मात्रा में वह आपको नहीं दिखाई पड़ती है और छलांग लगाने की आप सामर्थ्य जुटाते हैं, उसी मात्रा में आप शरण जाते हैं। नहीं तो सौदे में जाते हैं।

एक आदमी आपके बीच आकर खड़ा हो जाए मुदोच को जिला दे, बीमारों को ठीक कर दे, इशारों से घटनाएं घटने लगें तो आप सब उसके पैर पर गिर ही जाएंगे। लेकिन वह शरणागति नहीं है। लेकिन महावीर जैसा आदमी खड़ा हो जाता है, कोई चमत्कार नहीं है।कुछ भी ऐसा नहीं है कि आप ध्यान दें। कुछ भी ऐसा नहीं है ि जससे आपको तत्काल लाभ दिखाई पड़े। कुछ भी ऐसा नहीं जो आपके सिर पर पत्थर की चोट पर, प्रमाण बन जाए। बहुत तरल अस्तित्व, बहुत अदृश्य अस्तित्व और आप शरण चले जाते हैं। तो आपके भीतर क्रांति घटित होती है। आप अहंकार से नीचे ि गरते हैं। सब तर्क, सब प्रमाण, सब बुद्धिमत्ता की बातें अहंकार के इर्द-गिर्द हैं। अतर्क्य, विचार के बाहर छलांग, अकारण समर्पण के इर्द-गिर्द है।

बुद्ध के पास एक युवक आया था। चरणों में उनके गिर गया। बुद्ध ने उससे पूछा कि मेरे चरण में क्यों गिरते हो? उस युवक ने कहा— क्योंकि गिरने में बड़ा राज है। आपके चरण में नहीं गिरता, आपके चरण मात्र बहाना हैं। मैं गिरता हूं क्योंकि खड़े रहकर बहुत देख लिया, सिवाय पीड़ा के और दुख के, कुछ भी न पाया।

तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि 'भिक्षु, देखो! अगर तुम मुझे मानते हो कि मैं भगवान हूं, तब मेरे चरण में गिरते हो, तब0000000000000000000000000

कोई कारण नहीं होता। जितना कारण होता है उतना तो बा गच्न हो जाता है, उतना तो सौदा हो जाता है। शरणागति नहीं रह जाती। बुद्ध मुदच को उठा रहे हैं तो नमस्कार तो करना ही पड़ेगा। इसमें आ पकी खूबी नहीं है। इसमें तो कोई भी नमस्कार कर लेगा। इसमें अगर कोई खूबी है तो बुद्ध की है। आपका इसमें कुछ भी नहीं है। लेकिन अदभुत लोग थे, इस दुनिया में। एक वृक्ष को जाकर नमस्कार करते थे, एक पत्थर को। तब— तब खूबी आपकी होनी शुरू हो जा ती है। अकारण, जितनी अकारण होगी— शरण की भावना— उतनी गहरी होगी। जितनी सकारण होगी, उतनी उथली हो जाएगी। जब कारण बिलकुल साफ होते हैं तब बिलकुल तर्कयुक्त हो जाते हैं, उसमें कोई छलांग नहीं रह जाती।और जब बिलकुल कारण नहीं होता, तभी छलांग घटित होती है।

तर्तूलियन ने, एक ईसाई फकीर ने कहा है कि मैं परमात्मा को मानता हूं क्योंकि उसके मानने का कोई भी कारण नहीं है, कोई प्रमाण नहीं है, कोई तर्क नहीं है। अगर तर्क होता, प्रमाण होता, कारण होता— तो जैसे आप कमरे में रखी कुर्सी को मानते हैं, उससे ज्यादा मूल्य परमात्मा का भी नहीं होता।

मार्क्स मजाक में कहा करता था कि 'मैं तब तक परमात्मा को न मानूंगा, जब तक प्रयोगशाला में, टेस्ट-ट्यूब में उसे पकड़कर सिद्ध करने का कोई प्रमाण न मिल जाए। जब हम प्रयोगशाला में उसकी जांच-परख कर लेंगे, थर्मामीटर लगाकर सब तरफ से नाप-तौल कर लेंगे, मेजरमेंट ले लेंगे, तराजू पर रखकर नाप लेंगे, एक्सरे से आप बाहर-भीतर सब उसको देख लेंगे, तब मैं मानूंगा।' और वह कहता था, 'लेकिन ध्यान रखना, अगर हम परमात्मा के साथ यह सब कर सके, तो एक बात तय है कि वह परमात्मा नहीं रह जाएगा— एक साधारण वस्तु हो जाएगी।क्योंकि, जो हम वस्तु के साथ कर पाते हैं— वस्तुओं का तो पूरा प्रमाण है। यह दीवार पूरी तरह है।

लेकिन इससे क्या होगा? महावीर के सामने खड़े होकर शरीर तो पूरी तरह होता है। दिखाई पड़ रहा है, पूरे प्रमाण होते हैं। लेकिन वह जो भीतर जलती ज्योति है, वह उतनी पूरी तरह नहीं होती है। उसमें तो आपको छलांग लगानी पड़ती है— तर्क के बाहर, कारण के बाहर। और जिस मात्रा में वह आपको नहीं दिखाई पड़ती है और छलांग लगाने की आप सामर्थ्य जुटाते हैं, उसी मात्रा में आप शरण जाते हैं। नहीं तो सौदे में जाते हैं।

एक आदमी आपके बीच आकर खड़ा हो जाए मुदोच को जिला दे, बीमारों को ठीक कर दे, इशारों से घटनाएं घटने लगें तो आप सब उसके पैर पर गिर ही जाएंगे। लेकिन वह शरणागति नहीं है। लेकिन महावीर जैसा आदमी खड़ा हो जाता है, कोई चमत्कार नहीं है।कुछ भी ऐसा नहीं है कि आप ध्यान दें। कुछ भी ऐसा नहीं है ि जससे आपको तत्काल लाभ दिखाई पड़े। कुछ भी ऐसा नहीं जो आपके सिर पर पत्थर की चोट पर, प्रमाण बन जाए। बहुत तरल अस्तित्व, बहुत अदृश्य अस्तित्व और आप शरण चले जाते हैं। तो आपके भीतर क्रांति घटित होती है। आप अहंकार से नीचे ि गरते हैं। सब तर्क, सब प्रमाण, सब बुद्धिमत्ता की बातें अहंकार के इर्द-गिर्द हैं। अतर्क्य, विचार के बाहर छलांग, अकारण समर्पण के इर्द-गिर्द है।

बुद्ध के पास एक युवक आया था। चरणों में उनके गिर गया। बुद्ध ने उससे पूछा कि मेरे चरण में क्यों गिरते हो? उस युवक ने कहा— क्योंकि गिरने में बड़ा राज है। आपके चरण में नहीं गिरता, आपके चरण मात्र बहाना हैं। मैं गिरता हूं क्योंकि खड़े रहकर बहुत देख लिया, सिवाय पीड़ा के और दुख के, कुछ भी न पाया।

तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि 'भिक्षु, देखो! अगर तुम मुझे मानते हो कि मैं भगवान हूं, तब मेरे चरण में गिरते हो, तब000000000000000000000000

धर्म : स्वभाव में होना

छिपा है।

महावीर यह नहीं कहते। महावीर का वक्तव्य बहुत पाजिटिव है। महावीर कहते हैं— धर्म मंगल है, स्वभाव मंगल है, स्वयं का होना मोक्ष है और स्वयं को मानने की जरूरत नहीं है कि मोक्ष है। ध्यान रहे, मानना हमें वही पड़ता है, जहां नहीं होता। समझना हमें वहीं पड़ता है, जहां नहीं होता। कल्पनाएं हमें वहीं करनी होती हैं जहां कि सत्य कुछ और है। स्वयं को

सत्य या स्वयं को धर्म या स्वयं को आनंद मानने की जरूरत नहीं है। स्वयं का होना आनंद है। लेकिन हम जो दूसरे पर दृष्टि बांधे जीते हैं, उन्हें पता भी कैसे चले कि स्वयं कहां है? हमें वही पता चलता है जहां हमारा ध्यान होता है। ध्यान की धारा, ध्यान का फोकस, ध्यान की रोशनी जहां पड़ती है वही प्रगट हो जाता है।दूसरे पर हम दौड़ते हैं, दूसरे पर ध्यान की रोशनी पड़ती है; नरक प्रगट होता है।स्वयं पर ध्यान की रोशनी पड़े तो स्वर्ग प्रगट होता है। दूसरे में मानना पड़ता है और इसलिए एक दिन भ्रम टूटता है— टूटता ही है। कोई कितनी देर भ्रम को खींच सकता है, यह उसकी अपने भ्रम को खींचने की क्षमता पर निर्भर है। बुद्धिमान है, क्षण-भर में टूट जाता है। बुद्धिहीन है, देर लगा देता है। और एक से छूटता है भ्रम हमारा तो तत्काल हम दूसरे की तलाश में लग जाते हैं।

लेकिन यह खयाल ही नहीं आता कि एक 'दूसरे' से टूटा हुआ भ्रम का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे 'दूसरे' से मिल जाएगा स्वर्ग। जन्मों-जन्मों तक यही पुनरुक्ति होती है। स्वयं में है मोक्ष, यह तब दिखाई पड़ना शुरू होता है जब ध्यान की धारा दूसरे से हट जाती है और स्वयं पर लौट आती है। 'धर्म मंगल है'— यह जानना हो तो जहां- जहां अमंगल दिखाई पड़े वहां से विपरीत ध्यान को ले जाना। दि अपोजिट इज दि डायरेक्शन, वह जो विपरीत है। धन में अगर न दिखाई पड़े, मित्र में अगर न दिखाई पड़े, पति-पत्नी में यदि न दिखाई पड़े, बाहर अगर दिखाई न पड़े, दूसरे में अगर दिखाई न पड़े तो सच्बसटीट्यूट खोजने मत लग जाना। कि इस पत्नी में नहीं मिलता है तो दूसरी पत्नी में मिल सकेगा। इस मकान में नहीं बनता स्वर्ग, तो दूसरे मकान में बन सकेगा। इस वस्त्र में नहीं मिलता तो दूसरे वस्त्र में मिल सकेगा। इस पद पर नहीं मिलता तो थोड़ा और दो सीढ़ियां चढ़कर मिल सकेगा। ये सच्बसटीट्यूट हैं।

यह एक कागज की नाव डूबती नहीं है कि हम दूसरे कागज की नाव पर सवा र होने की तैयारी करने लगते हैं, बिना यह सोचे हुए कि जो भ्रम का खंडन हुआ है वह इस नाव से नहीं हुआ, वह कागज की नाव से हुआ है। वह इस पत्नी से नहीं हुआ, वह पत्नी-मात्र से हो गया है। वह इस पुरुष से नहीं हुआ, वह पुरुष-मात्र से हो गया है। वह इस 'पर' से नहीं हुआ, वह 'पर-मात्र' से हो गया है। महावीर की घोषणा कि धर्म मंगल है, कोई हाइपोथिटिकल, कोई प रिकल्पनात्मक सिद्धांत नहीं है, और न ही यह घोषणा कोई फिलासफिक, कोई दार्शनिक वक्तव्य है। महावीर कोई दार्शनिक नहीं हैं। पश्चिम के अर्थ में— जिस अर्थ में हीगल या कांट या बर्ट्रेंड रसैल दार्शनिक हैं, उस अथोच में महावीर दार्शनिक नहीं हैं। महा वीर का यह वक्तव्य सिर्फ एक अनुभव, एक तथ्य की सूचना है।ऐसा महावीर सोचते नहीं कि धर्म मंगल है, ऐसा महावीर जानते हैं कि धर्म मंगल है।इसलिए यह वक्तव्य बिना कारण के दिये गये वक्तव्य हैं।

और जब पहली बार पूरब के मनुष्यों के विचार पश्चिम में अनूदित हुए तो उन्हें बहुत हैरानी हुई क्योंकि पश्चिम के सोचने का जो ढंग था— अरस्तू से लेकर आज तक— अभी भी वही है। वह यह है कि तुम जो कहते हो, उसका कारण भी तो बताओ। इस वक्तव्य में कहा है कि 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठम'— धर्म मंगल है। अगर पश्चिम में किसी दार्शनिक ने यह कहा होता तो दूसरा वक्तव्य होता— क्यों, व्हाय? लेकिन महावीर का दूसरा वक्तव्य व्हाय नहीं है, व्हाट है। महावीर कहते हैं, धर्म मंगल है। (कौन-सा धर्म?) 'अहिंसा संजमो तवो।' वे यह नहीं कहते, क्यों? अगर पश्चिम में अरस्तू ऐसा कहता तो अरस्तू तत्काल बताता कि क्यों मैं कहता हूं कि धर्म मंगल है। महावीर कहते हैं कि मैं कहता हूं, धर्म मंगल है। कौन- सा धर्म? यह अहिंसा, संयम और तप वाला धर्म मंगल

है। कोई कारण नहीं दिया जा रहा है, कोई कारण नहीं बता या जा रहा है। कोई प्रमाण नहीं दिया जा रहा है। अनुभूति के लिए कोई प्रमाण नहीं होता, सिद्धांतों के लिए प्रमाण होते हैं। सिद्धांतों के लिए तर्क होते हैं, अनुभूति स्वयं ही अपना तर्क

है। अनुभूति को जानना हो कि वह सही है या गलत, तो अनुभूति में उतरना पड़ता है। सिद्धांत को जानना हो कि सही है या गलत, तो सिद्धांत के सिलौसिज्म में, सिद्धांत की जो तर्कसरणी है, उसमें उतरना पड़ता है। और हो सकता है, तर्कसरणी बिलकुल सही हो और सिद्धांत बिलकुल गलत हो। और हो सकता है, प्रमाण बिलकुल ठीक मालूम पड़े, और जिसके लिए दिये गये हैं, वह बिलकुल ठीक न हो। गलत बातों के लिए भी ठीक प्रमाण दिये जा सकते हैं। सच तो यह है कि गलत बातों के लिए ही हमें ठीक प्रमाण खोजने पड़ते हैं। क्योंकि गलत बातें अपने पैर से खड़ी नहीं हो सकतीं। उनके लिए ठीक प्रमाणों की सहायता की जरूरत पड़ती है।

महावीर जैसे लोग प्रमाण नहीं देते, सिर्फ वक्तव्य देते हैं। वे कहते हैं— ऐसा है।उनके वक्तव्य वैसे ही वक्तव्य हैं जैसे कि किसी आइंस्टीन के या किसी और वैज्ञानिक के। आइंस्टीन से अगर हम पूछें कि पानी हाइड्रोजन और आक्सीजन से क्यों मिलकर बना है, तो आइंस्टीन कहेगा, क्यों का कोई सवाल नहीं है— बना है। इट इज सो। यह हम नहीं जानते कि क्यों बना है। हम इतना ही कह सकते हैं कि ऐसा है। और जिस भांति आइंस्टीन कह सकता है कि पानी का अर्थ है, एच टू ओ— हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन का एक अणु, इनका जोड़ पानी है। वैसे महावीर कहते हैं कि धर्म— अहिंसा, संयम, तप— इनका जोड़ है। यह 'अहिंसा संजमो तवो', यह वैसा ही सूत्र है जैसे एच-टू-ओ। यह ठीक वैसा ही वक्तव्य है, वैज्ञानिक का। विज्ञान दूसरे के, पर के संबंध में वक्तव्य देता है,धर्म स्वयं के संबंध में वक्तव्य देता है। इसलिए अगर वैज्ञानिक के वक्तव्य को जांचना हो तो तर्क से नहीं जांचा जा सकता, उसकी प्रयोगशाला में जाना पड़ेगा। स्वभावतः उसकी प्रयोगशाला बाहर है क्योंकि उसके वक्तव्य पर के संबंध में हैं। और अगर महावीर जैसे व्यक्ति का वक्तव्य जांचना हो तो भी प्रयोगशाला में जाना पड़े। निश्चित ही महावीर की प्रयोगशााला बाहर नहीं है, वह प्रत्येक व्यक्ति के अपने भीतर है। लेकिन थोड़ा बहुत हम जानते हैं कि महावीर जो कहते होंगे, ठीक कहते होंगे। हमें यह तो पता नहीं है कि धर्म मंगल है, लेकिन हमें यह भलीभांति पता है कि अधर्म अमंगल है— कम-से-कम इतना हमें पता है। यह भी कुछ कम पता नहीं है। और अगर बुद्धिमान आदमी हो तो इतने ज्ञान से परमज्ञान तक पहुंच सकता है। हमें यह तो पता नहीं है कि धर्म मंगल है, लेकिन हमें यह पूरी तरह पता है कि अधर्म अमंगल है। क्योंकि अधर्म हमने किया है।अधर्म को हम जानते हैं।

इसे थोड़ा सोचें। क्या आपको पता है, जब भी आपके जीवन में कोई दुख आता है तो दूसरे के द्वारा आता है? दूसरे के द्वारा आता हो या न आता हो, आपके लिए सदा दूसरे के द्वारा आता मालूम पड़ता है। क्या आपके जीवन में जब कोई चिंता आती है तो कभी आपने खयाल किया है कि चिंता भीतर से नहीं, बाहर से आती मालूम पड़ती है। क्या कभी आप भीतर से चिंतित हुए हैं? सदा बाहर से चिंतित हुए हैं। सदा चिंता का केच्नदर कुछ और रहा है, आपको छोड़कर। वह धन हो, वह बीमार मित्र हो, वह डूबती हुई दुकान हो, वह खोता हुआ चुनाव हो, वह कुछ भी हो, दूसरा है— सदा दूसरा है। कुछ और, आपको छोड़कर आपके दुख का कारण बनता है।

लेकिन एक भ्रांति हमारे मन में है जो टूट जानी जरूरी है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि दूसरा सुख का भी कारण बनता है। उसी से सब उपद्रव जारी रहता है। ऐसा तो लगता है कि दूसरा दुख का कारण बनता है, लेकिन ऐसा भी लगता है कि दूसरा सुख का कारण बनता है। चिंता तो दूसरे से आती है, दुख भी दूसरे से आता है, लेकिन सुख भी दूसरे से आता हुआ मालूम पड़ता है। ध्यान रखें, वह जो दूसरे से दुख आता है वह इसीलिए आता है कि आप इस भ्रांति में जीते है कि दूसरे से सुख आ सकता है। ये

58

धर्म : स्वभाव में होना

संयुक्त बातें हैं। और अगर आप आधे पर ही समझते रहे कि दूसरे से दुख आता है और यह मानते चले गए कि दूसरे से सुख आता है तो दूसरे से दुख आता चला जाएगा। दूसरे से दुख आता ही इसलिए है कि दूसरे से हमने एक भ्रांति का संबंध बना रखा है कि सुख आ सकता है। आता कभी नहीं। आ सकता है, इसकी संभावना हमारे आ सपास खड़ी रहती है। आ सकता है, इसकी संभावना हमारे आसपास खड़ी रहती है। आ सकता है, सदा भविष्य में होता है। इसे भी थोड़ा खोजें तो आपके अनुभव के कारण मिल जाएंगे।

कभी किसी क्षण में आपने जाना कि दूसरे से सुख आ रहा है — सदा ऐसा लगता है, आएगा।आता कभी नहीं। जिस मकान को आप सोचते हैं, मिल जाने से सुख आएगा, वह जब तक नहीं मिला है तब तक 'आएगा' है। वह जिस दिन मिल जाएगा उसी दिन आप पाएंगे कि उस मकान की अपनी चिंताएं हैं, अपने दुख हैं, वे आ गए। और सुख अभी नहीं आया। और थोड़े दिन में आप पाएंगे कि आप भूल ही गए यह बात कि इस मकान से कितना सुख सोचा था कि आएगा, वह बिलकुल नहीं आया।

लेकिन मन बहुत चालाक है, वह लौटकर नहीं देखता। वह रिट्रोस्पेक्टिवली कभी नहीं सोचता कि जिन-जिन चीजों से हमने सोचा था कि सुख आएगा, उनमें से कुछ आ गयी, लेकिन सुख नहीं आया। इस लिए, अगर किसी दिन पृथ्वी पर ऐसा हो सका कि आप जो-जो सुख चाहते हैं, आपको तत्काल मिल जाएं तो पृथ्वी जितनी दुखी हो जाएगी, उतनी उसके पहले कभी नहीं थी। इसलिए जिस मुल्क में जितने सुख की सुविधा बढ़ती जाती है उसमें उतना दुख बढ़ता जाता है। गरीब मुल्क कम दुखी होते हैं, अमीर मुल्क ज्यादा दुखी होते हैं। गरीब आदमी कम दुखी होता है, जब मैं यह कहता हूं तो आपको थोड़ी हैरानी होगी क्योंकि हम सब मानते हैं कि गरीब बहुत दुखी होता है। पर मैं आपसे कहता हूं, गरीब कम दुखी होता है।क्योंकि अभी उसकी आशाओं का पूरा का पूरा जाल जीवित है। अभी वह आशाओं में जी सकता है।अभी वह सपने देख सकता है। अभी कल्पना नष्ट नहीं हुई है, अभी कल्पना उसे संभाले रखती है। लेकिन जब उसे सब मिल जाए, जो-जो उसने चाहा था, तो सब आशाओं के सेतु टूट गए। भविष्य नष्ट हुआ।

और वर्तमान में सदा दुख है, दूसरे के साथ। दूसरे के साथ सिर्फ भ विष्य में सुख होता है। तो अगर सारा भविष्य नष्ट हो जाए, जो-जो भविष्य में मिलना चाहिए वह आपको अभी मिल जाए, इसी क्षण, तो आ प सिवाय आत्महत्या करने के और कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसलिए जितना सुख बढ़ता है उतनी आत्महत्याएं बढ़ती हैं। जितना सुख बढ़ता है उतनी विक्षिप्तता बढ़ती है। जितना सुख बढ़ता है — बड़ी उल्टी बात है क्योंकि सब वैज्ञानिक कहते हैं कि साधन बढ़ जाएंगे तो आदमी बहुत सुखी हो जाएगा।लेकिन अनुभव नहीं कहता। आज अमेरिका जितना दुखी है, उतना कोई भी देश दुखी नहीं है। और महावीर अपने घर में जितने दुखी हो गए, महावीर के घर के सामने जो रोज भीख मांगकर चला जाता भिखारी होगा , वह भी उतना दुखी नहीं था। महावीर का दुख पैदा हुआ है इस बात से कि जो भी उस युग में मिल सकता था, वह मिला हुआ था। महावीर के लिए कोई भविष्य न बचा, नो च्फयूचर। और जब भविष्य न बचे तो सपने कहां खड़े करिएगा? जब भविष्य न बचे तो कागज की नाव किस सागर में चलाइएगा? भविष्य के सागर में ही चलती है कागज की नाव। अगर भविष्य न बचे तो किस भूमि पर ताशों का भवन बनाइएगा? अगर ताशों का भवन बनाना हो तो भविष्य की नींव चाहिए। तो महावीर का जो त्याग है, वह त्याग असल में भविष्य की समाप्ति से पैदा होता है। नो च्फयूचर, कोई भविष्य नहीं है, तो महावीर अब कहां जाए, किस पद पर चढ़ें जहां सुख मिलेगा? किस स्त्री को खोजें जहां सुख मिलेगा? किस धन की राशि पर खड़े हो जाएं जहां सुख होगा? वह सब है।

महावीर के फ्रस्टेशन को, महावीर के विषाद को हम सोच सकते हैं। आ र हम उन नासमझों की बात भी सोच सकते हैं जो महावीर के पीछे दूर तक गांव के बाहर गए और समझाते रहे कि इतना सुख छोड़कर कहां जा रहे हो? ये वे लोग थे जिनका भविष्य है। वे कह

59

रहे थे कि पागल हो गए हो! जिस महल के लिए हम दीवाने हैं और सोचते हैं, किसी दिन मिल जाएगा तो मोक्ष मिल जाएगा — उसे छोड़कर जा रहे हो! दिमाग तो खराब नहीं हो गया है! सभी सयाने लोगों ने महावीर को समझाया, मत जाओ छोड़कर। लेकिन महावीर और उनके बीच भाषा का संबंध टूट गया। वे दोनों एक ही भाषा अब नहीं बोल सकते हैं, क्योंकि उनका भविष्य अभी बाकी है और महावीर का कोई भविष्य न रहा।

हमें भी अनुभव है, लेकिन हम पीछे लौटकर नहीं देखते हैं। हम आगे ही देखे चले जाते हैं। जो आदमी आगे ही देखे चला जाता है, वह कभी धार्मिक नहीं हो सकेगा। क्योंकि अनुभव से वह कभी ला भ नहीं ले सकेगा। भविष्य में कोई अनुभव नहीं है, अनुभव तो अतीत में है। जो आदमी पीछे लौट कर देखेगा — लेकिन पीछे लौटकर देखने में भी हम यह भूल जाते हैं कि हमने पीछे जब हम खड़े थे उस स्थानों पर, तब क्या सोचा था? वह भी हम भूल जाते हैं।

आदमी की स्मृति भी बहुत अदभुत है। आपको खयाल ही नहीं रहता कि जो कपड़ा आज आप पहने हुए हैं, कल वह कपड़ा आपके पास नहीं था और रात आपकी नींद खराब हो गयी — किसी और के पास था, या किसी दुकान पर था या किसी शो-विंडो में था और आप रातभर नहीं सो सके थे। और न-मालूम कितनी गुदगुदी मालूम पड़ी थी भीतर कि कल जब यह कपड़ा आपके शरीर पर होगा तो न-मालूम दुनिया में कौन-सी क्रांति घटित हो जाएगी! और कौन-सा स्वर्ग उतर आएगा। आप भूल ही गये हैं बिलकुल। अब वह कपड़ा आपके शरीर पर है। कोई स्वर्ग नहीं उतरा है, कोई क्रांति घटित नहीं हुई। आप उतने के उतने दुखी हैं। हां, अब दूसरे दुकान की शो-विंडो में आपका सुख लटका हुआ है।अभी भी वहीं हैं। कहीं किसी दूसरी दुकान की शो-विंडो अब आपकी नींद खराब कर रही है।

पीछे लौटकर अगर देखें तो आप पाएंगे, जिन-जिन सुखों को सोचा था, सुख सिद्ध होंगे— वे सभी दुख सिद्ध हो गये। आप एक भी ऐसा सुख न बता सकेंगे जो आपने सोचा था कि सुख सिद्ध होगा और सुख सिद्ध हुआ हो। फिर भी आश्चर्य कि आदमी फिर भी वही पुनरुक्त किये चला जाता है। और कल के लिए फिर योजनाएं बनाता है। कल की बीती सब योजनाएं गिर गयीं, लेकिन कल के लिए फिर वही योजनाएं बनाता है। अगर महावीर ऐसे व्यक्तियों को मूढ़ कहें तो तथ्य की ही बात कहते हैं। हम मूढ़ हैं! मूढ़ता और क्या होगी? कि मैं जिस गड्ढे में कल गिरा था, आज फिर उसी गड्ढे की तलाश करता हूं किसी दूसरे रास्ते पर। और ऐसा नहीं कि कल ही गिरा था, रोज-रोज गिरा हूं। फिर भी वही!

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक रात ज्यादा शराब पीकर घर लौटा । टटोलता था रास्ता घर का, मिलता नहीं था। एक भले आदमी ने, देखकर कि बेचारा राह नहीं खोज पा रहा है, हाथ पकड़ा। पूछा कि इसी मकान में रहते हो?

मुल्ला ने कहा— हां। 'किस मंजिल पर रहते हो?'

उसने कहा— दूसरी मंजिल पर।

उस भले आदमी ने बामुश्किल करीब-करीब बेहोश आदमी को किसी तरह सीढ़ियों से घसीटते- घसीटते दूसरी मंजिल तक लाया। फिर यह सोचकर कि कहीं मुल्ला की पत्नी का सामना न करना पड़े, नहीं तो वह सोचे कि तुम भी संगी-साथी हो, कहीं उपद्रव न हो, पूछा — यही तेरा दरवाजा है?

मुल्ला ने कहा — हां।

उसने दरवाजे के भीतर धक्का दिया और सीढ़ियों से नीचे उतर गया। नीचे जाकर बहुत हैरान हुआ कि ठीक वैसा ही आदमी, थोड़ी और बुरी हालत में, फिर दरवाजा टटोलता है। ठीक वैसा ही आदमी! थोड़ा चकित हुआ। अपनी ही आंखों पर हाथ फेरा कि मैं तो

धर्म : स्वभाव में होना

कोई नशा नहीं किये हूं। थोड़ी बुरी हालत में ठीक वैसा ही आदमी। फिर से टटोल रहा है तो जाकर पूछा कि भाई तुम भी ज्यादा पी गये हो?
उस आदमी ने कहा— हां।
'इसी मकान में रहते हो?' उसने कहा— हां। 'किस मंजिल पर रहते हो?'
उसने कहा— दूसरी मंजिल पर। (हैरानी!)
पूछा— जाना चाहते हो? बामुश्किल, इस बार और कठिनाई हुई क्योंकि वह आदमी और भी लस्त-पस्त था। उसे ऊपर जाकर, पहुंचाकर पूछा— इसी दरवाजे में रहते हो? उसने कहा— हां।
वह आदमी बहुत हैरान हुआ कि क्या नशेड़ियों के साथ थोड़ी-सी देर में मैं भी नशे में हूं? फिर धक्का दिया और नीचे उतरकर आया। देखा कि तीसरा आदमी और भी थोड़ी बुरी हालत में है। सड़क के किनारे पड़ा रास्ता खोज रहा है। लेकिन ठीक वैसा ही। उसे डर भी लगा कि भाग जाना चाहिए। यह झंझट की बात मालूम पड़ती है। यह कब तक चलेगा? यह आदमी वही मालूम पड़ता है। वही कपड़े हैं, ढंग वही है। थोड़ा और परेशान पूछा कि भाई इसी मकान में रहते हो? उसने कहा— हां।
'किस मंजिल पर?'
'दूसरी मंजिल पर।'
'ऊपर जाना चाहते हो?'
उसने कहा— हां।
उसने कहा— बड़ी मुसीबत है। अब इसको और पहुंचा दें। ले जाकर दरवा जे पर धक्का दिया। भागकर नीचे आया कि चौथा न मिल जाए, लेकिन चौथा आदमी नीचे मौजूद था। अब उसमें हिलने-चलने की गति भी नहीं थी। लेकिन जैसे ही उसे पास आकर देखा, वह आदमी चिल्लाया कि 'मुझे बचाओ। यह आदमी मुझे मार डालेगा ।'
'मैं तुझे मार डालने की कोशिश नहीं कर रहा हूं । तू है कौन?'
उसने कहा— तू मुझे बार-बार जाकर लिच्फट के दरवाजे से धक्का देकर नीचे पटक रहा है।
उस आदमी ने पूछा— 'भले आदमी! तीन बार पटक चुका, तुमने कहा क्यों नहीं?'
उसने सोचा कि शायद अब की बार न पटके यह सोचकर। नसरुद्दीन ने कहा— कौन जाने, अब की बार न पटके!
लेकिन दूसरा पटकता हो तो हम इतना हंस रहे हैं। हम अपने को ही पटकते चले जाते हैं। वही का वही आदमी, दूसरी बार और थोड़ी बुरी हालत होती है। और कुछ नहीं होता है। जिंदगीभर ऐसा चलता है। आखिर में दुख के घाव के अतिरिक्त हमारी कोई उपलब्धि नहीं होती। ये घाव ही घाव रह जाते हैं, पीड़ा ही पीड़ा रह जाती है।
इतना हम जानते हैं, कि अधर्म अमंगल है। और अधर्म से मतलब समझ लेना — अधर्म से मतलब है, दूसरे में सुख को खोजने की आकांक्षा। वह दुख है, वह अमंगल है, और कोई अमंगल नहीं है। जब भी दुख आपको मिले तो जानना कि आपने दूसरे से कहीं सुख पाना चाहा। अगर मैं अपने शरीर से भी सुख पाना चाहता हूं तो भी मैं दूसरे से सुख पाना चाहता हूं। मुझे दुख मिलेगा। कल बीमारी आएगी, कल शरीर रुग्ण होगा, कल बूढ़ा होगा, परसों मरेगा। अगर मैंने इस शरीर से — जो इतना निकट मालूम होता है, फिर भी पराया है — महावीर से अगर हम पूछने जाएं तो वे कहेंगे कि जिससे भी दुख मिल सकता है, जानना कि वह और है। इसे क्राइटेरियन, उसे मापदंड समझ लेना कि जिससे भी दुख मिल सके, जानना कि वह और है, वह तुम नहीं हो। तो जहां-जहां

महावीर-वाणी भाग : 1

दुख मिले, वहां-वहां जानना कि 'मैं' नहीं हूं।

सुख अपरिचित है क्योंकि हमारा सारा परिचय 'पर' से है, 'दूसरे' से है। सुख सिर्फ कल्पना में है, दुख अनुभव है। लेकिन दुख, जो कि अनुभव है, उसे हम भुलाये चले जाते हैं। और सुख जो कि कल्पना में है, उसके लिए हम दौड़ते चले जाते हैं। महावीर का यह सूत्र इस पूरी बात को बदल देना चाहता है। वे कहते हैं— धम्मो मंगल मुक्किट्ठं।धर्म मंगल है। आनंद की तलाश स्वभाव में है। कभी-कभी अगर आपके जीवन में आनंद की कोई किरण छोटी-मोटी उतरी होगी, तो वह तभी उतरती है जब आप अनजाने- जाने किसी भांति एक क्षण को स्वयं के संबंध में पहुंच जाते हैं — कभी भी। लेकिन हम ऐसे भ्रांत हैं कि वहां भी हम दूसरे को ही कारण समझते हैं।

सागर के तट पर बैठे हैं। सांझ हो गयी है, सूर्यास्त होता है। ढलते सूरज में सागर की लहरों की आवाजों में एकांत में अकेले तट पर बैठे हैं। एक क्षण को लगता है जैसे सुख की कोई किरण कहीं उतरी। तो मन होता है कि शायद इस सागर, इस डूबते सूरज में सुख है। कल फिर आकर बैठेंगे। फिर उतनी नहीं उतरेगी। परसों फिर आकर बैठेंगे। अगर रोज आकर बैठते रहे तो सागर का शोरगुल सुनायी पड़ना बंद हो जाएगा। सूरज का डूबना दिखायी न पड़ेगा।

वह जो पहले दिन अनुभव हमें आया था वह सागर और सूरज की वजह से नहीं था। वह तो केवल एक अजनबी स्थिति में आप पराये से ठीक से संबंधित न हो सके और थोड़ी देर को अपने से संबंधित हो गये। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें। इसीलिए परिवर्तन अच्छा लगता है एक क्षण को। क्योंकि परिवर्तन का, एक संक्रमण का क्षण, जो ट्रांजिशन का क्षण है, उस क्षण में आप दूसरे से संबंधित होने के पहले और पिछले से टूटने के पहले बीच में थोड़े से अंतराल में अपने से गुजरते हैं। एक मकान को बदलकर दूसरे मकान में जा रहे हैं। इस मकान को बदलने में और दूसरे मकान में एडजेस्ट होने के बीच एक क्षण को अव्यवस्थित हो जाएंगे। न यह मकान होगा, न वह मकान होगा। और बीच में क्षण भर को उस मकान में पहुंच जाएंगे जो आपके भीतर है।

वह क्षणभर को उस बीच जो थोड़ी-सी सुख की झलक मिलेगी — वह शायद आप सोचेंगे, इस नये मकान में आने से मिली है, इस पहाड़ पर आने से मिली है, इस एकांत में आने से मिली है, इस संगीत की कड़ी को सुनने से मिली है, इस नाटक को देखने से मिली है। आप भ्रांति में हैं। अगर इस नाटक को देखने से वह मिला है तो फिर रोज इस नाटक को देखें, जल्दी ही पता चल जाएगा। कल नहीं मिलेगा, क्योंकि कल आप एडजेस्ट हो चुके होंगे, ना टक परिचित हो चुका होगा। परसों नाटक तकलीफ देने लगेगा। और दो-चार दिन देखते गये तो ऐसा लगेगा, अपने साथ हिंसा कर रहे हैं। एक पत्नी को बदलकर दूसरी पत्नी के साथ जो क्षणभर को सुख दिखायी पड़ रहा है, वह सिर्फ बदलाहट का है। और बदलाहट में भी सिर्फ इसलिए कि दो चीजों के बीच में क्षणभर को आपको अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। बस, और कोई कारण नहीं है।

अनिवार्य है, जब मैं एक से टूटूं और दूसरे से जुड़ूं तो एक क्षण को मैं कहां रहूंगा? टूटने और जुड़ने के बीच में जो गैप है, जो अंतराल है, उसमें मैं अपने में रहूंगा। वही अपने में रहने का क्षण प्र ितफलित होगा और लगेगा कि दूसरे में सुख मिला। सभी बदलाहट अच्छी लगती है। बस बदलाहट, चेंज का जो सुख है, वह अपने से क्षणभर को अचानक गुजर जाने का क्षण है। इसलिए आदमी शहर से जंगल भागता है। जंगल का आदमी शहर आता है। भारत कादमी यूरोप जाता है, यूरोप का आदमी भारत आता है। दोनों को वही क्षण परिवर्तन काभारतीय को हैरानी होती है, पश्चिमी को देखकर अपने बीच में कि इधर आये हो सुख की तलाश में! इधर हम जैसा सुख पा रहे हैं, हम ही जानते हैं। पाश्चात्य को, भा रतीय को वहां देखकर हैरानी होती है कि तुम यहां आये हो,

सुख की तलाश में! यहां जो सुख मिल रहा है, उससे हम किस तरह बचें, हम इसकी चेष्टा में लगे हैं। पर कारण हैं, दोनों को क्षणभर

62

□

धर्म : स्वभाव में होना

को सुख मिलता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि नयी कोई भी चीज से व्यवस्थित होने में थोड़ा अंतराल पड़ता है। एक रिदम है हमा रे जीवन की।

गोकलिन ने एक किताब लिखी है, 'दि काज़्मिक क्लाक'। लिखा है कि सा रा अस्तित्व एक घड़ी की तरह चलता है। अदभुत किताब है, वैज्ञानिक आधारों पर। और मनुष्य का व्यक्तित्व भी एक घड़ी की तरह चलता है। जब भी कोई परिवर्तन होता है तो घड़ी डगमगा जाती है। अगर आप पूरब से पश्चिम की तरफ यात्रा कर रहे हैं तो आपके व्यक्तित्व की पूरी घड़ी गड़बड़ा जाती है। क्योंकि सब बदलता है। सूरज का उगने का समय बदल जाता है, सूरज के डूबने का समय बदल जाता है। वह इतनी तेजी से बदलता है कि आपके शरीर को पता ही नहीं चलता। इसलिए भीतर एक अराजकता का क्षण उपस्थित हो जाता है। सभी बदलाहटें आपके भीतर एक ऐसी स्थिति ला देती हैं कि आपको अनिवार्यरूपेण कुछ देर को अपने भीतर से गुजरना पड़ता है। उसका ही रिफ्लेक्शन, उसका ही प्रतिबिंब आपको सुख मालूम पड़ता है। और जब क्षणभर को अनजाने गुजरकर भी सुख मालूम पड़ता है, तो जो सदा अपने भीतर जीने लगता है — अगर महावीर कहते हैं, वे मंगल को, परम मंगल को, आनंद को उपलब्ध हो जाते हैं— तो हम नाप सकते हैं, हम अनुमान कर सकते हैं।

यह हमारा अनुभव अगर प्रगाढ़ होता चला जाए कि जिसे हमने जीवन समझा है वह दुख है, जिस चीज के पीछे हम दौड़ रहे हैं वह सिर्फ नरक में उतार जाती है। अगर यह हमें स्पष्ट हो जाए तो हमें महा वीर की वाणी का आधा हिस्सा हमारे अनुभव से स्पष्ट हो जाएगा। और ध्यान रहे, कोई भी सत्य आधा सत्य नहीं होता — कोई भी सत्य — आधा सत्य नहीं होता। सत्य तो पूरा ही सत्य होता है। अगर उसमें आधा भी सत्य दिखाई पड़ जाए, तो शेष आधा आज नहीं कल दिखाई पड़ जाएगा। और अनुभव में आ जाएगा।

आधा सत्य हमारे पास है कि 'दूसरा' दुख है। कामना दुख है, वासना दुख है। क्योंकि कामना और वासना सदा दूसरे की तरफ दौड़ने वाले चित्त का नाम है। वासना का अर्थ है दूसरे की तरफ दौड़ती हुई चेतन धारा। वासना का अर्थ है, भविष्य की ओर उन्मुख जीवन की नौका। अगर 'दूसरा' दुख है, तो दूसरे की तरफ ले जानेवाला जो सेतु है वह नरक का सेतु है। उसको 'वासना', महावीर कहते हैं। उसको बुद्ध 'तृष्णा' कहते हैं। उसे हम कोई भी नाम दें। दूसरे को चाहने की जो हमारे भीतर दौड़ है, हमारी ऊर्जा का जो वर्तन है दूसरे की तरफ, उसका नाम वासना है, वह दुख है।

और मंगल, जो आनंद, जो धर्म है, जो स्वभाव है, निश्चित ही वह उस क्षण में मिलेगा जब हमारी वासना कहीं भी न दौड़ रही होगी। वासना का न दौड़ना आत्मा का हो जाना है। वासना का दौड़ना आत्मा का खो जाना है। आत्मा उस शक्ति का नाम है जो नहीं दौड़ रही है, अपने में खड़ी है। वासना उस आत्मा का नाम है जो दौड़ रही है अपने से बाहर, किसी और के लिए। इसलिए इसी सूत्र के दूसरे हिस्से में महावीर कहते हैं—कौन-सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। यह अहिंसा, संयम और तप दौड़ती हुई ऊर्जा को ठहराने की विधियों के नाम हैं। वह जो वासना दौड़ती है दूसरे की तरफ, वह कैसे रुक जाए, न दौड़े दूसरे की तरफ? और जब रुक जाएगी, न दौड़ेगी दूसरे की तरफ—तो स्वयं में रमेगी, स्वयं में ठहरेगी, स्थिर होगी। जैसे कोई ज्योति हवा के कंप में कंपे न, वैसी। उसका उपाय महावीर कहते हैं।

तो धर्म स्वभाव है, एक अर्थ। धर्म विधि है, स्वभाव तक पहुंचने की, दूसरा अर्थ। तो धर्म के दो रूप हैं—धर्म का आत्यंतिक जो रूप है वह है स्वभाव, स्वधर्म। और धर्म तक, इस स्वभाव तक—क्योंकि हम इस स्वभाव से भटक गये

हैं, अन्यथा कहने की कोई जरूरत न थी। स्वस्थ व्यक्ति तो नहीं पूछता चिकित्सक को कि मैं स्वस्थ हूं या नहीं। अगर स्वस्थ व्यक्ति भी पूछता है कि मैं स्वस्थ

हूं या नहीं, तो वह बीमार हो चुका है। असल में, बीमारी न आ जाए तो स्वास्थ्य का खयाल ही नहीं आता।

लाओत्से के पास कंच्फयूशियस गया था और उसने कहा कि धर्म को लाने का कोई उपाय करें। तो कंच्फयूशियस से लाओत्से ने कहा कि धर्म को लाने का उपाय तभी करना होता है जब अधर्म आ चुका होता है। तुम कृपा करके अधर्म को छोड़ने का उपाय करो, धर्म आ जाएगा। तुम धर्म को लाने का उपाय मत करो। इसलिए स्वास्थ्य को लाने का कोई उपाय नहीं किया जा सकता है, सिर्फकेवल बीमारियों को छोड़ने का उपाय किया जा सकता है। जब बीमा रियां छूट जाती हैं तो जो शेष रह जाता है—दि रिमेनिंग।

तो धर्म का आखिरी सूत्र तो यही है, परम सूत्र तो यही है कि स्वभा व। लेकिन वह स्वभाव तो चूक गया है। वह तो हमने खो दिया है। तो हमारे लिए धर्म का दूसरा अर्थ महावीर कहते हैं—जो प्रयोगात्मक है, प्रक्रिया का है, साधन का है—पहली परिभाषा साध्य की, अंत की, दूसरी परिभाषा साधन की, मीन्स की। तो महावीर कहते हैं—कौन-सा धर्म?' अहिंसा, संजमो, तवो'। इतना छोटा सूत्र शायद ही जगत में किसी और ने कहा हो जिसमें सारा धर्म आ जाए। अहिंसा, संयम, तप—इन तीन की पहले हम व्यवस्था समझ लें, फिर तीन के भीतर हमें प्रवेश करना पड़ेगा।

अहिंसा धर्म की आत्मा है, कहें केन्नदर है धर्म का, सेंटर है। तप धर्म की परिधि है, सरकम्फेरेंस है। और संयम केन्नदर और परिधि को जोड़ने वाला बीच का सेतु है। ऐसा समझ लें, अहिंसा आत्मा है, तप शरीर है और संयम प्राण है। वह दोनों को जोड़ता है— श्वास है। श्वास टूट जाए तो शरीर भी होगा, आत्मा भी होगी, लेकिन आप न होंगे। संयम टूट जाए, तो तप भी हो सकता है, अहिंसा भी हो सकती है—लेकिन धर्म नहीं हो सकता। वह व्यक्तित्व बिखर जाएगा। श्वास की तरह संयम है। इसे थोड़ा सोचना पड़ेगा। इसकी पहले हम व्यवस्था को समझ लें, फिर एक-एक की गहराई में उतरना आ सान होगा।

अहिंसा आत्मा है महावीर की दृष्टि से। अगर महावीर से हम पूछें कि एक ही शब्द में कह दें कि धर्म क्या है? तो वे कहेंगे अहिंसा। कहा है उन्होंने— अहिंसा परम धर्म है।अहिंसा पर क्यों महा वीर इतना जोर देते हैं? किसी ने नहीं कहा, ऐसा अहिंसा को। कोई कहेगा, परमात्मा; कोई कहेगा, आत्मा। कोई कहेगा, सेवा; कोई कहेगा, ध्यान। कोई कहेगा, समाधि; कोई कहेगा, योग। कोई कहेगा, प्रार्थना; कोई कहेगा, पूजा। महावीर से अगर हम पूछें, उनके अंतरतम में एक ही शब्द बसता है और वह है अहिंसा। क्यों? तो जिसको महावीर के माननेवाले अहिंसा कहते हैं, अगर इतनी ही अहिंसा है तो महावीर गलती में हैं। तब बहुत क्षुद्र बात कही जा रही है। महावीर को माननेवाला अहिंसा से जैसा मतलब समझता है, उससे ज्यादा बचकाना, चाइल्डिश कोई मतलब नहीं हो सकता। उससे वह मतलब समझता है— दूसरे को दुख मत दो। महावीर का यह अर्थ नहीं है। क्योंकि धर्म की परिभाषा में दूसरा आये, यह महावीर बरदाश्त न करेंगे। इसे थोड़ा समझें।

धर्म की परिभाषा स्वभाव है, और धर्म की परिभाषा दूसरे से करनी पड़े कि दूसरे को दुख मत दो, यही धर्म है। तो यह धर्म भी दूसरे पर ही निर्भर और दूसरे पर ही केन्निदरत हो गया है। महावीर यह भी न कहेंगे कि दूसरे को सुख दो, यही धर्म है। क्योंकि फिर वह दूसरा तो खड़ा ही रहा। महावीर कहते हैं— धर्म तो वहां है, जहां दूसरा है ही नहीं।इसलिए दूसरे की व्याख्या से नहीं बनेगा। दूसरे को दुख मत दो— यह महावीर की परिभाषा इसलिए भी नहीं हो सकती, क्योंकि महावीर मानते नहीं कि तुम दूसरे को दुख दे सकते हो, जब तक दूसरा लेना न चाहे। इसे थोड़ा समझना। यह भ्रांति है कि मैं दूसरे

को दुख दे सकता हूं और यह भ्रांति इसी पर खड़ी है कि मैं दूसरे से दुख पा सकता हूं, मैं दूसरे से सुख पा सकता हूं, मैं दूसरे को सुख दे सकता हूं। ये सब भ्रांतियां एक ही आधार पर खड़ी हैं। अगर आप दूसरे को दुख दे सकते हैं तो क्या आ प सोचते हैं, आप महावीर को दुख दे सकते हैं? और अगर

64

धर्म : स्वभाव में होना

आप महावीर को दुख दे सकते हैं तो फिर बात खत्म हो गयी। नहीं, आप महावीर को दुख नहीं दे सकते। क्योंकि महावीर दुख लेने को तैयार ही नहीं हैं। आप उसी को दुख दे सकते हैं जो दुख लेने को तैयार है। और आप हैरान होंगे कि हम इतने उत्सुक हैं दुख लेने को, जिसका कोई हिसाब नहीं। आतुर हैं, प्रार्थना कर रहे हैं कि कोई दुख दे। दिखाई नहीं पड़तादिखाई नहीं पड़ता। लेकिन खोजें अपने को। अगर एक आदमी आपकी चौबीस घंटे प्रशंसा करे, तो आपको सुख न मिलेगा, और एक गाली दे दे तो जन्मभर के लिए दुख मिल जाएगा। एक आदमी आपकी वर्षोच्च सेवा करे, आ पको सुख न मिलेगा, और एक दिन आपके खिलाफ एक शब्द बोल दे और आपको इतना दुख मिल जाएगा कि वह सब सुख व्यर्थ हो गया। इससे क्या सिद्ध होता है?
इससे यह सिद्ध होता है कि आप सुख लेने को इतने आतुर नहीं दिखाई पड़ते हैं जितना दुख लेने को आतुर दिखाई पड़ते हैं। यानी आपकी उत्सुकता जितनी दुख लेने में है उतनी ही सुख लेने में नहीं है। अगर मुझे किसी ने उन्नीस बार नमस्कार किया और एक बार नमस्कार नहीं किया, तो उन्नीस बार नमस्कार से मैंने जितना सुख नहीं लिया है, एक बार नमस्कार न करने से उतना दुख ले लूंगा। आश्चर्य है! मुझे कहना चाहिए था, कोई बात नहीं है, हिसाब अभी भी बहुत बड़ा है। कम से कम बीस बार न करे तब बराबर होगा। मगर वह नहीं होता है। तब भी बराबर होगा, तब भी दुख लेने का कोई कारण नहीं है, मामला तब तराजू में तुल जाएगा। लेकिन नहीं, जरा सी बात दुख दे जाती है।
हम इतने सैंसिटिव हैं दुख के लिए, उसका कारण क्या है? उसका कारण यही है कि हम दूसरे से सुख चाहते हैं इतना ज्यादा कि वही चाह, उससे हमें दुख मिलने का द्वार बन जाती है, और तब दूसरे से सुख तो मिलता नहीं— मिल नहीं सकता। फिर दुख मिल सकता है, उसको हम लेते चले जाते हैं। महावीर नहीं कह सकते कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को दुख न देना। दूसरे को कौन दुख दे सकता है, अगर दूसरा लेना न चाहे। और जो लेना चाहता है उसको कोई भी न दे तो वह ले लेगा। यह भी मैं आपसे कह देना चाहता हूं। कोई वह आपके लिए रुका नहीं रहेगा कि आपने नहीं दिया तो दुख कैसे लें। लोग आसमान से दुख ले रहे हैं। जिन्हें दुख लेना है, वे बड़े इन्वेन्टिव हैं । वे इस-इस ढंग से दुख लेते हैं, इतना आविष्कार करते हैं कि जिसका हिसाब नहीं है। वे आपके उठने से दुख ले लेंगे, आपके बैठने से दुख ले लेंगे, आपके चलने से दुख ले लेंगे, किसी चीज से दुख ले लेंगे। अगर आप बोलेंगे तो दुख ले लेंगे, अगर आप चुप बैठेंगे तो दुख ले लेंगे कि आप चुप क्यों बैठे हैं, इसका क्या मतलब?
एक महिला मुझसे पूछती थी कि मैं क्या करूं, मेरे पति के लिए। अगर बोलती हूं तो कोई विवाद, उपद्रव खड़ा होता है। अगर नहीं बोलती हूं तो वे पूछते हैं, क्या बात है? न बोलने से विवाद खड़ा होता है। अगर न बोलूं तो वे समझते हैं कि नाराज हूं। अगर बोलूं तो नाराजगी थोड़ी देर में आने ही वाली है, वह कुछ न कुछ निकल आएगा। तो मैं क्या करूं? बोलूं कि न बोलूं? अब मैं उसको क्या सलाह दूं?
जितने दुख आपको मिल रहे हैं उसमें से निन्यानबे प्रतिशत आपके आविष्कार हैं। निन्यानबे प्रतिशत! जरा खोजें कि किस-किस तरह आप आविष्कार करते हैं, दुख का।कौन-कौन सी तरकीबें आपने बिठा रखी हैं! असल में बिना दुखी हुए आप रह नहीं सकते।क्योंकि दो ही उपाय हैं, या तो आदमी सुखी हो तो रह सकता है, या दुखी हो तो रह सकता है। अगर

दोनों न रह जाएं तो जी नहीं सकता। दुख भी जीने के लिए काफी बहाना है। दुखी लोग देखते हैं आप, कितने रस से जीते हैं? इसको जरा देखना पड़ेगा। दुखी लोग कितने रस से जीते हैं? वह अपने दुख की कथा कितने रस से कहते हैं? दुखी आदमी की कथा सुनें, कैसा रस लेता है। और कथा को कैसा मैग्निफाई करता है, उसको कितना बड़ा करता है। सुई लग जाए तो तलवार से कम नहीं लगती है उसे।

कभी आपने खयाल किया है कि आप किसी डाक्टर के पास जाएं और वह आ पसे कह दे कि नहीं, आप बिलकुल बीमार नहीं हैं,

तो कैसा दुख होता है! वह डाक्टर ठीक नहीं मालूम पड़ता । किसी और बड़े एक्सपर्ट को खोजना पड़ता है, इससे काम नहीं चलेगा। यह कोई डाक्टर है! आप जैसे बड़े आदमी, और आपको कोई बीमारी ही नहीं है। या कोई छोटी- मोटी बीमारी बता दे, कि कह दे, गर्म पानी पी लेना और ठीक हो जाओगे। तो भी मन को तृप्ति नहीं िमलती। इसलिए डाक्टरों को, बेचारों को अपनी दवाइयों के नाम लैटिन में रखने पड़ते हैं, चाहे उसका मतलब होता हो अजवाइन का सत। लेकिन लैटिन में जब नाम होता है, तब मरीज अकड़ कर घर लौटता है, प्रिच्सिकरप्शन लेकरकि ये कुछ काम हुआ! जिएंगे कैसे, अगर दुख न हो तो जिएंगे कैसे! या तो आनंद होतो जीने की वजह होती है। आनंद न हो तो दुख तो हो ही!

मार्क ट्वेन ने कहा है, और अनुभवी था आदमी और मन के गहरे में उतरने की क्षमता और दृष्टि थी। उसने कहा है, तुम चाहे मेरी प्रशंसा करो, या चाहे मेरा अपमान करो, लेकिन तटस्थ मत रहना। उससे बहुत पीड़ा होती है। तुम चाहो तो गाली ही दे देना, उससे भी तुम मुझे मानते हो कि मैं कुछ हूं। लेकिन तुम मुझे बिना देखे ही निकल जाओ, तुम न मुझे गाली दो, न तुम मेरा सम्मान करो, तब तुम मुझे ऐसी चोट पहुंचाते हो संघातक कि मैं उसका बदला लेकर रहूंगा। उपेक्षा का बदला लोग जितना लेते हैं उतना दुख का नहीं लेते। आपने भी अपने पर खयाल करेंगे तो आपको पता चल जाएगा कि आपको सबसे ज्यादा पीड़ा वह आदमी पहुंचाता है जो आपकी उपेक्षा करता है, इनडिफरेंट है। इसलिए अगर महा वीर या जीसस जैसे लोगों को हमने बहुत सताया तो उसका एक कारण उनका इनडिफरेंस था, बहुत गहरा कारण। वे इनडिफरेंट थे।आप उनको पत्थर भी मार गये तो वे ऐसे खड़े रहे कि चलो कोई बात नहीं। तो उससे बहुत दुख होता है, उससे बहुत पीड़ा होती है।

नीत्से ने; जो कि मनुष्य के इतिहास में बहुत थोड़े-से लोग आदमी के भीतर जितनी गहराई में उतरते हैं, वैसा आदमी; नीत्से ने कहा है कि जीसस, मैं तुमसे कहता हूं कि अगर कोई तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम दूसरा गाल उसके सामने मत करना, उससे उसको बहुत चोट लगेगी। जब कोई आदमी तुम्हारे गाल पर एक चांटा मा रे, जीसस, तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम दूसरा गाल उसके सामने मत करना। तुम उसे एक करारा चांटा देना। उससे उसे इज्जत िमलेगी। जब तुम दूसरा गाल उसके सामने कर दोगे, वह कीड़ा- मकोड़ा जैसा हो जाएगा। इतना अपमान मत करना। इसे हम न सह सकेंगे। इसीलिए तुम्हें सूली पर लटकाया गया।

यह कभी हम सोच नहीं सकते, लेकिन है यह सच। और सच ऐसे च्सटरेंज होते हैं कि हम कल्पना भी न कर पाएं, इतने विचित्र होते हैं। अगर कोई आपकी उपेक्षा करे तो वह शत्रु से भी ज्यादा शत्रु मालूम पड़ता है। क्योंकि शत्रु आपकी उपेक्षा नहीं करता। वह आपको काफी मान्यता देता है।

हम दुख के लिए भी उत्सुक हैं— कम से कम दुख तो दो, अगर सुख न दे सको। कुछ तो दो, दुख भी दोगे तो चलेगा, लेकिन दो। इसलिए हम आतुर हैं चारों तरफ, और संवेदनशील हैं। हम अपनी सारी इच्निदरयों को चारों तरफ सजग रखते

हैं, एक ही काम के लिए कि कहीं से दुख आ रहा हो तो चूक न जाएं। तो उसे जल्दी से ले लें। कहीं कोई और न ले ले; कहीं चूक न जाएं; कहीं अवसर न खो जाए। यह दुख हमारे रहने की वजह है, जीने की वजह है।
तो महावीर की अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि दूसरे को दुख मत देना, क्योंकि महावीर तो कहते ही यह हैं कि दूसरे को न कोई दुख दे सकता है और न कोई सुख दे सकता है। महावीर की अहिंसा का यह भी अर्थ नहीं है कि दूसरे को मारना मत, मार मत डालना। क्योंकि महावीर भलीभांति जानते हैं कि इस जगत में कौन किसको मार सकता है, मार डाल सकता है। महावीर से ज्यादा बेहतर और कौन जानता होगा यह कि मृत्यु असंभव है। मरता नहीं कुछ। तो महावीर का यह मतलब तो कतई नहीं हो सकता कि मारना मत, मार मत डालना किसी को। क्योंकि महावीर तो भलीभांति जानते हैं। और अगर इतना भी नहीं जानते तो महावीर के

66

धर्म : स्वभाव में होना

महावीर होने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।
लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले बहुत साधारणसाधारण परिभाषाओं का ढेर इकट्ठा कर दिये हैं। कहते हैं, अहिंसा का अर्थ यह है कि मुंह पर पट्टी बांध लेना। कि अहिंसा का अर्थ यह है कि संभलकर चलना कि कोई कीड़ा न मर जाए, कि रात पानी मत पी लेना, कि कहीं कोई हिंसा न हो जाए। यह सब ठीक है। मुंह पर पट्टी बांधना कोई हर्जा नहीं है, पानी छानकर पी लेना बहुत अच्छा है। पैर संभालकर रखना, यह भी बहुत अच्छा है, लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को मार सकते थे। इस भ्रम में नहीं। मत देना किसी को दुख, बहुत अच्छा है। लेकिन इस भ्रम में नहीं कि आप किसी को दुख दे सकते थे।
मेरे फर्क को आप समझ लेना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप जाना और मारना और काटना; क्योंकि मार तो कोई सकते ही नहीं हैं यह मैं नहीं कह रहा हूं! महावीर की अहिंसा का अर्थ ऐसा नहीं है। महावीर की अहिंसा का अर्थ ठीक वैसा है जैसे बुद्ध के तथाता का। इसे थोड़ा समझ लें। महावीर की अहिंसा का अर्थ वैसा ही है जैसे बुद्ध के तथाता का। तथाता का अर्थ होता है टोटल एक्सेप्टेबिलिटी, जो जैसा है वैसा ही हमें स्वीकार है। हम कुछ हेर-फेर न करेंगे।
अब एक चींटी चल रही है रास्ते पर, हम कौन हैं जो उसके रास्ते में किसी तरह का हेर-फेर करने जाएं? अगर मेरा पैर भी पड़ जाए तो मैं उसके मार्ग पर हेर-फेर करने का कारण और निमित्त तो बन जफाड़कर फेंक सकती है। किताबें हटा सकती है। रेडियो बंद कर सकती है। और पति बेचारा इसलिए रेडियो खोले है, अखबार आड़ा किये हुए है कि कृपा करके तुम्हारी उपस्थिति अनुभव न हो। हम सब इस चेष्टा में लगे हैं कि मेरी उपस्थिति दूसरे को अनुभव हो और दूसरे की उपसि तरफ से बीच में न आऊं। जरूरी नहीं है कि मैं ही चींटी पर पैर रखूं, तब वह मरे। चींटी खुद मेरे पैर के नीचे आकर मर सकती है। वह चींटी जाने, वह उसकी योजना जाने। महावीर जानते हैं कि यह जीवन के पथ पर प्रत्येक अपनी योजना में संलग्न है। वह योजना छोटी नहीं है। वह योजना बड़ी है, जन्मों- जन्मों की है। वह कमोच का बड़ा विस्तार है उसका। उसका अपने कमोच की, फलों की लंबी यात्रा है। मैं किसी की यात्रा पर किसी भी कारण से बाधा न बनूं। मैं चुपचाप अपनी पगडंडी पर चलता रहूं। मेरे कारण निमित्त के लिए भी किसी के मार्ग पर कोई व्यवधान खड़ा न हो। मैं ऐसा हो जाऊं, जैसे हूं ही नहीं।
अहिंसा का महावीर का अर्थ है कि मैं ऐसा हो जाऊं, जैसे मैं हूं ही नहीं। यह चींटी यहां से ऐसे ही गुजर जाती है जैसे कि मैं इस रास्ते पर चला ही नहीं था, और ये पक्षी इन वृक्षों पर ऐसे ही बैठे रहते हैं जैसे कि मैं इन वृक्षों के नीचे बैठा ही नहीं था। ये लोग, इस गांव के, ऐसे ही जीते रहते जैसे मैं इस गांव से गुजरा ही नहीं था । जैसे मैं नहीं हूं। महावीर का गहनतम

जो अहिंसा का अर्थ है, वह है एब्सेंस, जैसे मैं नहीं हूं। मेरी प्रजेंस कहीं अनुभव न हो, मेरी उपस्थिति कहीं प्रगाढ़ न हो जाए, मेरा होना कहीं किसी के होने में जरा-सा भी अड़चन, व्यवधान न बने। मैं ऐसे हो जाऊं जैसे नहीं हूं। मैं जीते जी मर जाऊंमैं जीते जी मर जाऊं।

हमारी सबकी चेष्टा क्या है? अब इसे थोड़ा समझें तो हमें खयाल में आ सानी से आ जाएगा, पर बहुत से आयाम से समझना पड़ेगा। हम सबकी चेष्टा क्या है कि हमारी उपस्थिति अनुभव हो, दूसरा जाने कि मैं हूं, मौजूद हूं। हमारे सारे उपाय हैं कि हमारी उपस्थिति प्रतीत हो। इसलिए राजनीति इतनी प्रभावी हो जाती है। क्योंकि राजनीतिक ढंग से आपकी उपस्थिति जितनी प्रतीत हो सकती है और किसी ढंग से नहीं हो सकती है।इसलिए राजनीति पूरे जीवन पर छा जाती है। अगर हम राजनीति का ठीक-ठीक अर्थ करें तो उसका अर्थ है, इस बात की चेष्टा कि मेरी उपस्थिति अनुभव हो। मैं कुछ हूं, मैं नाकुछ नहीं हूं। लोग जानें, मैं चुभूं, मेरे कांटे जगह-जगह अनुभव हों, लोग ऐसे न गुजर जाएं कि जैसे मैं नहीं था। और महावीर कहते हैं कि मैं ऐसे गुजर जाऊं कि पता चले कि मैं नहीं था, था ही नहमहावीर-वाणी भाग : 1

अब अगर हम इसे ठीक से समझें— उपस्थिति अनुभव करवाने की कोशिश का नाम हिंसा है, वायलेंस है। और जब भी हम किसी को कोशिश करवाते हैं अनुभव करवाने की कि मैं हूं, तभी हिंसा होती है। चाहे पति अपनी पत्नी को बतला रहा हो कि समझ ले कि मैं हूं, चाहे पत्नी समझा रही हो कि क्या तुम समझ रहे हो कि कमरे में अखबार पढ़ रहे हो तो तुम अकेले हो! मैं यहां हूं। पत्नी अखबार की दुश्मन हो सकती है क्योंकि अखबार आड़ बन सकता है, उसकी अनुपस्थिति हो जाती है। अखबार को फाड़कर फेंक सकती है। किताबें हटा सकती है। रेडियो बंद कर सकती है। और पति बेचारा इसलिए रेडियो खोले है, अखबार आड़ा किये हुए है कि कृपा करके तुम्हारी उपस्थिति अनुभव न हो। हम सब इस चेष्टा में लगे हैं कि मेरी उपस्थिति दूसरे को अनुभव हो और दूसरे की उपस्थिति मुझे अनुभव न हो। यही हिंसा है। और यह एक ही ि सक्के के दो पहलू हैं। जब मैं चाहूंगा कि मेरी उपस्थिति आपको पता चले, तो मैं यह भी चाहूंगा कि आपकी उपस्थिति मुझे पता न चले क्योंकि दोनों एक साथ नहीं हो सकते। मेरी उपस्थिति आपको पता चले, वह तभी पता चल सकती है जब आपकी उपस्थिति को मैं ऐसेमिटा दूं, जैसे है ही नहीं। हम सबकी कोशिश यह है कि दूसरे की उपस्थिति मिट जाए और हमारी उपस्थिति सघन, कंडेंस्ड हो जाए। यही हिंसा है।

अहिंसा इसके विपरीत है। दूसरा उपस्थित हो और इतनी तरह उपस्थित हो कि मेरी उपस्थिति से उसकी उपस्थिति में कोई बाधा न पड़े। मैं ऐसे गुजर जाऊं भीड़ से कि किसी को पता भी न चले कि मैं था। अहिंसा का गहन अर्थ यही है — अनुपस्थित व्यक्तित्व। इसे हम ऐसा कह सकते हैं और महावीर ने ऐसा कहा है — अहंकार हिंसा है और निरहंकारिता अहिंसा है। मतलब वही है — वह दूसरे को अपनी उपस्थिति प्रतीत करवाने की जो चेष्टा है। कितनी कोशिश में हम लगे हैं, शायद सारी कोशिश यही है — ढंग कोई भी हों। चाहे हम हीरे का हार पहनकर खड़े हो गये हों और चाहे हमने लाखों के वस्त्र डाल रखे हों और चाहे हम नग्न खड़े हो गये हों — कोशिश यही है, क्या, कि दूसरा अनुभव करे कि मैं हूं। मैं चैन से न बैठने दूंगा। तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि मैं हूं।

छोटे-छोटे बच्चे भी इस हिंसा में निष्णात होना शुरू हो जाते हैं। कभी आपने खयाल किया होगा कि छोटे-छोटे बच्चे भी अगर घर में मेहमान हों तो ज्यादा गड़बड़ शुरू कर देते हैं। घर में कोई न हो तो अपने बैठे रहते हैं, क्यों? आपको हैरानी होती है कि बच्चा ऐसे तो शांत बैठा था, घर में कोई आ गया तो वह पच्चीस सवाल उठाता है, बार-बार उठकर आता है, कोई चीज गिराता है। वह कर क्या रहा है? वह सिर्फ अटेंशन प्रवोक कर रहा है। वह कह रहा है, हम भी हैं यहां। मैं भी हूं। और आप उससे कह रहे हैं, शांत बैठो। आप यह कोशिश कर रहे हैं कि तुम नहीं हो। वह बूढ़ा भी वही कर रहा है, बच्चा भी वही कर रहा है। आप कहते हैं, शांत बैठो। वह बच्चा भी हैरान होता है कि जब घर में कोई नहीं होता है तो बाप नहीं कहता कि शांत बैठो। अभी कुछ नहीं कहता, कितने चिल्लाओ, घूमो-फिरो, चुप बैठा रहता है। घर में कोई मेहमान आते हैं तभी यह कहता है, शांत बैठो। क्याबात क्या है? घर में जब मेहमान आते हैं तभी तो वक्त है शांत न बैठने का ।

दोनों के बीच जो संघर्ष है वह इस बात का है कि बच्चा असर्ट करना चाहता है। वह भी घोषणा करना चाहता है कि मैं भी यहां हूं। महाशय, यहां मैं भी हूं। इसलिए कभी-कभी बच्चा मेहमानों के सा मने ऐसी जिद पकड़ जाता है कि मां-बाप हैरान होते हैं कि ऐसी जिद उसने कभी नहीं पकड़ी थी। उनके सामने वह दिखाना चाहता है कि इस घर में मालिक कौन है, किसकी चलती है, आखिर में कौन निर्णायक है। छोटे-छोटे बच्चे भी पालिटिक्स भलीभांति सीखने लगते हैं। उसका कारण है कि हमारा पूरा का पूरा आयोजन, हमारा पूरा समाज, हमारी पूरी संस्कृति अहंकार की संस्कृति है, अधर्म की। सारी दुनिया में वही है। आदमी अब तक धर्म की संस्कृति विकसित ही नहीं कर पाया। अब तक हम यह कोशिश ही जाहिर न कर पाये और हम सुनते नहीं महावीर वगैरह की, जो कि इस तरह की संस्कृति के स्रोत बन सकते थे। वे कहते हैं कि नहीं, उपस्थि ति तुम्हारी जितनी पता न चले, उतना ही मंगल है। तुम्हारे लिए भी, दूसरे के लिए भी। तुम ऐसे हो जाओ जैसे हो ही नहीं।

महावीर घर छोड़कर जाना चाहते थे तो मां ने कहा— 'मत जाओ, मुझे दुख होगा'। महावीर नहीं गये, क्योंकि इतनी भी जाने की जिद से होने का पता चलता है। आग्रह था कि नहीं, जाऊंगा। अगर महावीर की जगह कोई भी होता तो उसका त्याग और जोश मारता— क्या कहते हैं गुजराती में आप, जुस्सा। उसका जोश और बढ़ता। वह कहता, कौन मां, कौन पिता? सब संबंध बेकार हैं। यह सब संसार है। जितना समझाते, उतना वे शिखर पर चढ़ते।अधिक संन्यासी, अधिक त्यागी आपके समझाने की वजह से हो गये हैं। भूल से मत समझाना। कोई कहे 'जाते हैं', कहना, 'नमस्का र'। तो वह आदमी जाने के पहले पच्चीस दफे सोचेगा कि जाना कि नहीं जाना। आप घेरा बांधकर खड़े हो गये, आपने अटेंशन देनी शुरू कर दिया। आपने कहा कि उनको जाना महत्वपूर्ण हो गया। जरूरी हो गया। अब यह व्यक्तित्व की लड़ाई हो गई। अब सिद्ध करना पड़ेगा। इतने त्यागी न हों दुनिया में अगर आसपास के लोग इतना आग्रह न करें— तो त्यागी एकदम कम हो जाएंगे। इसमें नब्बे प्रतिशत तो बिलकुल ही न हों और तब दुनिया का हित हो। क्योंकि जो दस प्रतिशत बचे उनके त्याग की एक ग रिमा हो। उनका एक अर्थ हो। लेकिन आप रोकते हैं, वही कारण बन जाता है।

महावीर रुक गये, मां भी थोड़ी चकित हुई होगी, ऐसा कैसा त्याग! फिर महावीर ने दुबारा न कहा कि एक दफा और निवेदन करता हूं कि जाने दो। बात ही छोड़ दी। मां के मरने तक फिर बोले ही नहीं। कहा ही नहीं कुछ। मां ने भी सोचा होगा, जरूर सोचा होगा कि यह कैसा त्याग! क्योंकि त्यागी तो एकदम जिद बांधकर खड़ा हो जाता है। मां मर गयी। घर लौटते वक्त अपने बड़े भाई को महावीर ने कहा— कब्रिस्तान से लौटते वक्त, मरघट से, कि अब मैं जा सकता हूं? क्योंकि वह मां कहती थी, उसे दुख होगा। तो बात समाप्त हो गयी, अब वह है ही नहीं।

भाई ने कहा, तू आदमी कैसा है! इधर इतना बड़ा दुख का पहाड़ टूट पड़ा हमारे ऊपर, कि मां मर गई, और तू अभी छोड़कर जाने की बात करता है! भूलकर ऐसी बात मत करना।

महावीर चुप हो गये। फिर दो वर्ष तक भाई भी हैरान हुआ कि यह त्याग कैसा! क्योंकि वे तो अब चुप ही हो गये। उन्होंने फिर दोबारा बात न कही। इतनी उपस्थिति को हटा लेने का नाम अहिंसा है।

दो वर्ष में घर के लोगों को खुद चिंता होने लगी कि कहीं हम ज्यादती तो नहीं कर रहे हैं। भाई को पीड़ा होने लगी, क्योंकि देखा कि महावीर घर में हैं तो, लेकिन करीब-करीब ऐसे जैसे न हों— एक घोस्ट एग्जिसटेंस रह गया, शैडो एग्जिसटेंस। कमरे से ऐसे गुजरते हैं कि पैर की आवाज न हो। घर में किसी को कुछ कहते नहीं कि किसी को पता चले कि मैं भी हूं। कोई सलाह नहीं देते, कोई उपदेश नहीं देते। बैठे देखते रहते हैं, जो हो रहा है—हो रहा है! उसमें वे उसके साक्षी हो गये हैं। कई-कई दिनों तक घर के लोगों को खयाल ही न आता कि महावीर कहां हैं। बड़ा महल था। फिर खोजबीन करते कि महावीर कहां हैं तो पता चलता। खोजबीन करने से पता चलता।

तो भाई ने और सबने बैठकर सोचा कि हम कहीं ज्यादती तो नहीं कर रहे हैं, कहीं हम भूल तो नहीं कर रहे हैं। हम सोचते हैं कि हम रोकते हैं इसलिए रुक जाता है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि इसलिए रुक जाता है कि नाहक, इतनी भी उपस्थिति हमें क्यों अनुभव हो, हमें इतनी भी पीड़ा क्यों हो कि हमारी बात तोड़कर गया है। लेकिन लगता हमें ऐसा है कि वह जा चुका है, अब वह घर में है नहीं। उन सबने मिलकर कहा— यह पृथ्वी पर घटी हुई अकेली घटना है— उन

सबने, घर के लोगों ने मिलकर कहा कि आप तो जा ही चुके हैं, एक अर्थ में।अब ऐसा लगता है कि पार्थिव देह पड़ी रह गई है, आप इस घर में नहीं हैं। तो हम आपके मार्ग से हट जाते हैं क्योंकि हम अकारण आपको रोकने का कारण न बनें। महावीर उठे और चल पड़े।

यह अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है, गहनतम अनुपस्थिति। इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध का जो तथाता का भाव है, वही महावीर की अहिंसा का भाव है। तथाता का अर्थ है — जैसा है, स्वीकार है। अहिंसा का भी यही अर्थ है कि हम परिवर्तन के लिए जरा भी चेष्टा न करेंगे। जो हो रहा है ठीक है, जो हो जाए ठीक है। जीवन रहे तो ठीक है, मृत्यु आ जाए तो ठीक है। हमारी हिंसा किस बात से पैदा होती है? जो हो रहा है वह नहीं, जो हम चाहते हैं वह हो। तो हिंसा पैदा होती है। हिंसा है क्या? इसलिए युग में जितना ज्यादा परिवर्तन की आकांक्षा भरती है, युग उतने ही हिंसक होते चले जा ते हैं । आदमी जितना चाहता है, ऐसा हो, उतनी हिंसा बढ़ जाएगी।

महावीर की अहिंसा का अर्थ अगर हम गहरे में खोलें, गहरे में उघाड़ें, उसकी डेप्थ में, तो उसका यह अर्थ है कि जो है उसके लिए हम राजी हैं। हिंसा का कोई सवाल नहीं है, कोई बदलाहट नहीं है, कोई बदलाहट नहीं करनी है। आपने चांटा मार दिया, ठीक है। हम राजी हैं, हमें अब और कुछ भी नहीं करना है, बात समाप्त हो गयी। हमारा कोई प्रत्युत्तर नहीं। इतना भी नहीं जितना जीसस का है। जीसस कहते हैं, दूसरा गाल सामने कर दो। महावीर इतना भी नहीं कहते कि जो चांटा मारे, तुम दूसरा गाल उसके सामने करना, क्योंकि यह भी एक उत्तर है। एक 'सार्ट आफ आंसर' है। है तो उत्तर— चांटा मारना भी एक उत्तर है, दूसरा गाल कर देना भी एक उत्तर है। लेकिन तुम राजी न रहे, बात जितनी थी उतने से तुमने कुछ न कुछ किया।

महावीर कहते हैं— करना ही हिंसा है, कर्म ही हिंसा है। अकर्म अहिंसा है। चांटा मार दिया है, ठीक है जैसे एक वृक्ष से सूखा पत्ता गिर गया है। ठीक है, आप अपनी राह चले गये। एक आदमी ने चांटा मार दिया, आप अपनी राह चले गये। एक आदमी ने गाली दी, आपने सुनी और आगे बढ़ गये। क्षमा भी करने का सवाल नहीं है क्योंकि वह भी कृत्य है। कुछ करने का सवाल नहीं है। पानी में उठी लहर और अपने-आप बिखर जाती है। ऐसा ही चा रों तरफ लहरें उठती रहेंगी कर्म की, बिखरती रहेंगी। तुम कुछ मत करना। तुम चुपचाप गुजरते जाना। पानी में लहर उठती है, मिटानी तो नहीं पड़ती, अपने से आप मिट जाती है।

इस जगत में जो तुम्हारे चारों तरफ हो रहा है, उसे होते रहने देना है, वह अपने से उठेगा और गिर जाएगा। उसके उठने के नियम हैं, उसके गिरने के नियम हैं, तुम व्यर्थ बीच में मत आना। तुम चुपचाप दूर ही रह जाना। तुम तटस्थ ही रह जाना। तुम ऐसा ही जानना कि तुम नहीं थे। जब कोई चांटा मारे तब तुम ऐसे हो जाना कि तुम नहीं हो, तो उत्तर कौन देगा। गाल भी कौन करेगा, गाली कौन देगा, क्षमा कौन करेगा ? तुम ऐसा जानना कि तुम नहीं हो। तुम्हारी एब्सेंस में, तुम्हारी अनुपस्थिति में जो भी कर्म की धारा उठेगी वह अपने से पानी में उसकी लहर की तरह खो जाएगी। तुम उसे छूने भी मत जाना। हिंसा का अर्थ है, मैं चाहता हूं, जगत ऐसा हो।

उमर खैयाम ने कहा है— मेरा वश चले और प्रभु तू मुझे शक्ति दे तो तेरी सारी दुनिया को तोड़कर दूसरी बना दूं। अगर आपका भी वश चले तो दुनिया को आप ऐसी ही रहने देंगे जैसी है? दुनिया! दुनिया तो बहुत बड़ी चीज है, कुछ भी आप ऐसा न रहने देंगे, छोटा- मोटा भी जैसा है। उमर खैयाम के इस वक्तव्य में सारे मनुष्यों की कामना तो प्रगट हुई ही है, और हिंसा भी। अगर महावीर से कहा जाए, अगर आपको पूरी शक्ति दे दी जाए कि यह दुनिया कैसी हो, तो महावीर कहेंगे, जैसी है, वैसी हो — एज इट इज। मैं कुछ भी न करूंगा।

लाओत्से ने कहा है— श्रेष्ठतम सम्राट वह है जिसका प्रजा को पता ही नहीं चलता ।श्रेष्ठतम सम्राट वह है जिसका प्रजा को पता ही नहीं चलता, वह है भी या नहीं। महावीर की अहिंसा का अर्थ है कि ऐसे हो जाओ कि तुम्हारा पता ही न चले और हमारी सारी चेष्टा ऐसी है कि हम इस भांति कैसे हो जाएं कि कोई न बचे जिसे हमारा पता न हो। कोई न बचे, जिसे हमारा पता न हो। सारी अटेंशन हम पर फोकस हो जाए। सारी दुनिया हमें देखे, हम हों आंखों के बीच में, सब आंखें हम पर मुड़ जाएं। यही हिंसा है। और यही हिंसा है कि हम पूरे वक्त चाहते रहें कि ऐसा हो, ऐसा न हो। हम पूरे वक्त चाह रहे

हैं।क्यों चाह रहे हैं? चाहने का कारण है। वह जो धर्म की व्याख्या में मैंने आपसे कहा— दौड़ रहे हैं, वह मकान मिले, वह धन मिले, वह पद मिले, तो हिंसा से गुजरना पड़ेगा। वासना हिंसा के बिना नहीं हो सकती। किसी वासना की दौड़ हिंसा के बिना नहीं हो सकती। हम ऐसा समझ सकते हैं कि वासना के लिए जिस ऊर्जा की जरूरत पड़ती है वह हिंसा का रूप ले लेती है। इसलिए जितना वासनाग्रस्त आदमी है उतना वायलेंट, उतना हिंसक होगा। जितना वासनामुक्त आदमी उतना अहिंसक होगा।

इसलिए जो लोग समझते हैं कि महावीर कहते हैं कि अहिंसा इसलिए है कि तुम मोक्ष पा लोगे, वे गलत समझते हैं। क्योंकि अगर मोक्ष पाने की वासना है तो आपकी अहिंसा भी हिंसक हो जाएगी। और बहुत से लोगों की अहिंसा हिंसक है। अहिंसा भी हिंसक हो सकती है। आप इतने जोर से अहिंसा के पीछे पड़ सकते हैं कि आपका पड़ना बिलकुल हिंसक हो जाए। लेकिन जो मोक्ष की वासना से अहिंसा के पीछे जाएगा उसकी अहिंसा हिंसक हो जाएगी।इसलिए तथाकथित अहिंसक साधकों को अहिंसक नहीं कहा जा सकता। वे इतने जोर से लगे हैं उसके पीछे, पाकर ही रहेंगे। सब दांव पर लगा देंगे, लेकिन पाकर रहेंगे। वह जो पाकर रहने का भाव है उसमें बहुत गहरी हिंसा है।

महावीर कहते हैं, पाने को कुछ भी नहीं है जो पाने योग्य है वह पाया ही हुआ है।बदलने को कुछ भी नहीं है क्योंकि यह जगत अपने ही नियम से बदलता रहता है। क्रांति करने का कोई कारण नहीं, क्रांति होती ही रहती है। कोई क्रांति-व्रांति करता नहीं, क्रांति होती रहती है। लेकिन क्रांतिकारी को ऐसा लगता है, वह क्रांति कर रहा है। उसका लगना वैसा ही है जैसे सागर में एक बड़ी लहर उठे और एक बहता हुआ तिनका लहर के मौके पर पड़ जाए और ऊपर चढ़ जाए और ऊपर चढ़कर वह कहे कि लहर मैंने ही उठायी है। बस, वैसा ही है।

सुना है मैंने कि जगन्नाथ का रथ निकलता था तो एक बार एक कुत्ता रथ के आगे हो लिया।बड़े फूल बरसते थे, बड़ी नमस्कार होती थी। लोग लोट-लोटकर जमीन पर प्रणाम करते थे।और कुत्ते की अकड़ बढ़ती चली गयी। उसने कहा, आश्चर्य! न केवल लोग नमस्कार कर रहे हैं, मेरे पीछे स्वर्ण-रथ भी चलाया जा रहा है। मैं ऐसा हूं ही, इसमें कोई कारण भी नहीं है। हम सबका चित्त भी ऐसा ही है।

रूस में चीजैवस्की को स्टेलिन ने कारागृह में डलवा दिया और मरवा डा ला। क्योंकि उसने यह कहा कि क्रांतियां आदमियों के किये नहीं होतीं, सूरज के प्रभाव से होती हैं। और उसके कहने का का रण ज्योतिष का वैज्ञानिक अध्ययन था। उसने हजारों साल की क्रांतियों के सारे ब्यौरे की जांच -पड़ताल की और सूरज के ऊपर होने वाले परिवर्तनों की जांच-पड़ताल की। उसने कहा— हर साढ़े ग्यारह वर्ष में सूरज पर इतना बड़ा परिवर्तन होता है वैद्युतिक कि उसके परिणाम पर पृथ्वी पर रूपांतर होते हैं। और हर नब्बे वर्ष में सूरज पर इतना बड़ा परिवर्तन होता है कि उसके परिणाम में पृथ्वी पर क्रांतियां घटित होती हैं। उसने सारी क्रांतियां, सारे उपद्रव, सारे युद्ध सूरज पर होने वाले कास्मिक परिणामों से सिद्ध किये।

और सारी दुनिया के वैज्ञानिक मानते हैं कि चीजैवस्की ठीक कह रहा था। लेकिन स्टेलिन कैसे माने। अगर चीजैवस्की ठीक कह रहा था तो 1917 की क्रांति सूरज पर हुई किरणों के फर्क से हुई है, तो फिर लेनिन और स्टेलिन और ट्राटस्की इनका क्या होगा? चीजैवस्की को मरवा डालने जैसी बात थी। लेकिन स्टेलिन के मरने के बाद चीजैवस्की का फिर रूस में काम शुरू हो गया। औरमहावीर-वाणी भाग : 1

रूस के ज्योतिष-विज्ञानी कह रहे हैं कि वह ठीक कहता है। पृथ्वी पर जो भी रूपांतरण होते हैं, उनके कारण कास्मिक हैं, उनके का रण जागतिक हैं। सारे जगत में जो रूपांतरण होते हैं, उनके कारण जागतिक हैं।आप जानकर हैरान होंगे कि एक बहुत बड़ी प्रयोगशाला प्राग में, चेक गवर्नमेंट ने बनायी है, जो एच्सटरानामिकल बर्थ कंट्रोल पर काम कर रही है। और उनके परिणाम 98 प्रतिशत सही आये। और जो आदमी मेहनत कर रहा है वहां, उस आदमी का दावा है कि आने वाले पंद्रह वषोच में किसी तरह की गोली, किसी तरह के और कृत्रिम साधन की बर्थ-कंट्रोल के लिए जरूरत नहीं रहेगी, गर्भ-निरोधक के लिए। स्त्री जिस दिन पैदा हुई है और जिस दिन उसका स्वयं का गर्भाधारण हुआ था, इसकी तारीखें,

और सूर्य पर और चांद ता रों पर होने वाले परिवर्तनों के हिसाब से वह तय कर लेता है कि यह स्त्री किन-किन दिनों में गर्भधारण कर सकती है। वे दिन छोड़ दिये जाएं संभोग के लिए तो पूरे जीवनकाल में कभी गर्भधारण नहीं होगा। अंठान्नबे प्रतिशत दस हजार स्त्रियों पर किये गये प्रयोग में सफल हुआ है। वह यह भी कहता है कि स्त्री अगर चाहे कि बच्चा लड़का पैदा हो या लड़की तो उसकी भी तारीखें तय की जा सकती हैं। क्योंकि वह भी कास्मिक प्रभावों से होता है, वह भी आपसे नहीं हो रहा है। ज्योतिष के बड़े जोर से वापस लौट आने की संभावना है।
महावीर कहते हैं— घटनाएं घट रहीं हैं, तुम नाहक उनको घटाने वाले मत बनो। तुम यह मत सोचो कि मैं यह करके रहूंगा। तुम इतना ही करो तो काफी है कि तुम न करने वाले हो जाओ।
अहिंसा का अर्थ है— अकर्म। अहिंसा का अर्थ है— मैं कुछ न बदलूंगा, मैं कुछ न चाहूंगा। मैं अनुपस्थित हो जाऊंगा। अहिंसा पर थोड़ी और बात करनी पड़े, कलबात करेंगे!

आज इतना ही।
पर कोई जाए न, थोड़ा इस आनंद!

धम्म-सूत्र : 1 (अहिंसा)

धम्मो मंगलमुक्किच्द्धं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

च्धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।
अहिंसा : जीवेषणा की मृत्यु

पांचवां प्रवचन

दिनांक 22 अगस्त,1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमाला , पाटकर हाल, बम्बई

धर्म मंगल है। कौन-सा धर्म? अहिंसा, संयम और तप। अहिंसा धर्म की आत्मा है। कल अहिंसा पर थोड़ी बातें मैंने आपसे कहीं, थोड़े और आयामों से अहिंसा को समझ लेना जरूरी है।

हिंसा पैदा ही क्यों होती है? हिंसा जन्म के साथ ही क्यों जुड़ी है? हिंसा जीवन की पर्त-पर्त पर क्यों फैली है? जिसे हम जीवन कहते हैं, वह हिंसा का ही तो विस्तार है।ऐसा क्यों है?

पहली बात, और अत्यधिक आधारभूत— वह है जीवेषणा। जीने की जो आकांक्षा है, उससे ही हिंसा जन्मती है। और जीने को हम सब आतुर हैं। अकारण भी जीने को आतुर हैं। जीवन से कुछ फलित भी न होता हो, तो भी जीना चाहते हैं। जीवन से कुछ न भी मिलता हो, तो भी जीवन को खींचना चाहते हैं। सिर्फ राख ही हा थ लगे जीवन में तो भी हम जीवन को दोहराना चाहते हैं।

विन्सेंट वानगाग के जीवन पर एक बहुत अदभुत किताब लिखी गयी है। और किताब का नाम है— लस्ट फार लाइफ, जीवेषणा। अगर महावीर के जीवन पर कोई किताब लिखनी हो तो लिखना पड़ेगा, 'नो लस्ट फार लाइफ'। जीवेषणा नहीं। जीने का एक पागल, अत्यंत विक्षिप्त भाव है हमारे मन में। मरने के आखिरी क्षण तक भी हम जीना ही चाहते हैं। और यह जो जीने की कोशिश है, यह जितनी विक्षिप्त होती है उतना ही हम दूसरे के जीवन के मूल्य पर भी जीना चाहते हैं। अगर ऐसा विकल्प आ जाए कि सारे जगत को मिटाकर भी, मुझे बचने की सुविधा हो तो मैं राजी हो जाऊंगा। सबको विनाश कर दूं, फिर भी मैं बच सकता होऊं तो मैं सबके विनाश के लिए तैयार हो जाऊंगा। जीवेषणा की इस वि क्षिप्तता से ही हिंसा के सब रूप जन्मते हैं। मरने की आखिरी घड़ी तक भी आदमी जीवन को जोर से पकड़े रहना चाहता है। बिना यह पूछे हुए कि किसलिए? जीकर भी क्या होगा? जीकर भी क्या मिलेगा?

मुल्ला नसरुद्दीन को फांसी की सजा हो गयी थी। जब उसे फांसी के तख्ते के पास ले जाया गया तो उसने तख्ते पर चढ़ने से इनकार कर दिया। सिपाही बहुत चकित हुए। उन्होंने कहा कि क्या बात है?

उसने कहा कि सीढ़ियां बहुत कमजोर मालूम पड़ती हैं। अगर गिर जाऊं तो तुम्हारे हाथ-पैर टूटेंगे कि मेरे! फांसी के तख्ते पर चढ़ना है। सीढ़ियां कमजोर हैं, मैं इन सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकता। नयी सीढ़ियां लाओ।

उन सिपाहियों ने कहा— पागल हो गये हो! मरनेवाले आदमी को क्या प्रयोजन है?

नसरुद्दीन ने कहा— अगले क्षण का क्या भरोसा! शायद बच जाऊं, तो लंगड़ा होकर मैं नहीं बचना चाहता हूं। और एक बात

पक्की है कि जब तक मैं मर ही नहीं गया हूं, तब तक मैं जीने की कोशिश करूंगा। सीढ़ियां नयी चाहिये।

नयी सीढ़ियां लगायी गयीं, तब वह चढ़ा। फिर भी बहुत संभलकर चढ़ा। जब उसके गले में फंदा लगा ही दिया गया, और मजिच्स्टरेट ने कहा— नसरुद्दीन, तुझे कोई आखिरी बात तो नहीं कहनी है?

नसरुद्दीन ने कहा, 'यस, आई हेव टु से समथिंग। दिस इज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। यह जो फांसी लगायी जा रही है, यह मेरे लिए एक शिक्षा सिद्ध होगी।'

मजिच्सटरेट समझा नहीं। उसने कहा कि अब शिक्षा से भी क्या फायदा होगा ?

नसरुद्दीन ने कहा कि अगर दोबारा जीवन मिला तो जिस वजह से फांसी लग रही है, वह काम मैं जरा संभलकर करूंगा। दिस इज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी। गले में फंदा लगा हो तो भी आदमी दूसरे जीवन के बाबत सोच रहा होता है। दूसरा जीवन मिले तो इस बार जिस भूल चूक से पकड़े गये हैं और फांसी लग रही है वह भूल चूक नहीं करनी है— ऐसा नहीं— संभलकर करनी है। तोदिस इज गोइंग टु बी ए लेसन टु मी।

ऐसा ही हमारा मन है। किसी भी कीमत पर जीना है। महावीर यही पूछते हैं कि जीना क्यों है? बड़ा गहन सवाल उठाते हैं। शायद जिन्होंने पूछा है, जगत क्यों है? जिन्होंने पूछा है, सृष्टि किसने रची है? जिन्होंने पूछा है, मोक्ष कहां है? ये सवाल इतने गहरे नहीं हैं। ये सवाल बहुत ऊपरी हैं। महावीर पूछते हैं, जीना ही क्यों है? व्हाय दिस लस्ट फार लाइफ? और इसी प्रश्न से महावीर का सारा चिंतन और सारी साधना निकलती है।

तो महावीर कहते हैं, यह जीने की बात ही पागलपन है। यह जीने की आकांक्षा ही पागलपन है। और इस जीने की आकांक्षा से जीवन बचता हो, ऐसा नहीं है; केवल दूसरों के जीवन को नष्ट करने की दौड़ पैदा होती है। बच जाता तो भी ठीक था। बचता भी नहीं है। कितना ही चाहो कि जीऊं, मौत खड़ी है और आ जाती है। कितने लोग इस जमीन पर हमसे पहले जीने की कोशिश कर चुके हैं। आखिर अंततः मौत ही हाथ लगती है। तो महावीर कहते हैं, जीवन का इतना पागलपन कि हम दूसरे को विनष्ट करने को तैयार हैं और अंत में मौत ही हाथ लगती है। महावीर कहते हैं— ऐसे जीवन के पागलपन को मैं छोड़ता हूं जिससे दूसरों के जीवन को नष्ट करने के लिए मैं तैयार होता और अपने को बचा भी नहीं पाता। जो व्यक्ति जीवेषणा छोड़ देता है वही अहिंसक हो सकता है। क्योंकि जब मुझे कोई आग्रह ही नहीं है कि जीऊं ही, तब मैं किसी का विनाश करने के लिए तैयार नहीं हो सकता। इसलिए महावीर की अहिंसा के प्राण में प्रवेश करना हो, तो वह प्राण है— जीवेषणा का त्याग। इसका यह अर्थ नहीं है कि महावीर मरने की आकांक्षा रखते हैं। यह भ्रांति हो सकती है।

फ्रायड ने इस सदी में मनुष्य के भीतर दो आकांक्षाओं को पकड़ा है। एक तो जीवेषणा और एक मृत्यु-एषणा। एक को वह कहता है, इरोज, जीवन की इच्छा। और एक को कहता है, थानाटोस, मृत्यु की इच्छा। वह कहता है कि जब जीवन की इच्छा रुग्ण हो जाती है तो मृत्यु की इच्छा में बदल जाती है। यह बात ठीक है। लोग आत्महत्याएं भी तो करते हैं। तो क्या महावीर राजी होंगे? आत्महत्या करने वाले को कहेंगे कि ठीक है तू! अगर जीवेषणा गलत है तो फिर मृत्यु की आकांक्षा और मृत्यु को लाने की कोशिश ठीक होनी चाहिए? फ्रायड कहता है— जिन लोगों की जीवेषणा रुग्ण हो जा ती है वे फिर मृत्यु-एषणा से भर जाते हैं। फिर वे अपने को मारने में लग जाते हैं। आदमी आत्महत्या करता हुआ दिखाई तो पड़ता है। लेकिन फ्रायड को उतनी गहरी समझ नहीं है जितनी महावीर को है। महावीर कहते हैं— आत्महत्या करनेवाला भी जीवेषणा से ही पीड़ित है।

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।

76

अहिंसा : जीवेषणा की मृत्यु

कभी आपने किसी आदमी को इस भांति आत्महत्या करते देखा है, जिसकी जीवेषणा नष्ट हो गयी हो? नहीं। मैं चाहता हूं एक स्त्री मुझे मिले और नहीं मिलती तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता हूं। अगर वह मुझे मिल जाए तो मैं आत्महत्या के लिए तैयार नहीं हूं। मैं चाहता हूं कि एक बहुत बड़ी प्रतिष्ठा और यश और इज्जत के साथ जीऊं। मेरी इज्जत खो जाती है, मेरी प्रतिष्ठा गिर जा ती है— मैं आत्महत्या करने को तत्पर हो जाता हूं। मुझे वह प्रतिष्ठा वापस

लौटती हो, मुझे वह इज्जत फिर वापस मिलती हो तो मैं आखिरी किनारे से मौत के वापस लौट आ सकता हूं। धन खो जाता है किसी का, पद खो जाता है किसी का तो वह मरने को तैयार है। इसका अर्थ क्या है?

महावीर कहते हैं— यह मृत्यु-एषणा नहीं है। यह केवल जीवन का इतना प्रबल आग्रह है कि मैं कहता हूं— मैं इस ढंग से ही जीऊंगा। अगर यह ढंग मुझे नहीं मिलता तो मर जाऊंगा। इसे थोड़ा ठीक से समझें। मैं कहता हूं, मैं इस स्त्री के साथ ही जीऊंगा। यह जीने की आकांक्षा इतनी आग्रहपूर्ण है कि इस स्त्री के बिना मैं नही जीऊंगा। मैं इस धन, मैं इस भवन, मैं इस पद के साथ ही जीऊंगा। अगर यह पद और धन नहीं है तो मैं नहीं जीऊंगा। यह जीने की आकांक्षा ने एक विशिष्ट आग्रह पकड़ लिया है। वह आग्रह इतना गहरा है कि वह अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह आग्रह इतना गहरा है कि अपने से विपरीत भी जा सकता है। वह मरने तक को तैयार हो सकता है, लेकिन गहरे में जीवन की ही आकांक्षा है।

इसलिए महावीर इस जगत में अकेले चिंतक हैं, जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की आज्ञा भी दूंगा, अगर तुममें जीवेषणा बिलकुल न हो। सिर्फ अकेले विचारक हैं सारी पृथ्वी पर और सिर्फ अकेले धार्मिक चिंतक हैं जिन्होंने कहा कि मैं तुम्हें मरने की भी आज्ञा दूंगा, अगर तुममें जीवन की आकांक्षा बिलकुल न हो। लेकिन जिसमें जीवन की आकांक्षा नहीं है वह मरना क्यों चाहेगा। मरने की चाह के पीछे जीवन की आकांक्षा ही होती है। उलटे लक्षणों से बीमारियां नहीं बदल जाती हैं, जरूरी नहीं है।

आज से सौ साल पहले चिकित्सा शास्त्रों में ऐलोपेथी की एक बीमारी का नाम था, वह सौ साल में खो गया है। उसका नाम था ड्राप्सी। अब उस बीमारी का नाम मेडिकल किताबों में नहीं है। हालांकि उस बीमारी के मरीज अब भी अस्पतालों में हैं, वे नहीं खो गये। मरीज तो हैं, लेकिन वह बीमारी खो गयी है। वह बीमारी इसलिए खो गयी कि पाया गया कि वह बीमारी एक नहीं है, वह सिर्फ सिम्प्टोमैटिक है। ड्राप्सी उस बीमारी को कहते थे जिसमें मनुष्य के शरीर का तरल हिस्सा किसी एक अंग में इकट्ठा हो जाता है। जैसे पैरों में सारी तरलता इकट्ठी हो गयी या पेट में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया। सब पानी भर गया है, सब तरलता पेट में इकट्ठी हो गयी है। सारा शरीर सूखने लगा और पेट बढ़ने लगा और सारी तरलता पेट में आ गयी। उसको ड्राप्सी कहते थे। अगर अस्पताल में जाएं और एक आदमी के दोनों पैरों में तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया, और एक आदमी के एब्डामन में सारा तरल द्रव्य इकट्ठा हो गया, तो लक्षण एक है। सौ साल तक यही समझा जाता था, बीमारी एक है। लेकिन पीछे पता चला कि यह तरल द्रव्य इकट्ठे होने के अनेक कारण हैं। बीमारियां अलग-अलग हैं। यह हृदय की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। यह किडनी की खराबी से भी इकट्ठा हो सकता है। और जब किडनी की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है और जब हृदय की खराबी से इकट्ठा होता है तो बीमारी दूसरी है। इसलिए वह ड्राप्सी की बीमारी जो थी, नाम, वह समाप्त हो गया। अब पच्चीस बीमारियां हैं, उनके अलग-अलग नाम हैं। यह भी हो सकता है, लक्षण बिलकुल एक से हों और बीमा री एक हो। और यह भी हो सकता है कि बीमारियां दो हों, और लक्षण बिलकुल एक हों। लक्षणों से बहुत गहरे नहीं जाया जा सकता।

महावीर ने 'संथारा' की आज्ञा दी। महावीर ने कहा है— किसी व्यक्ति की अगर जीवन की आकांक्षा शून्य हो गयी हो तो मैं कहता हूं, वह मृत्यु में प्रवेश कर सकता है। लेकिन उन्होंने कहा है कि वह भोजन छोड़ दे, पानी छोड़ दे। भोजन और पानी छोड़कर भी

77

महावीर-वाणी भाग : 1

आदमी नब्बे दिन तक नहीं मरता— कम से कम नब्बे दिन जी सकता है, साधारण स्वस्थ आदमी हो तो। और जिस व्यक्ति की जीवन की आकांक्षा चली गयी हो, वह असाधारण रूप से स्वस्थ होता है। क्योंकि हमारी सारी बीमारियां जीने की आकांक्षा से पैदा होती हैं। तो नब्बे दिन तक तो वह मर नहीं सकता। महावीर ने कहा— वह पानी छोड़ दे, भोजन छोड़ दे, लेट जाए, बैठा रहे। आत्महत्याएं जितनी भी की जाती हैं क्षणों के आवेश में की जाती हैं। क्षण भी खो जाए तो आत्महत्या नहीं हो सकती ।

क्षण का एक आवेश होता है। उस आवेश में आदमी इतना पागल होता है कि कूद पड़ता है नदी में। आग लगा लेता है। शायद आग लगाकर जब शरीर जलता है तब पछताता है। लेकिन तब हाथ के बाहर हो गयी होती है बात। जहर पी लेता है। अगर जहर फैलने लगता है, और तड़फन होती है, तब पछताता है। लेकिन तब शायद हाथ के बाहर हो गयी है बात। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आत्महत्या करनेवाले को हम क्षणभर के लिए भी रोक सकें तो वह आत्महत्या नहीं कर पाएगा। क्योंकि उतनी मैडनेस की जो तीव्रता है वह तरल हो जाती है, विरल हो जाती है, क्षीण हो जाती है।

महावीर कहते हैं कि मैं आज्ञा देता हूं ध्यानपूर्वक मर जाने की। तुम भोजन-पानी सब छोड़ देना नब्बे दिन। अगर उस आदमी में जरा सी भी जीवेषणा होगी तो भाग खड़ा होगा, लौट आएगा। अगर जीवेषणा बिलकुल न होगी तो ही नब्बे दिन वह रुक पाएगा।

नब्बे दिन लंबा समय है। मन एक ही अवस्था में नब्बे दिन रह जाए, यह आसान घटना नहीं है। नब्बे क्षण नहीं रह पाता। सुबह सोचते थे मर जाएंगे, शाम को सोचते हैं कि दूसरे को मार डालें। मन नब्बे दिनइसलिए फ्रायड को मानने वाले मनोवैज्ञानिक कहेंगे कि महावीर में कहीं न कहीं सुसाइडल तत्व है, कहीं न कहीं आत्महत्यावादी तत्व है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं— नहीं है। असल में जिस व्यक्ति में जीवेषणा ही नहीं है उसके मरने की एषणा भी नहीं होती । मृत्यु की एषणा जीवेषणा का दूसरा पहलू है— विरुद्ध नहीं है, उसी का अंग हैविरुद्ध नहीं है, उसी का अंग है। इसलिए महावीर ने कोई मृत्यु की चेष्टा नहीं की। जिसकी जीवन की चेष्टा ही न रही हो, उसकी मृत्यु की चेष्टा भी नहीं रह जाती। महावीर कहते हैं कि एक हिस्से को हम फेंक दें, दूसरा हिस्सा उसके साथ ही चला जाता है। संथारा का महावीर का अर्थ है— आत्महत्या नहीं, जीवेषणा का इतना खो जाना कि पता ही न चले और व्यक्ति शून्य में लीन हो जाए। आत्महत्या की इच्छा नहीं, क्योंकि जहां तक इच्छा है, वहां तक जीवन की ही इच्छा होगी।

इसे ठीक से समझ लें। डिजायर इज आलवेज डिजायर फार द लाइफ— आलवेज। मृत्यु की कोई इच्छा ही नहीं होती। मृत्यु की इच्छा में ही जीवन की इच्छा भी छिपी होती है, जीवन का कोई आग्रह छिपा होता है। तो महावीर कोई आत्मघाती नहीं हैं। उतना बड़ा आत्मज्ञानी नहीं हुआ, आत्मघाती होने का सवाल नहीं है।

लेकिन यह बात जरूर सच है कि महावीर के विचार में बहुत से आत्मघाती उत्सुक हुए, बहुत से आत्मघाती महावीर से आकर्षित हुए। और उन आत्मघातियों ने महावीर के पीछे एक परंपरा खड़ी की जिससे महावीर का कोई भी संबंध नहीं है। ऐसे लोग जरूर उत्सुक हुए महावीर के पीछे जिनको लगा कि ठीक है, मरने की इतनी सुगमता और कहां मिलेगी। और मरने का इतना सहयोग और कहां मिलेगा। और मरने की इतनी सुविधा और कहां मिलेगी। इसलिए महा वीर के पीछे ऐसे लोग जरूर आये जिनका चित्त रुग्ण था, जो मरना चाहते थे। जीवन की आकांक्षा के त्याग से वे महावीर के करीब नहीं आये, मरने की आकांक्षा के कारण वे महावीर के करीब आ गये। लक्षण बिलकुल एक से हैं, लेकिन भीतर व्यक्ति बिलकुल अलग थे। और जो मरने की इच्छा से आये, वे महावीर की परंपरा में बहुत अग्रणी हो गये। स्वभावतः जो मरने को तैयार है उसको नेता होने में कोई असुविधा नहीं होती। और क्या असुविधा हो सकती है। जो मरने को तैयार है वह पंक्ति में आगे कभी भी खड़ा हो सकता है, किसी भी पंक्ति में। और जो अपने को सताने को तैयार है वह लगा कि बड़ा त्यागी है।

अहिंसा ः जीवेषणा की मृत्यु

ध्यान रहे, इससे महावीर के विचार को आज की दुनिया में पहुंचने में बड़ी कठिनाई हो रही है। क्योंकि महावीर का विचार मा लूम होता है, मैसोचिस्ट है, अपने को सतानेवाला है, पीड़क— आत्मपीड़क है। लेकिन महावीर की देह को देखकर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपने को सताया होगा। महावीर की प्रफुल्लता देखकर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपने को सताया होगा। महावीर का खिला हुआ कमल देखकर ऐसा नहीं लगता कि इस आदमी ने अपनी जड़ों के साथ ज्यादती की होगी। मैं मानता हूं कि महावीर रंचमात्र भी आत्मपीड़क नहीं हैं। लेकिन महावीर के पीछे आत्मपीड़कों की परंपरा इकट्ठी हुई, यह जरूर सच है। जो अपने को सता सकते थे या सताने के लिए उत्सुक थे और बहुत लोग उत्सुक हैं, ध्यान रखना आप।

इस जगत में दो तरह की हिंसाएं हैं— दूसरे को सताने के लिए उत्सुक लोग और एक और तरह की हिंसा है, अपने को सताने के लिए उत्सुक लोग। अपने को सताने में भी कुछ लोगों को इतना ही मजा आता है जितना दूसरे को सताने में। बल्कि सच पूछा जाए तो दूसरे को सताने में आपको कभी इतना अधिकार नहीं होता, इतनी सुविधा और स्वतंत्रता नहीं होती जितनी अपने को सताने में होती है। कोई विरोध ही करनेवाला नहीं होता। आप दूसरे को कांटे पर लिटाएं तो वह अदालत में मुकदमा चला सकता है। आप खुद को कांटों पर लिटा लें तो कोई मुकदमा नहीं चल सकता है, ना ! सिर्फ सम्मान मिल सकता है! आप दूसरों को भूखा मारें तो आप झंझट में पड़ सकते हैं; आप अपने को भूखा मारें तो जुलूस निकल सकता है, शोभायात्रा निकल सकती है।

लेकिन ध्यान रखें, सताने का जो रस है वह एक ही है। और महावीर कहते हैं जो अपने को सता रहा है, वह भी दूसरे को ही सता रहा है; क्योंकि वह अपने में दो हिस्से कर लेता है। वह शरीर को सताने लगता है जो कि वस्तुतः दूसरा है। यह शरीर, जो मेरे आसपास है, उतना ही दूसरा है मेरे लिये, जितना आपका शरीर जो जरा दूर है। इसमें भेद नहीं है। यह शरीर मेरे निकट है, इसलिए मैं नहीं हूं। और आपका शरीर जरा दूर है तो तू हो गया! मैं आ पके शरीर को कांटे चुभाऊं तो लोग कहेंगे, यह आदमी दुष्ट है। और मैं अपने शरीर को कांटे चुभाऊं तो लोग कहेंगे, यह आदमी महात्त्यागी है।

लेकिन शरीर दोनों ही स्थिति में दूसरा है। यह मेरा शरीर उतना ही दूसरा है जितना आपका शरीर। सिर्फ फर्क इतना है कि मेरे शरीर को सताते वक्त कोई कानून बाधा नहीं बनेगा, कोई नैतिकता बाधा नहीं बनेगी। इसलिए जो होशियार हैं, कुशल हैं वे सताने का मजा अपने ही शरीर को सताकर लेते हैं। लेकिन सताने का मजा एक ही है। क्या है मजा? जिसको हम सता पाते हैं, लगता है उसके हम मालिक हो गये हैं, उसके हम स्वामी हो गये हैं। जिसको हम सता पाते हैं— जिसकी हम गर्दन दबा पाते हैं, लगता है हम उसके स्वामी हो गये हैं। महावीर के पीछे मैसोचिस्ट इकट्ठे हो गये। उन्हीं ने महावीर की पूरी परंपरा को विषाक्त किया, जहर डाल दिया।

कारण तो था, क्योंकि महावीर का कारण कुछ और था, लेकिन इन्हें वह कारण अपील किया, जंचा। कारण यह था कि महावीर कहते थे कि जब तक मैं जीवन के लिए पागल हूं तब तक मैं देख न पाऊंगा अंधेपन में कि मैं दूसरे के जीवन को नष्ट करने के लिए भी आतुर हो गया हूं। और जीवन के लिए पागल होना व्यर्थ है क्योंकि असंभव है। जीवन को बचाया नहीं जा सकता। जन्म के साथ ही मृत्यु प्रवेश कर जाती है। इसलिए जो इम्पासिबल है, उसके पीछे सिर्फ पागलपन है— जो असंभव है उसके पीछे सिर्फ पागलपन खड़ा होता है। मृत्यु होगी ही। वह उसी दिन तय हो गयी, जिस दिन जीवन हुआ। इसलिए महावीर कहते हैं, जीवन के लिए इतनी आकांक्षा ही हिंसा बन जाती है। इसे समझना है। इसे समझते ही जीवेषणा शून्य होने लगती है और जब जीवेषणा शून्य होने लगती है तो मृत्यु की इच्छा पैदा नहीं होती, मृत्यु का स्वीका र पैदा होता है। इनमें भेद है।

मृत्यु की इच्छा तो पैदा होती है जीवेषणा को चोट लगे तब, और मृत्यु का स्वीकार पैदा होता है जब जीवेषणा क्षीण हो तब, शांत हो

तब। महावीर मृत्यु को स्वीकार करते हैं। मृत्यु को स्वीकार करना अहिंसा है। मृत्यु को अस्वीकार करना हिंसा है। और जब मैं अपनी मृत्यु को अस्वीकार करता हूं तो मैं दूसरे की मृत्यु को स्वीका र करता हूं। और जब मैं अपनी मृत्यु को स्वीकार करता हूं तो मैं सबके जीवन को स्वीकार करता हूं। यह एक सीधा गणित है। जब मैं अपने जीवन को स्वीकार करता हूं तो मैं दूसरे के जीवन को इनकार करने के लिए तैयार हूं। और जब मैं अपनी मृत्यु को परिपूर्ण भा व से स्वीकार करता हूं कि ठीक है, वह नियति है, तब मैं किसी के जीवन को चोट पहुंचाने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं रह जाता। उसके जीवन को भी चोट पहुंचाने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं रह जाता जो मेरे जीवन को चोट पहुंचाए। क्योंकि मेरे जीवन को चोट पहुंचाकर ज्यादा से ज्यादा वह क्या कर सकता है? मृत्यु! जो कि होने ही वाली है। वह सिर्फ निमित्त बन सकता है। वह कारण नहीं है। महावीर कहते हैं कि अगर तुम्हारी कोई हत्या भी कर जाए तो वह सिर्फ निमित्त है, वह कारण नहीं है। कारण तो मृत्यु है, जो जीवन के भीतर ही छिपी है। इसलिए उस पर नाराज होने की भी कोई जरूरत नहीं है। ज्यादा से ज्यादा धन्यवाद दिया जा सकता है। जो होने ही वाला था, उसमें वह सहयोगी हो गया। वह होने ही वाला था। एक बार हमें यह खयाल में आ जाए कि जो होने ही वाला है, तो हम फिर किसी पर नाराज नहीं हो सकते।

महावीर कहते हैं, मृत्यु का अंगीकार। और बड़े मजे की बात है, मृत्यु का अंगीकार इसलिए नहीं कि मृत्यु कोई महत्वपूर्ण चीज है। मृत्यु का अंगीकार ही इसलिए कि मृत्यु बिलकुल ही गैर- महत्वपूर्ण चीज है। जब जीवन ही गैर-महत्वपूर्ण है तो मृत्यु महत्वपूर्ण कैसे हो सकती है। जब जीवन तक गैर-महत्वपूर्ण है तो मृत्यु का क्या मूल्य हो सकता है। ध्यान रहे, मृत्यु का उतना ही आपके मन में मूल्य होता है जितना जीवन का मूल्य होता है। मृत्यु को जो मूल्य मिलता है वह रिफ्लेक्टेड वैल्यू है। आप जीवन को कितना मूल्य देते हैं उतना मृत्यु को मूल्य देते हैं।

अगर आप कहते हैं— जीना ही है किसी कीमत पर, तो आप कहेंगे— मरना नहीं है किसी कीमत पर। यह साथ चलेगा। आप कहते हैं— चाहे कुछ भी हो जाए, मैं जीऊंगा ही तो फिर आप यह भी कह सकते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाए, मैं मरूंगा नहीं। आप जितना जीवन को मूल्य देते हैं उतना ही मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है। और ध्यान रहे, जितना मूल्य मृत्यु में स्थापित हो जाता है, उतना ही आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। महावीर कहते हैं— जीवन में कोई मूल्य ही नहीं है तो मृत्यु का भी मूल्य समाप्त हो जाता है। और जिसके चित्त में न जीवन का मूल्य है, और न मृत्यु का, क्या वह आपको मारने आएगा? क्या वह आपको सताने में रस लेगा? क्या वह आपको समाप्त करने में उत्सुक होगा? हम कितना मूल्य किसी चीज को देते हैं, उस पर ही निर्भर करता है सब।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक अंधेरी रात में एक गांव के पा स से गुजरता है। चार चोरों ने उस पर हमला कर दिया। वह जी तोड़कर लड़ा, वह इस बुरी तरह लड़ा कि अगर वे चार न होते तो एकाध की हत्या हो जाती। वे चार थोड़ी ही देर में अपने को बचाने में लग गये, आक्रमण तो भूल गये। फिर भी चार थे। बामुश्किल घंटों की लड़ाई के बाद किसी तरह मुल्ला पर कब्जा कर पाये। और जब उसकी जेब टटोली तो केवल एक पैसा मिला। वे बहुत हैरान हुए कि मुल्ला अगर एकाध आना तुम्हारे खीसे में रहता तो हम चारों की जान की कोई खैरियत न थी। एक पैसे के लिए तुम इतना लड़े! हद कर दी। हमने तुम जैसा आदमी नहीं देखा। चमत्कार हो तुम!

मुल्ला ने कहा कि उसका कारण है। पैसे का सवाल नहीं है। आइ डोंट वांट टु एक्सपो माइ पर्सनल फाइनैंशियल पोजिशन टु क्वाइट स्ट्रेंजर्स। मैं बिलकुल अजनबियों के सामने अपनी माली हालत प्रगट नहीं करना चाहता हूं, और कोई कारण नहीं है। जान लगा देता। यह सवाल माली हालत के प्रगट करने का है, और तुम अजनबी। सवाल पैसे का

नहीं है; सवाल पैसे के मूल्य का है। एक पैसा है कि करोड़, यह सवाल नहीं है। अगर पैसे का मूल्य है तो एक में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। और

अहिंसा ः जीवेषणा की मृत्यु

अगर करोड़ में मूल्य है तो एक में भी मूल्य होगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला एक अजनबी देश में गया, एक अपरिचित देश में गया। एक लिच्फट में सवार होकर जा रहा है। एक अकेली सुंदर औरत उसके साथ है। उसने उस स्त्री से कहा कि क्या खयाल है? सौ रुपये में सौदा पट सकता है?!

उस स्त्री ने चौंककर देखा। उसने कहा कि ठीक है।

मुल्ला ने कहा— पांच रुपये का क्या खयाल है?

उस स्त्री ने कहा— तुम समझते क्या होतुम मुझे समझते क्या हो?

मुल्ला ने कहा— दैट वी हैव डिसाइडेड। नाउ दि क्वेश्चन इज आफ दि वैल्यू—प्राइज। यह तो हमने तय कर लिया है कि कौन हो तुम, यह तो मैंने सौ रुपये पूछकर तय कर लिया, अब हम कीमत तय कर रहे हैं। अगर सौ रुपये में स्त्री बिक सकती है तो अब यह सवाल ही नहीं है कि पांच रुपये में क्यों नहीं बिक सकती? वह तय हो गया कि तुम कौन हो। उसके बाबत कोई चर्चा करने की जरूरत नहीं है। अब हम तय कर लें, अब मैं अपनी जेब पर खयाल कर रहा हूं, मुल्ला ने कहा, कि अपने पास पैसे कितने हैं?

यह हमारी हमारी जिंदगी में जो भी मूल्य है, वह करोड़ का है या एक पैसे का, यह सवाल नहीं है। धन का मूल्य है तो फिर एक पैसे में भी मूल्य है और करोड़ में भी मूल्य है। मूल्य ही नहीं है, तो फिर पैसे में भी नहीं है और करोड़ में भी नहीं है। और अगर एक पैसे में जितना मूल्य है, फिर उसके खोने में उतनी ही पीड़ा है। वह पीड़ा भी उतनी ही मूल्यवान है। अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो मृत्यु में क्या रह जाता है! और अगर जीवन ही निर्मूल्य है तो जीवन से संबंधित जो सारा विस्तार है, उसमें क्या मूल्य रह जाता है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए धन का कोई मूल्य होगा ? क्योंकि धन का सारा मूल्य ही जीवन की सुरक्षा के लिए है! जिसके लिए जीवन ही निर्मूल्य है, उसके लिए महल का कोई मूल्य होगा? क्योंकि महल का सारा मूल्य ही जीवन की सुरक्षा के लिए है। जिसके लिए जीवन का कोई मूल्य नहीं, उसके लिए पद का कोई मूल्य होगा? क्योंकि पद का सारा मूल्य ही जीवन के लिए है।

जीवन का मूल्य शून्य हुआ कि सारे विस्तार का मूल्य शून्य हो जाता है। सारी माया गिर जाती है। और जब जीवन का ही मूल्य न रहा तो मृत्यु का क्या मूल्य होगा! क्योंकि मृत्यु में उतना ही मूल्य था, जितना जीवन में हम डालते थे। जितना लगता था कि जीवन को बचाऊं, उतना ही मृत्यु से बचने का सवाल उठता था। जब जीवन को बचाने की कोई बात न रही तो मृत्यु हो या न हो, बराबर हो गया। जिस दिन मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं रह जाता उस दिन मेरी मृत्यु शून्य हो जाती है। और महावीर कहते हैं कि उसी दिन अमृत के द्वार खुलते हैं— महाजीवन के, परम जीवन के, जिसका कोई अंत नहीं है।

इसलिए महावीर कहते हैं— अहिंसा धर्म का प्राण है। उसी से अमृत का द्वार खुलता है। उसी से, हम उसे जान पाते हैं जिसका कोई अंत नहीं, जिसका कोई प्रारंभ नहीं, जिस पर कभी कोई बीमारी नहीं आती और जिस पर कभी दुख और पीड़ा नहीं उतरती।

जहां कोई संताप नहीं, जहां कोई मृत्यु कभी घटित नहीं होती, जहां अंधकार की किरण को उतरने की कोई सुविधा नहीं, जहां प्रकाश ही प्रकाश है। तो महावीर को मृत्युवादी नहीं कहा जा सकता और उनसे बड़ा अमृत का तलाशी नहीं है कोई। लेकिन अमृत की तलाश में उन्होंने पाया है कि जीवेषणा सबसे बड़ी बाधा है।

क्यों पाया है? जीवेषणा इसलिए बाधा है कि जीवेषणा के चक्कर में आ प वास्तविक जीवन की खोज से वंचित रह जाते हैं। जीने की इच्छा और जीने की कोशिश में आप पता ही नहीं लगा पाते कि जीवन क्या है।

मुल्ला भागा जा रहा है एक गांव में। उसे व्याख्यान देना है। एक आदमी उससे रास्ते में पूछता है कि मुल्ला, उस मस्जिद में

81

□

महावीर-वाणी भाग : 1

धर्म के संबंध में बोलने जा रहे हो, ईश्वर के संबंध में? ईश्वर के संबंध में तुम्हारा क्या विचार है?

मुल्ला कहता है— अभी विचार करने की फुरसत नहीं, अभी मैं व्याख्यान देने जा रहा हूं। आइ हेव नो टाइम टु थिंक नाउ। अभी मैं व्याख्यान देने जा रहा हूं। अभी बकवास में मत डालो मुझे।

बोलने की फिक्र में अकसर आदमी सोचना भूल जाते हैं। दौड़ने के इंतजा म में अकसर आदमी मंजिल भूल जाते हैं। कमाने की चिंता में अकसर आदमी भूल जाते हैं, किसलिए? जीने की कोशिश में खया ल ही नहीं आता कि क्यों? सोचते हैं कि पहले कोशिश तो कर लें, फिर क्यों की तलाश कर लेंगे। किसलिए बचा रहे हैं, यह खयाल ही मिट जाता है। जो बचा रहे हैं उसमें ही इतने संलग्न हो जाते हैं कि वही 'एंड अनटु इटसेल्फ', अपना अपने में ही अंत बन जा ता है।

एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है। पहले वह शायद सोचता भी रहा होगा कि किसलिए? फिर धन इकट्ठा करना ही लच्य हो जाता है। फिर उसे याद ही नहीं रहता कि किसलिए। फिर वह मर जा ता है इकट्ठा करते-करते। वह नहीं बता सकता कि किसलिए इकट्ठा कर रहा था। वह इतना ही कह सकता था कि अब इकट्ठा करने में मजा आने लगा था। अब जीने में ही मजा आने लगा था। अब किसलिए जीना था— क्यों जीना था— जीवन क्या था? यह सब चूक जाता है।

महावीर कहते हैं— जीवेषणा जीवन की वास्तविक तलाश से वंचित कर देती है। और जीवेषणा सिर्फ मरने से बचने का इंतजाम बन जाती है— अमृत को जानने का नहीं, मरने से बचने का। हम सब डिफेंस की हालत में लगे हैं, चौबीस घंटे। मर न जाएं, बस इतनी ही कोशिश है। सब कुछ करने को तैयार हैं कि मर न जाएं। लेकिन जीकर क्या करेंगे? तो हम कहते हैं— पहले मरने का बचाव हो जाए, फिर सोच लेंगे। मृत्यु से बचने की कोशिश अमृत से बचाव हो जाती है। जीवन बचाने की कोशिश, जीवन के वास्तविक रूप को, परम रूप को जानने में रुकावट हो जाती है। महावीर मृत्युवादी नहीं हैं। महावीर इस जीवेषणा की दौड़ से रोकते ही इसीलिए हैं ताकि हम उस परम जीवन को जान सकें जिसे बचाने की कोई जरूरत ही नहीं है, जो बचा ही हुआ है। जिसे कोई मिटा नहीं सकता, क्योंकि उसके मिटने का कोई उपाय ही नहीं है। उस जीवन को जानकर व्यक्ति अभय हो जाता है। और जो अभय हो जाता है, वह दूसरे को भयभीत नहीं करता।

हिंसा दूसरे को भयभीत करती है। आप अपने को बचाते हैं, दूसरे में भय पैदा करके। आप दूसरे को दूर रखते हैं फासले पर। आपके और दूसरे के बीच में अनेक तरह की तलवारें आप अटका रखते हैं। और जरा-सा ही किसी ने आपकी सीमा का अतिक्रमण किया कि आपकी तलवार उसकी छाती में घुस जाती है। अतिक्रमण न भी किया हो, आप अगर शंकित हो गये और सोचा कि अतिक्रमण किया है, तो भी तलवार घुस जाती है। व्यक्ति भी ऐसे ही जीते हैं, समाज भी ऐसे ही जीते हैं।राच्षटर भी ऐसे ही जीते हैं। इसलिए सारा जगत हिंसा में जीता है, भय में जीता है। महावीर कहते हैं— सिर्फ अहिंसक

ही अभय को उपलब्ध हो सकता है। और जिसने अभय नहीं जाना है वह अमृत को कैसे जानेगा? भय को जाननेवा ला मृत्यु को ही जानता रहता है।

तो महावीर की अहिंसा का आधार है, जीवेषणा से मुक्ति। और जीवेषणा से मुक्ति मृत्यु की एषणा से भी मुक्ति हो जाती है। और इसके साथ ही जो घटित होता है चारों तरफ, हमने उसी को मूल्यवान समझ रखा है। महावीर एक चींटी पर पैर नहीं रखते हैं, इसलिए नहीं कि महावीर बहुत उत्सुक हैं चींटी को बचाने को। महावीर इसलिए चींटी पर पैर नहीं रखते— सांप पर भी पैर नहीं रखते, बिच्छू पर भी पैर नहीं रखते— क्योंकि महावीर अब अपने को बचाने को बहुत उत्सुक नहीं हैं। उत्सुक ही नहीं हैं। अब उनका किसी से कोई संघर्ष न रहा, क्योंकि सारा संघर्ष इसी बात में था कि मैं अपने को बचाऊं। अब वे तैयार हैं— जीवन तो जीवन, मृत्यु तो मृत्यु, उजाला तो उजाला, अंधेरा तो अंधेरा।अब वे तैयार हैं। अब कुछ भी आये वे तैयार हैं। उनकी स्वीकृति परम है।

82

अहिंसा ः जीवेषणा की मृत्यु

इसलिए मैंने कहा कि बुद्ध ने जिसे तथाता कहा है, महा वीर उसे ही अहिंसा कहते हैं। लाओत्से ने जिसे टोटल ऐक्सैप्टिबि लिटी कहा है कि मैं सब करता हूं स्वीकार, उसे ही महावीर ने अहिंसा कहा है। जिसे सब स्वीकार है, वह हिंसक कैसे हो सकेगा। हिंसक न होने का कोई निषेध कारण नहीं है, विधायक कारण है, क्योंकि सब स्वीकार है। इसलिए निषेध का कोई कारण नहीं है। किसी को मिटाने के लिए तैयारी करने का कोई कारण नहीं है। हां, अगर कोई ि मटाने आता हो तो महावीर उसके लिए तैयार हैं। इस तैयारी में भी ध्यान रखें कि कोई प्रयत्न नहीं है महावीर का, कि वे संभलकर तैयार हो जाएंगे कि ठीक है मारो। इतना प्रयत्न भी भीतर जीवन का ही प्रश्न है। महावीर इतना संभलकर भी तैयार नहीं होंगे, वे खड़े ही रहेंगे जैसे वे थे ही नहीं, अनुपस्थित थे।

इसके एक हिस्से पर और खयाल कर लेना जरूरी है। जितने जोर से हम अपने को बचाना चाहते हैं, हमारा वस्तुओं का बचाव उतना ही प्रगाढ़ हो जाता है। जीवेषणा 'मेरे' का फैलाव बनती है। यह मेरा है, यह पिता मेरे हैं, यह मां मेरी है, यह भाई मेरा है, यह पत्नी मेरी है, यह मकान मेरा है, यह धन मेरा है— हम 'मेरे' का एक जाल खड़ा करते हैं अपने चारों तरफ। वह इसलिए खड़ा करते हैं कि उस पहरे के भीतर ही हमारा 'मैं' बच सकता है। अगर मेरा कोई भी नहीं तो मैं निपट अकेला बहुत भयभीत हो जाऊंगा। कोई मेरा है तो सहारा है, सेच्फटी है, सुरक्षा है। इसलिए जितनी ज्यादा चीजें आप इकट्ठी कर लेते हैं, उतने आप अकड़कर चलने लगते हैं। लगता है जैसे अब आपका कोई कुछ बिगाड़ न सकेगा।एक चीज भी आ पके हाथ से छूटती है, तो किसी गहरे अथोच में आपको मृत्यु का अनुभव होता है। अगर आपकी कार टूट जाती है तो सिर्फ कार नहीं टूटती, आपके भीतर भी कुछ टूटता है। आपकी पत्नी मरती है तो पत्नी नहीं मरती, पति के भीतर भी कुछ गहन मर जाता है। खाली हो जाती है जगह। असली पीड़ा पत्नी के मरने से नहीं होती है। असली पीड़ा 'मेरे' के फैलाव के कम हो जाने से होती है। एक जगह और टूट गयी। एक एक मोर्चा असुरक्षित हो गया, एक जगह पहरा कम हो गया, वहां से खतरा अब आ सकता है।

एक मित्र हैं मेरे। पत्नी मर गयी है उनकी। तो पत्नी की तस्वीरें सा रे मकान में, द्वार-दरवाजे पर सब जगह लगा रखी हैं। किसी से मिलते-जुलते नहीं, तस्वीरें ही देखते रहते हैं। उनके किसी मित्र ने मुझसे कहा, ऐसा प्रेम पहले नहीं देखा। अदभुत प्रेम है। मैंने कहा, प्रेम नहीं है। वह आदमी अब डरा हुआ है। अब कोई भी दूसरी स्त्री उसके जीवन में प्रवेश कर सकती है। और ये तस्वीरें लगाकर अब वह पहरा लगा रहा है।

उन्होंने कहा— आप कैसी बात करते हैं?

मैंने कहा— मैं चलूंगा, मैं उन्हें जानता हूं।
और जब मैंने उन मित्र को कहा— सच बोलो, सोचकर बोलो, ठीक से विचार करके बोलो। अब तुम दूसरी स्त्रियों से भयभीत तो नहीं हो?
उन्होंने कहा— आपको यह कैसे पता चला? यही डर है मेरे मन में कि कहीं मैं अपनी पत्नी के प्रति विश्वासघाती सिद्ध न हो जाऊं। इसलिए उसकी याद को चारों तरफ इकट्ठी करके बैठा हुआ हूं। किसी स्त्री से मिलने में भी डरता हूं।
आदमी का मन बहुत जटिल है। और अब यह हवा भी चारों तरफ फैल गयी है कि पत्नी के प्रति इतना प्रेम है कि जो दो साल पहले पत्नी मर गयी, उसको वह जिलाये हुए हैं अपने मकान में। यह हवा भी उनकी सुरक्षा का कारण बनेगी। यह हवा भी उन्हें रोकेगी। यह प्रतिष्ठा भी रोकेगी।
पर मैंने उन मित्र के मित्र को कहा था कि ज्यादा देर नहीं चलेगी यह सुरक्षा। जब असली पत्नी नहीं बचती, तो ये तस्वीरें कितनी देर बचेंगी?

83

महावीर-वाणी भाग : 1

अभी मुझे निमंत्रण पत्र आया है कि उनका विवाह हो रहा है। यह ज्यादा दिन नहीं बच सकता। इतना भयभीत आदमी ज्यादा दिन नहीं बच सकता। इतना असुरक्षित आदमी ज्यादा दिन नहीं बच सकता।
वस्तुओं पर, व्यक्तियों पर जो हम 'मेरे' का फैलाव करते हैं, महा वीर उसको भी हिंसा कहते हैं। महावीर परिग्रह को हिंसा कहते हैं। महावीर का वस्तुओं से कोई विरोध नहीं है, और न महावीर को इससे कोई प्रयोजन है कि आपके पास कोई वस्तु है या नहीं। महावीर का इससे जरूर प्रयोजन है कि आपका उससे कितना मोह है। कितना उसको आप पकड़े हुए हैं, कितना आपने उस वस्तु को अपनी आत्मा बना लिया है।
यह मुल्ला नसरुद्दीन बड़ा प्यारा आदमी है। इसके जीवन में बहुत अदभुत घटनाएं हैं। एक होटल में ठहरा हुआ है। छोड़ रहा है होटल, नीचे टैक्सी में सब सामान रख आया है, तब उसे खयाल आया कि छाता कमरे में भूल आया है। सीढ़ियां चढ़कर वापस आया, चार मंजिल होटल। वापस पहुंचा तो देखा कि कमरा तो किसी नवविवा हित जोड़े को दे दिया जा चुका है। दरवाजा बंद है, अंदर कुछ बात चलती है। छाता बिना लिये जा नहीं सकता और अभी यह जो बात चलती है, उसको भी बिना सुने नहीं जा सकता। की-होल पर, चाबी के छेद पर कान लगाकर सुना। युवक अपनी पत्नी से कह रहा है, तेरे ये सुंदर बाल, ये आकाश में घिरी हुई घटाओं की तरह बाल, ये किसके हैं, देवी, ये बाल किसके हैं?
देवी ने कहा, तुम्हारे। और किसके?
'ये तेरी आंखें, मछलियों की तरह चंचल', उस पुरुष ने पूछा, 'ये किसकी हैं? देवी, ये आंखें किसकी हैं?'
उस स्त्री ने कहा, तुम्हारी, और किसकी?
मुल्ला कुछ बेचैन हुआ। उसने कहा, ठहरो भाई! देवी, मुझे पता नहीं भीतर कौन है, लेकिन जब छाते का नंबर आये तो खयाल रखना, मेरा है।
उसकी बेचैनी स्वाभाविक है। आएगा ही छाते का नंबर।
सारी जिंदगी उठते-बैठते, क्या मेरा है इसकी फिक्र है— कहीं कोई और तो उस 'मेरे' पर कब्जा नहीं कर रहा है? कहीं कोई और तो उस 'मेरे' का मालिक नहीं बन रहा है? सवाल यह बड़ा नहीं है कि यह वस्तु किसकी हो जाएगी। वस्तु किसी की नहीं होती है। महावीर कहते हैं कि वस्तु किसी की नहीं होती है। उसे कभी पता नहीं चलता कि वह किसकी है। तुम लड़ते हो, मरते हो, समाप्त हो जाते हो, वस्तुएं अपनी जगह पड़ी रह जाती हैं। वही जमीन का टुकड़ा , जिसको आप

अपना कह रहे हैं, कितने लोग उसे अपना कह चुके हैं। कभी हिसाब किया है, कितने लोग उसके दावेदार हो चुके हैं और जमीन के टुकड़े को जरा भी पता नहीं। दावेदार आते हैं और चले जाते हैं और जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। दावे सब काल्पनिक हैं, इमेजिनरी हैं।

आप ही दावा करते हैं, आप ही दूसरे दावेदारों से लड़ लेते हैं, मुकदमे हो जाते हैं, सिर खुल जाते हैं, हत्याएं हो जाती हैं। वह जमीन का टुकड़ा अपनी जगह पड़ा रहता है। जमीन के टुकड़े को पता भी नहीं है। या अगर पता होगा तो पता दूसरे ढंग से होगा। जमीन का टुकड़ा कहता होगा, यह आदमी मेरा है। जो आदमी कह रहा है, यह जमीन मेरी है, अगर जमीन को कोई पता होगा तो जमीन का टुकड़ा कहता होगा, यह आदमी मेरा है। कौन जाने, जमीनों में मुकदमे चलते हों। आपस में संघर्ष हो जाता हो कि यह आदमी मेरा है, तुमने कैसे कहा कि मेरा है। अगर कोई जमीन को पता होता होगा तो उसको अपनी मालकियत का पता होता होगा। ध्यान रहे, हम सबको अपनी मालकियत का पता है। और मालकियत के लिए हम इतने उत्सुक हैं कि अगर जिंदा आदमी के हम मालिक न हो सके तो हम उसे मारकर भी मालिक होना चाहते हैं।

84

अहिंसा ः जीवेषणा की मृत्यु

और हमारे जीवन की अधिक हिंसा इसीलिए है। जब एक पति एक स्त्री का मालिक होता है, उसे पत्नी बना लेता है तो उसमें स्त्री तो करीब-करीब नब्बे प्रतिशत मर ही जाती है। बिना मारे मालिक होना मुश्किल है। क्योंकि दूसरा भी मालिक होना चाहता है। अगर वह जिंदा रहेगा तो वह मालिक होने की कोशिश करेगा।

इसलिए अब ध्यान रखें, भविष्य में स्त्री पर, पुरुषों पर मालकियत की संभावना कम होती जाती है। अगर स्त्रियों को समानता का हक दिया तो पत्नी बच नहीं सकती। पत्नी तभी तक बच सकती थी जब तक स्त्री को कोई हक नहीं था। उसको बिलकुल ही मार डालते तो ही पत्नी बच सकती थी। वह बिलकुल नकार हो जाती तो ही पति हो सकता है। अब जब उसे बराबर करेंगे तो पति होने का उपाय नहीं। अब मित्र होने से ज्यादा की संभावना नहीं रह जाएगी। क्योंकि दोनों अगर समान हैं तो मालकियत कैसे टिक सकती है? लेकिन समानता भी टिकानी बहुत मुश्किल है। डर तो यह है कि स्त्री ज्यादा दिन समान नहीं रहेगी। थोड़े दिन में पुरुष को आंदोलन चलाना पड़ेगा कि हम स्त्रियों के समान हैं। यह ज्यादा दिन नहीं चलेगा। क्योंकि स्त्री बहुत दिन असमान रह ली। यह तो पहला कदम है समान होने का। अब इसके ऊपर जाने का दूसरा कदम, वह उठना शुरू हो गया है। बहुत जल्दी जगह-जगह पुरुष जुलूस निकाल रहे होंगे, घेराव कर रहे होंगे कि पुरुष स्त्रियों के समान हैं, कौन कहता है कि हम उनसे नीचे हैं।

समानता ज्यादा देर टिक नहीं सकती। क्योंकि जहां मालकियत और जहां हिंसा गहन है वहां किसी न किसी को असमान होना ही पड़ेगा, किसी न किसी को नीचे होना ही पड़ेगा। मजदूर लड़ेगा, पूंजीपति को नीचे कर देगा। कल पाएगा कि कोई और ऊपर बैठ गया है।इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। महावीर कहते हैं, जब तक जगत में मालकियत की आकांक्षा है— यानी जीवेषणा जब इतनी पागल है कि वह बिना मालिक हुए राजी नहीं होती— तब तक दुनिया में कोई समानता संभव नहीं है।

इसलिए महावीर समानता में उत्सुक नहीं हैं, अहिंसा में उत्सुक हैं। वे कहते हैं— अगर अहिंसा फैल जाए तो ही समानता संभव है। मालकियत का रस ही टूट जाए, तो ही दुनिया से मालकियत मिटेगी, अन्यथा मालकियत नहीं मिट सकती है। सिर्फ मालिक बदल सकते हैं। मालिक बदलने से कोई फर्क नहीं पड़ता। बीमारी अपनी जगह बनी रहती है। उपद्रव अपनी जगह बने रहते हैं। हिंसा का जो वास्तविक हमारे जीवन में क्रियमान रूप है, वह मालकियत है।

महावीर ने जब महल छोड़ा तो हमें लगता है— महल छोड़ा, धन छोड़ा, परिवार छोड़ा। महावीर ने सिर्फ हिंसा छोड़ी। अगर गहरे में जाएं तो महावीर ने सिर्फ हिंसा छोड़ी। यह सब हिंसा का फैलाव था। ये पहरेदार जो दरवाजे पर खड़े थे, वे पत्थर की मजबूत दीवारें जो महल को घेरे थीं, यह धन और ये तिजोरियां— ये सब आयोजन थे हिंसा के। यह मेरे और तेरे का भेद, यह सब आयोजन था हिंसा का। महावीर जिस दिन खुले आकाश के नीचे आकर नग्न खड़े हो गये, उस दिन कहा कि अब मैं हिंसा को छोड़ता हूं, इसलिए सब सुरक्षा छोड़ता हूं। इसलिए सब आक्रमण के उपाय छोड़ता हूं। अब मैं निहत्था, निशस्त्र, शून्यवत भटकूंगा इस खुले आकाश के नीचे। अब मेरी कोई सुरक्षा नहीं, अब मेरा कोई आक्रमण नहीं, अब मेरी कोई मालकियत कैसे हो सकती है। अहिंसक की कोई मालकियत नहीं हो सकती। अगर कोई अपनी लंगोटी पर भी मालकियत बताता है कि यह मेरी है— इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि महल मेरा है कि लंगोटी मेरी है। वह मालकियत हिंसा है। इस लंगोटी पर भी गर्दनें कट सकती हैं। और यह मालकियत बहुत सूक्ष्म होती चली जाती है—धन छोड़ देता है एक आदमी, लेकिन कहता है, धर्म, यह मेरा है।

मेरे एक मित्र अभी एक जैन साधु के पास गये होंगे— अभी एक-दो दिन पहले। मैं महावीर के संबंध में क्या कह रहा हूं, मित्र ने उन्हें बताया होगा। उन साधु ने कहा कि कोई और महावीर होंगे, वे उनके होंगे, वे हमारे महावीर नहीं हैं। वे जिस महावीर के संबंध में बोल रहे हैं वे हमारे महावीर नहीं हैं।

मालकियत बड़ी सूक्ष्म है। महावीर तक पर भी मालकियत है। हिंसा हम वहां तक नहीं छोड़ेंगे— यह धर्म मेरा है, यह शास्त्र मेरा है, यह सिद्धांत मेरा है— रस आता है, रस किसको आता है भीतर? जहां-जहां 'मेरा' है वहां-वहां हिंसा है। जो 'मेरे' को सब भांति छोड़ देता है— धन पर ही नहीं, धर्म पर भी, महावीर और कृष्ण और बुद्ध पर भी— जो कहता है कि मेरा कुछ भी नहीं है। और ध्यान रहे, जिस दिन कोई कह पाता है, मेरा कुछ भी नहीं, उसी दिन 'मैं कौन हूं', इसे जान पाता है। इसके पहले नहीं जान पाता। इसके पहले 'मेरे' के फैलाव में उलझा रहता है, परिधि पर। इसलिए 'मैं' के केच्न्दर पर कोई पता नहीं चलता है।

इसे ऐसा समझ लें, अहिंसा सूत्र है आत्मा को जानने का। क्योंकि 'मेरे' का जब सारा भाव गिर जाता है तो फिर मैं ही बचता हूं फिर, कोई और तो बचता नहीं। निपट मैं, अकेला मैं।और तभी जान पा ता हूं, क्या हूं, कौन हूं, कहां से हूं, कहां के लिए हूं। तब सारे द्वार रहस्य के खुल जाते हैं।

महावीर ने अकारण ही अहिंसा को परम धर्म नहीं कह दिया है। परम धर्म कहा है इसलिए कि उस कुंजी से सारे द्वार खुल सकते हैं, जीवन के रहस्य के।एक और तीसरी दृष्टि से अहिंसा को समझ लें तो अहिंसा का खयाल हमारा स्पष्ट और पूरा हो जाए।

महावीर ने कहा है कि सब हिंसा आग्रह है। यह अति सूक्ष्म बात है। आच्गरह हिंसा है, अनाग्रह अहिंसा है। और इसी कारण महावीर ने जिस विचार-सरणी को जन्म दिया है, उसका नाम है 'अनेकांत'। वह अहिंसा के विचार का जगत में फैलाव है। अनेकांत की दृष्टि जगत में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दे सका। क्योंकि अहिंसा की दृष्टि को कोई दूसरा व्यक्ति इतनी गहनता में समझ ही नहीं सका। समझा ही नहीं सका। अनेकांत महावीर से पैदा हुआ उसका कारण है कि महावीर की अहिंसा की दृष्टि को जब उन्होंने विचार के जगत पर लगाया, वस्तुओं के जगत पर लगाया तो परिग्रह फलित हुआ। जीवन के जगत पर लगाया तो मृत्यु का वरण फलित हुआ। और जब विचार के जगत पर लगाया— जो कि हमारा बहुत सूच्म संग्रह है, विचार का जगत। धन बहुत स्थूल संग्रह है, चोर उसे ले जा सकते हैं। विचार बहुत सूच्म संग्रह है, चोर

उसे नहीं चुरा सकते। फिलहाल अभी तक तो नहीं चुरा सकते। यह सदी पूरे होते-होते चोर आपके विचार चुरा सकेंगे। क्योंकि आपके मस्तिष्क को आपके बिना जाने पढ़ा जा सकेगा। और क्योंकि आपके मस्तिष्क से कुछ हिस्से भी निकाले जा सकते हैं, जिनका आपको पता ही नहीं चलेगा। और आपके मस्तिष्क के भीतर भी इलेच्क्टरोड रखे जा सकते हैं, और आपसे ऐसे विचार करवाये जा सकते हैं जो आप नहीं कर रहे, लेकिन आपको लगेगा कि मैं कर रहा हूं।
अभी अमरीका में ड्ठ ग्रीन और दूसरे लोगों ने जानवरों की खोपड़ी में इलेच्क्टरोड रखकर जो प्रयोग किये हैं वे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। एक घोड़े की या एक सांड की खोपड़ी में इलेच्क्टरोड रख दिया है। वह इलेच्क्टरोड रखने के बाद वायरलेस से उसकी खोपड़ी के भीतर के स्नायुओं को संचालित किया जा सकता है, जैसा चाहें। और डा. ग्रीन के ऊपर हमला करता है वह सांड। वे लाल छतरी लेकर उसके सामने खड़े हैं और हाथ में उनके ट्रांजिस्टर है छोटा-सा, जिससे उसकी खोपड़ी को संचालित करेंगे। वह दौड़ता है पागल की तरह। लगता है कि हत्या कर डालेगा। सैकड़ों लोग घेरा लगाकर खड़े हैं। वह बिलकुल आ जाता है— वह सामने आ जाता है। और वह बटन दबाता है अपने ट्रांजिस्टर की। वह ठंडा हो जाता है, वह वापस लौट जाता है।
यह आदमी के साथ भी हो सकेगा। इसमें कोई बाधा नहीं रह गयी है। वैज्ञानिक काम पूरा हो गया है। कुछ कहा नहीं जा सकता कि तानाशाही सरकारें हर बच्चे की खोपड़ी में बचपन से ही रख दें। फिर कभी उपद्रव नहीं। एक बटन दबायी जाए, पूरा मुल्क एकदम जय-जयकार करने लगे। मिलिट्री के दिमाग में तो यह रखा ही जाएगा। तब बटन दबा दी और लाखों लोग मर जाएंगे बिना भयभीत हुए, कूद जाएंगे आग में बिना चिंता किये। और उनको लगेगा कि वे ही कर रहे हैं। हालांकि यह पहले से भी किया जा रहा है, लेकिन करने के ढंग पुराने थे, मुश्किल के थे।

86

अहिंसा : जीवेषणा की मृत्यु

एक आदमी को समझाना पड़ता है कि अगर तू देश के लिए मरेगा तो स्वर्ग जाएगा। इसको बहुत समझाना पड़ता है, तब उसकी खोपड़ी में घुसता है। हालांकि यह भी घुसाना ही है। इसमें कोई मतलब नहीं है। इसको भी बचपन से गाथाएं सुना-सुनाकर राष्टरभक्ति की और जमानेभर के पागलपन की, इसके दिमाग को तैयार किया जाता है। फिर एक दिन वर्दी पहनाकर इससे कवायद करवायी जाती है दो-चार साल तक। इसकी खोपड़ी में डालने का यह उपाय भी इलेच्क्टरोड ही है, लेकिन यह पुराना है, बैलगाड़ी के ढंग से चलता है। फिर एक दिन यह आदमी जाता है और मर जाता है युद्ध के मैदान में छाती खोलकर और सोचता है कि यह 'मैं' मर रहा हूं, और सोचता है कि यह बलिदान 'मैं' दे रहा हूं, और सोचता है, ये विचार 'मेरे' हैं। यह देश मेरा और यह झंडा मेरा है। और ये सब बातें इसके दिमाग में किन्हीं और ने रखी हैं। जिन्होंने रखी हैं वे राजधानियों में बैठे हुए हैं। वे कभी किसी युद्ध पर नहीं जाते। ठीक है, इतनी परेशानी करने की क्या जरूरत है, जब इलेच्क्टरोड रखने से आसानी से काम हो जाएगा। अड़चन कम होगी, भूल-चूक कम होगी। बहुत जल्दी विचार की संपदा पर भी चोर पहुंच जाएंगे। खतरे वहां हो जाएंगे, लेकिन अब तक कम से कम विचार की संपदा बहुत सूच्म रही है।
महावीर कहते हैं कि विचार की संपदा को भी मेरा मानना हिंसा है। क्योंकि जब भी मैं किसी विचार को कहता हूं 'मेरा', तभी मैं सत्य से च्युत हो जाता हूं। और जब भी मैं कहता हूं कि यह मेरा विचार है, इसलिए ठीक है— और हम सभी यह कहते हैं, चाहे हम कहते हों प्रगट, चाहे न कहते हों। जब हम कहते हैं कि यही सत्य है, तो हम यह नहीं कहते कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है, तब हम यह कहते हैं कि जो कह रहा है वह सत्य है। मैं सत्य हूं तो मेरा विचार तो सत्य होगा ही— मैं सत्य हूं, तो मेरा विचार सत्य होगा। जितने विवाद हैं इस जगत में वे सत्य के विवाद नहीं हैं। जितने विवाद हैं वे

सब 'मैं' के विवाद हैं। जब आप किसी से विवाद में पड़ जाते हैं और कोई बात चलती है और आप कहते हैं यह ठीक है, और दूसरा कहता है यह ठीक नहीं है, तब जरा भीतर झांककर देखना कि थोड़ी देर में ही आपको पक्का पता चल जाएगा कि अब सवाल विचार का नहीं है। अब सवाल यह है कि मैं ठीक हूं कि तुम ठीक हो? महावीर ने कहा कि यह बहुत सूक्ष्म हिंसा है। इसलिए महावीर ने अनेकांत को जन्म दिया है।

महावीर से अगर कोई आकर बिलकुल महावीर के विपरीत भी बात कहे तो महावीर कहते थे, यह भी ठीक हो सकता है। बहुत हैरानी की बात है, यह आदमी अकेला था इस लिहाज से, पूरी पृथ्वी पर। ज्ञात इतिहास के पास यह अकेला आदमी है जो अपने विरोधी से भी कहेगा, यह भी ठीक हो सकता है— ठीक उससे, जो बिलकुल िवपरीत बात कह रहा है। महावीर कहते हैं कि आत्मा है, और जो आदमी आकर कहेगा— आत्मा नहीं है, कोई चार्वाक की विचा र-सरणी को माननेवाला आकर महावीर को कहेगा— आत्मा नहीं है तो महावीर यह नहीं कहते हैं कि तू गलत है। महावीर कहते हैं, यह भी हो सकता है, यह भी सही हो सकता है। इसमें भी सत्य होगा।

क्योंकि महावीर कहते हैं कि ऐसी तो कोई भी चीज नहीं हो सकती कि िजसमें सत्य का कोई अंश न हो, नहीं तो वह होती ही कैसे। वह है। स्वप्न भी सही है। क्योंकि स्वप्न होता तो है, इतना सत्य तो है ही। स्वप्न में क्या होता है, वह सत्य न हो, लेकिन स्वप्न होता है, इतना तो सत्य है ही, उसका अस्तित्व तो है ही। असत्य का तो कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। तो महावीर कहते हैं जब एक आदमी कह रहा है कि आत्मा नहीं है, तो इस न होने में भी कुछ सत्य तो होगा ही ।

इसलिए महावीर ने किसी का विरोध नहीं किया— किसी का। इसका अर्थ यह नहीं था कि महावीर को कुछ पता नहीं था। कि महावीर को यह पता नहीं था कि सत्य क्या है। महावीर को सत्य का पता था। लेकिन महावीर का इतना अनाग्रहपूर्ण चित्त था कि महावीर अपने सत्य में विपरीत सत्य को भी समाविष्ट कर पाते थे। महावीर कहते थे, सत्य इतनी बड़ी घटना है कि यह अपने से

87

□

अहिंसा : जीवेषणा की मृत्यु

मुल्ला को जिस दिन से तनख्वाह मिलने लगी, सम्राट बहुत हैरान हुआ— सम्राट जो भी कहता, मुल्ला कहता— बिलकुल ठीक, एकदम सही, यही सही है। सम्राट के साथ खाने पर बैठा था। कोई सब्जी बनी थी।

सम्राट ने कहा— मुल्ला, सब्जी बहुत स्वादिष्ट है।

मुल्ला ने कहा— यह अमृत है, स्वादिष्ट होगी ही। मुल्ला ने बहुत बखान किया उस सब्जी का। जब इतना बखान किया कि सम्राट ने दूसरे दिन भी बनवा ली। लेकिन दूसरे दिन उतनी अच्छी नहीं लगी।

तीसरे दिन रसोइये ने देखा कि इतनी अमृत जैसी चीज, तो उसने तीसरे दिन भी बना दी। सम्राट ने हाथ मारकर थाली नीचे गिरा दी और कहा कि क्या बदतमीजी है, रोज-रोज वही सब्जी!

मुल्ला ने कहा— जहर है। सम्राट ने कहा— लेकिन मुल्ला तुम तीन दिन पहले कहते थे कि अमृत है। मुल्ला ने कहा— मैं आपका नौकर हूं, सब्जी का नहीं। तनख्वाह तुम देते हो कि सब्जी देती है?

सम्राट ने कहा— लेकिन इसके पहले जब तुम आये थे मुझसे मिलने, तब तुम अपने को ही सही कहते थे।

मुल्ला ने कहा— तब तक मैं बिन-बिका था, तब तक तुम कोई तनख्वाह नहीं देते थे। और जिस दिन तुम तनख्वाह नहीं दोगे, याद रखना, सही तो मैं ही हूं, यह तो सिर्फ तनख्वाह की वजह से मैं कहे चले जा रहा हूं।

यह हमारा जो मन है, हमारी जो अस्मिता है—महावीर कहते हैं— दूसरा भी सही है, दूसरा भी सही हो सकता है। तुमसे विरोधी भी सत्य को लिए है। आग्रह मत करो, अनाग्रह हो जाओ। आग्रह ही मत करो। इसलिए महावीर ने कोई सिद्धांत

का आग्रह नहीं किया। और महावीर ने जितनी तरल बातें कही हैं उतनी तरल बातें किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं कहीं हैं। इसलिए महावीर अपने हर वक्तव्य के सामने 'स्यात' लगाते थे, वे कहते थे, परहैप्स। अभी आ पका तो विचार उन्हें पता भी नहीं है, लेकिन अगर आप उनसे पूछते कि आत्मा है? तो महावीर कहते, स्यात, परहैप्स। क्योंकि वे कहते, हो सकता है, कोई इसके विपरीत हो उसे चोट पहुंच जाए। आप पूछते कि मोक्ष है? तो महावीर कहते, स्यात! ऐसा नहीं कि महावीर को पता नहीं है। महावीर को पता है कि मोक्ष है। लेकिन महावीर को यह भी पता है कि अहिंसक वक्तव्य 'स्यात' के साथ ही हो सकता है— नान-वायलेंट असरशन। असत्य— यह भी पता है और महावीर को यह भी पता है कि स्यात कहने से शायद आप समझने को ज्यादा आसानी से तैयार हो जाएं। जब महावीर कहें कि हां, मोक्ष है, तो महावीर जितने अकड़कर कहेंगे मोक्ष है, तत्काल आपके भीतर अकड़ प्रतिध्वनित होती है। वह कहती है, कौन कहता है—'नहीं है'। संघर्ष 'मैं' का शुरू हो जाता है। सारे विवाद 'मैं' के विवाद हैं। महावीर अनाग्रह वक्तव्य दिये हैं— सब वक्तव्य अनाग्रह से भरे हैं। इसलिए पंथ बनाना बहुत मुश्किल हुआ । अगर कोई गौशालक के पास जाता, महावीर के प्रतिद्वंद्वी के पास, तो गौशालक कहता— महावीर गलत हैं, मैं सही हूं। वही आदमी महा वीर के पास आता तो महावीर कहते— गौशालक सही हो सकता है। अगर आप भी होते तो आप गौशालक के पीछे जाते कि महावीर के? आप गौशालक के पीछे जाते कि यह आदमी कम से कम निश्चित तो है, साफ तो है, उसे पता तो है। यह महावीर कहता है— गौशालक भी शायद सही हो सकता है। अभी उनको खुद ही पक्का नहीं है। खुद ही साफ नहीं है। इनके पीछे अपनी ना व क्यों बांधनी और डुबानी! ये कहां जा रहे हैं, शायद जा रहे हैं कि नहीं जा रहे हैं! शायद पहुंचेंगे कि नहीं पहुंचेंगे!

इसलिए महावीर के पास अत्यंत बुद्धिमान वर्ग ही आ सका— बुद्धिमान मैं कहता हूं उन व्यक्तियों को, जो सत्य के संबंध में अनाग्रहपूर्ण हैं। जिन्होंने समझा महावीर के साहस को। जिन्होंने देखा कि यह बहुत साहस की बात है, वे ही महावीर के पास आ सके। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता है, जो लोग पीछे आते हैं वे सोचकर नहीं आते, वे जन्म की वजह से पीछे आते हैं। वे

89

आग्रहपूर्ण हो जाते हैं। और उनके आग्रह खतरनाक हो जा ते हैं।

एक बहुत बड़े जैन पंडित मुझे मिलने आये थे। उन्होंने स्यातवाद पर किताब लिखी है, इस अनेकांत पर किताब लिखी है। मैं उनसे बात कर रहा था। मैं उनसे बात करता रहा। मैंने उनसे कहा कि स्या तवाद का तो अर्थ ही होता है कि शायद ठीक हो, शायद ठीक न हो।

उन्होंने कहा— हां।

फिर थोड़ी बातचीत आगे बढ़ी। जब वे भूल गये तो मैंने उनसे पूछा लेकिन स्यातवाद तो पूर्ण रूप से ठीक है या नहीं, एब्सल्यूटली? उन्होंने कहा— एब्सल्यूटली ठीक है, पूर्णरूप से ठीक है। स्यातवाद पर किताब लिखनेवाला आदमी भी कहता है कि स्यातवाद पूर्णरूप से ठीक है। इसमें कोई गलती नहीं है, इसमें कोई भूल हो ही नहीं सकती। यह सर्वज्ञ की वाणी है। महावीर को मानने वाला कहता है— सर्वज्ञ की वाणी है, इसमें कोई भूल-चूक है नहीं, यह बिलकुल ठीक है—एब्सल्यूटली, पूर्णरूपेण, निरपेक्ष।

और महावीर जिंदगीभर कहते रहे कि पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। जब भी हम सत्य को बोलते हैं, तभी वह अपूर्ण हो जाता है— बोलते ही अपूर्ण हो जाता है। वक्तव्य देते ही अपूर्ण हो जाता है। कोई वक्तव्य पूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि वक्तव्य की सीमाएं हैं— भाषा है, तर्क है, बोलनेवाला है, सुननेवाला है— ये सब सीमाएं हैं। जरूरी

नहीं है कि जो मैं बोलूं, वही आप सुनें। जरूरी नहीं है कि जो मैं जानूं वही मैं बोल पाऊं, और जरूरी नहीं है कि जो मैं बोल पाऊं वह वही हो जो मैं बोलने की कोशिश कर रहा हूं। यह जरूरी नहीं है। तत्काल सीमाएं लगनी शुरू हो जा ती हैं क्योंकि वक्तव्य समय की धारा में प्रवेश करता है और सत्य समय की धारा के बाहर है।
ऐसे ही जैसे हम एक लकड़ी को पानी में डालें तो वह तिरछी दिखाई पड़ने लगे, बाहर निकालें तो सीधी हो जाए। महावीर कहते हैं ठीक जैसे ही हम भाषा में किसी सत्य को डालते हैं, वह तिरछा होना शुरू हो जाता है। भाषा के बाहर निकालते हैं, शुद्ध शून्य में ले जाते हैं वह पूर्ण हो जाता है। लेकिन जैसे ही वक्तव्य देते हैं वैसे ही— इसलिए महावीर कहते हैं— कोई भी वक्तव्य स्यात के बिना न दिया जाए। कहा जाए कि शायद सही है।
यह अनिश्चय नहीं है, यह केवल अनाग्रह है। यह अन-सर्टेनिटी नहीं है। यह कोई ऐसा नहीं है कि महावीर को पता नहीं है। महावीर को पता है लेकिन इतना ज्यादा पता है, इतना साफ पता है कि यह भी उन्हें पता चलता है कि वक्तव्य धुंधला हो जाता है। महावीर की अहिंसा का जो अंतिम प्रयोग है, वह अनाग्रहपूर्ण विचार है। विचार भी मेरा नहीं है, तभी अनाग्रहपूर्ण हो जाएगा। जिस विचार के साथ आप लगा देंगे मेरा, उसमें आग्रह जुड़ जाएगा। न धन मेरा है, न मित्र मेरे हैं, न परिवार मेरा है, न विचार मेरा है, न यह शरीर मेरा है, न यह जीवन, जिसे हम कहते हैं, यह मेरा है— यह कुछ भी मेरा नहीं है। जब इन सब 'मेरे' से हमारा फासला पैदा हो जाता है, गिर जाते हैं ये 'मेरे', तब मैं ही बच रह जाता हूं— अलोन, अकेला। और जो वह अकेला मैं का बच जाना है, उसकी प्रक्रिया है, अहिंसा। अहिंसा प्राण है, संयम सेतु है और तप आचरण है।कल हम संयम पर बात करेंगे।

आज इतना ही।
लेकिन अभी कोई जाए न। संन्यासी महावीर के स्मरण में धुन करते हैं, उसमें सम्मिलित हों।

धम्म-सूत्र : 2 (संयम)

धम्मो मंगलमुक्किच्ढुं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।
संयम : मध्य में रुकना

छठवां प्रवचन

दिनांक 23 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला, पाटकर हाल, बम्बई
एक मित्र ने पूछा है कि महावीर रास्ते से गुजरते हों और किसी प्राणी की हत्या हो रही हो तो महावीर क्या करेंगे? किसी स्त्री के साथ

बलात्कार की घटना घट रही हो तो महावीर क्या करेंगे? क्या वे अनुपस्थित हैं, ऐसा व्यवहार करेंगे? और कोई असच्ह्य पीड़ा से कराह रहा हो तो महावीर क्या करेंगे?

इस संबंध में थोड़ी-सी बातें समझ लेनी उपयोगी हैं। एक तो महावीर गुजरते हुए रास्ते से, और किसी की हत्या हो रही हो, तो हत्या में जो हम देख पाते हैं, वह महावीर को नहीं दिखाई पड़ेगा। जो महावीर को दिखाई पड़ेगा वह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता है। पहले तो इस भेद को समझ लेना चाहिये। जब भी हम किसी की हत्या होते देखते हैं तो हम समझते हैं, कोई मारा जा रहा है। महावीर को यह नहीं दिखाई पड़ेगा कि कोई मारा जा रहा है।क्योंकि महा वीर जानते हैं कि जो भी जीवन का तत्व है, वह मारा नहीं जा सकता, वह अमृत है। दूसरी बात, जब भी हम देखते हैं कि कोई मारा जा रहा है तो हम सोचते हैं मारनेवाला ही जिम्मेवार है। महावीर को इसमें फर्क दिखाई पड़ेगा। जो मारा जाता है, वह भी बहुत गहरे अथोच में जिम्मेवार है। और हो सकता है केवल अपने ही किये गये किसी कर्म का प्रतिफल पाता हो।

जब भी हम देखेंगे तो मारनेवाला जिम्मेवार और मारा जानेवाला हमेशा निर्दोष मालूम पड़ेगा। हमारी दया और हमारी करुणा उसकी तरफ बहेगी, जो मारा जा रहा है। महावीर के लिए ऐसा जरूरी नहीं होगा, क्योंकि महावीर का देखना और गहरा है। हो सकता है कि जो मार रहा है वह केवल एक प्रतिकर्म पूरा कर रहा हो। क्योंकि इस जगत में कोई अकारण नहीं मारा जाता है। जब कोई मारा जाता है तो वह उसके ही कमोच के फल की श्रृंखला का हिस्सा होता है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि जो मार रहा है वह जिम्मेवार नहीं। लेकिन हमारे और महावीर के देखने में फर्क पड़ेगा। जब भी हम देखते हैं, कोई मारा जा रहा है तो हम सोचते हैं निश्चित ही पाप हो रहा है; निश्चित ही बुरा हो रहा है। क्योंकि हमारी दृष्टि बहुत सीमित है। महावीर इतना सीमित नहीं देख सकते। महावीर देखते हैं जीवन की अनंत श्रृंखला को। यहां कोई भी कर्म अपने में पूरा नहीं है— वह पीछे से जुड़ा है, और आगे से भी।

हो सकता है कि अगर हिटलर को किसी आदमी ने मार डाला होता 1930 के पहले तो वह आदमी हत्यारा सिद्ध होता। हम नहीं देख पाते कि एक ऐसा आदमी मारा जा रहा है जो कि एक करोड़ लोगों की हत्या करेगा। महावीर ऐसा भी देख पाते हैं। और तब तय करना मुश्किल है कि हिटलर का हत्यारा सचमुच बुरा कर रहा था या अच्छा कर रहा था। क्योंकि हिटलर अगर मरे तो करोड़ लोग

बच सकते हैं। फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि हिटलर को जो मार रहा था वह अच्छा ही कर रहा था। सच तो यह है कि महावीर जैसे लोग जानते हैं कि इस पृथ्वी पर अच्छा और बुरा ऐसा चुनाव नहीं है; कम बुरा और ज्यादा बुरा, ऐसा ही चुनाव है— लेसर ईविल का चुनाव है। हम आमतौर से दो हिस्सों में तोड़ लेते हैं— यह अच्छा और यह बुरा। हम जिंदगी को अंधेरे और प्रकाश में तोड़ लेते हैं। महावीर जानते हैं कि जिंदगी में ऐसा तोड़ नहीं है। यहां जब भी आप कुछ कर रहे हैं तो ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकता है कि जो सबसे कम, कम से कम बुरा विकल्प था वह आप कर रहे हैं। वह आदमी भी बुरा कर रहा है जो हिटलर को मार रहा है, लेकिन जो संभव हो सकता है हिटलर से वह इतना बुरा है कि इस आदमी को बुरा कहें?

तो पहली बात मैं यह कहना चाहता हूं जैसा आप देखते हैं वैसा महावीर नहीं देखेंगे। इस देखने में यह बात भी जोड़ लेनी जरूरी है कि महावीर जानते हैं कि इस जीवन में चौबीस घंटे अनेक तरह की हत्या हो ही रही है। आपको कभी-कभी दिखाई पड़ती है। जब आप चलते हैं तब किसी की आप हत्या कर रहे हैं। जब आप श्वास लेते हैं तब आप किसी की

हत्या कर रहे हैं। अगर आप भोजन करते हैं तब किसी की हत्या कर रहे हैं। आपकी आंख की पलक भी झपकी है तो हत्या हो रही है। हमें तो जब कभी कोई किसी की छाती में छुरा भोंकता है, तभी हत्या दिखाई पड़ती है।

महावीर देखते हैं कि जीवन की जो व्यवस्था है वह हिंसा पर ही खड़ी है। यहां चौबीस घंटे प्रतिपल हत्या ही हो रही है। एक मित्र मेरे पास आये थे, वे कह रहे थे कि महावीर जहां चलते थे, वहां अनेक-अनेक मीलों तक अगर लोग बीमार होते तो वे तत्काल ठीक हो जाते थे। मेरा मन हुआ उनसे कहूं कि शायद उन्हें बीमारी के पूरे रहस्यों का पता नहीं है। क्योंकि जब आप बीमार होते हैं तो आप तो बीमार होते हैं लेकिन अनेक कीटाणु आपके भीतर जीवन पाते हैं। अगर महावीर के आने से आप ठीक हो जाएंगे तो अन्य कीटाणु मर जाएंगे तत्काल। तो महावीर इस झंझट में न पड़ेंगे, ध्यान रखना।क्योंकि आप कुछ विशिष्ट हैं, ऐसा महावीर नहीं मानते। यहां प्रत्येक प्राण का मूल्य बराबर है। प्राण का मूल्य है। और आप अकेले बीमार होते हैं तब करोड़ों जीवन आपके भीतर पनपते हैं और स्वस्थ होते हैं। आप अगर सोचते हों कि महावीर कृपा करके और आपको ठीक कर दें, तो ऐसी कृपा महावीर को करनी बहुत मुश्किल होगी, क्योंकि आपके ठीक होने में करोड़ों का नष्ट होना निहित है। और आप इतने मूल्यवान नहीं हैं जितना आप सोचते हैं। क्योंकि वह जो करोड़ों आपके भीतर जी रहे हैं, वे भी प्रत्येक अपने को इतना ही मूल्यवान समझते हैं। आपका उनको पता भी नहीं है। आपके शरीर में जब कोई रोग के कीटाणु पलते हैं तो उनको पता भी नहीं है कि आप भी हैं। आप सिर्फ उनका भोजन हैं।

तो जैसा हम देखते हैं हत्या को, उतना सरल सवाल महावीर के लिए नहीं है, जटिल है ज्यादा। महावीर के लिए जीवेषणा ही हिंसा है, हत्या है। वह किसकी जीवेषणा है, इसका कोई सवाल नहीं उठता । कौन जीना चाहता है, वह हत्या करेगा। ऐसा भी नहीं है कि जो जीवेषणा छोड़ देता है, उससे हत्या बंद हो जायेगी। जब तक वह जियेगा तब तक हत्या उससे भी चलेगी। इतना महावीर कहते हैं— उसका संबंध विच्छिन्न हो गया, जीवेषणा के कारण उसका संबंध था।

महावीर भी ज्ञान के बाद चालीस वर्ष जीवित रहे। इन चालीस वषोच में महावीर भी चलेंगे तो कोई मरेगा। उठेंगे तो कोई मरेगा। यद्यपि महावीर इतने संयम में जीते हैं कि न्यूनतम जो संभव हो, तो रा त एक ही करवट सोते हैं, दूसरी करवट नहीं लेते। इससे कम करना मुश्किल है। एक ही करवट रात को गुजार देते हैं क्योंकि दूसरी करवट लेते हैं तो फिर कुछ जीवन मरेंगे। धीमे श्वास लेते हैं, कम से कम जीवन का च्हरास होता हो। लेकिन श्वास तो लेनी ही पड़ेगी। हम कह सकते हैं, कूदकर मर क्यों नहीं जाते हैं। अपने को समाप्त कर दें। लेकिन अगर अपने को समाप्त करेंगे तो एक आदमी के शरीर में सात करोड़ जीवन पलते हैं— साधारण स्वस्थ

94

संयम : मध्य में रुकना

आदमी के, अस्वस्थ के तो और ज्यादा। तो महावीर एक पहा ड़ से अपने को कूदकर मारते हैं तो सात करोड़ को साथ मारते हैं। जहर पी लें, तो भी सात करोड़ को साथ मारते हैं। महावीर जब देखते हैं हिंसा को, तब जटिल है सवाल।इतना आसान नहीं है, जितना आपकी आंखें देखती हैं।

क्या है हत्या? कौन-सी चीज हत्या है? महावीर के देखे तो जीवन को जीने की कोशिश में ही हत्या है और जीवन को जीने में हत्या है। हत्या प्रतिपल चल रही है। और प्रत्येक जीना चाहता है इसलिए जब उस पर हमला होता है तब उसे लगता है हत्या हो रही है। बाकी समय हत्या नहीं होती है। अगर जंगल में आप जाकर शेर का ि शकार करते हैं तो वह खेल है, और शेर जब आपका शिकार करे तब शिकार नहीं कहलाता वह, तब वह हत्या है। तब वह जंगली जानवर है, और आप बहुत सभ्य जानवर हैं।

और मजा यह है कि शेर आपको कभी नहीं मारेगा जब तक उसको भूख नहीं लगी हो और आप तभी उसको मारेंगे जब आपको भूख न लगी हो, पेट भरा हो। कोई भूखे आदमी जंगल में शिकार करने नहीं जाते हैं। जिनको ज्यादा भोजन मिल गया है, जिनको अब पचाने का उपाय नहीं दिखाई पड़ता है, वे शिकार करने चले जाते हैं। शेर तो तभी मारता है जब भूखा हो, अनिवार्यता हो।

मैंने सुना है कि एक सर्कस में उन्होंने एक नया प्रदर्शन शुरू किया था । एक भेड़ को और एक शेर को एक ही कटघरे में रखने का, मैत्री का। लोग बड़े खुश होते थे, देखकर चमत्कृत होते थे कि शेर और भेड़ गले मिलाकर बैठे हुए हैं। जैनी देखते तो बहुत ही खुश होते। वे भी अपने चित्र बनाये बैठे हुए हैं, शेर और गाय को साथ बिठलाया है। लेकिन एक आदमी थोड़ा चकित हुआ क्योंकि यह बड़ा कठिन मामला है। तो उसने जाकर मैनेजर से पूछा कि है तो प्रदर्शन बहुत अदभुत, लेकिन इसमें कभी झंझट नहीं आती?

उसने कहा— कोई ज्यादा झंझट नहीं होती।

फिर भी उसने कहा कि शेर और भेड़ का साथ-साथ रहना! क्या कभी उपद्रव नहीं होता?

उस मैनेजर ने कहा— कभी उपद्रव नहीं होता। सिर्फ हमें रोज एक नयी भेड़ बदलनी पड़ती है। और कोई दिक्कत नहीं है, बाकी सब ठीक चलता है। और जब शेर भूखा नहीं रहता तब दोस्ती ठीक है, फिर कोई झंझट नहीं है। फिर वह दोस्ती चलती है। जब भूखा होता है, तब वह खा जाता है। दूसरे दिन हम दूसरी बदल देते हैं। यह प्रदर्शन में कोई इससे बाधा नहीं पड़ती।

शेर भी भेड़ पर हमला नहीं करता जब भूखा न हो। गैर अनिवार्य हिंसा कोई जानवर नहीं करता, सिवाय आदमी को छोड़कर। लेकिन हमारी हिंसा हमें हिंसा नहीं मालूम पड़ती है। हम उसे नये-नये नाम और अच्छे-अच्छे नाम दे देते हैं। आदमी की हिंसा न हो। फिर आदमी के साथ भी सवाल नहीं है। इसमें भी हम विभाजन करते हैं। हमारे निकट जो जितना पड़ता है, उसकी हत्या हमें उतनी ज्यादा मालूम पड़ती है। अगर पाकिस्तानी मर रहा हो तो ठीक, हिच्नदुस्तानी मर रहा हो तो तकलीफ होती है। फिर हिन्दुस्तानी में भी अगर हिन्दू मर रहा हो तो मुसलमान को तकलीफ नहीं होती है। मुसलमान मर रहा हो तो जैनों को तकलीफ नहीं होती है, जैनी मर रहा हो तो हिन्दू को तकलीफ नहीं होती।

और भी निकट हम खींचते चले आये हैं। दिगंबर मर रहा हो तो श्वेतांबर को कोई तकलीफ नहीं होती। श्वेतांबर मर रहा हो तो दिगंबर को कोई तकलीफ नहीं होती। फिर और हम नीचे निकल आते हैं— ि फर और कुछ —फिर आपके परिवार का कोई मर रहा हो तो तकलीफ होती है। और दूसरे परिवार का कोई मर रहा हो तो सहानुभूति दिखाई जाती है, होती तक नहीं। फिर वहां भी, अगर आपके ही ऊपर सवाल आ जाए कि आप बचें कि आपके पिता बचें? तो ि पता को मरना पड़ेगा। भाई बचे कि आप बचें तो फिर भाई को मरना पड़ेगा। फिर इसमें भी हिसाब है। अगर आपका सिर बचे कि पैर बचे, तो पैर को कटना पड़ेगा।

95

महावीर-वाणी भाग : 1

मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक सैनिक आया हुआ है। वह बहुत अपनी बहादुरी की बातें कर रहा है, काफी हाउस में बैठकर। वह कह रहा है कि मैंने इतने सिर काट दिये, इतने सिर काट दिये।

मुल्ला बहुत देर सुनता रहा। उसने कहा कि दिस इ नथिंग। यह कुछ भी नहीं है। एक दफा मैं भी गया था युद्ध में, मैंने न मालूम कितने लोगों के पैर काट दिये।

उस योद्धा ने कहा कि महाशय, अच्छा हुआ होता कि आप सिर काटते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि सिर कोई पहले ही काट चुका था। न मालूम कितनों के पैर काटकर हम घर आ गये, कोई जरा-सी खरोंच भी नहीं लगी। तुम तो काफी पिटे-कुटे मालूम होते हो। तो आ पको इकानामी वहां भी करनी पड़ेगी, सिर और पैर का सवाल आपके काटने का हो तो पैर को कटवा डालियेगा और क्या करियेगा।

मैं हूं केन्द्र सारे जगत का। अपने को बचाने के लिए सारे जगत को दांव पर लगा सकता हूं। यही हिंसा है, यही हत्या है। महावीर इतना व्यापक देखते हैं, उस पर्सपेक्टिव में, उस परिप्रेक्ष्य में, आपको जो हत्या दिखाई पड़ गयी है, वह महावीर को दिखाई पड़ेगी? ऐसी ही दिखाई पड़ेगी? इतना तो तय है कि ऐसी ही दिखाई नहीं पड़ेगी। और यह तो साफ ही है कि आपको वैसी नहीं दिखाई पड़ सकती है जैसी महावीर को दिखाई पड़ेगी।इसलिए महावीर के लिए यह प्रश्न बहुत जटिल है। किसको आप बलात्कार कहते हैं? रास्ते पर बलात्कार हो रहा है, किसको आप बलात्कार कहते हैं? पृथ्वी पर सौ में निन्यानबे मौके पर बलात्कार ही हो रहा है। लेकिन किसको आप बलात्कार कहते हैं? पति करता है तो बलात्कार नहीं होता, लेकिन अगर पत्नी की इच्छा न हो तो पति का किया हुआ भी बलात्कार है। और कितनी पत्नियों की इच्छा है, कभी पतियों ने पूछा है?

बलात्कार का अर्थ क्या है? कानून ने सुविधा दे दी कि यह बलात्कार नहीं है तो बलात्कार नहीं है। समाज ने सैंक्शन दे दिया तो फिर बलात्कार नहीं है। बलात्कार है क्या? दूसरे की इच्छा के बिना कुछ करना ही बलात्कार है। हम सब दूसरे की इच्छा के बिना बहुत कुछ कर रहे हैं। सच तो यह है कि दूसरे की इच्छा को तोड़ने की ही चेष्टा में सारा मजा है। इसलिए जिस पुरुष ने कभी बलात्कार कर लिया किसी स्त्री से, वह किसी स्त्री से प्रेम करने में और सहज प्रेम करने में आनंद न पाएगा। क्योंकि जिद्दोजहद से, जबर्दस्ती से वह जो अहंकार की तृप्ति होती है, वह सहज नहीं होती है।

अगर आप किसी आदमी से कुश्ती लड़ रहे हों, वह अपने आप गिरकर लेट जाये और कहे—बैठ जाओ मेरी छाती पर, हम हार गये— तो मजा चला गया। जब आप उसको गिराते हैं तो बड़ी मुश्किल से िगराते हैं। जितनी मुश्किल पड़ती है उसे गिराने में, उसकी छाती पर बैठ जाने में, उतना ही रस पाते हैं। रस किस बात का है। रस विजय का है। इसलिए तो पत्नी में उतना रस नहीं आता जितना दूसरे की पत्नी में रस आता है। क्योंकि दूसरे की पत्नी को अभी भी जीतने का मार्ग है। अपनी पत्नी जीती जा चुकी है—टेकन फार ग्रांटेड। अब उसमें कुछ मतलब है नहीं। रस क्या है? रस इस बात का है कि मैं कितने विजय के झंडे गाड़ दूं, चाहे वह कोई भी आयाम हो— चाहे वह कामवासना हो, चाहे धन हो, चाहे पद हो। जहां जितना मुश्किल है, वहां उतना अहंकार को जीतने का उपाय है। वहां अहंकार उतना विजेता होकर बाहर निकलता है।

अगर महावीर से हम पूछें, गहरे में हम समझें तो जहां-जहां अहंकार चेष्टा करता है वहीं-वहीं बलात्कार हो जाता है। यह बलात्कार अनेक रूपों में है। लेकिन फिर भी हम जो देखेंगे, हम सदा ऐसा ही देखेंगे कि अगर एक व्यक्ति किसी स्त्री के साथ रास्ते पर बलात्कार कर रहा हो, तो सदा बलात्कार करनेवाला ही जिम्मेवार मालूम पड़ेगा। लेकिन हमें खयाल नहीं है कि स्त्री बलात्कार करवाने के लिए कितनी चेष्टाएं कर सकती है। क्योंकि अगर पुरुष को इसमें रस आता है कि वह स्त्री को जीत ले तो स्त्री को भी इसमें रस आता है कि

वह किसी को इस हालत में ला दे।

कीर्कगार्ड ने अपनी एक अदभुत किताब लिखी है— डायरी आफ ए सिड्यूसर, एक व्यभिचारी की डायरी। उसमें कीर्कगार्ड ने लिखा है कि वह जो व्यभिचारी है, जो डायरी लिख रहा है, एक काल्पनिक कथा है। वह व्यभिचारी जीवन के

अंत में यह लिखता है कि मैं बड़ी भूल में रहा, मैं समझता था, मैं स्त्रियों को व्यभिचार के लिए राजी कर रहा हूं। आखिर में मुझे पता चला कि वे मुझसे ज्यादा होशियार हैं कि उन्होंने ही मेरे साथ व्यभिचार करवा लिया था । दे सिड्यूस्ड मी। दैट टेकनीक वाज निगेटिव। इसलिए मुझे भ्रम बना रहा।कोई स्त्री कभी प्रस्ताव नहीं करती किसी पुरुष से विवाह करने का। प्रस्ताव करवा लेती है पुरुष से ही। इंतजाम सब करती है कि वह प्रस्ताव करे। प्रस्ताव करती नहीं है। यह स्त्री और पुरुष के मन का भेद है।

स्त्री के मन का ढंग बहुत सूच्म है। आप देखते हैं कि अगर एक आदमी जा रहा है एक स्त्री को धक्का मारने, तो फौरन हमें लगता है कि गलती इसने किया। और वह स्त्री घर से पूरा इंतजाम करके चली है कि अगर कोई धक्का न मारे तो उदास लौटेगी। धक्का मारे तो भी चिल्ला सकती है। लेकिन चिल्लाने का कारण जरूरी नहीं है कि धक्का मारने पर नाराजगी है। चिल्लाने का सौ में निन्यानबे कारण यह है कि बिना चिल्लाये किसी को पता नहीं चलेगा कि धक्का मारा गया। पर यह बहुत गहरे में उसको भी पता न हो, इसकी पूरी संभावना है। क्योंकि स्त्री जितनी बन-ठनकर, जिस व्यवस्था से निकल रही है, वह धक्का मारने के लिए पूरा का पूरा निमंत्रण है। उस निमंत्रण में हाथ उनका है। हमारे सोचने के जो ढंग हैं वे एकदम हमेशा पक्षपाती हैं। हम हमेशा सोचते हैं, कुछ हो रहा है तो एक आदमी जिम्मेवार है। हमें खयाल ही नहीं आता कि इस जगत में जिम्मेवारी इतनी आसान नहीं, ज्यादा उलझी हुई है। दूसरा भी जिम्मेवार हो सकता है। और दूसरे की जिम्मेवारी गहरी भी हो सकती है। कुशल भी हो सकती है। चालाक भी हो सकती है। सूच्म भी हो सकती है। महावीर जब देखेंगे तो पूरा देखेंगे। और उस पूरे देखने में, हमारे देखने में फर्क पड़ेगा। महावीर का जो 'वि न' है, वह टोटल होगा।

अब दूसरी बात यह है कि महावीर कुछ करेंगे कि नहीं! भला अलग देखेंगे, यह भी समझ लिया जाये। कुछ करेंगे कि नहीं? तो मैं आपसे कहना चाहता हूं महावीर कुछ न करेंगे, जो होगा उसे हो जाने देंगे। इस फर्क को समझ लें। आप रास्ते से गुजर रहे हैं और किसी की हत्या हो रही है तो आप खड़े होकर सोचेंगे कि क्या करूं। करूं कि न करूं? आदमी ताकतवर है कि कमजोर दिखता है? करूंगा तो फल क्या होंगे? किसी मिनिस्टर का रिश्तेदार तो नहीं है? करके उलटा मैं तो न फंसूंगा? आप पच्चीस बातें सोचेंगे, तब करेंगे। महावीर से कुछ होगा, सोचेंगे वे नहीं। सोचना वक्त बीते जा चुका। जिस दिन सोचना गया, उसी दिन वे महावीर हुए। विचार अब नहीं चलता। विचार हमेशा पार्शियल होता है, विजन टोटल होता है। विचार हमेशा पक्षपाती होता है; दृष्टि, दर्शन, पूर्ण होता है। महावीर को एक स्थिति दर्शन में दिखाई पड़ेगी। फिर जो हो जाएगा वह हो जाएगा। महावीर लौटकर भी नहीं सोचेंगे कि मैंने क्या किया? क्योंकि उन्होंने कुछ किया नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं— पूर्ण कृत्य, कर्म का बंधन नहीं बनता। टोटल एक्ट कोई बंधन नहीं लाता। कुछ उनसे होगा कि नहीं होगा, लेकिन उसे हम प्रिडिक्ट नहीं कर सकते, उसे हम कह नहीं सकते कि वे क्या करेंगे। महावीर भी नहीं कह सकते पहले से कि मैं क्या करूंगा। उस सिचुएशन में, उस स्थिति में महावीर से क्या होगा, इसके लिए कोई प्रिडिक्शन, कोई ज्योतिषी नहीं बता सकता।

हमारे बाबत प्रिडिक्शन हो सकता है, इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। जितनी कम समझ हो, उतने हम प्रिडिक्टेबल होते हैं। जितनी हमारी नासमझी होगी, उतनी हमारे बाबत जानकारी बतायी जा सकती है कि हम क्या करेंगे। मशीन के बाबत हम पूरे प्रिडिक्टेबल हो सकते हैं। जानवर के बाबत थोड़ी दिक्कत होती है, लेकिन फिर भी नब्बे प्रतिशत हम कह सकते हैं कि गाय आज सायं घर आकर

क्या करेगी कि नहीं कह सकते? बिलकुल कह सकते हैं। कभी-कभी भूल-चूक हो सकती है, क्योंकि गाय एकदम यंत्र नहीं है। लेकिन मशीन क्या करेगी, यह तो हम जानते हैं। जैसे-जैसे जीवन चेतना ि वकसित होती है, वैसे-वैसे अनप्रिडिक्टेबिलिटी बढ़ती है। साधारण आदमी के बाबत कहा जा सकता है कि यह कल सुबह क्या करेगा। महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्तियों के बाबत नहीं कहा जा सकता कि वे क्या करेंगे। उनसे क्या होगा, यह बहुत अज्ञात और रहस्यपूर्ण है। क्योंकि उनके टोटल वि न में, उनकी पूर्ण दृष्टि में क्या दिखाई पड़ेगा, और उस दिखाई पड़ने को वे सोचकर कुछ करने नहीं जाएंगे। वहां दिखाई पड़ेगा, वहां कृत्य घटित हो जाएगा। वे दर्पण की तरह हैं। जो घटना चारों तरफ घट रही होगी वह दर्पण में प्र तिलक्षित हो जाएगी, परिलक्षित हो जाएगी, रिच्फलेक्ट हो जाएगी। और उसका जिम्मा महावीर पर बिलकुल नहीं है।

अगर महावीर ने किसी की हत्या होते रोका या किसी पर व्यभिचार होते रोका तो महावीर कहीं किसी से कहेंगे नहीं कि मैंने किसी पर व्यभिचार होते रोका था। महावीर कहेंगे कि मैंने देखा था कि व्य भिचार हो रहा है और मैंने यह भी देखा था कि इस शरीर ने बाधा डाली।आई वा ए विटनेस। महावीर गहरे में साक्षी ही बने रहेंगे, व्यभिचा र के भी और व्यभिचार के रोके जाने के भी। तभी वे बाहर होंगे कर्म के, अन्यथा कर्म के बाहर नहीं हो सकते। विचार से, वा सना से, इच्छा से, अभिप्राय से, प्रयोजन से किया गया कर्म फल को लाता है। महावीर के ज्ञान के बाद अब जो भी वे कर रहे हैं— वह प्रयोजन रहित, लच्य रहित, फल रहित, विचार रहित, शून्य से निकला हुआ कर्म है। शून्य से जब कर्म निकलता है तब वह भ विष्यवाणी के बाहर होता है। मैं नहीं कह सकता कि महावीर क्या करेंगे। और अगर आपने महावीर से पूछा होता तो महावीर भी नहीं कह सकते थे कि मैं क्या करूंगा। महावीर कहेंगे कि तुम भी देखोगे कि क्या होता है, और मैं भी देखूंगा कि क्या होता है। करना मैंने छोड़ दिया है। इसलिए महावीर या लाओत्से या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों के कर्म को समझना इस जगत में सर्वाधिक दुरूह पहेली है।

हम क्या करते हैं, और हम पूछना क्यों चाहते हैं? हम पूछना इसलिए चाहते हैं कि अगर हमें पक्का पता चल जाए कि महावीर क्या करेंगे, तो वही हम भी कर सकते हैं। ध्यान रहे, महावीर हुए बिना आप वही नहीं कर सकते। हां, बिलकुल वही करते हुए मालूम पड़ सकते हैं, लेकिन वही नहीं होगा। यही तो उपद्रव हुआ है। महावीर के पीछे ढाई हजार साल से लोग चल रहे हैं। और उन्होंने महावीर को विशेष स्थितियों में जो-जो करते देखा है, उसकी नकल कर रहे हैं। वह नकल है। उससे आत्मा का कोई अनुभव उपजता नहीं है। महावीर के लिए वह सहज कृत्य था, इनके लिए प्रयास-ि सद्ध है। महावीर के लिए दृष्टि से निष्पन्न हुआ था, इनके लिए सिर्फ केवल एक बनायी गयी आदत है। अगर महावीर किसी दिन उपवास से रह गये थे तो महावीर के लिए वह उपवास और ही अर्थ रखता था। उसके निहितार्थ अलग थे। हो सकता है उस दिन वे इतने आत्मलीन थे कि उन्हें शरीर का स्मरण ही न आया हो। लेकिन आज उनके पीछे जो उपवास कर रहा है, वह जब भोजन करता है तब उसे शरीर का स्मरण नहीं आता और जब वह उपवास करता है तब चौबीस घंटे शरीर का स्मरण आता है। अच्छा था कि वह भोजन ही कर लेता क्योंकि वह महावीर के ज्यादा निकट होता, शरीर के स्मरण न आने में। और भोजन न करके चौबीस घंटे शरीर का स्मरण ही कर रहा है। और महावीर का उपवास फलित हुआ था इसीलिए कि शरीर का स्मरण ही नहीं रहा था तो भूख का किसे पता चले, कौन भोजन की तलाश में जाये।

महावीर जैसे व्यक्तियों की अनुकृति नहीं बना जा सकता। कोई नहीं बन सकता। और सभी परंपराएं यही काम करती हैं। यही काम विनष्ट कर देता है। देख लेते हैं कि महावीर क्या कर रहे हैं। और इसी से दुनिया में सारे धमोच के झगड़े खड़े होते हैं।क्योंकि कृष्ण ने कुछ और किया, बुद्ध ने कुछ और किया, क्राइस्ट ने कुछ और किया, सबकी स्थितियां अलग थीं। महावीर ने कुछ और किया। तो महावीर का अनुसरण करनेवाला कहता है कि कृष्ण गलत कर रहे हैं क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध गलत

□

संयम : मध्य में रुकना

कर रहे हैं क्योंकि महावीर ने ऐसा कभी नहीं किया। बुद्ध का माननेवाला कहता है कि बुद्ध ठीक कर रहे हैं। और ऐसी स्थिा ति में महावीर ने ऐसा नहीं किया, इससे सिद्ध होता है कि उन्हें ज्ञान नहीं हुआ था।

हम कमोच से ज्ञान को नापते हैं, यहीं भूल हो जाती है। कर्म ज्ञान से पैदा होते हैं और ज्ञान कर्म से बहुत बड़ी घटना है। जैसे लहर पैदा होती है सागर में, लेकिन लहरों से सागर को नहीं नापा जाता । और अगर हिन्द महासागर में और तरह की लहर पैदा होती है और प्रशांत महासागर में और तरह की हवाएं बहती हैं, और दिशाओं में बहती हैं; तो आप यह मत समझना कि हिंद महासागर सागर है और प्रशांत महासागर सागर नहीं है; क्योंकि वैसी लहर यहां कहां पैदा हो रही है! न पानी का वैसा रंग है।

महावीर की स्थितियों में महावीर क्या करते हैं, वही हम जानते हैं। बुद्ध की स्थितियों में बुद्ध क्या करते हैं, वही हम जानते हैं। फिर पीछे परंपरा जड़ हो जाती है। फिर हम पकड़कर बैठ जाते हैं। फिर हम शास्त्रों में खोजते रहते हैं कि इस स्थिति में महावीर ने क्या किया था वही हम करें। न तो स्थिति है वही, और अगर स्थिति भी वही है तो एक बात तो पक्की है कि आप महावीर नहीं हैं। क्योंकि महावीर ने कभी नहीं लौटकर देखा कि किसने क्या किया था , वैसा मैं करूं। महावीर से जो हुआ— इसलिए ठीक से समझें तो महावीर जो कर रहे हैं वह कृत्य नहीं है, एक्ट नहीं है, हैपनिंग है, वह घटना है। वैसा हो रहा है।वह कोई नियमबद्ध बात नहीं है। वह नियम मुक्त चेतना से घटी हुई घटना है। वह स्वतंत्र घटना है। इसीलिए कर्म का उसमें बंधन नहीं है। महावीर से जरूर बहुत कुछ होगा। क्या होगा, नहीं कहा जा सकता। कर्म उसका नाम नहीं है, होगा। हैपनिंग होगी। इसलिए मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता कि महावीर क्या करेंगे।

प्रतिपल जीवन बदल रहा है। जिंदगी स्टिल फोटोग्राफ की तरह नहीं है। जैसा कि जड़ फोटोग्राफ होता है, वैसी नहीं है। जिंदगी चलचित्र की भांति है— भागती हुई फिल्म की भांति, डाइनेमिक! वहां सब बदल रहा है, सब पूरे समय बदल रहा है। सारा जगत बदला जा रहा है। सब बदला जा रहा है। हर बार नयी स्थिति है। और हर बार नयी स्थिति में महावीर हर बार नये ढंग से होंगे प्रगट।

अगर महावीर आज हों, तो जैनों को जितनी कठिनाई होगी उतनी किसी और को नहीं होगी। क्योंकि उनको बड़ी दिक्कत होगी। वे सिद्ध करेंगे कि यह आदमी गलत है, क्योंकि वह महावीर की पच्चीस सौ साल पहले वाली जिंदगी उठाकर जांच करेंगे कि वह आदमी वैसे ही कर रहा कि नहीं कर रहा है। और एक बात पक्की है कि महावीर वैसा नहीं कर सकते, क्योंकि वैसी कोई स्थिति नहीं है। सब बदल गया हैसब बदल गया है। और जब वह कुछ और करेंगे— वे और करेंगे ही— तो जिसने जड़ बांध रखी है वह बड़ी दिक्कत में पड़ेगा। वह कहेगा— यह नहीं हो सकता है। यह आदमी गलत है। सही आदमी तो वही था जो पच्चीस सौ साल पहले था। इसलिए महावीर को जैन भर स्वीकार नहीं कर सकेंगे। हां, और कोई मिल जाएं नये लोग स्वीकार करने वाले, तो अलग बात है। यही बुद्ध के साथ होगा, यही कृष्ण के साथ होगा। होने का कारण है क्योंकि हम कमोच को पकड़कर बैठ जाते हैं।

कर्म तो राख की तरह हैं, धूल की तरह हैं। टूट गये पत्ते हैं वृक्षों के— सूख गये पत्ते हैं वृक्षों के। उनसे वृक्ष नहीं नापे जाते। वृक्ष में तो प्रतिपल नये अंकुर आ रहे हैं। वहीं उसका जीवन है। सूखे पत्ते उसका जीवन नहीं है। सूखे पत्ते तो बताते यही हैं कि अब वे वृक्ष के लिए व्यर्थ होकर बाहर गिर गये हैं। सब कर्म आपके सूखे पत्ते हैं। वे बाहर गिर जाते हैं। भीतर तो जीवन प्रतिपल नया और हरा होता चला जाता है। वह डाइनेमिक है। हम सूखे पत्तों को इकट्ठा कर लेते हैं और सोचते हैं वृक्ष को जान लिया। सूखे पत्तों से वृक्षों का क्या लेना-देना है! वृक्ष का संबंध तो सतत धारा से है प्राण की; जहां नये पत्ते प्रतिपल अंकुरित हो रहे हैं। नये पत्ते कैसे अंकुरित होंगे, नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वृक्ष सोच- सोचकर पत्ते नहीं निकालते। वृक्ष से पत्ते निकलते हैं। सूरज

99

महावीर-वाणी भाग : 1

कैसा होगा, हवायें कैसी होंगी, वर्षा कैसी होगी, चांद-ता रे कैसे होंगे, इस सब पर निर्भर करेगा। उस सबसे पत्ते निकलेंगे। टोटल से निकलेगा सब, समग्र से निकलेगा सब। महावीर जैसे लोग कास्मिक में जीते हैं, समग्र में जीते हैं। कुछ नहीं कहा जा सकता कि वे क्या करेंगे। हो सकता है जिस पर बलात्कार हो रहा है, उसको डांटें-डपटें। कुछ कहा नहीं जा सकता। नहीं तो भूल हो जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन गुजर रहा है गांव से। देखा कि एक छोटे-से आदमी को एक बहुत बड़ा, तगड़ा आदमी पिटाई कर रहा है। उसकी छाती पर बैठा हुआ है। मुल्ला को बहुत गुस्सा आ गया। मुल्ला दौड़ा और तगड़े आदमी पर टूट पड़ा। बामुश्किल— तगड़ा आदमी काफी तगड़ा था; मुल्ला उसके लिए और भी काफी पड़ रहा था— किसी तरह उसको नीचे गिरा पाया। दोनों ने मिलकर उसकी अच्छी मरम्मत की।

जैसे ही वह छोटा आदमी छूटा, वह निकल भागा। वह बड़ा आदमी बहुत देर से कह रहा था, मेरी सुन भी, लेकिन मुल्ला इतने गुस्से में था कि सुने कैसे। जब वह निकल भागा तब मुल्ला ने कहा— तू क्या कहता है?

वह बोला कि वह मेरी जेब काटकर भाग गया। वह मेरी जेब काट रहा था, उसी में झगड़ा हुआ। और तूने उल्टे कुटाई कर दिया और उसको निकाल दिया।

मुल्ला ने कहा— यह तो बहुत बुरी बात है। लेकिन तूने पहले क्यों नहीं कहा?

उस आदमी ने कहा— मैं बार-बार कह रहा हूं, लेकिन तू सुने तब न! तू तो एकदम पिटाई में लग गया।

जिंदगी बहुत जटिल है। वहां कौन पिट रहा है, जरूरी नहीं कि वह ि पटने के योग्य हो।कौन पीट रहा है, यह जरूरी नहीं कि वह बेचारा गलत ही कर रहा है। मुल्ला ने कहा—उस आदमी को मैं ढूंढूंगा। ढूंढ़ा भी। लेकिन जो छोटा-सा आदमी इतने बड़े आदमी की जेब काटकर निकल भागा था—वह मुल्ला को मिल गया और उसने फौरन मनीबेग जो चुराया था, मुल्ला को दे दिया, कहा इसे संभाल, असली मालिक तू ही है। क्योंकि मैं तो पिट गया था।

जिंदगी जटिल है। महावीर जैसे व्यक्ति उसको उसकी पूरी जटिलता में देखते हैं और जब वह उसकी पूरी जटिलता में दिखाई पड़ती है तो क्या होगा उनसे, कहना आसान नहीं है।और प्रत्येक घटना में ज टिलता बदलती चली जाती है। डाइनेमिक बहाव है।

संयम पर आज कुछ समझ लें। क्योंकि महावीर उसे धर्म का दूसरा महत्वपूर्ण सूत्र कहते हैं।अहिंसा आत्मा है, संयम जैसे श्वास और तप जैसे देह। महावीर ने शुरू किया, कहा पहले अहिंसा—संजमो तवो। तप आखिर में कहा, संयम बीच में कहा, अहिंसा पहले कहा। हम जब भी देखते हैं, तप हमें पहले दिखाई पड़ता है। संयम पीछे दिखाई पड़ता है। अहिंसा तो शायद ही दिखाई पड़ती है, बहुत मुश्किल है देखना।

महावीर भीतर से बाहर की तरफ चलते हैं, हम बाहर से भीतर की तरफ चलते हैं। इसलिए हम तपस्वी की जितनी पूजा करते हैं उतनी अहिंसक की न कर पांएगे। क्योंकि तप हमें दिखाई पड़ता है, वह देह जैसा बाहर है। अहिंसा गहरे में है। वह दिखाई नहीं पड़ती, वह अदृश्य है। संयम का हम अनुमान लगाते हैं। जब हमें कोई तपस्वी दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं, संयमी है। क्योंकि वह तप कैसे करेगा! जब कोई हमें भोगी दिखाई पड़ता है तो हम समझते हैं, असंयमी है, नहीं भोग कैसे करेगा! जरूरी नहीं है यह। तपस्वी भी असंयमी हो सकता है और ऊपर से दिखाई पड़नेवाला भोगी भी संयमी हो सकता है। इसलिए हम संयम का सिर्फ अनुमान लगाते हैं, वह इनोसेंट है। तब हमें दिखाई पड़ जाता है, वह साफ है। संयम का हम अनुमान लगाते हैं, वह साफ नहीं है। वह अनुमान हमारा ऐसा ही है जैसे रास्ते पर गिरा हुआ पानी देखकर हम सोचें कि वर्षा हुई होगी। म्युनिसिपल की मोटर भी

100

□

संयम : मध्य में रुकना

पानी गिरा जा सकती है। पुराने तर्क-शास्त्रों की किताबों में लिखा है कि जहां-जहां पानी गिरा दिखाई पड़े समझना कि वर्षा हुई होगी, क्योंकि उस वक्त म्युनिसिपल की मोटर नहीं थी।

संयम हम अनुमान लगाते हैं कि जो आदमी तप कर रहा है, वह संयमी है—जरूरी नहीं। तप करनेवाला असंयमी हो सकता है, यद्यपि संयमी के जीवन में तप होता है। लेकिन तपस्वी के जीवन में संयम का होना आवश्यक नहीं है। महावीर भीतर से चलते हैं। क्योंकि वहीं प्राण है और वहीं से चलना उचित है। क्षुद्र से ि वराट की तरफ जाने में सदा भूलें होती हैं। विराट से क्षुद्र की तरफ आने में कभी भूल नहीं होती। क्योंकि क्षुद्र से जो विराट की तरफ चलता है वह क्षुद्र की धारणाओं को विराट तक ले जाता है। इससे भूल होती है। उसकी संकीर्ण दृष्टि को वह खींचता है। उससे भूल होती है।

तो संयम का पहले तो हम अर्थ समझ लें। संयम से जो समझा जाता रहा है, वह महावीर का प्रयोजन नहीं है। जो आमतौर से समझा जाता है, उसका अर्थ है— निरोध, विरोध, दमन, नियंत्रण, कंट्रोल। ऐसा भाव हमारे मन में बैठ गया है संयम से। कोई आदमी अपने को दबाता है, रोकता है, वृत्तियों को बांधता है, नियंतरण रखता है तो हम कहते हैं, संयमी है। संयम की हमारी परिभाषा बड़ी निषेधात्मक है, बड़ी निगेटिव है। उसका कोई विधायक रूप हमारे खयाल में नहीं है। एक आदमी कम खाना खाता है, तो हम कहते हैं कि संयमी है। एक आदमी कम सोता है तो हम कहते हैं कि संयमी है। एक आदमी विवाह नहीं करता है तो हम कहते हैं, संयमी है। एक आदमी कम कपड़े पहनता है तो हम कहते हैं, संयमी है। सीमा बनाता है तो हम कहते हैं, संयमी है। जितना निषेध करता है, जितनी सीमा बनाता है, जितना नियंत्रण करता है, ि जतना बांधता है अपने को, हम कहते हैं उतना संयमी है।

लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि महावीर जैसे व्यक्ति जीवन को निषेध की परिभाषाएं नहीं देते। क्योंकि जीवन निषेध से नहीं चलता है। जीवन चलता है विधेय से, पाजिटिव से। जीवन की सारी ऊर्जा विधेय से चलती है। तो महावीर की यह परिभाषा नहीं हो सकती। महावीर की परिभाषा तो संयम के लिए बड़ी विधेय की होगी, बड़ी विधायक होगी। सशक्त होगी, जीवंत होगी। इतनी मुर्दा नहीं हो सकती जितनी हमारी परिभाषा है।

इसीलिए हमारी परिभाषा मानकर जो संयम में जाता है उसके जीवन का तेज बढ़ता हुआ दिखाई नहीं पड़ता, और क्षीण होता हुआ मालूम पड़ता है। मगर हम कभी फिक्र नहीं करते, हम कभी खयाल नहीं करते कि महावीर ने जो संयम की बात कही है उससे तो जीवन की महिमा बढ़नी चाहिये, उससे तो प्रतिभा और आभामंडित होनी चाहिये। लेकिन जिनको हम तपस्वी कहते हैं उनकी आइ क्यू की कभी जांच करवायी कि उनकी बुद्धि का कितना अंक बढ़ा? उनकी बुद्धि का अंक और कम होगा लेकिन हमें प्रयोजन नहीं कि इनकी प्रतिभा नीचे गिर रही है। हमे प्रयोजन है कि रोटी कितनी खा रहे हैं, कपड़ा कितना पहन रहे हैं। बुद्धिहीन से बुद्धिहीन टिक सकता है, अगर वह रोटी बना ले — अगर दो रोटी पर राजी हो जाए, अगर एक बार भोजन को तैयार हो जाए।

एक साधु मेरे पास आये थे। वे मुझसे कहने लगे कि आपकी बात मुझे ठीक लगती है। मैं छोड़ देना चाहता हूं यह परंपरागत साधुता। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पडूंगा। अभी करोड़पति मेरे पैर छूता है। कल वह मुझे पहरेदार नौकरी भी देने को तैयार नहीं हो सकता, वही आदमी। कभी सोचा है आपने कि जिसके आप पैर छूते हैं अगर वह घर में बर्तन मलने के लिए आपके पास आए तो आप कहेंगे, सर्टिफिकेट है? कहां करते थे नौकरी, पहले? कहां तक पढ़े हो? चोरी-चपाटी तो नहीं करते? लेकिन पैर छूने में किसी प्रमाण-पत्र की कोई जरूरत नहीं है। इतना प्रमाण-पत्र काफी होता है कि आपकी बुद्धि की समझ में आ जाए कि यह संयमी है। संयम का जैसे अपने में हमने कोई मूल्य समझ रखा है कि जो अपने को

रोक लेता है तो संयमी है। रोक लेने में जैसे अपना कोई गुण है। नहीं, जीवन के सारे गुण फैलाव के हैं। जीवन के सारे गुण विस्तार के हैं। जीवन के सारे गुण विधायक उपलब्धि के हैं, निषेध के

नहीं हैं। महावीर के लिए संयम और है। उसकी हम बात करें, लेकिन हम जिसे संयम समझते हैं उसको भी हम खयाल में ले लें।

हमारे लिए संयम का अर्थ है— अपने से लड़ता हुआ आदमी; महावीर के ि लए संयम का अर्थ है— अपने साथ से राजी हुआ आदमी। हमारे लिए संयम का अर्थ है— अपनी वृत्तियों को संभालता हुआ आदमी; महावीर के लिए संयम का अर्थ है— अपनी वृत्तियों का मालिक हो गया जो। संभालता वही है, जो मालिक नहीं है। संभालना पड़ता ही इसलिए है कि वृत्तियां अपनी मालकियत रखती हैं। लड़ना पड़ता इसीलिए है कि आप वृत्तियों से कमजोर हैं। अगर आप वृत्तियों से ज्यादा शक्तिशाली हैं तो लड़ने की जरूरत नहीं रहती। वृत्तियां अपने से गिर जाती हैं। महावीर के लिए संयम का अर्थ है— आत्मवान, इतना आत्मवान कि वृत्तियां उसके सामने खड़ी भी नहीं हो पातीं, आवाज भी नहीं दे पातीं। उसका इशारा पर्याप्त है। ऐसा नहीं है कि उसे क्रोध को दबाना पड़ता है, ताकत लगाकर। क्योंकि जिसे ताकत लगाकर दबाना पड़े, उससे हम कमजोर हैं। और जिसे हमने ताकत लगाकर दबाया है, उसे हम कितना ही दबायें, हम दबा न पाएंगे। वह आज नहीं कल टूटता ही रहेगा, फूटता ही रहेगा, बहता ही रहेगा। महावीर कहते हैं : संयम का अर्थ है— आत्मवान— इतना आत्मवान है व्यक्ति कि क्रोध क्षमता नहीं जुटा सकता कि उसके सामने आ जाए।

एक कालेज में मैं था। वहां एक बहुत मजेदार घटना घटी। उस कालेज के च्पिरंसिपल बहुत शक्तिशाली आदमी थे। बहुत दिन से प्रिंसिपल थे। उम्र भी हो गयी रिटायर होने की, लेकिन वे रिटायर नहीं होते थे। प्राइवेट कालेज था। कमेटी के लोग उनसे डरते थे। प्रोफेसर उनसे डरते थे। फिर दस-पांच प्रोफेसरों ने इकट्ठा होकर कुछ ताकत जुटाई। और उनमें से जो सबसे ताकतवर प्रोफेसर था, उसको आगे बढ़ाने की कोशिश की और कहा कि तुम सबसे ज्यादा पुराने भी हो, सीनियर मोस्ट भी हो, तुम्हें प्रिंसिपल होना चाहिए और इस आदमी को अब हटना चाहिए। सारे प्रोफेसरों ने ताकत लगाकरमैंने उनसे कहा भी कि देखो, तुम झंझट में पड़ोगे, क्योंकि मैं जानता हूं कि तुम सब कमजोर हो। और जिस आदमी को तुम आगे बढ़ा रहे हो, वह आदमी बिलकुल कमजोर है। फिर भी वे नहीं माने। उन्होंने कहा— सब संगठित हैं, संगठन में शक्ति है। सा रे प्रोफेसर प्रिंसिपल के खिलाफ इकट्ठे हो गये और एक दिन उन्होंने कालेज पर कब्जा भी कर लिया। और जिन सज्जन को चुना था, उनको प्रिंसिपल की कुर्सी पर बिठा दिया।

मैं देखने पहुंचा कि वहां क्या होनेवाला है। जो प्रिंसिपल थे उन्हें ठीक वक्त पर, उनके घर खबर कर दी गयी कि ऐसा-ऐसा हुआ है। उन्होंने कहा, हो जाने दो। वे ठीक वक्त पर ग्यारह बजे, जैसे रोज आते थे, आये दच्फतर में। वे दच्फतर में आये तो जिसको बिठाला था, उस आदमी ने उठकर नमस्कार किया और कहा — आइये, बै ठिये। वह तत्काल हट गया वहां से। उस प्रिंसिपल ने पुलिस को खबर नहीं की। इन लोगों ने खबर कर रखी थी कि कोई गड़बड़ हो तो! मैंने उनसे पूछा कि आपने पुलिस को खबर नहीं की? उन्होंने कहा— इन लोगों के लिए पुलिस को खबर! इनको जो करना है, करने दो।

शक्ति जब स्वयं के भीतर होती है तो वृत्तियों से लड़ना नहीं पड़ता । वृत्तियां आत्मवान व्यक्ति के सामने सिर झुकाकर खड़ी हो जाती हैं; वे तो कमजोर आत्मा के सामने ही सिर उठाती हैं। इसलिए तो हमने आमतौर से सुन रखी है परिभाषा

संयम की— कि जैसे कोई सारथी रथ में बंधे हुए घोड़ों की लगामें पकड़े हुए बैठा है— ऐसा अर्थ संयम का नहीं है। वह दमन का अर्थ है, और गलत है।

संयम का महावीर के लिए तो अर्थ है— जैसे कोई शक्तिवान अपनी शक्ति में प्रतिष्ठित है। उसकी शक्ति में प्रतिष्ठित होना ही, उसका अपनी ऊर्जा में होना ही वृत्तियों का निर्बल और नपुंसक हो जाना है, इम्पोटेंट हो जाना है। महावीर अपनी कामवासना पर वश पाकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होते। ब्रह्मचर्य की इतनी ऊर्जा है कि कामवासना सिर नहीं उठा पाती। यह विधायक अर्थ है। महावीर अपनी हिंसा से लड़कर अहिंसक नहीं बनते। अहिंसक हैं, इसलिए हिंसा सिर नहीं उठा पाती। महावीर अपने क्रोध से लड़कर क्षमा नहीं करते। क्षमा की इतनी शक्ति है कि क्रोध को उठने का अवसर कहां है! महावीर के लिए अर्थ है— स्वयं की शक्ति से

102

संयम : मध्य में रुकना

परिचित हो जाना संयम है।

संयम इसे क्यों नाम दिया है? संयम नाम बहुत अर्थपूर्ण है और संयम का, संयम शब्द का अर्थ भी बहुत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजी में जितनी भी किताबें लिखी गयी हैं और संयम के बाबत जिन्होंने भी लिखा है, उन्होंने उसका अनुवाद कंट्रोल किया है जो कि गलत है।अंग्रेजी में सिर्फ एक शब्द है जो संयम का अनुवाद बन सकता है, लेकिन भाषाशास्त्री को खयाल में नहीं आएगा। क्योंकि भाषा की दृष्टि से वह ठीक नहीं है। अंग्रेजी में जो शब्द है ट्रैंक्विलिटी, वह संयम का अर्थ हो सकता है। संयम का अर्थ है— इतना शांत कि विचलित नहीं होता, जो। संयम का अर्थ है— अविचलित, निष्कंप। संयम का अर्थ है — ठहरा हुआ। गीता में कृष्ण ने जिसे स्थितप्रज्ञ कहा है, महावीर के लिए वही संयम है। संयम का अर्थ है— ठहरा हुआ, अविचलित, निष्कंप, डांवाडोल नहीं होता है, जो। जो यहां-वहां नहीं डोलता रहता, जो कंपित नहीं होता रहता, जो अपने में ठहरा हुआ है। जो पैर जमाकर अपने में खड़ा हुआ है।

इसे हम और दिशा से समझें तो खयाल में आ जाएगा। अगर संयम का ऐसा अर्थ है तो असंयम का अर्थ हुआ कंपन, वेवरिंग, ट्रेंबलिंग। यह जो कंपता हुआ मन है, और कंपते हुए मन का नियम है कि वह एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अगर कामवासना में जाएगा तो अति पर चला जाएगा। फिर ऊबेगा, परेशान होगा— क्योंकि किसी भी वासना में होना संभव नहीं है सदा के लिए। सब वासनाएं उबा देती हैं, सब वासनाएं घबरा देती हैं क्योंकि उनसे मिलता कुछ भी नहीं है। मिलने के जितने सपने थे, वे और टूट जाते हैं। सिवाय विफलता और विषाद के कुछ हाथ नहीं लगता । तो वासना घिरा मन अति पर जाता है, फिर वासना से ऊब जाता है, घबड़ा जाता है फिर दूसरी अति पर चला जाता है। फिर वह वासना के विपरीत खड़ा हो जाता है। कल तक ज्यादा खाता था, फिर एकदम अनशन करने लगता है।

इसलिए ध्यान रखना, अनशन की धारणा सिर्फ ज्यादा भोजन उपलब्ध समाजों में होती है। अगर जैनियों को उपवास और अनशन अपील करता है तो उसका कारण यह नहीं है कि वे महावीर को समझ गये हैं कि उनका क्या मतलब होता है। उसका कुल मतलब इतना है कि वह ओवर-फैड समाज है। ज्यादा उनको खाने को मिला हुआ है, और कोई कारण नहीं है। कभी आपने देखा है, गरीब का जो धार्मिक दिन होता है, उस दिन वह अच्छा खाना बनाता है। और अमीर का जो धार्मिक दिन होता है, उस दिन वह उपवास करता है। अजीब मामला है। अजीब मजा है। तो जितने गरीब धर्म हैं दुनिया में, उनका उत्सव का दिन ज्यादा भोजन का दिन है। जितने अमीर धर्म हैं दुनिया में, उनके उत्सव का दिन उपवास का दिन है। जहां-जहां भोजन बढ़ेगा वहां-वहां उपवास का कल्ट बढ़ता है। आज अमरीका में जितने उपवास का कल्ट है, आज दुनिया में कहीं भी नहीं है। अमरीका में जितने लोग आज उपवास की चर्चा करते हैं और फास्टिंग की सलाह देते हैं,

नैचरोपैथी पर लोग उत्सुक होते हैं, उतने दुनिया में कहीं भी नहीं। उसका कारण है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आप महावीर को समझकर उत्सुक हो रहे हैं। आप ज्यादा खा गये हैं, इसलिए उत्सुक हो रहे हैं। दूसरी अति पर चले जाएंगे। पर्युषण आएगा, आठ दिन, दस दिन आप कम खा लेंगे और दस दिन योजनाएं बनाएंगे खाने की, आगे। और दस दिन के बाद पागल की तरह टूटेंगे और ज्यादा खा जाएंगे और बीमार पड़ेंगे। फिर अगले वर्ष यही होगा।
सच तो यह है कि ज्यादा खानेवाला जब उपवास करता है तो उससे कुछ उपलब्ध नहीं होता, सिवाय इसके कि उसको भोजन करने का रस फिर से उपलब्ध हो, रीओरिएंटेशन हो जाता है।आठ-दस दिन भूखे रह लिये, स्वाद जीभ में फिर आ जाता है। और महावीर कहते हैं— उपवास में रस से मुक्ति होनी चाहिए, उनका रस और प्रगाढ़ हो जाता है। उपवास में सिवाय रस के बाबत आदमी और कुछ नहीं सोचता, रस चिंतन चलता है और योजना बनती है। भूख जगती है, और कुछ नहीं होता। मर गयी भूख, स्टिल हो गयी

103

भूख, फिर सजीव हो जाती है। दस दिन के बाद आदमी टूट पड़ता है जोर से भोजन पर। अति पर चला जाता है मन। असंयम है एक अति से दूसरी अति, अति पर डोलते रहना। फ्राम वन एक्सट्रीम टु दि अदर। संयम का अर्थ है— मध्य में हो जाना, अनति— नो एक्सट्रीम।
अगर हम समझते हों कि ज्यादा भोजन असंयम है, तो मैं आपसे कहता हूं कि कम भोजन भी असंयम है, दूसरी अति पर। सम्यक आहार संयम है, सम्यक आहार बड़ी मुश्किल चीज है। ज्यादा भोजन करना बहुत आसान है। बिलकुल भोजन न करना बहुत आसान है। ज्यादा खा लेना आसान, कम खा लेना आसान— सम्यक आहार अति कठिन है। क्योंकि मन जो है, वह सम्यक पर रुकता ही नहीं। और महावीर की शब्दावली में अगर कोई शब्द सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है तो वह सम्यक है। सम्यक का अर्थ है— इन दि मिडल, नैवर टु दि एक्सट्रीम। कभी अति पर नहीं, सम। जहां सब चीजें सम हो जाती हों, अति का कोई तनाव नहीं रह जाता, जहां सब चीजें ट्रैंक्विलिटी को उपलब्ध हो जाती हैं। जहां न इस तरफ खींचे जाते, न उस तरफ। जहां दोनों के मध्य में खड़े हो जाते हैं। वह जो सम-स्वर है जीवन का, सभी दिशाओं में सभी दिशाओं में, उस सम-स्वरता को पा लेना संयम है। हम उसे कभी न पा सकेंगे। क्योंकि हम निषेध करते हैं। निषेध में हम दूसरी अति पर होते हैं। निषेध के लिए दूसरी अति पर जाना जरूरी होता है।
सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक चुनाव में खड़ा हो गया। दौरा कर रहा था अपने कांस्टिच्टयूएंसी का, अपने चुनावक्षेत्र का। बड़े नगर में आया, जो केन्दर था चुनावक्षेत्र का। मित्रों से मिला। एक मित्र ने कहा कि फलां आदमी तुम्हारे खिलाफ ऐसा ऐसा बोलता था। तो मुल्ला जितनी गाली जानता था, उसने सब दीं।
उसने कहा—वह आदमी कोई आदमी है, शैतान की औलाद है। और एक दफा मुझे चुन जाने दो, उसे नरक भिजवाकर रहूंगा।
उस मित्र ने कहा कि मैंने तो सिर्फ सुना था कि मुल्ला, तुम बहुत अच्छी गालियां दे सकते हो, इसलिए मैंने यह कहा। वह आदमी तुम्हारा बड़ा प्रशंसक है।
मुल्ला ने कहा कि मैं पहले से ही जानता हूं, वह देवता है। एक दफा मुझे चुन जाने दो, देखना, मैं उसकी पूजा करवा दूंगा, मंदिरों में बिठा दूंगा। वह आदमी देवता है।
उस आदमी ने कहा— मुल्ला, इतनी जल्दी तुम बदल जाते हो?

मुल्ला ने कहा— कौन नहीं बदल जाता? सभी बदल जाते हैं। मन ऐसा ही बदलता है। जो आज रूप की देवी मालूम पड़ती है, कल वही साक्षात कुरूपता मालूम पड़ सकती है।

मन तत्काल एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। जिसे आज आप शिखरों पर बिठाते हैं, कल उसे आप घाटियों में उतार देते हैं। मन बीच में नहीं रुकता। क्योंकि मन का अर्थ है— तनाव, टैंशन। बीच में रुकेंगे तो तनाव तो होगा नहीं। जब तक अति पर न हो तब तक तनाव नहीं होता। इसलिए एक अति से दूसरी अति पर मन डोलता रहता है। मन जी ही सकता है अति में। संयम में तो मन समाप्त हो जाता है। इसलिए जब आप कहते हैं— फलां आदमी के पास बड़ा संयमी मन है तब आप बिलकुल गलत कहते हैं। संयमी के पास मन होता ही नहीं।इसलिए झेन-बौद्धों में जो फकीर हैं वे कहते हैं— संयम तभी उपलब्ध होता है जब 'नो-माइंड' उपलब्ध होता है। जब मन नहीं रह जाता है। कबीर ने कहा है— जब अ-मनी अवस्था आती है, नो-माइंड की, अ-मनी—मन नहीं रह जाता, तभी संयम उपलब्ध होता है। अगर हम ऐसा कहें कि मन ही असंयम है, तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी। ठीक ही होगा यही। मन ही असंयम है। मन का नियम है—तनाव, खिंचे रहो। खिंचे रहो इसके लिए जरूरी है कि अति पर रहो, नहीं तो खिंचे नहीं रहोगे। अति पर रहो, तो खिंचाव बना रहेगा, तनाव बना रहेगा, चित्त तना रहेगा। और हम सब ऐसे लोग

हैं कि जितना चित्त तना रहे, उतना ही हमें लगता है कि हम जीवित हैं। अगर चित्त में कोई तनाव न हो तो हमें लगता है— मरे, मर न जाएं, खो न जाएं।

जो लोग ध्यान में गहरा उतरते हैं, मुझे आकर कहने लगते हैं कि अब तो बहुत डर लगता है। ऐसा लगता है, कहीं मर न जाऊं। मरने का कोई सवाल ही नहीं है ध्यान में, लेकिन डर लगने का सवाल है। डर इसलिए लगता है कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता है, मन शून्य होता है। और जब मन शून्य होता है, तो हमने तो अपने को मन ही समझा हुआ है, तो लगता है हम मरे। मिट न जाएंगे! अगर अतीत छोड़ देंगे तो समाप्त न हो जांएगे! गति कहां रहेगी, फिर हम समाप्त ही हो जाएंगे।

ड्ड ग्रीन ने अमरीका में एक यंत्र बनाया हुआ है— फीड-बैक यंत्र है, और कीमती है। और आज नहीं कल, सभी मंदिरों में लग जाना चाहिए, सभी गिरजाघरों में, सभी चचोच में। एक यंत्र है जिसकी कुर्सी पर आदमी बैठ जाता है और सामने उसकी कुर्सी पर पर्दा लगा होता है। उस पदच पर थर्मामीटर की तरह प्रकाश घटने बढ़ने लगता है। दो रेखाओं में प्रकाश ऊपर बढ़ता है, जैसे थर्मामीटर का पारा ऊपर बढ़ता है। आपके मस्तिष्क में दोनों तरफ खोपड़ी पर तार बांध दिये जाते हैं। ये तार उन प्रकाशों से जुड़े होते हैं। और आपका मन जब अतियों में चलता है तो एक रेखा बिलकुल आ समान छूने लगती है, दूसरी जीरो पर हो जाती है। बहुत अदभुत, महत्वपूर्ण है वह। जब आप सोच रहे होते हैं कामवासना के संबंध में, तब एक रेखा आपकी आसमान छूने लगती है, दूसरी शून्य पर हो जाती है। सामने पास में ग्रीन खड़ा है, वह आ पको तस्वीरें दिखाता है, नंगी औरतों की, और आपके मन में कामवासना को जगाता है। साथ में संगीत बजता है, जो आपके भीतर कामवा सना को जगाता है। एक रेखा आसमान को छूने लगती है, दूसरी शून्य पर हो जाती है। फिर तस्वीरें हटा ली जाती हैं। फिर बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट के चित्र दिखाये जाते हैं। फिर संगीत बदल दिया जाता है। ब्रह्मचर्य का कोई सूत्र आदमी के सामने रख दिया जाता है और उनसे कहा जाता है ब्रह्मचर्य के संबंध में चिंतन करो। तो एक रेखा नीचे गिरने लगती है, दूसरी रेखा ऊपर चढ़ने लगती है। और वह तब तक नहीं रुकता आदमी, जब तक कि पहली शून्य न हो जाए और दूसरी पूर्ण न हो जाए। ग्रीन कहता है— यह चित्त की अवस्था है।

फिर ग्रीन तीसरा प्रयोग करता है। वह कहता है— तुम कुछ मत सोचो। न तुम ब्रह्मचर्य के संबंध में सोचो, न तुम कामवासना के संबंध में सोचो। तुम तो सामने देखो और सिर्फ इतना ही खयाल करो कि यह शांत मेरा मन हो जाए और ये दोनों रेखाएं समतुल हो जाएं। वह आदमी देखता है, एक रेखा नीचे गिरने लगी, दूसरी ऊपर बढ़ने लगी। इसको फीड-बैक कहता है, ग्रीन। इससे उसकी हिम्मत बढ़ती है कि कुछ हो रहा है।

इसलिए मैं कहता हूं कि ध्यान के लिए सारे मंदिरों में वह यंत्र लग जाना चाहिए।क्योंकि आपको पता नहीं चलता कि कुछ हो रहा है कि नहीं हो रहा है। पता चले कि हो रहा है तो आपकी हिम्मत बढ़ती है। तो जितनी उसकी हिम्मत बढ़ती है, उतनी जल्दी उसकी रेखाएं करीब आने लगती हैं। जितनी करीब आने लगती हैं, वह फीड-बैक मैकेनिज्म हो गया। वह देखता है, उसे लगता है कि हो रहा है मन शांत। वह और शांत होता है, और शांत होता है। यंत्र में दिखाई पड़ता है, और शांत हो रहा है, और शांत होने की हिम्मत बढ़ती है। बहुत शीघ्र— पंद्रह मिनट, बीस मिनट, तीस मिनट में दोनों रेखाएं साथ, समान आ जाती हैं। और जब दोनों रेखाएं समान आती हैं तब वह आदमी कहता है— आह! ऐसी शांति कभी नहीं जानी। ऐसा कभी जाना ही नहीं। इसको— ग्रीन को एक नया शब्द देना पड़ा है क्योंकि कोई शब्द नहीं कि इसको कौन-सा अनुभव कहें। तो वह कहता है— 'अहा ऐक्सपीरिएंस!' जब वे दोनों रेखाएं शांत हो जाती हैं तब आदमी कहता है— अहा!

और एक दफा यह अनुभव में आ जाए तो संयम का खयाल आ सकता है, अन्यथा संयम का खयाल नहीं आ सकता है। संयममहावीर-वाणी भाग : 1

का अर्थ है— चित्त जहां कोई भी अति में न हो, और 'अहा ऐक्सपीरिएंस' में आ जाए। एक अहोभाव भर रह जाए, एक शांत मुद्रा रह जाए, तो संयम है।और यह संयम बड़ी पाजिटिव बात है।

जब दोनों अतियां साथ खड़ी हो जाती हैं तब दोनों एक-दूसरे को काट देती हैं, और आदमी मुक्त हो जाता है। लोभ और त्याग दोनों सम हो गये, तो फिर आदमी त्यागी भी नहीं होता, लोभी भी नहीं होता। और जहां तक लोभ होता है वहां तक बेचैनी होती है और जहां तक त्याग होता है वहां तक भी बेचैनी होती है। क्योंकि त्याग उलटा खड़ा हुआ लोभ ही है, और कुछ भी नहीं है—शीर्षासन करता हुआ लोभ है।

जब तक कामवासना मन को पकड़ती है तब तक भी बेचैनी होती है और जब तक ब्रह्मचर्य आकर्षण देता है तब तक भी बेचैनी होती है, क्योंकि ब्रह्मचर्य है क्या? उलटा खड़ा हुआ काम है, शीर्षासन करता हुआ काम। वास्तविक ब्रह्मचर्य तो उस दिन उपलब्ध होता है कि जिस दिन ब्रह्मचर्य का भी पता नहीं रह जाता। वास्तविक त्याग तो उस दिन उपलब्ध होता है जिस दिन त्याग का बोध भी नहीं रह जाता। पता भी नहीं रहता, क्योंकि पता कैसे रहेगा? जिसके मन में लोभ ही न रहा, उसे त्याग का पता कैसे रहेगा? अगर त्याग का पता है तो लोभ कहीं न कहीं पीछे छिपा हुआ खड़ा है। वही तो पता करवाता है। कंट्रास्ट चाहिए न, पता होने को। काली रेखा चाहिए न, सफेद कागज पर! काले ब्लेक-बोर्ड पर सफेद चाक चाहिए न। नहीं तो दिखेगा कैसे? जब तक आपको दिखता है मैं त्यागी, तब तक आप जानना कि भीतर मैं लोभीमजबूती से खड़ा है। नहीं तो दिखेगा कैसे। जब तक आपको यह लगता है कि मैं ब्रह्मचारी! तब तक आप चोटी-वोटी बांधकर और तिलक-टीका लगाकर जोर से घोषणा करते फिरते हैं खड़ाऊं बजाकर, कि मैं ब्रह्मचारी! तब तक आप समझना कि पीछे उपद्रव छिपा है। आपकी चोटी देखकर लोगों को सावधान हो जाना चाहिए कि खतरनाक आदमी आ रहा है। खड़ाऊं वगैरह की आवाज सुनकर लोगों को सचेत हो जाना चाहिए। वह पीछे छिपा है जो ब्रह्मचर्य का दावा कर रहा है, वह कामवासना का ही रूप है।

संयम महावीर कहते हैं उस क्षण को, जहां न काम रहा, न ब्रह्मचर्य रहा। जहां न लोभ रहा, न त्याग रहा। जहां न यह अति पकड़ती है, न वह अति पकड़ती है। जहां आदमी अनति में, मौन में, शांति में थिर हो गया। जहां दोनो बिंदु समान हो गये। जहां एक-दूसरे की शक्ति ने एक-दूसरे को काटकर शून्य कर दिया। संयम यानी शून्य। और इसलिए संयम सेतु है। इसलिए संयम के ही माध्यम से कोई व्यक्ति परमगति को उपलब्ध होता है।

इसलिए संयम को श्वास मैंने कहा। और कारणों से भी श्वास कहा है। क्योंकि आपको शायद पता न हो, आप श्वास में भी असंयमी होते हैं। या तो आप ज्यादा श्वास लेते होते हैं या कम श्वास लेते होते हैं। पुरुष ज्यादा श्वास लेने से पीड़ित हैं, स्त्रियां कम श्वास लेने से पीड़ित हैं। जो आक्रामक हैं वे ज्यादा श्वास लेने से पीड़ित होते हैं, जो सुरक्षा के भाव में पड़े रहते हैं वे कम श्वास लेने से पीड़ित होते हैं। हममें से बहुत कम लोग हैं जिन्होंने सच में ही संयमित श्वास भी ली हो, और तो दूसरे काम करने बहुत कठिन हैं। श्वास तो आपको लेनी भी नहीं पड़ती, उसमें कोई लाभ-हानि भी नहीं है। लेकिन वह भी हम संयमित नहीं लेते। हमारी श्वास भी तनाव के साथ चलती है। खयाल करें आप, कामवासना में आपकी श्वास तेज हो जाएगी। आप उतने ही समय में, जितनी आप साधारण श्वास लेते हैं, दुगुनी और तिगुनी श्वास लेंगे। इसलिए पसीना आ जाएगा, शरीर थक जाएगा। अब अगर कोई आदमी ब्रह्मचर्य साधने की कोशिश करेगा तो साधने में वह श्वास कम लेने लगेगा। ठीक विपरीत होगा—होगा ही।

असल में ब्रह्मचारी जो है, वह एक अर्थ में कंजूस है, सब मामलों में। यह नहीं कि वह वीर्य-शक्ति के मामले में कंजूस है। जैसे वह कंजूस होता है सब मामलों में, वैसे वह श्वास के मामले में भी कंजूस हो जाता है। अगर हम बायलाजिकली समझने की

कोशिश करें तो जो ब्रह्मचर्य की कोशिश है, वह एक तरह की कांस्टिपेशन की कोशिश है। कोष्टबद्धता है वह।आदमी सब चीजों को भीतर रोक लेना चाहता है, कुछ निकल न जाए शरीर से उसके। तो श्वा स भी वह धीमी लेगा। सब चीजों को रोक लेगा। वह रुकाव उसके चारों तरफ व्यक्तित्व में खड़ा हो जाएगा। ये अतियां हैं।

श्वास की सरलता उस क्षण में उपलब्ध होती है, जब आपको पता ही नहीं चलता कि आप श्वास ले भी रहे हैं । ध्यान में जो लोग भी गहरे जाते हैं उनको वह क्षण आ जाता है— वे मुझे आकर कहते हैं कि कहीं श्वास बंद तो नहीं हो जाती! पता नहीं चलता, बंद नहीं होती श्वास। श्वास चलती रहती है। लेकिन इतनी शांत हो जाती है, इतनी समतुल हो जाती है, बाहर जाने वाली श्वास, भीतर आने वाली श्वास ऐसी समतुल हो जाती है कि दोनों तराजू बराबर खड़े हो जाते हैं। पता ही नहीं चलता। क्योंकि पता चलने के लिए थोड़ा बहुत हलन-चलन चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ी बहुत डगमगाहट चाहिए। पता चलने के लिए थोड़ा मूवमेंट चाहिए। यह सब मूवमेंट एक अर्थ में थिर हो जाता है। ऐसा नहीं कि नहीं चलता। चलता है, लेकिन दोनों तुल जाते हैं। जो व्यक्ति जितना संयमी होता है उतनी उसकी श्वास भी संयमित हो जाती है। या जिस व्यच्कित की जितनी श्वास संयमित हो जाती है उतना उसके भीतर संयम की सुविधा बढ़ जाती है इसलिए श्वास पर बड़े प्रयोग महावीर ने किये।

श्वास के संबंध में भी अत्यंत संतुलित, और जीवन के और सारे आया मों में भी अत्यंत संतुलित। महावीर कहते हैं— सम्यक आहार, सम्यक व्यायाम, सम्यक निद्रा, सम्यक सभी कुछ सम्यक हो। वे नहीं कहते हैं कि कम सोओ; वे नहीं कहते कि ज्यादा सोओ; वे कहते इतना ही सोओ जितना सम है। वे नहीं कहते कम खाओ, ज्यादा खाओ; वे कहते हैं उतना ही खाओ जितना सम पर ठहर जाता है। इतना खाओ कि भूख का भी पता न चले और भोजन का भी पता न चले। अगर खाने के बाद भूख का पता चलता है तो आपने कम खाया और अगर खाने के बाद भोजन का पता चलने लगता है तो आपने ज्यादा खा लिया। इतना खाओ कि खाने के बाद भूख का भी पता न चले और पेट का भी पता न चले। लेकिन हम दोनों नहीं कर पाते हैं, या तो हमें भूख का पता चलता है और या हमें पेट का पता चलता है। भोजन के पहले भूख का पता चलता है और भोजन के बाद भोजन का पता चलता है, लेकिन पता चलना जारी रहता है।

महावीर कहते हैं— पता चलना बीमारी है। असल में शरीर के उसी अंग का पता चलता है जो बीमार होता है। स्वस्थ अंग का पता नहीं चलता। सिरदर्द होता है तो सिर का पता चलता है, पैर में कांटा गड़ता है तो पैर का पता चलता है। महावीर कहते हैं— सम्यक आहार, पता ही न चले— भूख का भी नहीं, भोजन का भी नहीं— सोने का भी नहीं, जागने का भी नहीं—श्रम का भी नहीं, विश्राम का भी नहीं। मगर हम दो में से कुछ एक ही कर पाते हैं। या तो हम श्रम ज्यादा कर लेते हैं, या विश्राम ज्यादा कर लेते हैं।

कारण क्या है यह ज्यादा कर लेने का? कुछ भी ज्यादा कर लेने का? का रण यही है कि ज्यादा करने में हमें पता चलता है कि हम हैं। हमें पता चलता है कि हम हैं और हम चाहते यही हैं कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। यही महावीर की अहिंसा के बाबत मैंने आपसे कहा कि अहिंसा का अर्थ है— हमें पता ही न चले कि हम हैं। ऐब्सेंट हो जाएं— अनुपस्थित। पर हमारा मन होता है, हमारा पता चले कि हम हैं। यही अहंकार है कि हमें पता चलता रहे कि हम हैं। न केवल हमें, बल्कि औरों को पता चलता रहे कि हम हैं। तो फिर हम असंयम के सिवाय हमारे लिए कोई मार्ग नहीं रह जाता। इसलिए जितना असंयमी आदमी हो, उतना ही उसका पता चलता है।

एमाइल जोला ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि अगर दुनिया में सब अच्छे आदमी हों तो कथा लिखना बहुत मुश्किल हो जाए।

107

कथानक न मिले। अच्छे आदमी की कोई जिंदगी की कहानी होती है? नहीं होती। क्या बताइयेगा? बुरे आदमी की जिंदगी में कहानी होती है। बुरे आदमी की जिंदगी एक कहानी होती है।अच्छे आदमी की जिंदगी अगर सच में ही अच्छी है तो शून्य हो जाती है। कहानी कहां बचती है! कुछ नहीं बचता है। जीसस की जिंदगी का बहुत कम पता है। ईसाई बड़े परेशान रहते हैं कि जिंदगी का बहुत कम पता है। वे कोई उत्तर नहीं दे पाते। जीसस पैदा हुए, इसका पता है। फिर पांच साल की उम्र में एक बार मंदिर में देखे गये, इसका पता है। फिर तीस साल की उम्र में देखे गये, इसका पता है। फिर तैंतीसवे साल में सूली लग गई, इसका पता है। बस इतनी कहानी है। तीस साल की जिंदगी का कोई पता नहीं है।

एक ईसाई फकीर मुझे मिलने आया था। वह कहने लगा— आप महावीर के संबंध में कहते हैं, बुद्ध के संबंध में कहते हैं, कभी आप क्राइस्ट के संबंध में कहें। और वह जो तीस साल, जो बिलकुल पता नहीं है, उसके संबंध में कहें। तो मैंने कहा— थोड़ा तो कहा जा सकता है। लेकिन सच बात यह है कि पता न होने का कुल कारण इतना है कि जीसस की जिंदगी में कुछ भी नहीं था, नो इवेंट। और अगर लोग सूली न लगातेयह भी जीसस की जिंदगी का इवेंट नहीं है, लोगों की जिंदगी का है। लोगों ने सूली लगा दी। इसमें जीसस क्या करें! और अगर लोग सूली न लगाते तो यह भी कथा न होती। लोग न माने तो लोगों ने सूली लगा दी। इसलिए कथा है, नहीं तो जीसस का पता ही नहीं चलता, इस जमीन पर। यह सूली लगानेवालों ने इनको टिका दिया। तो जीसस कोरे कागज की तरह आते और विदा हो जाते। बहुत लोग आये और इसी तरह विदा हो गये हैं।

अगर हम महावीर की जिंदगी में भी खोजें तो किस बात का पता है? कभी किसी ने कान में कीले ठोंक दिये, इसका पता है। लेकिन दिस इ नाट इवेंट इन दि महावीर्'स लाइफ। यह महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है, यह तो कीले ठोंकनेवाले की जिंदगी की घटना है। महावीर का क्या है इसमें हाथ? कि कोई आया और महावीर के चरणों में सिर रख दिया। यह भी महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है। यह तो सिर रखनेवाले की जिंदगी की घटना है, कि किसी ने चिल्लाकर महावीर को तीथच्कर कह दिया, यह भी महावीर की जिंदगी की घटना नहीं है। यह भी तो किसी के चिल्लाने

की घटना है। अगर हम शुद्ध रूप से महावीर की जिंदगी खोजने जाएं तो कोरा कागज हो जाएगी। अच्छे आदमी की कोई जिंदगी नहीं होती।बुरे आदमी की ही जिंदगी होती है। इसलिए कहानी लिखनी हो या सिने-कथा लिखनी हो तो बुरे आदमी को ही चुनना पड़ता है। इसके बिना नहींइसके बिना बहुत मुश्किल हो जाएगा।

रावण के बिना हम रामायण की कल्पना नहीं कर सकते। राम के बिना कर भी सकते हैं। राम की जगह कोई भी अ ब स द भी काम दे सकता है। लेकिन रावण अपरिहार्य है। उसके बिना कहानी में जान ही निकल जाएगी। वही असली कथा है। लोग समझते हैं, राम हैं कथा के केन्द्र, उसके नायक। मैं नहीं समझता। रावण है। हमेशा बुरा आदमी हीरो होता है। इसलिए हीरो बनने से जरा बचना। नायक होने के लिए बुरा होना बिलकुल जरूरी है।

संयमी व्यक्ति के जीवन से सारी घटनाएं विदा हो जाती हैं। और घटनाएं विदा होते ही उसे 'मैं हूं' यह कहने का भी उपाय नहीं रह जाता। और हम सब कहना चाहते हैं कि मैं हूं। इसलिए असंयम हमें जरूरी होता है। कभी ज्यादा खाकर हम जाहिर करते हैं कि मैं हूं, कभी उपवास करके जाहिर करते हैं कि मैं हूं। कभी वेश्या लय में जाहिर करते हैं कि मैं हूं, कभी मंदिर में जाकर जाहिर करते हैं कि मैं हूं। लेकिन हमारा जाहिर करना जारी रहता है। मंदिर में भी कोई देखनेवाला न आये तो हमारा जाने का मन नहीं होता।

हम वही करते हैं जिसे लोग देखते हैं और मानते हैं कि कुछ हो। मैं हूं, इसे बताना होता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं— जितने लोग इस जमीन पर बुरे हो जाते हैं, अगर हम ऐसा समाज बना सकें कि जितना बुरे आदमी को नाम मिलता है— लोग उसे बदनाम कहते हैं, अगर उतना अच्छे आदमी को नाम मिलने लगे तो कोई आदमी बुरा न हो। वे अच्छे हो जाएं।बुरा आदमी भी अस्मिता की,

108

संयम : मध्य में रुकना

अहंकार की खोज में ही बुरा होता है। आप इसको देखते ही नहीं, आप इसकी तरफ ध्यान ही नहीं देते, आप मानते ही नहीं कि तुम हो। उसे कुछ न कुछ करना पड़ता है। उसे कुछ करके दिखाना पड़ता है। अखबार किसी ध्यान करनेवाले की खबर नहीं छापते, किसी की छाती में छुरा भोंकनेवाले की खबर छापते हैं। अखबार इसकी खबर नहीं छापते कि एक स्त्री अपने पति के प्रति जीवन भर निष्ठावान रही। अखबार इसकी खबर छापते हैं कि कौन स्त्री भाग गई।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसके गांव के लोगों ने मजिच्सटरेट बना दिया था , बुढ़ापे में। पहले ही दिन अदालत में कोई मुकदमा नहीं आया। दोपहर हो गयी, मुंशी बेचैन होने लगा— मुल्ला का मुंशी जो था वह बेचैन होने लगा, उदास होने लगा, मक्खी उड़ाते-उड़ाते वहां।

मुल्ला ने कहा— बेचैन मत हो, घबरा मत। हैव फेथ आन च्हयूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रखो। शाम तक कुछ न कुछ होकर रहेगा। तू घबरा मत, इतना बेचैन मत हो। कोई न कोई हत्या होगी, कोई न कोई स्त्री भाग जाएगी, कोई न कोई उपद्रव होकर रहेगा। हैव फेथ आन च्हयूमन नेचर। आदमी के स्वभाव पर भरोसा रख। आदमी बिना कुछ किये नहीं रहेगा।

आदमी के स्वभाव पर भरोसासब अखबार उसी भरोसे पर चलते हैं, नहीं तो कोई अखबार नहीं चल पाता। लेकिन कल घटनाएं घटेंगी, अखबार में जगह नहीं बचेगी । पक्का पता है, आदमी के स्वभाव पर भरोसा है। कोई स्त्री भागेगी, कोई हत्या करेगा, कोई चोरी करेगा, कोई गबन करेगा, कोई मिनिस्टर कुछ करेगा, कोई न कोई कुछ करेगा। कहीं युद्ध होगा, कहीं उपद्रव होगा, कहीं सेना भेजी जाएगी, कहीं क्रांति होगी। आदमी के स्वभाव पर भरोसा है, नहीं तो अखबार सब मुश्किल में पड़ जाएंगे। भले आदमी की दुनिया में अखबार बहुत मुश्किल में होंगे। इसलिए मैंने सुना है स्वर्ग में कोई

अखबार नहीं हैं, नर्क में सब हैं। स्वर्ग में कोई घटना नहीं घटती, नो इवेंट। खबर भी क्या छापियेगा? अगर छापियेगा भी तो, छपते-छपते, बस अंत में कुछ छपेगा नहीं।

भले आदमी की जिंदगी में कोई घटना नहीं है और हम चाहते हैं कि हम हों। घटनाओं के जोड़ के बिना हम नहीं हो सकते। और अगर घटनाएं चाहिये तो आपको तनाव में जीना पड़ेगा, अतियों पर डोलना पड़ेगा। क्रोध करना पड़ेगा, क्षमा करना पड़ेगा। भोग करना पड़ेगा, त्याग करना पड़ेगा। दुश्मनी करनी पड़ेगी, दोस्ती करनी पड़ेगी। संयमी का अर्थ है— जो द्वंद्व में कुछ भी नहीं करता है, जो द्वंद्व के बाहर सरक जाता है। जो कहता है— न दोस्ती करेंगे, न दुश्मनी करेंगे। महावीर किसी से मित्रता नहीं करते हैं क्योंकि महावीर जानते हैं मित्रता एक अति है। महावीर किसी से शत्रुता भी नहीं करते क्योंकि महावीर जानते हैं शत्रुता अति है। लेकिन हम! हम उलटा सोचते हैं। हम सोचते हैं कि अगर दुनिया से शत्रुता मिटानी हो तो सबसे मित्रता करनी चाहिए। आप गलती में हैं। मित्रता एक अति है, उससे शत्रुता पैदा होती है। इधर आप मित्रता करते हैं, ठीक उतनी ही बैलैंसिंग आपको किसी से शत्रुता करनी पड़ेगी। उतना ही संतुलन बनाना पड़ेगा।

मुसलमान फकीर हुआ है, हसन। बैठा है अपनी झोपड़ी में। साधक कुछ पा स बैठे हैं। एक अजनबी सूफी फकीर भीतर प्रवेश करता है, चरणों में गिर जाता है हसन के और कहता है— तुम भगवान हो, तुम साक्षात अवतार हो, तुम ज्ञान के साकार रूप हो। बड़ी प्रशंसा करता है। हसन बैठा सुनता रहता है। जब वह फकीर सब प्रशंसा कर चुकता है तो एक और फकीर वहां बैठा हुआ है— बायजीद, वहां बैठा हुआ है। वह हसन जैसी ही कीमत का आदमी है। जब वह फकीर प्रशंसा करके जा चुका होता है चरण छूकर, तो बायजीद एकदम से हसन को गाली देना शुरू कर देता है। सभी लोग चौंक जाते हैं। बायजीद और हसन को गालियां दे! पीड़ा भी अनुभव करते हैं, लेकिन बायजीद भी कीमती फकीर है। कुछ कोई बोल तो सकता नहीं। हसन बैठा सुनता रहता है। फिर बायजीद गालियां देकर चला जाता है। बायजीद के जाते ही शिष्यों में से कोई पूछता है हसन से कि हमारी समझ में नहीं आया कि

बायजीद ने इस तरह का अभद्र व्यवहार क्यों किया? हसन ने कहा— कुछ नहीं, जस्ट बैलैंसिंग। कोई अभद्र व्यवहार नहीं किया। वह एक आदमी देखते हो पहले, भगवान कह गया। इतनी प्रशंसा कर गया। तो किसी को तो बैलैंस करना ही पड़ेगा। कोई तो संतुलन करेगा ही। नाउ एवरीथिंग इ बैलैंस्ड। अब हम वही हैं जहां इन दोनों आदमियों के पहले थे। अपना काम शुरू करें।

जिंदगी में आप इधर मित्रता बनाते हैं, उधर शत्रुता निर्मित हो जाती है। इधर आप किसी को प्रेम करते हैं, उधर किसी को घृणा करना शुरू हो जाता है। जिंदगी में जब भी आप किसी द्वंद्व को चुनते हैं, तो दूसरे द्वंद्व में भी ताकत पहुंचनी शुरू हो जाती है।आप चाहें, न चाहें, यह सवाल नहीं है। जीवन का नियम यह है। इसलिए महावीर किसी को मित्र नहीं बनाते। और जब वे कहते हैं कि सबसे मेरी मैत्री है, तो उसका मतलब मित्रता से नहीं है। उसका मतलब है कि मेरी किसी से कोई शत्रुता नहीं, मित्रता नहीं। जो बच रहता है, उसको मैत्री कहते हैं। जो बच रहता है! कुछ बच नहीं रहता है, एक निराकार भाव बच रहता है। कोई संबंध बच नहीं रहता। एक असंबंधित स्थिति बच रहती है। कोई पक्ष नहीं बच रहता , एक तटस्थ दशा बच रहती है।

जब वे कहते हैं— सबसे मेरी मैत्री है, तो उसका मतलब सिर्फ इतना ही है— उससे हम भूल में न पड़ें कि यह हमारे जैसी मित्रता है। हमारी मित्रता तो बिना शत्रुता के हो ही नहीं सकती। जब वे कहते हैं— सबसे मुझे प्रेम है, तो हम इस भ्रम में न पड़ें कि हमारे जैसा प्रेम है। हमारा प्रेम बिना घृणा के नहीं हो सकता, बिना ईर्ष्या के नहीं हो सकता। इसलिए

महावीर जैसे लोगों को समझने की जो सबसे बड़ी कठिनाई है, वह यह है कि शब्द वे वही उपयोग करते हैं, जो हम। और कोई उपाय भी नहीं है— वही शब्द हैं, उपयोग करने के लिए। और हमारे भाव उन शब्दों से बहुत और हैं, हमा रे अर्थ बहुत और हैं, और महावीर के अर्थ बहुत और हैं।
संयम का विधायक अर्थ है— स्वयं में इतना ठहर जाना कि मन की किसी अ ति पर कोई हलन-चलन न हो।

आज इतना ही।
फिर हम कल बात करेंगे। अभी जाएं न। थोड़ी देर बैठें। धुन संन्यासी करते हैं, उसमें सम्मिलित हों।

संयम की विधायक दृष्टि

सातवां प्रवचन

दिनांक 24 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला, पाटकर हाल, बम्बई

111

□

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किच्ट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।
च112

□

सूर्यास्त के समय, जैसे कोई फूल अपनी पंखुड़ियों को बन्द कर ले— संयम ऐसा नहीं है। वरन सूर्योदय के समय जैसे कोई कली अपनी पंखुड़ियों को खोल ले—संयम ऐसा है। संयम मृत्यु के भय में सिकुड़ गए चित्त की रुग्ण दशा नहीं है। संयम अमृत की वर्षा में प्रफुल्लित हो गए, नृत्य करते चित्त की दशा है। संयम किसी भय से किया गया संकोच नहीं है। संयम किसी प्रलोभन से आरोपित की गयी आदत नहीं है। संयम किसी अभय में चित्त का फैलाव और विस्ता र है। और संयम किसी आनन्द की उपलब्धि में अन्तर्वीणा पर पैदा हुआ संगीत है। संयम निषेध नहीं है, विधेय है। निगेटिव नहीं है, पाजिटिव है। लेकिन परंपरा निषेध को मानकर चलती है। क्योंकि निषेध आसान है और विधेय अति दुष्कर। मरना बहुत आसान है, जीना बहुत कठिन है। हमें लगता है कि नहीं, जीना बहुत आसान है, मरना बहुत कठिन। लेकिन जिसे हम जीना कहते हैं, वह सिर्फ मरना ही है और कुछ भी नहीं है।

सिकुड़ जाने से ज्यादा आसान कुछ भी नहीं है। खिलने से ज्यादा क ठिन कुछ भी नहीं है। क्योंकि खिलने के लिए अंतर-ऊर्जा का जागरण चाहिए। सिकुड़ने के लिए तो किसी जागरण की, किसी नयी शक्ति की जरूरत नहीं है। पुरानी शक्ति भी छूट जाए तो सिकुड़ना हो जाता है। नयी शक्ति का उदभव हो तो फैलाव होता है। महावीर तो फूल जैसे खिले हुए व्यक्तित्व हैं। लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा बनती है, उसमें तो सिकुड़ गये लोगों की धारा की श्रृंखला बन जा ती है। और फिर पीछे के युगों में इन पीछे चलनेवाले, सिकुड़े हुए लोगों को देखकर ही हम महावीर के संबंध में भी निर्णय लेते हैं। स्वभावतः अनुयायियों को देखकर हम अनुमान करते हैं उनका, जिनका वे अनुगमन करते हैं।

लेकिन अकसर भूल हो जाती है। और भूल इसलिए हो जाती है कि अनुया यी बाहर से पकड़ता है, और बाहर से निषेध ही खयाल में आते हैं। महावीर या बुद्ध या कृष्ण भीतर से जीते हैं और भीतर से जीने पर विधेय ही होता है। अगर किसी को परम आनंद उपलब्ध हो, तो उसके जीवन में, जिन्हें हम कल तक सुख कहते थे, वे छूट जाएंगे। इसलिए नहीं कि वे उन्हें छोड़ रहे हैं बल्कि इसलिए कि अब जो उसे मिला है, उसके लिए जगह बनानी जरूरी है। हाथ में कंकड़-पत्थर थे, वे गिर जाएंगे क्योंकि जिसे हीरे जीवन में आ गए हों, अब कंकड़-पत्थरों को रखने के लिए न सुविधा है, न शक्ति, है, न का रण है। लेकिन वे हीरे तो आएंगे अन्तर के आकाश में। वे हमें दिखाई नहीं पड़ेंगे और हाथों में जो पत्थर थे, वे छूटेंगे, वे हमें दिखाई पड़ेंगे। स्वभावतः हम सोचेंगे कि पत्थर छोड़ना ही संयम है। यह एक बहुत अनिवार्य फैलेसी है जो समस्त जाग्रत पुरूषों के आसपास इकट्ठी होती है। यह स्वाभाविक है, लेकिन बड़ी खतरनाक है। क्योंकि तब हम जो भी सोचते हैं वह सब गलत हो जाता है। लगता है महा वीर कुछ छोड़ रहे हैं, यही संयम है। नहीं लगता कि महावीर

कुछ पा रहे हैं, वही संयम है। और ध्यान रखें, पाए बिना छोड़ना असंभव है। या जो पाए बिना छोड़ेगा, वह रुग्ण हो जाएगा। बीमा र हो जाएगा। वह अस्वस्थ होता है, सिकुड़ता है और मरता है। पाए बिना छोड़ना असंभव है।

जब मैं कहता हूं कि त्याग की बहुत दूसरी धारणा है और संयम का बहुत दूसरा रूप और आयाम प्रगट होता है। मैं कहता हूं महावीर जैसे लोग कुछ पा लेते हैं, वह पाना इतना विराट है कि उसकी तुलना में जो उनके हाथ में कल तक था वह व्यर्थ और मूल्यहीन हो जाता है। और ध्यान रहे, मूल्यहीनता रिलेटिव है, तुलनात्मक है, सापेक्ष है। जब तक आपको श्रेष्ठतर नहीं मिला है, तब तक जो आपके हाथ में है, वही श्रेष्ठतर है। चाहे आप कितना ही कहें कि वह श्रेष्ठतर नहीं है, लेकिन आपका चित्त कहे जाएगा, वही श्रेष्ठतर है। क्योंकि उससे श्रेष्ठतर को आपने नहीं जाना है। जब श्रेष्ठतर का जन्म होता है तभी वह निकृष्ट होता है। और मजे की बात यह है कि निकृष्ट को छोड़ना नहीं पड़ता और श्रेष्ठ को पकड़ना नहीं पड़ता। श्रेष्ठ पकड़ ही लिया जाता है और निकृष्ट छोड़ ही दिया जाता है। जब तक निकृष्ट को छोड़ना पड़े तब तक जानना

कि श्रेष्ठ का कोई पता नहीं है। और जब तक श्रेष्ठ को पकड़ना पड़े तब तक जानना कि श्रेष्ठ अभी मिला नहीं है। श्रेष्ठ का स्वभाव ही यही है कि वह पकड़ ले; निकृष्ट का स्वभाव यही है कि वह छूट जाए।

लेकिन निकृष्ट हमसे छूटता नहीं और श्रेष्ठ हमारी पकड़ में नहीं आ ता। तो हम निकृष्ट को छोड़ने की जबर्दस्त चेष्टा करते हैं। उसी चेष्टा को हम संयम कहते हैं। और श्रेष्ठ को अंधेरे में टटोलने की, पकड़ने की कोशिश करते हैं। वह हमारी इस तरह पकड़ में नहीं आ सकता। इसलिए संयम के विधायक आयाम को ठीक से समझ लेना जरूरी है। अन्यथा संयम व्यक्ति को धार्मिक नहीं बनाता केवल अधार्मिक होने से रोकता है। और जो अधर्म बाहर प्रगट होने से रुक जाता है, वह भीतर जहर बनकर फैल जाता है।

निषेधात्मक संयम फूलों को नहीं पैदा कर पाता है, केवल कांटों को प्रगट होने से रोकता है। लेकिन जो कांटे बाहर आकाश में प्रगट होने से रुक जाते हैं, वे भीतर आत्मा में छिप जाते हैं। इसलिए जिसे हम संयमी कहते हैं, वह आनंदित नहीं दिखाई पड़ता है। वह पीड़ित दिखाई पड़ता है। वह किसी पत्थर के नीचे दबा हुआ मालूम पड़ता है, किसी पहाड़ को ढोता हुआ मालूम पड़ता है। उसके पैरों में नर्तक की स्थिति नहीं होती। उसके पैरों में कैदी की जंजीरें मालूम पड़ती हैं। ऐसा नहीं लगता कि बच्चों जैसा सरल, उड़ने को तत्पर हो गया है। वह बहुत बोझिल और भारी हो गया है।

जिसे हम संयमी कहते हैं वह हंसने में असमर्थ हो गया होता है, उसके चा रों तरफ आंसुओं की धारा इकट्ठी हो जाती है। और जो संयमी हंस न सके परिपूर्ण चित्त से, वह अभी संयमी नहीं है। जिसका जीवन मुस्कुराहट न बन जाए, वह अभी संयमी नहीं है। निषेध का रास्ता यह है कि जहां-जहां मन जाता है, वहां मन को न जाने दो। जहां-जहां मन खिंचता है, वहां-वहां मन को न खिंचने दो, उसके विपरीत खींचो। तो, निषेध एक अंतर संघर्ष है, इनर कांफ्लिक्ट है, जिसमें शक्ति व्यय होती है, उपलब्ध नहीं होती है। सभी संघर्ष में शक्ति व्यय होती है। जहां-जहां मन खिंचता है, वहां-वहां से उसे वा पस खींचो, लौटाओ। कौन लौटाएगा, किसको लौटाएगा? आप ही खिंचते हैं, आप ही आकर्षित होते हैं, आप ही विपरीत जाते हैं। आ प अपने भीतर विभाजित हो जाते हैं। खंडों में टूट जाते हैं। जिसको मनोचिकित्सक स्की□ोफ्रेनिया कहता है, वह आपके भीतर घटित होता है। आप खंडित हो जाते हैं। आप दोहरे-तेहरे हो जाते हैं। आपके भीतर अनेक लोग हो जाते हैं। आप अपने को ही बांटकर लड़ना शुरू कर देते हैं। इससे जीत कभी नहीं होगी। और महावीर का सारा रास्ता जीत का रास्ता है। जो अपने से लड़ेगा, वह कभी जीतेगा नहीं।

उल्टा लगता है यह सूत्र, क्योंकि हमें लगता है कि लड़े बिना जीत कैसे हो सकती है। जो अपने से लड़ेगा वह कभी जीतेगा नहीं क्योंकि अपने से लड़ना अपने ही दोनों हाथों को लड़ाने जैसा है। न बायां जीत सकता है, न दायां। क्योंकि दोनों के पीछे मेरी ही ताकत लगती है, मेरी ही शक्ति लगती है। चाहूं तो मैं बायें को जिता लूं, तब भी बायां जीतता नहीं। चाहूं तो मैं दायें को जिता लूं, तब भी दायां

जीतता नहीं। क्योंकि दोनों के पीछे मैं ही होता हूं। और यह जो व्यक्तित्व में खंडन हो जाता है, डिसइंटिग्रेशन हो जाता है, यह आदमी को विक्षिप्तता की तरफ ले जाने लगता है। आदमी ऐसा लगता है कि उसके ही भीतर उसका दुश्मन खड़ा है, वही है वह। आधा अपने को बांट लिया। अपनी छाया से लड़ने जैसा पागलपन है। नहीं, महावीर इतना गहरा जानते हैं कि स्की□ोफ्रेनिक, खंडित व्यक्तित्व की तरफ वे सलाह नहीं दे सकते। वे सलाह देंगे, अखंड व्यक्तित्व की तरफ—इंटिग्रेटेड, इकट्ठा, एकजुट। संयम का अर्थ है—जुड़ा हुआ, इकट्ठा, इंटिग्रेटेड।

यह बहुत मजे की बात है, अगर आप असत्य बोलें, तो आप कभी भी इंटिग्रेटेड नहीं हो सकते। अगर आप झूठ बोलें तो आपके भीतर एक हिस्सा सदा ही मौजूद रहेगा जो कहेगा कि नहीं बोलना था, झूठ बोले। झूठ के साथ पूरी तरह राजी हो जाना असंभव है। अगर आप चोरी करें, तो आप कभी भी अखंड नहीं हो सकते। आपके भीतर एक हिस्सा चोरी के विपरीत खड़ा ही रहेगा। लेकिन अगर आप सत्य बोलें तो अखंड हो सकते हैं। महावीर ने उन्हीं-उन्हीं बातों को पुण्य कहा है, जिनसे हम अखंड हो सकते हैं। और उन्हीं-उन्हीं बातों को पाप कहा है, जिनसे हम खंडित हो जाते हैं। एक ही पाप है—आदमी का टुकड़ों में टूट जाना, और एक ही पुण्य है—आदमी का जुड़ जाना, इकट्ठा हो जाना, टु बी वन होल।

तो महावीर लड़ने को नहीं कह सकते हैं। महावीर जीतने को जरूर कहते हैं, लड़ने को नहीं कहते। फिर जीतने का रास्ता और है। जीतने का रास्ता यह नहीं है कि मैं अपनी इंद्रियों से लड़ने लगूं, जीतने का रास्ता यह है कि मैं अपने अतीच्निदरय स्वरूप की खोज में संलग्न हो जाऊं। जीतने का रास्ता यह है कि मेरे भीतर जो छिपे हुए और खजाने हैं, मैं उनकी खोज में संलग्न हो जाऊं। जैसे-जैसे वे खजाने प्रगट होते जाते हैं, वैसे-वैसे कल तक जो महत्वपूर्ण था, वह गैर महत्वपूर्ण होने लगता है। कल तक जो खींचता था, अब वह नहीं खींचता है। कल तक बाहर की तरफ चित्त जाता था, अब भीतर की तरफ आता है।

एक आदमी हैथोड़ा उदाहरण लेकर समझें। एक आदमी है, भोजन के लिए आतुर है, परेशान है, बहुत रस है। क्या करे संयम के लिए वह? रस का निग्रह करे, यही हमें दिखाई पड़ता है। आज यह रस न ले, कल वह रस न ले, परसों वह रस न ले। यह भोजन छोड़ दे, वह भोजन छोड़ दे। लेकिन क्या भोजन के परित्याग से रस का परित्याग हो जाएगा? संभावना यही है कि भोजन के परित्याग से पहले तो रस बढ़ेगा। अगर वह जिद्द में अड़ा रहे तो रस कुंठित हो जायेगा, मुक्त नहीं होगा। लेकिन कुंठित रस, व्यक्तित्व को भी कुंठा से भर जाता है।

जो भोजन करने तक में भयभीत हो जाता है, वह अभय को उपलब्ध होगा? भोजन करने तक में जो भयभीत हो जाता है, वह अभय को उपलब्ध होगा? नहीं, महावीर इसे संयम नहीं कहते। यद्यपि महावीर जिसे संयम कहते हैं, वैसा व्यक्ति रस के पागलपन से मुक्त हो जाता है। महावीर और एक भीतरी रस खोज लेते हैं—एक और रस भी है जो भोजन से नहीं मिलता। एक और रस भी है, जो भीतर संबंधित होने से मिल जाता है। हमारे बाहर जितनी इंद्रियां हैं, अगर हम ठीक से समझें तो वे सिर्फ कनेक्टिंग लिंक्स हैं, जोड़ने वाले सेतु हैं। स्वाद की इंद्रिय भोजन से जोड़ देती है, आंख की इंद्रिय दृश्य से जोड़ देती है, कान की इंद्रिय ध्वनि से जोड़ देती है। अगर महावीर की आंतरिक प्रक्रिया को समझना हो, तो महावीर यह कहते हैं कि जो इंद्रिय बाहर जोड़ देती है, वही इंद्रिय भीतर के जगत से भी जोड़ सकती है। बाहर ध्वनियों का एक जगत है। कान उससे जोड़ता है। भीतर भी ध्वनियों का एक अदभुत जगत है, कान उससे भी जोड़ सकता है। जीभ बाहर के रस से जोड़ती है। बाहर रस का एक जगत है। अति दीन, क्योंकि हमें भीतर के रस का पता नहीं, इसलिए वही सम्राट मालूम होता है। जीभ भीतर के रस से भी जोड़ देती है।

हमने सुना है, आप सबने भी सुना होगा, लेकिन प्रतीक कभी-कभी कैसी विक्षिप्तता में ले जाते हैं। हम सबने सुना है कि साधक,

योगी अपनी जीभ को उल्टा कर लेते हैं। लेकिन वह केवल सिम्बालिक है। लेकिन कुछ पागल अपनी जीभ के नीचे के हिस्से को काटकर उल्टा करने में लगे रहते हैं। यह सिर्फ सिम्बालिक है, यह सिर्फ प्रतीक है। साधक अपनी जीभ को उल्टा कर लेता है, उसका अर्थ यह है कि जीभ का जो रस बाहर पदाथोच से जुड़ता था, उसे वह भीतर आत्मा से जोड़

लेता है। साधक अपनी आंख उल्टी चढ़ा लेता है, उसका कुल अर्थ इतना ही है कि वह जो देखता था बाहर, अब वह भीतर देखने लगता है। और एक बार भीतर का स्वाद आ जाए तो बाहर के सब स्वाद बेस्वाद हो जाते हैं। करने नहीं पड़ते, करने से तो कभी नहीं होते, करने से तो उनका स्वाद और बढ़ता है। या जिद्द की जाए तो कुंठित हो जाता है, रस ही मर जाता है। लेकिन इंद्रिय बाहर की तरफ ही पड़ी रहती है। इंद्रियों को भीतर की तरफ मोड़ना संयम की प्रक्रिया है।

कैसे मोड़ेंगे? कभी छोटे-से प्रयोग करें तो खयाल में आना शुरू हो जाएगा। बैठे हैं घर में, सुनना शुरू करें बाहर की आवाजों कोसुनना शुरू करें बाहर की आवाजों को। बहुत जागरूक होकर सुनें कि कान क्या-क्या सुन रहा है। सभी चीजों के प्रति जागरूक हो जाएं। रास्ते पर गाड़ियां चल रही हैं, हार्न बज रहे हैं, आकाश से हवाई जहाज गुजरता है, लोग बात कर रहे हैं, बच्चे खेल रहे हैं, सड़क से लोग गुजर रहे हैं, जुलूस निकल रहा है—सारी आवाजें हैं, उसके प्रति पूरी तरह जाग जाएं। और जब सारी आवाजों के प्रति पूरी तरह जागे हों तब एक बार यह भी खयाल करें कि कोई ऐसी भी आवाज है, जो बाहर से न आ रही हो, भीतर पैदा हो रही हो। और तब आप एक अलग ही सन्नाटे को सुनना शुरू कर देंगे। इस बाजार की भीड़ में भी एक आवाज है, जो भीतर भी पूरे समय गूंज रही है।

लेकिन हम बाहर की भीड़ की आवाज में इस बुरी तरह से संलग्न हैं कि वह भीतर का सन्नाटा हमें सुनाई नहीं पड़ता। सारी आवाजों को सुनते रहें, लड़ें मत, हटें मत, सुनते रहें। सिर्फ एक खोज और भीतर शुरू करें कि क्या इन आवाजों को, जो बाहर से आ रही हैं; कोई इन आवाजों में एक ऐसी आवाज भी है जो बाहर से न आ रही हो, भीतर से पैदा हो रही हो? और आप बहुत शीघ्र सन्नाटे की आवाज, जैसी कभी-कभी निर्जन वन में सुनाई पड़ती है, ठेठ बाजार में सड़क पर भी सुनने में समर्थ हो जाएंगे। सच तो यह है कि जंगल में जो आपको सन्नाटा सुनाई पड़ता है, वह जंगल का कम बाहर की आवाजों के हट जाने के कारण आपके भीतर की आवाज का प्रतिफलन ज्यादा होता है। वह सुना जा सकता है। जंगल में जाने की जरूरत नहीं है। दोनों कान भी हाथ से बंद कर लें, तो वही आवाज बाहर की बंद हो जाएगी, तो भीतर जैसे झींगुर बोल रहे हों, वैसा सन्नाटा भीतर गूंजने लगेगा। यह पहली प्रतीति है भीतर के आवाज की।

और इसकी प्रतीति जैसे ही होगी वैसे ही बाहर की आवाजें कम रसपूर्ण मालूम पड़ने लगेंगी। यह भीतर का संगीत आपके रस को पकड़ना शुरू हो जाएगा। थोड़े ही दिनों में यह भीतर जो सन्नाटे की तरह मालूम होता था, वह सघन होने लगेगा और रूप लेने लगेगा। यही सन्नाटा सोःहं जैसा धीरे-धीरे प्रतीत होने लगता है। जिस दिन यह सोःहं जैसा प्रतीत होने लगता है, उस दिन कोई संगीत, जो बाहर के वाद्यों से पैदा होता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह अंतर की वीणा के वाद्यों से पैदा होता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह अंतर की वीणा का संगीत आपकी पकड़ में आना शुरू हो गया। अब आपको अपने कान के रस को रोकना न पड़ेगा। आपको यह न कहना पड़ेगा कि मैं अब सितार न सुनूंगा। मैं सितार का त्याग करता हूं। नहीं, अब छोड़ने की कोई जरूरत न रहेगी। आप अचानक पाएंगे कि और भी विराट, और भी श्रेष्ठतर, और भी गहन संगीत उपलब्ध हो गया। और तब आप सितार के सुनने में भी इस संगीत को सुन पाएंगे। तब कोई विपरीत, कोई विरोध, कोई कंट्रा डिक्शन नहीं रह जाएगा। तब बाहर का संगीत अंतर के संगीत की फीकी प्रतिध्वनि रह जाएगा। दुश्मनी नहीं रह जाएगी, फीकी प्र तिध्वनि रह जाएगी। और तब आपके भीतर अखण्ड व्यक्तित्व खड़ा होगा जो बाहर और भीतर का फासला भी नहीं करेगा।

एक घड़ी आती है, ऐसी कि जैसे-जैसे हम भीतर जाते हैं, बाहर और भीतर का फासला गिरता चला जाता है। एक घड़ी आती है कि

116

संयम की विधायक दृष्टि

न कुछ बाहर रह जाता है, न कुछ भीतर। एक ही रह जाता है जो बाहर है और भीतर है। जिस दिन यह घड़ी घटती है कि जो बाहर है वही भीतर है, जो भीतर है वही बाहर है; उस दिन आप संयम को, उस इक्विलिब्रियम को उपलब्ध हो गए, जहां सब सम हो जाता है; जहां सब ठहर जाता है; जहां सब मौन होता है; जहां कोई हलन-चलन नहीं होती है; जहां कोई भाग-दौड़ नहीं होती; जहां कोई कंपन नहीं होता।

किसी भी इंद्रिय से शुरू करें और भीतर की तरफ बढ़ते चले जाएं, फा ैरन ही वह इंद्रिय आपको भीतर से भी जोड़ने का कारण बन जाएगी। आंख से देखना शुरू करें, फिर आंख बंद कर लें। बाहर के दृश्य देखें, देखते रहें, लड़ें मत। और धीरे-धीरे-धीरे उसके प्रति जागें जो बाहर से आया हुआ दृश्य न हो। बहुत शीघ्र आपको बाहर के दो दृश्यों के बीच में, भीतर के बीच में, भीतर के दृश्यों की झलकें आनी शुरू हो जाएंगी। कभी ऐसा प्रकाश भीतर भर जाएगा जो बाहर सूर्य भी देने में असमर्थ है। कभी भीतर ऐसे रंग फैल जाएंगे जो कि इंद्रधनुषों में नहीं हैं। कभी भीतर ऐसे फूल खिल जाएंगे जो पृथ्वी पर कभी भी नहीं खिले हैं। और जब आप पहचानने लगेंगे कि यह बाहर का फूल नहीं है, यह बाहर का रंग नहीं है, यह बाहर का प्रकाश नहीं है; तब आपको पहली दफे तुलना मिलेगी कि बाहर जो प्रकाश है, अब उसको प्रकाश कहें या भीतर की तुलना में उसे भी अंधेरा कहें। बाहर जो फूल खिलते हैं, अब उन्हें फूल कहें या भीतर की तुलना में केवल फूलों की प्रतिध्वनियां कहें — ि रजोनेंसिस, फीके स्वर। अब बाहर जो इंद्रधनुषों से रंग छा जाते हैं, वे रंग हैं? बहुत कठिन होगा, क्योंकि जब भीतर कोई रंग को जानता है तो रंग में एक लिविंग क्वालिटी, एक जीवंत गुण आ जाता है जो बाहर के रंगों में नहीं है। बाहर के रंगों में कितनी ही चमक हो, बाहर के रंग जड़ हैं। भीतर जब रंग दिखाई पड़ता है, तो रंग पहली दफे जीवंत हो जाता है।

अब हम सोच भी नहीं सकते कि रंग के जीवंत होने का क्या अर्थ होता है। रंग और जीवित! जानें तो ही खयाल में आ सकता है कि रंग जीवित हो सकता है; रंग प्राणवान हो सकता है। और जिस दिन भीतर का रंग प्राणवान होकर दिखाई पड़ने लगता है, बाहर के रंगों का आकर्षण खो जाता है। छोड़ना नहीं पड़ता, बस खो जाता है।

प्रत्येक इंद्रिय भीतर ले जाने का द्वार बन सकती है। स्पर्श किया है बहुत, स्पर्श का अनुभव है बहुत। बैठ जाएं, आंख बंद कर लें, स्पर्श पर ध्यान करें। सुंदर शरीर छुए होंगे, सुंदर वस्तुएं छुई होंगी, फूल छुए होंगे। कभी सुबह घास पर जम गयी ओस को छुआ होगा। कभी सर्द सुबह में आग के पास बैठकर उष्णता का स्पर्श लिया होगा , कभी किसी चांद-तारों की दुनिया में लेटकर उनकी चांदनी को छुआ होगा। वे सब स्पर्श खड़े हो जाने दें अपने चारों ओर। और ि फर खोजना शुरू करें कि क्या कोई ऐसा स्पर्श भी है जो बाहर से न आया हो? और थोड़े श्रम से, थोड़े ही संकल्प से आपको ऐसा स्पर्श प्रतीत होने लगेगा जो बाहर से नहीं आया है। जो चांद-तारों से नहीं मिल सकता, जो फूलों से नहीं, ओस से नहीं, जो सूर्य की ऊष्मा से नहीं, जो सुबह की ठंडी हवाओं के स्पर्श से नहीं। और ि जस दिन आपको उस स्पर्श का बोध होगा, उसी दिन आपने भीतर का स्पर्श पाया । उसी दिन बाहर के स्पर्श व्यर्थ हो जाएंगे। फिर प्रत्येक व्यक्ति को वही इंद्रिय पकड़ लेनी चाहिए जो उसकी सर्वाधिक तीव्र आ ैर सजग हो।

यहां भी आपको मैं यह कह दूं कि जो इंद्रिय आपकी सबसे ज्यादा तीव्र है, उसे आप दुश्मन बना लेते हैं, अगर आपने संयम का निषेधात्मक रूप समझा। अगर आपने विधायक रूप समझा तो जो इंद्रिय आ पकी सर्वाधिक सक्रिय है, वही आपकी मित्र है। क्योंकि आप उसी के द्वारा भीतर पहुंच सकेंगे। अब जिस आदमी को रंगों में कोई रस नहीं है, जिसने अभी बाहर के रंगों को भी नहीं जीया, और न जाना, उसे भीतर के रंग तक पहुंचने में बड़ी कठिनाई होगी। ि जस आदमी को संगीत में कुछ प्रयोजन नहीं मालूम होता, सिर्फ मालूम होता है शोरगुल—ज्यादा से ज्यादा व्यवस्थित शोरगुल, आवाजें, ध्वनियां; ज्यादा से ज्यादा कम से कम परेशान करने वाली

117

ध्वनियां। उस आदमी को अंतर-ध्वनि की तरफ जाने में कठिनाई होगी। उसे मुश्किल होगी, उसे अड़चन होगी। नहीं, जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक आपको परेशान करती मालूम पड़ती है, जिससे निषेधवाला लड़ना शुरू कर देता है, वह आपकी मित्र है। क्योंकि वही इंद्रिय आपकी सबसे पहले भीतर की तरफ मोड़ी जा सकती है, तो अपनी इंद्रिय को खोज लें।
गुरजिएफ के पास कोई जाता था तो वह कहता था—'तेरी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? पहले तू मुझे अपनी सबसे बड़ी कमजोरी बता दे, तो मैं उसे ही तेरी सबसे बड़ी शक्ति में रूपांतरित कर दूंगा ।' वह ठीक कहता था। यही है शक्ति। आपकी सबसे बड़ी कमजोरी क्या है? क्या रूप आपको आकर्षित करता है? तो भयभीत न हों, रूप ही आपका द्वार बन जाएगा। क्या स्पर्श आपको बुलाता है? भयभीत न हों, स्पर्श ही आपका मार्ग है। क्या स्वाद आपको खींचता है और आपके स्वप्नों में प्रवेश कर जाता है? तो स्वाद को धन्यवाद दें। वही आपका सेतु बनेगा। जो इंद्रिय आपकी सर्वाधिक संवेदनशील है, उससे अगर आप लड़े, तो कुंठित हो जाएगी। आपने अपने ही हाथ अपना सेतु तोड़ लिया। अगर विधायक संयम की धारणा से चले तो आप उसी इंद्रिय को मार्ग बना लेंगे, उसी पर आप पीछे लौट आएंगे।
और ध्यान रहे, जिस रास्ते से हम जाते हैं, बाहर; उसी रास्ते से भीतर आते हैं। रास्ता वही होता है, सिर्फ दिशा बदल जाती है। चेहरा बदल जाता है। आप यहां आए हैं, इस भवन तक, जिस रास्ते से आए हैं, उसी से वापस लौटेंगे। सिर्फ रुख और हो जाएगा। मुंह अभी भवन की तरफ था, अब अपने घर की तरफ होगा। लेकिन भूलकर भी अगर आपने ऐसा सोचा कि जो रास्ता मुझे अपने घर से इतनी दूर ले आया, वह मेरा दुश्मन है, इस पर मैं नहीं चलूंगा, तो आप पक्का समझ लें, आप अपने घर अब कभी भी नहीं पहुंच पाएंगे। कोई रास्ता दुश्मन नहीं है और रास्ते दोनों दिशाओं में खुले हैं।
तो, जिस रास्ते से आप बाहर के जगत में सर्वाधिक आकर्षित होते हैं और खिंचे जाते हैं—वह चाहे आंख हो, चाहे स्वाद हो, चाहे ध्वनि हो, कुछ भी हो—जिस रास्ते से आप सर्वाधिक बाहर जाते हैं, या जिस रास्ते से आप सर्वाधिक अपने से दूर चले गए हैं, वही रास्ता आपके संयम की विधायक दिशा में सहयोगी बनेगा। उसी से आपको वापस लौटना है। उससे लड़ना मत। उससे लड़कर तो आप उसको तोड़ देंगे। तोड़कर आपको लौटना बहुत मुश्किल हो जाएगा। ध्यान रहे, यह बहुत अजीब लगेगा। लेकिन आपको जोर से कहना चाहता हूं कि लोग उन इंद्रियों के कारण बाहर नहीं भटक गए हैं, लोग उन इंद्रियों के कारण बाहर भटक जाते हैं जिनके रास्ते वे तोड़ देते हैं। जिन इंद्रियों के रास्ते वे तोड़ देते हैं लौटने के, उनकी वजह से भटक जाते हैं। इंद्रियों की वजह से कोई नहीं भटकता है। हम सब तोड़ते हैं।
लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं—हमारी और कोई तकलीफ नहीं है; बस, यह स्वाद हमें परेशान कर रहा है। किसी तरह स्वाद से छुटकारा दिला दें। उन्हें पता ही नहीं है कि जो उन्हें परेशान कर रहा है वही उनके लौटने का मार्ग है। इसे मैं कहता हूं, संयम की विधायक दृष्टि।
इसके एक और पहलू को खयाल में ले लेना चाहिए। जितनी इंद्रियां हैं हमारे पास, उनका एक तो प्रगट रूप है जिसे हम बहिर इंद्रिय कहते हैं। महावीर ने आत्मा की तीन स्थितियां कही हैं—एक को वे कहते हैं—बहिर आत्मा। बहिर आत्मा उस आत्मा को कहते हैं जो अभी इंद्रियों का बाहर की तरफ उपयोग कर रहा है। दूसरे को महावीर कहते हैं—अंतरात्मा। अंतरात्मा वह आत्मा है जो अब इंद्रियों का भीतर की तरफ उपयोग कर रही है। और तीसरे को महावीर कहते हैं—परमात्मा। परमात्मा वह आत्मा है, जिसका बाहर और
भीतर मिट गया। जिसको न अब कुछ बाहर है, न कुछ भीतर है। जो न बाहर जा रही है, न भीतर आ रही है। जो बाहर जा रही है वह बहिर आत्मा है, जो भीतर आ रही है वह अंतरात्मा है; जो अब कहीं नहीं जा रही है, जहां है वहीं है, स्वभाव में प्रतिष्ठित, वह परमात्मा

संयम की विधायक दृष्टि

है।

इंद्रियों का एक बहिर रूप है, वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं। जिस जगह वे हमें पदार्थ से जोड़ती हैं, उस जगह जो रूप उनका प्रगट होता है वह अ ति स्थूल है। लेकिन वे ही इंद्रियां हमें स्वयं से भी जोड़े हुए हैं। क्योंकि वही चीजसमझ लें, कि मेरा हाथ, मैं अपने हाथ को बढ़ाकर आ पके हाथ को अपने हाथ में ले लूं तो मेरा हाथ दो जगह जोड़ रहा है। एक तो आपके हाथ से मुझे जोड़ रहा है और हाथ मुझसे भी जुड़ा हुआ है। हाथ बीच में दो को जोड़ रहा है। ध्यान रहे, जहां आपसे मुझे जोड़ रहा है वहां तो सिर्फ आपके शरीर से जोड़ रहा है। लेकिन जहां मुझे जोड़ रहा है वहां आत्मा से जोड़ रहा है।इंद्रियां जब बाहर जोड़ती हैं तो पदार्थ से जोड़ती हैं, भीतर जब जोड़ती हैं, तब चेतना से जोड़ती हैं।

तो, इंद्रियों का बहुत स्थूल रूप ही बाहर प्रगट होता है। क्योंकि जो हाथ आत्मा से जोड़ सकता है, जिसकी इतनी क्षमता है, वह बाहर केवल शरीर से जोड़ पाता है। बाहर उसकी क्षमता बहुत दीन हो जाती है। क्षमता तो जरूर उसमें आत्मा से भी जोड़ने की है, अन्यथा वह मुझसे कैसे जुड़े। और जब मैं कहता हूं; मेरे हाथ ऊपर उठ, तो वह ऊपर उठ जाता है। मेरा संकल्प मेरे हाथ को कहीं न कहीं जुड़ा हुआ है। जब मैं अपने हाथ को इनकार कर देता हूं ऊपर उठाने से तो हाथ ऊपर नहीं उठ पा ता। मेरा संकल्प मेरे हाथ से कहीं जुड़ा हुआ है।

अब बहुत हैरानी की बात है कि शरीर तो है पदार्थ, संकल्प है चेतना। चेतना और पदार्थ कैसे जुड़ते होंगे, कहां जुड़ते होंगे! बहुत अदृश्य होगा वह जोड़! लेकिन बाहर मेरा हाथ तो सिर्फ पदार्थ से ही जोड़ सकता है। लेकिन इसलिए हाथ पर नाराज हो जाने की जरूरत नहीं है। यह हाथ भीतर आत्मा से भी जोड़ रहा है। अगर मैं इस हाथ से अपनी चेतना को बाहर की तरफ प्रवाहित करूं तो यह दूसरे के शरीर पर जाकर अटक जाती है। अगर इसी चेतना को मैं अपने साथ वापस लौट आऊं, गंगोत्री की तरफ लौट आऊं, सागर की तरफ नहीं, तो यह मेरी आत्मा में लीन हो जाती है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा बाहर की तरफ बहिर आत्मा का रूप है। हाथ में बहती हुई ऊर्जा भीतर की तरफ एक अंतरात्मा का रूप है। ऊर्जा बहती ही नहीं जहां, वहां परमात्मा है। परमात्मा तक पहुंचना हो तो अंतरात्मा से गुजरना पड़ेगा। बहिर आत्मा हमारी आज की स्थिति है, मौजूदा। परमात्मा हमारी संभावना है—हमारा भविष्य, हमारी नियति। अंतरात्मा हमारा यात्रा पथ है। उससे हमें गुजरना पड़ेगा। गुजरने के रास्ते वही हैं जो बाहर जाने के रास्ते हैं। एक बा तदूसरी बात—बाहर इंद्रियां स्थूल से जोड़ती हैं, भीतर सूच्म से। इसलिए इंद्रियों के दो रूप हैं—एक, जिसको हम ऐंद्रिक शक्ति कहते हैं, और एक जिसको अतींद्रिय शक्ति कहते हैं।

पैरासाइकालाजी अध्ययन करती है उसका—परामनोविज्ञान। और चकित होते हैं। योग ने बहुत दिन अध्ययन किया है उसका। उसको योग ने सिद्धियां कहा है, विभूति कहा है। रूस में आज वे उसे एक नया नाम दे रहे हैं। वे उसे कहते हैं—साइकोट्रानिक्स। कहते हैं कि जैसे, मनोऊर्जा का जगत, जैसे मनोशक्ति का जगत। यह जो भीतर हमारा अतींद्रिय रूप है, संयम जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हम अपने अतींद्रिय रूप को अनुभव करते चले जाते हैं। किसी भी इंद्रि य को पकड़कर अतींद्रिय रूप को अनुभव करना शुरू करें। चकित हो जायेंगे।

पिछले दस वर्ष पहले, 1961 में रूस में एक अंधी लड़की ने हाथ से पढ़ना शुरू किया। हैरानी की बात थी। बहुत परीक्षण किए गए। पांच वर्ष तक निरंतर वैज्ञानिक परीक्षण किए गए। और फिर रूस की जो सबसे बड़ी वैज्ञा निक संस्था है, ऐकेडैमी, उसने घोषणा की; पांच वर्ष के निरंतर अध्ययन के बाद कि लड़की ठीक कहती है। वह अध्ययन करती है। और हैरानी की बात है कि हाथ आंख से भी ज्यादा ग्रहणशील होकर अध्ययन कर रहे हैं। अगर लिखे हुए कागज पर — ब्रेल में नहीं, अंधों की भाषा में नहीं,

□

संयम की विधायक दृष्टि

किसी आदमी को कभी पता ही नहीं चलता। संयम की यह विधा यक दृष्टि अतींद्रिय संभावनाओं के बढाने से शुरू होती है।

और महावीर ने बहुत ही गहन प्रयोग किए हैं अतींद्रिय संभावनाओं को बढ़ाने के लिए। महावीर की सारी की सारी साधना को इस बात से ही समझना शुरू करें तो बहुत कुछ आगे प्रगट हो सकेगा। महा वीर अगर बिना भोजन के रह जाते हैं वषोच तक तो उसका कारण? उसका कारण है उन्होंने भीतर एक भोजन पाना शुरू कर दिया है। अगर महावीर पत्थर पर लेट जाते हैं और गद्दे की कोई जरूरत नहीं रह जाती तो उन्होंने भीतर के एक नए स्पर्श का जगत शुरू कर दिया है। महावीर अगर कैसा भी भोजन स्वीकार कर लेते है — असल में उन्होंने एक भीतर का स्वाद जन्मा लिया है। अब बाहर की चीजें उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। भीतर की चीजें ही बाहर की चीजों पर इम्पोज हो जाती हैं और छा जाती हैं। उसे घेर लेती हैं। इसलिए महावीर सिकुड़े हुए मालूम नहीं पड़ते, फैले हुए मालूम पड़ते हैं। उनके व्यक्तित्व में कोई कहीं संकोच नहीं मा लूम पड़ता है। खिलाव मालूम होता है। वे आनंदित हैं। वे तथाकथित तपस्वियों जैसे दुखी नही हैं।

बुद्ध से यह नहीं हो सका। यह विचारों में ले लेना बहुत कीमती होगा और समझना आसान होगा। टाइप अलग था। बुद्ध से यह नहीं हो सका। बुद्ध ने भी यही सब साधना शुरू की जो महावीर ने की है। लेकिन बुद्ध को हर साधना के बाद ऐसा लगा कि इससे तो मैं और दीन-हीन हो रहा हूं। कहीं कुछ पा तो नहीं रहा हूं। इसलिए छह वर्ष के बाद बुद्ध ने सारी तपश्चर्या छोड़ दी। स्वभावतः बुद्ध ने निष्कर्ष लिया कि तपश्चर्या व्यर्थ है। बुद्ध बुच्दिधमान थे और ईमानदार थे। नासमझ होते तो यह निष्कर्ष भी न लेते। अनेक नासमझ लोग चले जाते हैं उन दिशाओं में जो उनके लिए नहीं हैं। उन दिशाओं में, जिनकी उनकी क्षमता नहीं हैं। जो उनके व्यक्तित्व से तालमेल नहीं खाती और अपने को समझाए चले जाते है कि पिछले जन्मों में किए हुए पापों के कारण ऐसा हो रहा है। या शायद मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूं इसलिए ऐसा हो रहा है आ ैर ध्यान रहे, जो आपकी दिशा नहीं है उसमें आप पूरा प्रयास कभी भी न कर पाएंगे इसलिए यह भ्रम बना ही रहेगा कि मैं पूरा प्रयास नहीं कर पा रहा हूं।

बुद्ध ने छह वर्ष तक वही किया जो महावीर कर रहे थे। लेकिन बुद्ध को जो निष्पति मिली उसे करने से, वह वह नहीं थी जो महावीर को मिली। महावीर आनंद को उपलब्ध हो गए, बुद्ध बहुत पीड़ा को उपलब्ध हो गए। महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हो गए, बुद्ध केवल निर्बल हो गए। निरंजना नदी को पार करते वक्त एक दिन वे इतने कमजोर थे उपवास के कारण कि किनारे को पकड़कर चढ़ने की शक्ति मालूम न पड़ी। एक जड़ को पकड़कर वृक्ष की सोचने लगे कि इस उपवास से क्या मिलेगा जिससे मैं नदी भी पार करने की शक्ति खो चुका, उससे इस भवसागर को कैसे पार कर पाऊंगा। पागलपन है, यह नहीं होगा। कृश हो गए थे, हड्डियां सब निकल आयीं। बुद्ध का बहुत प्रसिद्ध चित्र जो उस समय का है वह ठीक तथाकथित तपस्वी जैसी मुसीबत में पड़ेगा, उसका चित्र है। एक ताम्र प्रतिमा उपलब्ध है, बहुत पुरानी — जिसमें बुद्ध का उस समय का चित्र है, जब वे छह महीने तक निराहार रहे थे। सारी हड्डियां दिखाई पड़ती हैं, बाकी सारा शरीर सूख गया है। खून ने जैसे बहना बंद कर दिया हो, चमड़ी जैसे सिकुड़कर जुड़ गयी है। सारा शरीर मुच्दच का हो गया। वैसे ही क्षण में वह निरंजना नदी को पार करते वक्त उन्हें खयाल आया कि नहीं, यह सब व्यर्थ है। और यह सब बुद्ध के लिए व्यर्थ था। लेकिन इसी सबसे महावीर महाशक्ति को उपलब्ध हुए। असल में बुद्ध ने जिनसे यह बात सुनी और सीखी वह सब निषेध था वह सब निषेध था। यह-यह छोड़ो, यह-यह छोड़ो, वह छोड़ते गए। जिसने जैसा कहा, वह करते चले गए। जिस गुरु ने जो बताया वह उन्होंने किया। सब छोड़कर उन्होंने पाया कि सब तो छूट गया, मिला कुछ भी नहीं, 'और मैं केवल दीन-हीन और दुर्बल हो गया हूं'— बुद्ध के लिए वह मार्ग न था। बुद्ध के व्यक्तित्व का टाइप

भिन्न था, ढांचा और था। फिर बुद्ध ने सब त्याग कर दिया सब त्याग का त्याग कर दिया। भोग को त्याग करके देख लिया था, उससे

कुछ पाया नहीं। फिर सब त्याग का त्याग कर दिया। और जब सब त्याग का भी त्याग कर दिया, तब बुद्ध ने पाया।
महावीर की प्रक्रिया में और बुद्ध की प्रक्रिया में बड़ा उल्टा भा व है। इसलिए एक ही समय पैदा होकर भी दोनों की परंपरा बड़ी विपरीत है। बुद्ध ने भी पाया, वहीं पहुंचे वे जहां कोई पहुंचता है, महावीर पहुंचते हैं। लेकिन त्याग से न पाया। क्योंकि त्याग की जो धारणा बुद्ध के मन में प्रवेश कर गयी, वह निषेध की थी। वहीं भूल हो गयी। महावीर की तो धारणा विधेय की थी। जब भी कोई त्याग में निषेध से चलेगा तो भटकेगा और परेशान होगा और दुर्बल होगा। कहीं पहुंचेगा नहीं। आत्मबल तो मिलेगा ही नहीं, शरीर बल और खो जाएगा। अतींद्रिय का तो जगत खुलेगा ही नहीं, इन्द्रियों का जगत रुग्ण, बीमार होकर सिकुड़ जाएगा। अंतर-ध्वनि सुनाई न पड़गी, कान बहरे हो जायेंगे। अंतदृश्य तो दिखाई न पड़ेंगे, आंख धुंधली हो जाएगी। अंतर-स्पर्श तो पता न चलेगा, हाथ जड़ हो जायेंगे और बाहर भी स्पर्श न कर पायेंगे।
निषेध से वह भूल होती है। और परंपरा केवल निषेध दे सकती है। क्योंकि हम जो पकड़ते हैं, उनको वही दिखाई पड़ता है जो छोड़ा है। उन्हें वह नहीं दिखाई पड़ता जो पाया। तो महावीर को अगर ठीक समझना हो, उनके गरिमाशाली संयम को अगर समझना हो, उनके स्वस्थ, विधायक संयम को यदि समझना हो तो अतींद्रिय को जगाने के प्रयोग में प्रवेश करना चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति की कोई न कोई इंद्रिय तत्काल अतींद्रिय जगत में प्रवेश करने को तैया र खड़ी है। थोड़े-से प्रयोग करने की जरूरत है और आपको पता चल जाएगा कि आपकी अतींद्रिय क्षमता क्या है। दो-चार-पांच छोटे प्रयोग करें और आपको एहसास होने लगेगा कि आपकी दिशा क्या है, आपका द्वार क्या है? उसी द्वार से आगे बढ़ जा येंगे।
कैसे पता चले, कैसे जाने कोई कि उसकी अतींद्रिय क्षमता क्या हो सकती है?
हम सबको कई बार मौके मिलते हैं लेकिन हम चूक जाते हैं। क्योंकि हम कभी उस दिशा में सोचते नहीं। कभी आप बैठें, अचानक आपको खयाल आता है किसी मित्र का और आप चेहरा उठाते हैं और देखते हैं, वह द्वार पर खड़ा है। आप सोचते हैं, संयोग है। चूक गए मौके को। कभी आप सोचते हैं, कितने बजे हैं, खयाल आता है नौ। घड़ी में देखते हैं, ठीक नौ बजे हैं। आप सोचते है, संयोग है। चूक गए। एक अतींद्रिय झलक मिली थी। अगर ऐसी झलक आपको कोई मिलती है तो इसके प्रयोग करें। अगर घड़ी पर आपने सोचा नौ बजे हैं और घड़ी में नौ बजे हैं, तो फिर अब इस पर प्रयोग करना शुरू कर दें। कभी भी घड़ी पहले मत देखें—पहले सोचें, फिर घड़ी देखें। और शीघ्र ही आपको पता चलेगा, यह संयोग नहीं है। क्योंकि यह इतने बार घटने लगेगा, और यह घटने की घटना बढ़ने लगेगी संख्या में कि संयोग न रह जाएगा।
आधी रात को उठ आयें। पहले सोचें कि कितना बजा है। सोचें कहना ठीक नहीं, क्योंकि सोचने में भूल हो सकती है। खयाल करें एकदम से कि कितना बजा है और जो पहला खयाल हो, उसको ही घड़ी से मिलायें, दूसरे से मत मिलायें। दूसरा गड़बड़ होगा। पहला जो हो! अगर आपको द्वार पर आये मित्र का खयाल आ गया तो ि फर जरा इस पर प्रयोग करें। जब भी द्वार पर आहट सुनाई पड़े, दरवाजे की घण्टी बजे, जल्दी दरवाजा मत खोलें। पहले आंख बंद करें और पहले जो चित्र आए उसको खयाल में ले लें, फिर दरवाजा खोलें। थोड़े ही दिन में आप पायेंगे कि यह संयोग नहीं था। यह आपकी क्षमता की झलक थी जिसको आप संयोग कहकर चूक रहे थे। और एकाध दिशा में भी अगर आपका अतींद्रि

य रूप खुलना शुरू हो जाए तो आपकी इंद्रियां तत्काल फीकी पड़नी शुरू हो जायेंगी और आपके लिए संयम का विधायक मार्ग साफ होने लगेगा।
हम पूरे जीवन न-मालूम कितने अवसरों को चूक जाते हैं न-मालूम। आ ैर चूक जाने का हमारा एक तर्क है कि हम हर चीज को
संयोग कहकर छोड़ देते हैं कि ऐसा हो गया होगा। ऐसा नहीं है कि संयोग नहीं होते, संयोग होते हैं। लेकिन बिना परीक्षा किए मत

122

संयम की विधायक दृष्टि

कहें कि संयोग है। परीक्षा कर लें। हो सकता है, संयोग न हो। और अगर संयोग नहीं है तो आपकी शक्ति का आपको अनुमान होना शुरू हो जाएगा। एक बार आपको खयाल में आ जाए आपकी शक्ति का सूत्र, तो आप उसको फिर विकसित कर सकते हैं। उसको प्रशिक्षित कर सकते हैं। संयम उसका प्रशिक्षण है।
एक दिन आपने उपवास किया और आपको भोजन की बिलकुल याद न आए, उस दिन अपने को भुलाने की कोशिश में मत लगना जैसा उपवास करनेवाले करने लगते हैं। एक दिन उपवास किया तो आदमी मंदिर में जाकर बैठ जाता है। भजन कीर्तन, धुन में लगा रहता है। शास्त्र पढ़ता रहता है, साधु को सुनता रहता है। वह सब इसलिए कि भोजन की याद न आए। वह चूक रहा है। जिस दिन भोजन नहीं किया, उस दिन कुछ न करें, फिर खाली बैठ जाएं और देखें, अगर चौबीस घण्टे में आपको भोजन की याद न आए, तो उपवास आपके लिए मार्ग हो सकता है। तो आप महावीर ि जतने लम्बे उपवासों की दुनिया में प्रवेश कर सकते हैं। वह आपका द्वार बन सकता है। अगर आपको भोजन-भोजन की ही याद आने लगे तो आप जानना कि वह आपका रास्ता नहीं है। आपके लिए वह ठीक नहीं होगा।
किसी भी दिशा में—पच्चीस दिशाएं चौबीस घण्टे खुलती हैं। जो जानते हैं, वे तो कहते हैं—हर क्षण हम चौराहे पर होते हैं, जहां से दिशाएं खुलती हैं—हर क्षण। अपनी दिशा को खोज लेना साधक के ि लए बहुत जरूरी है, नहीं तो, वह भटक सकता है। और दूसरे को आरोपित मत करना, अपने को ही खोजना और अपने टाइप को खोजना, अपने ढांचे को, अपने व्यक्तित्व के रूप को। नहीं तो, भूल हो जाती है। महावीर को माननेवाले घर में पैदा हो गए हैं इसलिए आप महावीर के मार्ग पर जा सकेंगे, यह अनिवार्य नहीं है। कोई नहीं कह सकता कि आपके लिए मुहम्मद का मार्ग ठीक होगा । और कोई नहीं कह सकता कि कृष्ण का मार्ग ठीक नहीं होगा। जरूरी नहीं है कि आप कृष्ण को माननेवाले घर में पैदा हो गए हैं, इसलिए बांसुरी में आपको कोई रस आ जाए, यह जरूरी नहीं है। हो सकता है, महावीर आपके लिए सार्थक हों, जिनसे बांसुरी को है, वह जन्म नहीं है। महावीर के पास जो आएगा वह चुनकर आ रहा है। उसका बेटा जन्म से जैन हो जाएगा। वह खुद चुनकर आया था। उसका चुनाव था। उसके व्यक्तित्व और महावीर के व्यक्तित्व में कोई कशिश, कोई मैगनिटिज्म था, जिसने उसे खींचा था, वह उनके पास आ गया।` हाथ में बासुंरी न हो तो कृष्ण को पहचानना मुश्किल है। अगर बांसुरी अकेली रखी हो तो कृष्ण का खया ल आ भी सकता है। व्यक्तित्व के टाइप हैं। और अभी, जैसा कि हमने कभी इस मुल्क में चार वणोच को बांटा था, यह बहुत मजे की बात है कि वे चार वर्ण हमारे चार टाइप थे, जो मूल आदमी के चार रूप हो सकते हैं।
कभी-कभी चकित करने वाली घटनाएं घटती हैं। अभी रूस के वैज्ञानिक फिर आदमी को इलैच्क्टिरसिटी के आधार पर चार हिस्सों में बांटना शुरू किए हैं। वे कहते हैं—फोर टाइप्स। आधार उनका है कि व्यक्ति के शरीर की विद्युत का जो प्रवाह है, वह उसके टाइप को बताता है और वह विद्युत का प्रवाह है जो शरीर का, वह सब का अलग-अलग है। मैं

मानता हूं कि महावीर का वह विद्युत का प्रवाह पाजिटिव था। इसलिए वे किसी भी सक्रिय साधना में कूद सके। बुद्ध का वह इलैक्ट्रिकल प्रभाव निगेटिव था इसलिए वे किसी सक्रिय साधना से कुछ भी न पा सके। उन्हें एक दिन बिलकुल ही निष्क्रिय और शून्य हो जाना पड़ा। वहीं से उनकी उपलब्धि का द्वार खुला। वह व्यक्तित्व का भेद है, यह सिद्धांत का भेद नहीं है।

अब तक मनुष्य जाति बहुत उपद्रव में रही है क्योंकि हम व्यक्तित्व के भेद को सिद्धांतों का भेद मानकर व्यर्थ के विवादों में पड़े रहे हैं। अपने व्यक्तित्व को खोज लें। अपनी विशिष्ट इन्द्रिय को खोज लें। अपनी क्षमता का थोड़ा-सा आंकलन कर लें और फिर

आप संयम की दिशा में गति करना आसान—रोज-रोज आसान पाएंगे। लेकिन अगर आपने अपनी क्षमता को बिना आंके किसी

और की क्षमता के अनुकरण में चलने की कोशिश की तो आप अपने को रोज-रोज झंझट में पा सकते हैं। क्योंकि वह आपका मार्ग नहीं है, वह आपका द्वार नहीं है।

इसलिए बहुत दुर्भाग्य जो जगत में घटा है, वह यह है कि अपने धर्म को जन्म से तय करते हैं। इससे बड़ी कोई दुर्भाग्य की घटना पृथ्वी पर नहीं है। क्योंकि इस कारण सिर्फ उपद्रव पैदा होता है, और कुछ भी नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म सचेतन रूप से खोजना चाहिए। वह जीवन का जो परम लक्ष्य है, वह जन्म के होने से नहीं होता तय, वह आपको खोजना पड़ेगा। वह बड़ी मुश्किल से साफ होगा। लेकिन जिस दिन वह साफ हो जाएगा, उस दिन आपके लिए सब सुगम हो जाएगा।

दुनिया से धर्म के नष्ट होने के बुनियादी कारणों में एक यह है कि हम धर्म को जन्म से जोड़े हैं। धर्म हमारी खोज नहीं है और इसलिए यह भी होता है कि महावीर के वक्त में महावीर का विचार जितने लोगों के जीवन में क्रांति ला पाया, फिर पच्चीस सौ साल में भी उतने लोगों की जिंदगी में नहीं ला पाया। इसका कुल कारण इतना है कि महावीर के पास जो लोग आते हैं वह उनकी कांशस च्वाइस है, वह जन्म नहीं है। महावीर के पास जो आएगा वह चुनकर आ रहा है। उसका बेटा जन्म से जैन हो जाएगा। वह खुद चुनकर आया था। उसका चुनाव था। उसके व्यक्तित्व और महावीर के व्यक्तित्व में कोई कशिश, कोई मैगनिटिज्म था, जिसने उसे खींचा था, वह उनके पास आ गया। लेकिन उसका बेटा? उसका बेटा सिर्फ पैदा होने से महावीर के पास जाएगा, वह कभी पास नहीं पहुंचेगा। इसलिए महावीर या बुद्ध या कृष्ण या क्राइस्ट, इनके जीवन के क्षणों में इनके पास जो लोग आते हैं, उनके जीवन में आमूल रूपांतरण हो जाता है। फिर यह दुबारा घटना नहीं घटती। और हर पीढ़ी धीरे-धीरे औपचारिक हो जाती है। धर्म और औपचारिक, फार्मल हो जाता है। क्योंकि हम इस घर में पैदा हुए हैं, इसलिए इस मंदिर में जाते हैं। घर और मंदिर का कोई संबंध है? मेरा व्यक्तित्व क्या है, मेरी दिशा, मेरा आयाम क्या है। कौनसा चुंबक मुझे खींच सकता है, या किस चुंबक से मेरे संबंध जुड़ सकते हैं, वह प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं खोजना चाहिए।

हम एक धार्मिक दुनिया बनाने में तभी सफल हो पाएंगे जब हम प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनने की सहज स्वतंत्रता दे दें। अन्यथा दुनिया में धर्म न हो पाएगा। अधर्म होगा। और धार्मिक लोग औपचारिक होंगे और अधार्मिक वास्तविक होंगे। क्योंकि बड़े मजे की बात है। कोई आदमी कभी भी नास्तिकता को कांशसली चुनता है, चुनना पड़ता है। वह कहता है, 'नहीं है ईश्वर', तो उसका चुनाव होता है। और जो आदमी कहता है, 'ईश्वर है', यह उसके बाप दादों का चुनाव है।

इसलिए नास्तिक के सामने आस्तिक हार जाते हैं। उसका कारण है। क्योंकि आपका तो वह चुनाव ही नहीं है। आप आस्तिक हैं, पैदाइश। वह आदमी नास्तिक है, चुनाव से। उसकी नास्तिकता में एक बल, एक तेजी, एक गति, एक प्राण का स्वर होता है। आपकी आस्तिकता सिर्फ फार्मल है। हाथ में एक कागज का टुकड़ा है, जिस पर लिखा है, आप किस घर में पैदा हुए हैं। वही होता है। नास्तिक से हार जाता है आस्तिक, लेकिन ज्यादा दिन यह नहीं चलेगा। अब तक ऐसा हुआ था। अब नास्तिकता भी धर्म बन गयी है।

1917 की रूसी क्रांति के बाद नास्तिकता भी धर्म है। इसलिए रूस में अब नास्तिक बिलकुल कमजोर हैं। रूस के नास्तिक पैदाइश से नास्तिक हैं। उसका बाप नास्तिक था इसलिए वह नास्तिक है। इसलिए अब नास्तिकता भी निर्बल, नपुंसक हो गयी है। उसमें भी वह बल नहीं रह जाएगा। निश्चित ही बल होता है, अपने चुनाव में। मैं अगर मरने के लिए भी गड्ढे में कूदने जाऊं, और वह मेरा चुनाव है, तो मेरी मृत्यु में भी जीवन की आभा होगी। और अगर मुझे स्वर्ग भी मिल जाए धक्के देकर, फार्मल, कोई मुझे पहुंचा दे स्वर्ग में, तो मैं उदास-उदास स्वर्ग की गलियों में भटकने लगूंगा। वह मेरे लिए नरक हो जाएगा। उससे मेरी आत्मा का कहीं
तालमेल नहीं होनेवाला है।

124

संयम की विधायक दृष्टि

संयम को चुनें। अपने को खोजें। सिद्धांत का बहुत आग्रह न रखें, अपने को खोजें। अपनी इंद्रियों को खोजें। अपने बहाव देखें कि मेरी ऊर्जा किस तरफ बहती है; उससे लड़ें मत, वही आपका मार्ग बनेगा। उससे ही पीछे लौटें और विधायक रूप से अतींद्रिय का थोड़ा अनुभव शुरू करें। और प्रत्येक व्यक्ति के पास अतींद्रिय क्षमता है — उसे पता हो, न पता हो। और प्रत्येक व्यक्ति चमत्कारी रूप से अतींद्रिय प्रतिभा से भरा हुआ है। जरा कहीं द्वार खटखटाने की जरूरत है और खजाने खुलने शुरू हो जाते हैं। और जैसे ही यह होता है वैसे ही इंद्रियों का जगत फीका हो जाता है।

एक दो-तीन बातें संयम के संबंध में और, क्योंकि कल हम तप की बात शुरू करेंगे। आदमी भूलें भी नयी-नयी नहीं करता है, पुरानी ही करता है—भूलें भी। जड़ता का इससे बड़ा और क्या प्रमाण होगा? अगर आप जिंदगी में लौटकर देखें तो एक दर्जन भूल से ज्यादा भूलें आप न गिना पाएंगे। हां, उन्हीं-उन्हीं को कई बार किया। ऐसा लगता है कि अनुभव से हम कुछ सीखते ही नहीं। और जो अनुभव से नहीं सीखता वह संयम में नहीं जा सकेगा। संयम में जाने का अर्थ ही यह है कि अनुभव ने बताया कि असंयम गलत था; कि अनुभव ने बताया कि असंयम दुख था; कि अनुभव ने बताया कि असंयम सिर्फ पीड़ा थी और नरक था। लेकिन हम तो अनुभव से सीखते ही नहीं। अच्छा हो कि मैं मुल्ला की बात आपसे कहूं।

साठ वर्ष का हो गया है, मुल्ला। काफी हाउस में मित्रों के पास बैठकर गपशप कर रहा है एक सांझ। गपशप का रुख अनेक बातों से घूमता इस बात पर आ गया कि एक बूढ़े मित्र ने पूछा—सभी बूढ़े हैं, साठ साल का नसरुद्दीन है, उसके मित्र हैं—एक बूढ़े ने पूछा कि नसरुद्दीन, तुम्हारी जिंदगी में कोई ऐसा मौका आया, तुम्हें खयाल आता है कि जब तुम बड़ी परेशानी में पड़ गए होगे—बहुत आकवर्ड मोमेंट? नसरुद्दीन ने कहा—सभी की जिंदगी में आता है। लेकिन तुम अपनी जिंदगी का कहो तो हम भी कहें।

तो सभी बूढ़ों ने अपनी-अपनी जिंदगी के वे क्षण बताए जब वे बड़ी मुच्छिकल में पड़ गए हैं, जहां कुछ निकलने का रास्ता न रहा। कभी किसी ने कोई चोरी की और रंगे हाथों पकड़ा गया। कभी कोई झूठ बोला और झूठ नग्नता से प्रगट हो गया और कोई उपाय न रहा, उसको बचाने का।

नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे भी याद है। घर की नौकरानी स्नान कर रही है और मैं ताली के छेद से उसको देख रहा था। मेरी मां ने मुझे पकड़ लिया। उस वक्त मेरी बुरी हालत हुई।
बाकी बूढ़े हंसे। आंखें मिचकाइ। उन्होंने कहा—'नहीं, इसमें कोई इतने परेशान मत होओ। सभी की जिंदगी में, बचपन में ऐसे मौके आ जाते हैं।'
नसरुद्दीन ने कहा—'व्हाट आर यू सेइंग? दिस इज अबाउट यस्टडच। क्या कह रहे हो, बचपन! यह कल की ही बात है।'
बचपन और बुढ़ापे में चालाकी भला बढ़ जाती हो, भूलें नहीं बदलतीं। वही भूलें हैं। हां, बूढ़ा जरा होशियार हो जाता है और पकड़ में कम आता है, यह दूसरी बात है। लेकिन इससे बच्चा कम होशिया र है, पकड़ में जल्दी आ जाता है। अभी उसके पास उपाय चालाकी के ज्यादा नहीं हैं। या यह भी हो सकता है कि बच्चे को पकड़नेवाले लोग हैं, बूढ़े को पकड़नेवाले लोग नहीं हैं। बाकी कहीं अनुभव में कुछ भेद पड़ता हो , ऐसा दिखाई नहीं पड़ता।
नसरुद्दीन मरा। स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। सौ वर्ष के ऊपर होकर मरा । काफी जीया। कथा है कि सेंट पीटर ने, जो स्वर्ग के दरवाजे पर पहरा देते हैं, उन्होंने नसरुद्दीन से पूछा—काफी दिन रहे, बहुत दिन रहे, लंबा समय रहे, कौन-कौन-से पाप किए पृथ्वी पर?
नसरुद्दीन ने कहा—पाप! किए ही नहीं।
सेंट पीटर ने समझा कि शायद पाप बहुत जनरलाइज बात है, खयाल में न आ ती हो। बूढ़ा आदमी है।

कहा—'चोरी की कभी?'
नसरुद्दीन ने कहा—'नहीं।'
'कभी झूठ बोले?'
'नहीं।'
'कभी शराब पी?'
नसरुद्दीन ने कहा—'नहीं।'
'कभी स्त्रियों के पीछे पागल होकर भटके?'
नसरुद्दीन ने कहा— 'नहीं।'
सेंट पीटर बहुत चौंका। उसने कहा—'दैन व्हाट यू हैव बीन डूइंग देयर फार सो लोंग ए टाइम? सौ साल तक तुम कर क्या रहे थे वहां? कैसे गुजारे इतने दिन?'
नसरुद्दीन ने कहा—'अब तुमने मुझे पकड़ा। यह तो झंझट का सवाल है।'
यह झंझट का सवाल है।लेकिन इसका जवाब मैं तुमसे एक सवाल पूछकर देना चाहता हूं।' व्हाट हैव यू बीन डूइंग हियर?' तुम क्या कर रहे हो, यहां? हम तो सौ साल से, तुम्हारा तो सुनते हैं अनंतकाल से तुम यहां हो?
पाप न हो तो आदमी को लगता ही नहीं कि जिये कैसे। असंयम न हो तो आदमी को लगता ही नहीं कि जिये कैसे। अब महावीर जैसे लोग हमारी समझ के बाहर पड़ते हैं, इसका कारण है। इसका कारण एक्जिस्टेंशियल है। इंटेलेक्चुअल नहीं। उसका कारण बौद्धिक नहीं है कि वह हमारी समझ में नहीं आता। बुद्धि में बिलकुल समझ में आते हैं। फर्क हमारे जीने के ढंग का है। हमारी समझ में यह नहीं आता कि संयम, तो फिर जियेंगे क्या? न कोई स्वाद में रस रह जाएगा, न

कोई संगीत में रस रह जाएगा, न कोई रूप आकर्षित करेगा, न भोजन पुकारेगा, न वस्त्र बुलाएंगे, महत्वाकांक्षा न रह जाएगी। तो फिर हम जियेंगे कैसे?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि अगर महत्वाकांक्षा न रही, अगर बड़ा मकान बनाने का खयाल मिट गया, अगर और सुंदर होने का खयाल मिट गया, तो जियेंगे कैसे! अगर और धन पाने का खयाल मिट गया, तो जियेंगे कैसे! हमें लगता ही यह है कि पाप ही जीवन की विधि है, असंयम ही जीवन का ढंग है। इसलिए हम सुन लेते हैं कि संयम की बात अच्छी है, लेकिन वह कहीं हमें छू नहीं पाती। हमारे अनुभव से उसको कोई मेल नहीं है। और वह हमारा सवाल ठीक ही है क्योंकि जब भी हमें संयम का खयाल उठता है तो लगता है, निषेध—यह छोड़ो, वह छोड़ो, यह छोड़ो। यही तो हमारा जीवन है। सब छोड़ दें! तो फिर जीवन कहां है! यह निषेधात्मक होने की वजह से हमारी तकलीफ है। मैं नहीं कहता कि यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो। मैं कहता हूं, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है, यह भी पाया जा सकता है। इसे पाओ। हां, इस पाने में कुछ छूट जाएगा, निश्चित। लेकिन तब खाली जगह नहीं छूटेगी। तब भीतर एक नया फुलफिलमेंट, एक नया भराव होगा।

और हमारी सभी इंद्रियां एक पैटर्न में, एक व्यवस्था में जीती हैं। अगर आपको अतींद्रिय दृश्य दिखाई पड़ने शुरू हो जाएं तो ऐसा नहीं कि सिर्फ आंख से छुटकारा मिलेगा। नहीं, जिस दिन आंख से छुटकारा मिलता है उस दिन अचानक कान से भी छुटकारा मिलना शुरू हो जाता है। क्योंकि अनुभव का एक नया रूप जब आपके खयाल में आता है कि आंख के जगत में भी भीतर का दर्शन है, तो फिर कान के जगत में भी भीतर की ध्वनि होगी, भीतर का नाद होगा। फिर स्पर्श के जगत में भी भीतर के जगत का स्पर्श होगा। फिर संभोग के जगत में भी भीतर की समाधि होगी। वह त्काल खयाल में आना शुरू हो जाता है। जब संयम की विधायक दृष्टि

असंयम का, तो सब जगत से दीवार गिरनी शुरू हो जाती है। प्रत्येक चीज एक ढांचे में जीती है। एक इच्ट खींच लें, सब गिर जाता है।

जनगणना हो रही है और नसरुद्दीन के घर अधिकारी गए हुए हैं, उससे पूछने, उसके घर के बाबत। अकेला बैठा है, उदास। तो अधिकारी ने पूछा कि कुछ अपने परिवार का ब्यौरा दो, जनगणना लिखने आया हूं। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मेरे पिता जेलखाने में बंद हैं। अपराध की मत पूछो, क्योंकि बड़ी लंबी संख्या है। मेरी पत्नी किसी के साथ भाग गयी है। किसके साथ भाग गयी है, इसका हिसाब लगाना बेकार है। क्योंकि किसी के भी साथ भाग सकती थी। मेरी बड़ी लड़की पागलखाने में है। दिमाग का इलाज चलता है। यह मत पूछो कि कौनसी बीमारी है, यह पूछो कि कौनसी बीमारी नहीं है?

थोड़ा बेचैन होने लगा अधिकारी कि बड़ी मुसीबत का मामला है, कहां, कैसे भागे। किस तरह सहानुभूति इसको बताएं और निकलें यहां से? तभी नसरुद्दीन ने कहा—और मेरा छोटा लड़का बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी में है। तो अधिकारी को जरा प्रसन्नता हुई। उसने कहा—बहुत अच्छा। प्रतिभाशाली मालूम पड़ता है! क्या अध्ययन कर रहा है?

नसरुद्दीन ने कहा—'गलती मत समझो। हमारे घर में कोई अध्ययन करेगा? हमारे घर में कोई प्रतिभा पैदा होगी? न तो प्रतिभाशाली है, न अध्ययन कर रहा है। बनारस विश्वविद्यालय के लोग उसका अध्ययन कर रहे हैं। दे आर स्टडींइग हिम।' नसरुद्दीन ने कहा—'हमारे घर के बाबत कुछ तो समझो, जो पूरा ढांचा है उसमें— और रही मेरी बात, सो तुम न पूछो तो अच्छा है।' लेकिन जब तक वह यह कह रहा था तब तक तो अधिकारी भाग चुका था। उसने यह कहा तो वह था नहीं मौजूद, वह जा चुका था।

ढांचे में चीजों का अस्तित्व होता है। अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अगर आपके घर में एक आदमी पागल होता है, तो किसी न किसी रूप में आपके पूरे परिवार में ढांचा होगा, इसलिए है। नया मनोविज्ञान कहता है—एक पागल की चिकित्सा नहीं की जा सकती है जब तक उसके परिवार की चिकित्सा न की जाए। परिवार की चिकित्सा, फैमिली थैरेपी नयी विकसित हो रही है। और, जो और कुछ सोचते हैं वे कहते हैं कि परिवार से भी क्या फर्क पड़ेगा ? क्योंकि परिवार, और परिवारों के ढांचे में जीता है। तो जब तक पूरी सोसाइटी की चिकित्सा न हो जाए, जब तक पूरे समाज की चिकित्सा

न हो जाए, तब तक एक पागल को ठीक करना मुश्किल है। वे ग्रुप थैरेपी की बात करते हैं। वे कहते हैं—पूरा ग्रुप, वह जो समूह है पूरा, वह समूह के ढांचे में एक आदमी पागल होता है। चीजें संयुक्त हैं।

लेकिन एक बात उनके खयाल में नहीं है, जो मैं कहना चाहता हूं। कभी खयाल में आएगी, लेकिन अभी उनको सौ साल लग सकते हैं। यह बात जरूर सच है कि अगर एक घर में एक आदमी पागल है, तो किसी न किसी रूप में उसके पागलपन में पूरे घर के लोग कंट्रिब्यूट किए, उन सब ने कुछ न कुछ सहयोग दिया है। अन्यथा वह पागल कैसे हो जाता। और यह भी सच है कि जब तक उस घर के सारे लोग ठीक न हो जाएं तब तक यह आदमी ठीक नहीं हो सकता। यह भी सच है कि एक परिवार तो बड़े समूह का हिस्सा है और पूरा समूह उस परिवार को पागल करने में कुछ हाथ बंटाता है। जब तक पूरा समूह ठीक न होगा। लेकिन इससे उल्टी बात भी सच है। अगर घर में एक आदमी स्वस्थ हो जाए तो पूरे घर के पागलपन का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है। यह बात अभी उनके खयाल में नहीं है। यह उनके खयाल में कभी न कभी आ जाएगी। लेकिन भारत के खयाल में यह बात बहुत पुरानी है। और अगर एक आदमी ठीक हो जाए तो पूरे समूह का ढांचा टूटना शुरू हो जाता है।

इसे हम ऐसा भी समझें कि अगर आपके भीतर एक इंद्रिय में ठीक दिशा शुरू हो जाए तो आपकी सारी इंद्रियों का पुराना ढांचा

एक जगह से ढांचा टूट जाए

टूटना शुरू हो जाता है। आपकी एक वृत्ति संयम की तरफ जाने लगे तो आपकी बाकी वृत्तियां असंयम की तरफ जाने में असमर्थ हो जाती हैं। मुश्किल पड़ जाती है। जरा-सा इंचभर का फर्क और सारा का सारा जो रूप है—सारा का सारा रूप बदलना शुरू हो जाता है।

कहीं से भी शुरू करें, कुछ भी एक बिंदु मात्र आपके भीतर संयम का प्रगट होने लगे तो आपके असंयम का अंधेरा गिरने लगेगा। और ध्यान रहे, श्रेष्ठतर सदा शक्तिशाली है। तो मैं मानता हूं कि अगर एक व्यक्ति एक घर में ठीक हो जाए तो वह उस घर को पूरा ठीक कर सकता है क्योंकि श्रेष्ठतर शक्तिशाली है। अगर एक व्यक्ति एक समूह में ठीक हो जाए तो पूरे समूह के ठीक होने के संचारण उसके आसपास से होने लगते हैं क्योंकि श्रेष्ठ शक्तिशाली है। अगर आ पके भीतर एक विचार भी ठीक हो जाए, एक वृत्ति भी ठीक हो जाए तो आपकी सारी वृत्तियों का ढांचा टूटने और बदलने लगता है। बिखरने लगता है। फिर आप वही नहीं हो सकते जो आप थे। इसलिए पूरे संयम की चेष्टा में मत पड़ना। पूरा संयम संभव नहीं है। आज संभव नहीं है, इसी वक्त संभव नहीं है। लेकिन किसी एक वृत्ति को तो आप इसी वक्त, आज और अभी रूपांतरित कर सकते हैं। और ध्यान रखना, उस एक का बदलना आपकी और बदलाहट के लिए दिशा बन जाएगी। और आपकी जिंदगी में प्रकाश की एक किरण उतर आए, तो अंधेरा कितना ही पुराना हो, कितना ही हो, कोई भय का कारण नहीं है। प्रकाश की एक किरण अनंत गुने अंधेरे से भी ज्यादा शक्तिशाली है। संयम का एक छोटा-सा सूत्र, असंयम की जिंदगियां—अनंत जिंदगियों को मिट्टी में गिरा देता है।

लेकिन वह एक सूत्र शुरू हो, और शुरू अगर करना हो तो विधायक दृष्टि रखना, शुरू अगर करना हो तो उसी इंद्रिय से काम शुरू करना जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली हो। शुरू अगर करना हो तो मार्ग मत तोड़ना। उसी मार्ग से पीछे लौटना है जिससे हम बाहर गए हैं। शुरू अगर करना हो तो अंधानुकरण मत करना कि किस घर में पैदा हुए हैं। अपने व्यक्तित्व की

समझ को ध्यान में लेना। और फिर जहां भी मार्ग मिले, वहां से चले जाना। महावीर जहां पहुंचते हैं, वहीं मुहम्मद पहुंच जाते हैं। जहां बुद्ध पहुंचते, वहीं कृष्ण पहुंच जाते हैं। जहां लाओत्से पहुंचता है, वहीं क्राइस्ट पहुंच जाते हैं।

नहीं मालूम, आपको किस जगह से द्वार मिलेगा। आप पहुंचने की फिक्र करना, द्वार की जिद्द मत करना कि मैं इसी दरवाजे से प्रवेश करूंगा। हो सकता है वह दरवाजा आपके लिए दीवार सिद्ध हो, लेकिन हम सब इस जिद्द में हैं कि अगर जाएंगे तो जिनेच्नदर के मार्ग से जाएंगे, कि जाएंगे तो हम तो विष्णु को माननेवाले हैं, हम तो राम को माननेवाले हैं तो हम राम के मार्ग से जाएंगे। आप किसको माननेवाले हैं, यह उस दिन सिद्ध होगा जिस दिन आप पहुंचेंगे। उसके पहले सिद्ध नहीं होगा। आप किस द्वार से निकलेंगे, यह उसी दिन सिद्ध होगा जिस दिन आप निकल चुके होंगे, उसके पहले सिद्ध नहीं होता है। लेकिन आप पहले से यह तय किए बैठे हैं, इस द्वार से ही निकलूंगा। ऐसा मालूम पड़ता है, द्वार का बहुत मूल्य है, पहुंचने का कोई मूल्य नहीं है। जिद्द यह है कि इस सीढ़ी पर चढ़ेंगे। चढ़ने से कोई मतलब नहीं है, न भी चढ़ें तो चलेगा। लेकिन सीढ़ी यही होनी चाहिए।

यह पागलपन है और इससे पूरी पृथ्वी पागल हुई है। धर्म के नाम पर जो पागलपन खड़ा हुआ है वह इसलिए कि आपको मंजिल का कोई भी ध्यान नहीं है। साधनों का अति आग्रह है कि बस यही। इस पर थोड़ा ढीला होंगे, मुक्त होंगे तो आप बहुत शीघ्र संयम की विधायक दृष्टि पर, न केवल समझने में बल्कि जीने में समर्थ हो सकते हैं।

आज इतना ही।

कल तप पर हम बात करेंगे। बैठें, अभी जाएं मत—एक पांच मिनिट।

128

126

तप : ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन

आठवां प्रवचन

दिनांक 25 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

129

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किच्ठ्ठं,
 अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

च्धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।
च130

अहिंसा है आत्मा, संयम है प्राण, तप है शरीर। स्वभावतः अहिंसा के संबंध में भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएं हुई हैं। लेकिन वे भूलें और व्याख्याएं अपरिचय की भूलें हैं। संयम के संबंध में भी भूलें हुई हैं, गलत व्याख्याएं हुई हैं, लेकिन वे भूलें भी अपरिचय की ही भूलें हैं। और ज्यादा भूलें होनी कठिन हैं। जिससे हम अपरिचित हों, उसकी गलत व्याख्या करनी भी कठिन होती है। गलत व्याख्या के लिए भी परिचय जरूरी है। और हमारा सर्वाधिक परिचय तप से है क्योंकि वह सबसे बाच्ह्य रूप-रेखा है। वह शरीर है।
तप के संबंध में सर्वाधिक भूलें हुई हैं, और सर्वाधिक गलत व्याख्याएं हुई हैं। और उन गलत व्याख्याओं से जितना अहित हुआ है, उतना किसी और चीज से नहीं। एक फर्क है कि तप के संबंध में जो गलत व्याख्याएं हुई हैं, वे हमारे परिचय की भूलें हैं। तप से हम परिचित हैं और तप से हम परिचित आसानी से हो जाते हैं। असल में तप तक जाने के लिए हमें अपने को बदलना ही नहीं पड़ता। हम जैसे हैं, तप में हम वैसे ही प्रवेश कर जाते हैं। चूंकि तप द्वार है, और इसलिए हम जैसे हैं वैसे ही अगर तप में चले जाएं तो तप हमें नहीं बदल पाता, हम तप को बदल डालते हैं।
तो तप की पहले तो गलत व्याख्या जो निरंतर होती है, वह हमें समझ लेनी चाहिए, तो हम ठीक व्याख्या की तरफ कदम उठा सकते हैं। हम भोग से परिचित हैं—भोग यानी सुख की आकांक्षा । सभी सुख की आकांक्षाएं दुख में ले जाती हैं। सभी सुख की आकांक्षाएं अंततः दुख में छोड़ जाती हैं—उदास, खिन्न, उजड़े हुए। इससे स्वभावतः एक भूल पैदा होती है। और वह यह कि यदि हम सुख की मांग करके दुख में पहुंच जाते हैं तो क्या दुख की मांग करके सुख में नहीं पहुंच सकते? यदि सुख की आकांक्षा करते हैं और दुख मिलता है, तो क्यों न हम दुख की आकांक्षा करें और सुख को पा लें! इसलिए तप की जो पहली भूल है वह भोगी चित्त से निकलती है। भोगी चित्त का अनुभव यही है कि सुख दुख में ले जाता है। विपरीत हम करें तो हम सुख में पहुंच सकते हैं। तो सभी अपने को सुख देने की कोशिश करते हैं, हम अपने को दुख देने की कोशिश करें। यदि सुख की कोशिश दुख लाती है तो दुख की कोशिश सुख ला सकेगी, ऐसा सीधा गणित मालूम पड़ता है। लेकिन जिंदगी इतनी सीधी नहीं है। और जिंदगी का गणित इतना साफ नहीं है। जिंदगी बहुत उलझाव है। उसके रास्ते इतने सीधे होते तो सभी कुछ हल हो जाता।
सुना है मैंने कि रूस के एक बड़े मनोवैज्ञानिक पावलफ के पास, जिसने कंडीशंड रिच्फलैक्स के सिद्धांत को जन्म दिया, जिसने कहा कि अनुभव संयुक्त हो जाते हैं, उसके पास एक बूढ़े आदमी को लाया गया जो कि शराब पीने की आदत से इतना परेशान हो गया है कि चिकित्सक कहते हैं कि उसके खून में शराब फैल गयी है। उसका जीना मुश्किल है, बचना मुश्किल है अगर शराब बंद न कर दी

जाए। लेकिन वह कोई तीस साल से शराब पी रहा है। इतना लम्बा अभ्यास है। चिकित्सक डरते हैं कि अगर तोड़ा जाए तो भी मौत हो सकती है। तो पावलफ के पास लाया गया। पावलफ ने अपने एक निष्णात शिष्य को सौंपा और कहा कि इस व्यक्ति को शराब पिलाओ और जब यह शराब की प्याली हाथ में ले, तभी इसे बिजली का शाक दो। ऐसा निरंतर करने से शराब पीना और बिजली का धक्का और पीड़ा संयुक्त हो जाएगी। शराब पीड़ा-युक्त हो जाएगी, कंडीशनिंग हो जाएगी। पीड़ा को कोई भी नहीं चाहता है। पीड़ा को छोड़ना शराब को छोड़ना बन जाएगा। और एक बार यह भाव मन में बैठ जाए गहरे कि शराब पीड़ा देती है, दुख लाती है, तो शराब को छोड़ना कठिन नहीं होगा।

एक महीना प्रयोग जारी रखा गया। एक महीना पावलफ की प्रयोगशाला में वह आदमी रुका था। वह दिन भर शराब पीता था, जब भी वह शराब का प्याला हाथ में लेता, तभी उसकी कुर्सी उसको शाक देती। वह सामने बैठा हुआ मनोवैज्ञानिक बटन दबाता रहता। कभी उसका हाथ छलक जाता, कभी हाथ से प्याली गिर जाती।

महीने भर बाद पावलफ ने अपने युवक शिष्य को बुलाकर पूछा, 'कुछ हुआ ?' युवक शिष्य ने कहा, 'हुआ बहुत कुछ।' पावलफ खुश हुआ। उसने कहा, 'मैंने कहा ही था कि निश्चित ही कंडीशनिंग से सब कुछ हो जाता है।' पर उसके शिष्य ने कहा, 'ज्यादा खुश न हों, क्योंकि करीब-करीब उल्टा हुआ।'

पावलफ ने कहा, 'उल्टा! क्या अर्थ है तुम्हारा?'

युवक ने कहा, 'ऐसा हो गया है, वह इतना कंडीशंड हो गया है कि अब शराब पीता है तो पहले जो भी पास में साकेट होता है उसमें उंगली डाल लेता है। कंडीशंड हो गया। लेकिन अब बिना शाक के शराब नहीं पी सकता है। शराब तो नहीं छूटी, शाक पकड़ गया। अब कृपा करके, शराब छूटे या न छूटे, शाक छुड़वाइए। क्योंकि शराब जब मारेगी, मारेगी; यह शाक का धंधा खतरनाक है, यह अभी भी मार सकता है। अब वह पी ही नहीं सकता है। इधर एक हाथ में प्याली लेता है तो दूसरा हाथ साकेट में डालता है।

जिन्दगी इतनी उलझी हुई है। जिन्दगी इतनी आसान नहीं है। तो एक तो जिन्दगी की गणित साफ नहीं है कि जैसा आप सोचते हैं वैसा हो जाएगा। दुख की आकांक्षा सुख नहीं ले आएगी। क्यों? क्योंकि अगर हम गहरे में देखें तो पहली तो बात यह है कि आपने सुख की आकांक्षा की, दुख पाया। अब आप सोचते हैं दुख की आकांक्षा करें तो सुख मिलेगा। लेकिन गहरे में देखें तो अभी भी आप सुख की ही आकांक्षा कर रहे हैं। दुख चाहें तो सुख मिलेगा इसलिए दुख चाह रहे हैं। आकांक्षा सुख की ही है। और सुख की कोई आकांक्षा सुख नहीं ला सकती। ऊपर से दिखाई पड़ता है कि आदमी अपने को दुख दे रहा है, लेकिन वह दुख इसीलिए दे रहा है कि सुख मिले। पहले सुख दे रहा था ताकि सुख मिले, दुख पाया। अब दुख दे रहा है ताकि सुख मिले, दुख ही पाएगा। क्योंकि आकांक्षा का सूत्र तो अब भी गहरे में वही है। ऊपर सब बदल गया, भीतर आदमी वही है।

सच बात यह है दुख चाहा ही नहीं जा सकता। यू कैन नाट डिजायर इट। इम्पासिबल है, असम्भव है। अगर हम ऐसा कहें कि सुख ही चाह है और दुख की तो अचाह ही होती है, चाह नहीं होती है। हां, अगर कभी कोई दुख चाहता है तो सुख के लिए ही, लेकिन वह चाह सुख की ही है। दुख चाहा ही नहीं जा सकता। यह असम्भव है। तब हम ऐसा कह सकते हैं, जो भी चाहा जाता है वह सुख है, और जो नहीं चाहा जाता है, वह दुख है। इसलिए दुख के साथ चाह को नहीं जोड़ा जा सकता। और जो भी आदमी दुख के साथ चाह को जोड़कर तप बनाता है; (दुख॒ चाह = तप), ऐसी हमारी व्याख्या है

— जो भी आदमी दुख के साथ चाह को जोड़ता है और तप बनाता है — वह तप को समझ ही नहीं पाएगा। दुख की तो चाह ही नहीं हो सकती। सुख ही पीछे

132

तप : ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन

दौड़ता है। आकांक्षा मात्र सुख की है। चाह मात्र सुख की है। हां, एक ही रास्ता है कि आपको दुख में भी सुख मालूम पड़ने लगे तो आप दुख को चाह सकते हैं। दुख में भी सुख मालूम पड़ सकता है। इसलिए दूसरी गलत व्याख्या समझ लें। दुख में भी सुख मालूम पड़ सकता है, एसोसिएशन से, कंडीशनिंग से। जो मैंने पावलफ की बात आपको कही, उसी ढंग से, आपको दुख में सुख का भ्रम हो सकता है।

यूरोप में ईसाई फकीरों का एक सम्प्रदाय था—कोड़ा मारनेवाला स्वयं को, च्फलैजिलिस्ट। उस सम्प्रदाय की मान्यता थी कि जब भी कामवासना उठे तो अपने को कोड़े मारो। लेकिन बड़ी हैरानी का अनुभव हुआ। जो लोग जानते हैं, उन्हें पता है या जिन्होंने वह प्रयोग किया, उनको धीरे-धीरे अनुभव आया कि कोड़े, जब भी कामवासना उठे तो अपने को कोड़े मारो — आशा यह थी कि कोड़े खाकर कामवासना छूट जाए, लेकिन धीरे-धीरे कोड़े मारनेवालों को पता चला कि कोड़े मारने में कामवासना का ही मजा आने लगा। और यहां तक हालत हो गयी कि जिन लोगों ने कोड़े मारने का अभ्यास किया कामवासना के लिए, फिर वे संभोग में अपने को बिना कोड़े मारे नहीं जा सकते थे। पहले वे कोड़े मारेंगे, फिर संभोग में जा सकेंगे । जब तक कोड़े न पड़ें शरीर पर, तब तक कामवासना पूरे रस-मग्न होकर उठेगी नहीं। ऐसा आदमी के मन का जाल है।

तो अब वह आदमी अपने को रोज सुबह कोड़े मार रहा है और पास- पड़ोस के लोग उसको नमस्कार करेंगे कि कितना महान त्यागी है। क्योंकि यह जो कोड़े मारनेवाला सम्प्रदाय था, इसके लाखों लोग थे मध्य युग में, पूरे यूरोप में। और साधु की पहचान ही यह थी कि वह कितने कोड़े मारता है। जो जितने कोड़े मारता था वह उतना बड़ा साधु था। तो सुबह खड़े होकर चौराहों पर साधु अपने को कोड़े मारते थे। लहूलुहान हो जाते थे। लोग चकित होते थे कि कितनी बड़ी तपश्चर्या है। क्योंकि जब उनके शरीर से लहू बहता था तो उनके चेहरे पर ऐसा मग्न भाव होता था जो कि केवल संभोगरत जोड़ों में देखा जाता है। लोग चरण छूते थे कि अदभुत है यह आदमी। लेकिन भीतर क्या घटित हो रहा है, वह उन्हें पता नहीं है। भीतर वह आदमी पूरी कामवासना में उतर गया है। अब उसे कोड़े मारने में रस आ रहा है। क्योंकि कोड़ा मारना कामवासना से संयुक्त हो गया। यह वही हुआ जो पावलफ के प्रयोग में हुआ।

और हम अपने दुख में सुख की कोई आभा संयुक्त कर सकते हैं। और अगर दुख में सुख की आभा संयुक्त हो जाए तो हम दुख को बड़े मजे से अपने आसपास इकट्ठा कर ले सकते हैं। लेकिन, तप का यह अर्थ नहीं है। तप दुखवादी की दृष्टि नहीं है। यह दुखवाद गहरे में तो सुख ही है। तप के आसपास यह जो जाल खड़ा है, अगर यह आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो तपस्वियों की पर्त को तोड़कर आप उनके भीतर देख पाएंगे कि उनका रस क्या है! और एक बार आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो आप समझ पाएंगे कि जब भी कुछ चाहा जाता है तो सुख चाहा जाता है। अगर कोई दुख को चाह रहा है तो किसी न किसी कोने में उसके मन में सुख और दुख संयुक्त हो गए हैं। इसके अतिरिक्त दुख को कोई नहीं चाह सकता है। भूखे मरने में भी मजा आ सकता है, कांटे पर लेटने में भी मजा आ सकता है, धूप में खड़े होने में भी मजा आ सकता हैएक बार आपके भीतर की किसी वासना से कोई दुख संयुक्त हो जाये। और आदमी अपने

को दुख इसलिए देता है कि वह किसी वासना से मुक्त होना चाहता है। जिस वासना से मुक्त होना चाहता है, दुख उसी से संयुक्त हो जाता है।
एक आदमी को अपने शरीर को सजाने में बड़ा सुख है। वह शरीर से मुक्त होना चाहता है, शरीर की सजावट की इस कामना से मुक्त हो जाना चाहता है। वह नंगा खड़ा हो जाता है या अपने शरीर पर राख लपेट लेता है, या अपने शरीर को कुरूप कर लेता है। लेकिन उसे पता नहीं है कि यह राख लपेटना भी, यह नग्न हो जाना भी, यह शरीर को कुरूप कर लेना भी शरीर से ही संबंधित

133

महावीर-वाणी भाग ः 1

है। यह भी सजावट है। सजावट दिखाई नहीं पड़ती, यह भी सजावट है। आपको पता है, अगर आप कभी कुम्भ गए हैं, तो एक बात देखकर बहुत चकित होंगे कि जो साधु राख लपेटे बैठे रहते हैं, वे भी एक छोटा आईना अपने डिब्बे में रखते हैं और सुबह स्नान करने के बाद जब वह राख लपेटते हैं, तो आइने में देखते जाते हैं। आदमी अदभुत है। राख ही लपेट रहे हैं तो आइने का क्या प्रयोजन रह गया। लेकिन राख लपेटना भी सजावट है, श्रृंगार है। शरीर को कुरूप करनेवाला भी आइने में देखेगा कि हो गया ठीक से कि नहीं?
उल्टा दिखाई पड़ता है, उल्टा है नहीं। तपस्वी शरीर का दुश्मन नहीं हो जाता, जैसा कि भोगी शरीर का लोलुप मित्र है। तपस्वी भोगी के विपरीत नहीं हो जाता क्योंकि विपरीत से भी भोग संयुक्त हो जाता है। विपरीत से भी भोग संयुक्त हो जाता है। शरीर को सुंदर बनानेवालों के लिए ही आइने की जरूरत नहीं होती, शरीर को कुरूप बनानेवाले के लिए भी आइने की जरूरत पड़ जाती है। शरीर को सुंदर बनानेवाला ही दूसरों की दृष्टि पर निर्भर नहीं रहता है कि कोई मुझे देखे, शरीर को कुरूप बनानेवाला भी दूसरों की दृष्टि पर ही निर्भर रहता है कि कोई मुझे देखे। सुंदर वस्त्र पहनकर रास्ते पर निकलनेवाला ही देखनेवाले की प्रतीक्षा नहीं करता है, नग्न होकर निकलनेवाला भी उतनी ही प्रतीक्षा करता है। विपरीत भी कहीं एक ही रोग की शाखाएं हो सकते हैं, यह समझ लेना जरूरी है। आसान है लेकिन यहीच्—च्शरीर के भोग से शरीर के तप पर जाना आसान है। शरीर को सुख देने की आकांक्षा का शरीर को दुख देने की आकांक्षा में बदल जाना बड़ा सुगम और सरल है।
एक और बात ध्यान में ले लेनी जरूरी है। जिस माध्यम से हम सुख चाहते हैं, अगर वह माध्यम हमें सुख न दे पाए तो हम उसके दुश्मन हो जाते हैं। अगर आप कलम से लिख रहे हैंच्—च्सभी को अनुभव होगा जो लिखते-पढ़ते हैंच्—च्अगर कलम ठीक न चले तो आप कलम को गाली देकर जमीन पर पटककर तोड़ भी सकते हैं। अब कलम को गाली देना एकदम नासमझी है। इससे ज्यादा नासमझी और क्या होगी! और कलम को तोड़ देने से कलम का कुछ भी नहीं टूटता, आपका ही कुछ टूटता है। कलम का कोई नुकसान नहीं होता, आपका ही नुकसान होता है। लेकिन जूतों को गा ली देकर पटक देनेवाले लोग हैं, दरवाजों को गाली देकर खोल देनेवाले लोग हैं। ये ही लोग तपस्वी बन जाते हैं। शरीर सुख नहीं दे पाया, यह अनुभव शरीर को तोड़ने की दिक्षा में ले जाता हैच्—च्तो शरीर को सताओ। लेकिन शरीर को सताने के पीछे वही फ्रच्स्टरेशन, वही विषाद काम कर रहा है कि शरीर से सुख चाहा था और नहीं मिला तो अब जिस माध्यम से सुख चाहा था उसको दुख देकर बताएंगे।
लेकिन आप बदले नहीं, अभी भी। अभी भी आपकी दृष्टि शरीर पर लगी है, चाहे सुख चाहा हो, और चाहे अब दुख देना चाहते हों, पर आपके चित्त की जो दिशा है वह अभी भी शरीर के ही आसपास वर्तुल बनाकर घूमती है। आपकी चेतना

अभी भी शरीर केंद्रित है। अभी भी शरीर भूलता नहीं। अभी भी शरीर अपनी जगह खड़ा है और आप वही के वही हैं। आपके और शरीर के बीच का संबंध वही का वही है। ध्यान रखें, भोगी और तथाकथित तपस्वी के बीच शरीर के संबंध में कोई अन्तर नहीं पड़ता। शरीर के साथ संबंध वही रहता है।

क्या आप सोच सकते हैं, अगर हम भोगी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाए तो तुम्हें कठिनाई होगी? भोगी कहेगाच्—च्कठिनाई! मैं बर्बाद हो जाऊंगा, क्योंकि शरीर ही तो मेरे भोग का माध्यम है। अगर हम तपस्वी से कहें कि तुम्हारा शरीर छीन लिया जाए, तुम्हें कोई कठिनाई होगी? वह भी कहेगा — मैं मुश्किल में पड़ जाऊंगा। क्योंकि मेरी तपश्चर्या का साधन तो शरीर ही है। कर तो मैं शरीर के साथ ही कुछ रहा हूं। अगर शरीर ही न रहा तो तप कैसे होगा? अगर शरीर न रहा तो भोग कैसे होगा? इसलिए मैं कहता हूं — दोनों की दृष्टि शरीर पर है और दोनों शरीर के माध्यम से जी रहे हैं। जो तप शरीर के माध्यम से जी रहा है वह

134

□

तप : ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन

भोग का ही विकृत रूप है। जो तप शरीर-केन्द्रित है, वह भोग का ही दूसरा नाम है। वह विषाद को उपलब्ध हो गए भोग की प्रतिक्रिया है। वह विषाद को उपलब्ध हो गए भोग की शरीर के साथ बदला लेने की, रिवेंज लेने की आकांक्षा है।

इसे समझें तो फिर हम ठीक तप की दिशा में आंखें उठा सकेंगे। यह इन का रणों से तप जो है, आत्महिंसा बन गया है। अपने को जो जितना सता सकता है उतना बड़ा तपस्वी हो सकता है। लेकिन सताने से तप का कोई संबंध है? टार्चर, पीड़न, आत्म-पीड़न, उससे तप का कोई संबंध है? और ध्यान रखें, जो अपने को सता सकता है वह दूसरे को सताने से बच नहीं सकता। क्योंकि जो अपने को तक सता सकता है, वह किसी को भी सता सकता है। हां, उसके सताने के ढंग बदल जाएंगे। निश्चित ही भोगी का सताने का ढंग सीधा होता है। त्यागी के सताने का ढंग परोक्ष हो जाता है, इनडायरेक्ट हो जाता है। अगर भोगी को आपको सताना है तो आप पर सीधा हमला बोलता है। त्यागी को आपको सताना है तो बहुत पीछे से हमला बोलता है। लेकिन आपके खयाल में नहीं आता कि वह हमला बोल रहा है। अगर आप त्यागी के पास जाएं — तथाकथित त्यागी के पास, सो-काल्ड, जो आस्टेरिटी है, तपश्चर्या है — उसके पास आप जाएं; अगर आपने अच्छे कपड़े पहन रखे हैं और आपका त्यागी भभूत रमाए बैठा है तो आपके कपड़ों को ऐसे देखेगा जैसे दुश्मन देखता है। उसकी आंख में निन्दा होगी, आप कीड़े-मकोड़े मालूम पड़ेंगे। ऐसे कपड़े पहने हुए हैं! उसकी आंखों में इशारा होगा नरक का, तीर बना होगा नरक की तरफ कि गए नरक। वह आपको कहेगा — अभी तक संभले नहीं! अभी तक इन कपड़ों से उलझे हो, नरक में भटकोगे।

मैंने सुना है कि एक पादरी एक चर्च में लोगों को समझा रहा था, डरा रहा था नरक के बाबत कि कैसी-कैसी मुसीबतें होंगी। और जब कयामत का दिन आएगा तो इतनी भयंकर सर्दी पड़ेगी पापियों के ऊपर कि दांत खड़खड़ाएंगे। मुल्ला नसरुद्दीन भी उस सभा में था, वह खड़ा हो गया। उसने कहा — लेकिन मेरे दांत टूट गए हैं!

उस फकीर ने कहा — घबराओ मत, फाल्स टीथ विल बी प्रोवाइडेड। नकली दांत दे दिए जाएंगे, लेकिन खड़खड़ाएंगे।

साधु, तथाकथित तपस्वी आपको नरक भेजने की योजना में लगे हैं। उनका चित्त आपके लिए नरक के सारे इंतजाम कर रहा है। सच तो यह है कि नरक में कष्ट देने का जो इंतजाम है, वह तथाकथित झूठे तपस्वी की कल्पना है, फैंटेसी है। वह तथाकथित तपस्वी यह सोच ही नहीं सकता कि आपको भी सुख मिल सकता है! आप यहां काफी सुख ले रहे हैं। वह

जानता है कि यह सुख है। वह यहां काफी दुख ले रहा है। कहीं तो बैलेंस करना पड़ेगा, कहीं संतुलन करना पड़ेगा। उसने यहां काफी दुख झेल लिया है। वह स्वर्ग में सुख झेलेगा। आप यहां सुख भोग रहे हैं। आप नरक में सड़ेंगे और दुख भोगेंगे।

और बड़े मजे की बात है कि उसके स्वर्ग के सुख आपके ही सुखों का मैगनीफाइड रूप हैं। आप जो सुख यहां भोग रहे हैं, वही सुख और विस्तीर्ण होकर, बड़े होकर वह स्वर्ग में भोगेगा, और जो दुख वह यहां भोग रहा हैयह मजे की बात है कि तपस्वी अपने आसपास आग जलाकर बैठते रहे हैंआपको नरक में आग में सड़ाएंगे वे। जो तपस्वी अपने आसपास आग जलाएगा उससे सावधान रहना, उसके नरक में आग आपके लिए तैयार रहेगी। भयंकर आग होगी जिससे आप बच न सकेंगे। कड़ाहों में डाले जाएंगे, चुड़ाए जाएंगे और मर भी न सकेंगे क्योंकि मर गए तो मजा ही खत्म हो जाएगा। अगर मारा और मर गए तो दुख कौन झेलेगा? इसलिए नरक में मरने का उपाय नहीं है। ध्यान रखना, नरक में तपस्वियों ने आत्महत्या की सुविधा नहीं दी है। आप मर नहीं सकते नरक में, आप कुछ भी करें। और कुछ भी करें, एक काम नरक में नहीं होता कि आप मर नहीं सकते। क्योंकि अगर आप मर सकते हैं तो दुख के बाहर हो सकते हैं। इसलिए वह सुविधा नहीं दी है।

किसकी कल्पना से निकलता है यह सारा खयाल? यह कौन सोचता है, ये सा री बातें? सच में जो तपस्वी है वह तो सोच भी नहीं

ही इसीलिए है।

एक मित्र की पत्नी मुझे कहती थी कि मेरा पति से कोई भी प्रेम नहीं रह गया, लेकिन कलह जारी है। मैंने कहा, अगर प्रेम बिलकुल न रह गया हो, तो कलह जारी नहीं रह सकती। कलह के लिए भी प्रेम चाहिए। थोड़ा-बहुत होगा। मैंने उससे कहा कि थोड़ा-बहुत जरूर होगा। और कलह अगर बहुत चल रही है तो बहुत ज्यादा होगा।

उसने कहा, आप कैसी उल्टी बातें करते हैं? मैं डाइवोर्स के लिए सोचती हूं, कि तलाक दे दूं।

मैंने कहा, हम तलाक उसी को देने के लिए सोचते हैं, जिससे हमारा कुछ बंधन होता है। जिससे बंधन ही नहीं होता उसको तलाक भी क्या देंगे। बात ही खत्म हो जाती है, तलाक हो जाता है। यह दो वर्ष पहले की बात है।

फिर अभी एक दिन मैंने उससे पूछा कि क्या खबर है? उसने कहा, आप शा यद ठीक कहते थे। अब तो कलह भी नहीं होती। आप शायद ठीक कहते थे, उस वक्त मेरी समझ में नहीं आया। अब तो कलह भी नहीं होती। तलाक के बाबत क्या खयाल है? उसने कहा, क्या लेना, क्या देना। बात ही शान्त हो गयी। दोनों के बीच संबंध ही नहीं रह गया। संबंध हो तो तोड़ा जा सकता है। संबंध ही न रह जाए तो क्या तोड़िएगा? अगर आप किसी वासना से लड़ रहे हैं तो आपका उस वासना में रस अभी कायम है। जिन्दगी ऐसी उलझी हुई है।

इसलिये फ्रायड ने तो जीवनभर के पचास साल के अनुभव के बाद कहा और शायद यह आदमी अकेला था पृथ्वी पर जो मनुष्यों के संबंध में इस भांति गहरा उतरा — इस आदमी ने कहा कि जहां तक प्रेम है वहां तक कलह जारी रहेगी। अगर कलह से मुक्त होना है तो प्रेम से मुक्त होना पड़ेगा। अगर पति पत्नी में प्रेम है, तो प्रेम का तो हमें पता नहीं चलता क्योंकि प्रेम उनका एकांत में प्रगट होता होगा। लेकिन कलह का हमें पता चलता है क्योंकि कलह तो प्रगट में भी प्रगट हो जाती है। अब कलह के लिए एकांत तो नहीं खोजा जा सकता। कलह ऐसी चीज भी नहीं है कि उसके लिए कोई एकांत का कष्ट उठाए। पर फ्रायड कहता है कि अगर प्रगट में कलह जारी है तो हम मान सकते हैं, अप्रगट में प्रेम जारी होगा। दिन में जो पति-पत्नी लड़े हैं, रात वे प्रेम में पड़ेंगे। पू र्ति करनी पड़ती है, बैलेंस करना पड़ता है, सन्तुलन करना पड़ता है।

जिस दिन लड़ाई होती है उस दिन घर में कोई भेंट भी लाई जाती है। अगर पति लड़कर बाजार गया है तो लौटकर कुछ पत्नी के लिए लेकर आएगा। अगर पति घर की तरफ फूल लिए आता हो तो यह मत समझ लेना कि पत्नी का जन्मदिन है। समझना कि आज सुबह उपद्रव ज्यादा हुआ है। यह बैलेंसिंग है, अब वह उसको सन्तुलन करेगा। इसलिये फ्रायड तो कहता है कि मैं कामवासना को एक कलह मानता हूं। इसलिए फ्रायड सैक्स और वार को जोड़ता है। वह कहता है, युद्ध और काम एक ही चीज के रूप हैं और जब तक मन में कामवासना है, तब तक युद्ध की वृत्ति समाप्त नहीं हो सकती। यह इनसाइट गहरी है, यह अन्तर्दृष्टि गहरी है। और इस अन्तर्दृष्टि को अगर हम समझें तो महावीर को समझना बहुत आसान हो जाएगा।

महावीर कहते कि अगर जो बुरा है, तथाकथित बुरा मालूम पड़ता है; उससे छूटना है, तो जो तथाकथित भला है उससे भी छूट जाना पड़ेगा। अगर घृणा से मुक्त होना है तो राग से भी मुक्त हो जाना पड़ेगा। अगर शत्रु से बचना है तो मित्र से भी बच जाना पड़ेगा। अगर अंधेरे में जाने की आकांक्षा नहीं है तो प्रकाश को भी नमस्कार कर लेना पड़ेगा। यह उल्टा दिखाई पड़ता है, यह उल्टा नहीं है। क्योंकि जिसके मन में प्रकाश में जाने की आकांक्षा है, वह बार-बा र अंधेरे में गिरता रहेगा। जीवन द्वंद्व है, और जीवन के सब रूप अपने विपरीत से बंधे हुए हैं, अपने से उल्टे से बंधे हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो व्यक्ति जिस चीज से लड़ेगा, विपरीत चलेगा, उससे ही बंधा रहेगा। उससे वह कभी नहीं छूट सकता। अगर आप धन से लड़ रहे हैं और धन के विपरीत जा रहे हैं, तो धन आपके

137

महावीर-वाणी भाग : 1

चित्त को सदा घेरे रहेगा। अगर आप अहंकार से लड़ रहे हैं और अहंकार के विपरीत जा रहे हैं तो आपका अहंकार सूक्ष्म से सूक्ष्म होकर आपके भीतर सदा खड़ा रहेगा। लड़ना थोड़ा संभलकर। क्योंकि ि जससे हम लड़ते हैं, उससे हम बंध जाते हैं।

तप इन्हीं भूलों में पड़कर रुग्ण हो गया। और जिन्हें हम तपस्वी की भांति जानते हैं, उनमें से निन्यानबे प्रतिशत मानसिक चिकित्सा के लिए उम्मीदवार हैं। उनकी मानसिक चिकित्सा जरूरी है। और ध्यान रहे, कामवासना से छूटना आसान है, क्योंकि कामवासना प्रकृति है। कामवासना के विपरीत जो कामवासना के विरोध से बंध गया, उससे छूटना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वह प्रकृति से और एक कदम दूर निकल जाना है।

इसे हम तीन शब्दों में समझ लें। एक को मैं कहता हूं प्रकृति, जिसे हमने कुछ नहीं किया, जो हमें मिली है—दि गिवन। जो हमें मिली है, वह प्रकृति है। अगर हम कुछ गलत करें तो जो हम कर लेंगे, उसका नाम है विकृति। और अगर हम कुछ करें और ठीक करें तो जो होगा, उसका नाम है संस्कृति। प्रकृति पर हम खड़े होते हैं। जरा-सी भूल और विकृति में चले जाते हैं। संस्कृति में जाना बहुत कठिन है। क्योंकि संस्कृति में जाने के लिए विकृति से बचना पड़ेगा और प्रकृति के ऊपर उठना पड़ेगा। दो बातें — विकृति से बचना पड़ेगा और प्रकृति के ऊपर उठना पड़ेगा। अगर किसी ने सिर्फ प्रकृति से लड़ने की कोशिश की तो विकृति में गिर जाएगा। और विकृति संस्कृति से और एक कदम दूर है। प्रकृति उतनी दूर नहीं, प्रकृति मध्य में खड़ी है। विकृति, और आप हट गए। प्रकृति से भी दूर हट गए। इसलिए तो पशुओं में ऐसी विकृतियां नहीं दिखाई पड़तीं जैसी मनुष्यों में दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि पशु प्रकृति से नहीं लड़ते, इसलिए विकृति नहीं दिखाई पड़ती। हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

अभी न्यूयार्क के एक चौराहे पर और वाशिंगटन में और-और जगहों पर होमोसेक्सुअल्स ने जुलूस निकाले हैं और उन्होंने कहा है कि यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। और इस वर्षपिछले वर्ष, कम- से-कम सौ होमोसेक्सुअल्स ने विवाह

किए। जो कि कल्पना के बाहर मालूम पड़ता है—एक पुरुष, एक पुरुष के साथ विवाह कर रहा है या एक स्त्री, एक स्त्री के साथ विवाह कर रही है—समलिंगी विवाह। सौ विवाह की घटनाएं दर्ज हुई हैं अमेरिका में इस वर्ष। और इन लोगों ने कहा है कि हम घोषणा करते हैं कि हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है कि हम जिसको प्रेम करना चाहते हैं, करें, कोई सरकार हमें रोके क्यों? एक पुरुष-पुरुष को प्रेम करना चाहता है, उससे विवाह करना चाहता है, उनके काम-संबंध का अधिकार मांगता है। कम से कम डेढ़ सौ क्लब पूरे अमेरिका में हैं। और यूरोप में, स्वीडन में और स्विटजरलैंड में—सब जगह वे क्लब फैलते चले गए हैं। कम से कम दो सौ पत्रिकाएं आज जमीन पर निकलती हैं होमोसेक्सुअल्स की। पत्रिकाएं, जिनमें वे खबरें देते हैं और घोषणाएं देते हैं।

और आप हैरान होंगे कि अभी उन्होंने एक प्रदर्शन किया है, कै लिफोर्निया में, जैसा कि ब्यूटी कंपटिशन का होता है — महिलाओं को, सुन्दर महिलाओं को हम नग्न खड़ा करते हैं। होमोसेक्सुअल्स ने पचास नग्न युवकों को खड़ा करके प्रदर्शन किया कि हम इनमें ही सौन्दर्य देखते हैं, स्त्रियों में नहीं। कोई पशुओं की हम कभी सोच सकते हैं कि पशु और होमोसेक्सुअल, नहीं! हां कभी-कभी ऐसा होता है, सर्कस के पशु होमोसेक्सुअल हो जाते हैं। या कभी-कभी अजायबघर के पशु होमोसेक्सुअल हो जाते हैं।

डैस्मंड मौरिस ने एक किताब लिखी है—दि ह्यूमन जू। आदमियों का अजा यबघर। और उसने लिखा है कि जो अजायबघर में पशुओं के साथ होता है वह आदमियों के साथ समाज में हो रहा है। यह अजायबघर है, यह कोई समाज नहीं है। यह जू है। क्योंकि कोई पशु पागल नहीं होता, जंगल में; अजायबघर में पागल हो जाता है। कोई पशु जंगल में आत्महत्या नहीं करता देखा गया, आज तक। लेकिन अजायबघर में कभी-कभी आत्महत्या कर लेता है। पशु विकृत नहीं होता क्योंकि प्रकृति में ठहरा रहता है। आदमी कोशिश करता है, आदमी दो कोशिश कर सकता है या तो प्रकृति से लड़ने की कोशिश करे, तो आज नहीं कल विकृति में उतर

जाएगा, और या फिर प्रकृति का अतिक्रमण करने की कोशिश करे, तो संस्कृति में प्रवेश करेगा।

अतिक्रमण तप है। विरोध नहीं, निरोध नहीं, संघर्ष नहीं—अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस। बुद्ध ने एक बहुत अच्छा शब्द प्रयोग किया है, वह शब्द है—पारमिता। वे कहते हैं—लड़ो मत। इस किनारे से उस किना रे चले जाओ, पार चले जाओ—पारमिता। लड़ो मत, इस किनारे से जहां तुम खड़े हो, लड़ो मत। क्योंकि लड़ोगे तो भी इसी किनारे पर खड़े रहोगे। जिससे लड़ना हो, उसके पास रहना पड़ेगा। जिससे लड़ना हो, उससे दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन आमने-सामने संगीनें लेकर खड़े रहते हैं। हिंदुस्तान-पाकिस्तान की बाउण्डरी पर देखें—वे खड़े हैं। हिन्दुस्तान-चीन की बाउण्डरी पर देखें, वे संगीनें लिए खड़े हैं। दुश्मन से दूर जाना खतरनाक है। दुश्मन के सामने संगीन लेकर खड़े रहना पड़ता है। अगर इस तट से लड़ोगे—बुद्ध ने कहा है— अगर भोग के तट से लड़ोगे तो उस तट पर पहुंचोगे कैसे? लड़ो मत, उस तट पर पहुंच जाओ। यह तट छूट जाएगा, भूल जाएगा, विलीन हो जाएगा। तपश्चर्या अतिक्रमण है, ट्रांसेंडेंस है—द्वंद्व नहीं, संघर्ष नहीं।

तो, इस अतिक्रमण के रूप पर हम थोड़े गहरे जाएंगे तो बहुत-सी बातें खयाल हो सकेंगी। एक तो पहले खयाल ले लें कि अतिक्रमण का क्या अर्थ होता है? आप एक घाटी में खड़े हैं, अंधेरा है बहुत। आप उस अंधेरे से लड़ते नहीं, आप सिर्फ पहाड़ के शिखर पर चढ़ना शुरू कर देते हैं। थोड़ी देर में आप पाते हैं कि आ प सूर्य से मंडित शिखर के निकट पहुंचने लगे। वहां कोई अंधेरा नहीं है। घाटी में अंधेरा था, आप घाटी में खड़े ही न रहे, आ पने सूर्य-मंडित शिखर की तरफ

बढ़ना शुरू कर दिया। आपने धूप से नहाए हुए शिखर की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया। आप प्रकाश में पहुंच गए, अतिक्रमण हुआ, संघर्ष जरा भी नहीं।

जहां आप हैं, वहां दो चीजें हैं। आप भी हैं और आपके आसपास घिरा हुआ घाटी का अंधेरा भी है। दो हैं वहां, आप भी हैं, घाटी का अंधेरा भी है। अगर घाटी के अंधेरे से आप लड़ते हैं तो आ पको घाटी में ही रहना पड़ेगा। अगर आप घाटी के अंधेरे से लड़ते नहीं—अपने भीतर जो आप हैं, उसे ऊपर उठाते हैं, ऊर्ध्वगमन पर चलते हैं तो घाटी के अंधेरे पर ध्यान देने की भी जरूरत नहीं है। जहां हम खड़े हैं, वहां चारों तरफ वृत्तियां हैं, भोग की—वे भी हैं, आप भी हैं। गलत त्यागी का ध्यान वृत्तियों पर होता है कि इस वृत्ति को मैं कैसे मिटाऊं। सही त्यागी का ध्यान स्वयं पर होता है कि मैं इस वृत्ति के ऊपर कैसे उठ जाऊं।

इस फर्क को ठीक से समझ लें, क्योंकि इन दोनों की यात्रा अलग होगी। दोनों का नियम अलग होगा, दोनों की साधना अलग होगी, दोनों की दिशा अलग होगी, दोनों का ध्यान अलग होगा। वृत्ति से जो लड़ रहा है उसका ध्यान वृत्ति पर होगा। स्वयं को जो ऊंचा उठा रहा है, उसका ध्यान स्वयं पर होगा। जो वृत्तियों से लड़ रहा है उसका ध्यान बहिर्मुखी होगा। जो स्वयं को ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जा रहा है उसका ध्यान अन्तर्मुखी होगा। और एक मजे की बा त है कि ध्यान भोजन है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं। जिस चीज को आप ध्यान देते हैं, उसको आप शक्ति देते हैं।

मैं पावलिटा की बात कर रहा था—चैक विचारक और वैज्ञानिक। छोटे- छोटे यंत्र हैं उसके पास। वह कहता है—पांच मिनट आंख गड़ाकर इस यंत्र को देखते रहो, और वह यंत्र आपकी शक्ति को संगृहीत कर लेता है। अमरीका में एक बहुत अदभुत आदमी था, जिसे दो साल की सजा अमरीका सरकार ने दी। ऐसा लगता है कि आदमी की बुद्धि बढ़ती ही नहीं। वह दो हजार साल हों तो भी वही करता है, दो हजार साल बाद वही करता है। एक आदमी था, विलेहम रैक। इस सदी में जिन लोगों के पास अंतर्दृष्टि रही उनमें से एक आदमी है, उसको दो साल सजा भोगनी पड़ी और आखिर में अमरीकी सरकार ने उसे पागलखाना — उसको पागल करार देकर, कानूनन उसको पागलखाने भेज दिया। उस पर मुकदमा चला एक बहुत अजीब बात पर। जिस पर, अब उसके मर जाने के बाद वैज्ञानिक कह रहे हैं कि शायद वह ठीक था।

139

महावीर-वाणी भाग : 1

उसने एक अदभुत बाक्स, एक पेटी बनायी, जिसको वह आगार्न बाक्स कहता था। वह कहता था — इसके भीतर कोई व्यक्ति लेट जाए और कामवासना का विचार करता रहे, तो उसकी कामवासना की शक्ति इस डिब्बे में संगृहीत हो जाती है। लेकिन अब इसका कोई वैज्ञानिक प्रमाण क्या हो कि संगृहीत हो जाती है। वह कहता था — प्रमाण एक ही है कि आप किसी को भी इसके भीतर लिटा दें, जिसको बिलकुल पता नहीं है। वह एक मिनट के बाद कामवासना का विचा र करना शुरू कर देता है। किसी को भी लिटा दें —वह कहता था—यही प्रमाण है। इसको तो वह हजारों लोगों का प्रमाण देता था। लेकिन इसको वैज्ञानिक कहते थे कि हम इसको कोई प्रमाण नहीं मानते। वह आदमी भ्रम में हो सकता है, उस आदमी की आदत हो सकती है। इस डिब्बे के भीतर, वह कहता था—जो विचार आप करेंगे, जहां आपका ध्यान जाएगा, वहीं शक्ति संगृहीत हो जाती है। वह अनेक ऐसे लोगों को, जिनको मानसिक रूप से खयाल पैदा हो गया है कि वे क्लीव हैं, इंपोटेंट हैं, इन बाक्सों में लिटाकर ठीक कर देता था। क्योंकि वह कहता था — इनमें आर्गान इनर्जी इकट्ठी है। यह जो पावलिटा है, वह आपकी कोई भी शक्ति को आपके ध्यान से इकट्ठा कर लेता है।

आपको खयाल में न होगा, जब आपकी तरफ लोग ध्यान देते हैं तो आप स्वस्थ अनुभव करते हैं, जब आपकी तरफ लोग ध्यान नहीं देते तो आप अस्वस्थ अनुभव करते हैं। इसलिए एक बड़ी अदभुत घटना घटती है कि जब आप चाहते हैं कि लोग ध्यान दें, आप बीमार पड़ जाते हैं। बच्चे तो इस ट्रिक को बहुत जल्दी समझ जाते हैं। आपकी सौ में से नब्बे बीमारियां ध्यान की आकांक्षाओं से पैदा होती हैं, क्योंकि बिना बीमार पड़े घर में आपको कोई ध्यान नहीं देता। पत्नी बीमार पड़ जाती है तो पति उसके सिर पर हाथ रखकर बैठता है। बीमार नहीं पड़ती तो उसकी तरफ देखता भी नहीं। पत्नी इस रहस्य को जान-बूझकर नहीं, अचेतन में समझ जाती है कि जब उसे ध्यान चाहिए तब उसे बीमार होना पड़ेगा। इसलिए कोई स्त्री उतनी बीमार नहीं होती जितनी दिखाई पड़ती है। या जितना वह दिखावा करती है। या जब उसका पति कमरे में होता है तो जितना वह कूल्हती, कराहती और आवाजें करती है, वह आवाजें उतनी नहीं हैं, जितना कि पति कमरे में नहीं होता है तब वह करती है। तब भी नहीं करती है। इस पर थोड़ा ध्यान देने जैसा है। कारण क्या होगा? बच्चे बहुत जल्दी सीख जाते हैं कि जब वे बीमार होते हैं तो सारे घर की अटेंशन उनके ऊपर हो जाती है। एक दफा यह बात समझ में आ गयी कि अटेंशन आकर्षित करने के लिए बीमार होना रसपूर्ण है तो जिंदगीभर के लिए बीमारी आधार बना लेती है।

मनोवैज्ञानिक सलाह देते हैं, लेकिन बुद्धिमानी की सलाह बड़ी उल्टी मालूम पड़ती है। वे कहते हैं—जब कोई बीमार हो तब जान-बूझकर भी उस पर कम से कम ध्यान देना, अन्यथा उसे बीमार होने के लिए तुम कारण बनोगे। जब कोई बीमार हो तब तो ध्यान देना ही मत। सेवा कर देना, लेकिन ध्यान मत देना—बड़े तटस्थ भाव से। बीमारी को कोई रस देना खतरनाक है, तो जिंदगी में वह आदमी कम बीमार पड़ेगा, ज्यादा स्वस्थ रहेगा। उसके लिए ध्यान और बीमारी जुड़ेगी नहीं।

लेकिन ध्यान से शक्ति मिलती है। इसीलिए तो इतना सारी दुनिया में ध्यान पाने की कोशिश चलती है। एक नेता को क्या रस आता होगा? जूते खाए, गालियां खाए, उपद्रव सहे—रस क्या आता होगा? लेकिन जब वह भीड़ में खड़ा होता है तो सब आंखें उसकी तरफ फिर जाती हैं। पावलिटा कहता है कि वह सबकी शक्ति से भोजन पाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि नेहरू कुछ दिन और जिंदा रह जाते, अगर चीन का हमला न होता। अचानक भोजन कम हो गया। ध्यान बिखर गया। कोई राजनीतिक नेता पद पर रहते हुए मुश्किल से मरता है, इसलिए कोई राजनीतिक नेता पद नहीं छोड़ना चाहता, नहीं तो मरना और पद छोड़ना करीब आ जाते हैं। मुश्किल से मरता है, कोई राजनीतिक नेता पद पर। मरना ही पड़े आ खिर में, यह बात अलग है। अपनी पूरी कोशिश वह यह करता है कि जीते जी पद न छूट जाए, क्योंकि पद छूटते ही उम्र कम हो जाती है। लोग रिटायर होकर जल्दी मर जाते हैं। अब जो

140

तप : ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन

पुलिस का आफिसर था, वह रिटायर हो गया; उसकी दस साल कम से कम, उम्र कम हो जाती है।

अभी इस पर तो बहुत काम चलता है। और बहुत देर न लगेगी कि लोग रिटायर होने से इनकार करने लगेंगे, जैसे ही उनको पता चल जाएगा कि गड़बड़ क्या हो रही है। रिटायर जब तक आदमी नहीं होता, तब तक स्वस्थ मालूम पड़ता है। रिटायर होते ही बीमार पड़ जाता है। जो ध्यान का भोजन उसे मिल रहा था—दफ्तर में जाता था, लोग खड़े हो जाते थे; सड़क पर निकलता था लोग नमस्कार करते थे, बच्चे भी डरते थे क्योंकि बाप का कब्जा था पैसे पर—बैंक बैलेंस बाप के नाम था, पत्नी भी भयभीत होती थी, फिर अब रिटायर हो गया, हाथ से धीरे-धीरे सब सूत्र छूट गए। अब वह बैठा रहता है कोने में। लोग ऐसे निकल जाते हैं जैसे वह है ही नहीं। तो वह खांसता-खंखारता है, आवाज देता है कि मैं भी यहां हूं। वह हर चीज में अड़ंगेबाजी करता है—बूढ़ों की आदत अड़ंगेबाजी की और किसी कारण से नहीं है—हर चीज में

अड़ंगेबा जी करता है। कोई ऐसी बात नहीं जिसमें वह अड़ंगा न डाले। क्योंकि अड़ंगा डालकर अब वह बता सकता है कि मैं हूं और थोड़ा ध्यान आकर्षित करता है। यह बहुत दीन अवस्था है, यह बहुत दयनीय अवस्था है। यह बहुत रुग्ण है, दुखद है—लेकिन है। वह घर में कोई ऐसी चीज न चलने देगा जिसमें वह सलाह न दे। हालांकि उसकी सलाह कोई नहीं मानता है, यह वह जानता है। इसे वह दिनभर कहता है कि कोई मेरी नहीं मानता। लेकिन फिर दिनभर देता क्यों है। वह दिनभर कहता है, कोई मेरी सुनता नहीं।

गांधीजी कहते थे कि वे एक सौ पच्चीस वर्ष जिएंगे। और जी सकते थे। अगर भारत आजाद न होता, तो वे एक सौ पच्चीस वर्ष जी सकते थे। भारत का आजाद होना उनके मरने का हिस्सा बन गया। क्योंकि आजादी के बाद ही जो उनकी सुनते थे उन्होंने सुनना बन्द कर दिया, क्योंकि वे खुद ही ताकतवर हो गए। वे खुद ही पदों पर पहुंच गए। तो गांधी ने कहा, 'मैं खोटा सिक्का हो गया हूं, मेरी अब कोई सुनता नहीं।' लेकिन गांधी को भी पता नहीं होगा कि गांधी जब भी यह कहते थे कि मेरी कोई सुनता नहीं, मैं एक खोटा सिक्का हो गया हूं, मैं बोलता रहता हूं, कोई मेरी फिक्र नहीं करता—कोई मेरी सलाह नहीं मानता—हालांकि वे सलाह दिए जाते थे, मरने के पहले उन्होंने कहना शुरू कर दिया था कि अब मेरी एक सौ पच्चीस वर्ष जीने की कोई आकांक्षा नहीं है। परमात्मा मुझे जल्दी उठा ले। क्यों? क्योंकि खोटे सिक्के हो गए। क्योंकि कोई सुनता नहीं। क्योंकि कोई ध्यान नहीं देता। जो ध्यान देते थे वे भी इसलिए ध्यान देते थे कि बिना गांधी पर ध्यान दिए उन पर कोई ध्यान नहीं देता था। अब वे खुद ही ध्यान पाने के अधिकारी हो गए थे, सीधा लोग उनको ध्यान दे रहे थे। अब वह गांधी पर काहे के लिए ध्यान दे! कोने में पड़ गए थे। कोई नहीं कह सकता कि गोडसे की गोली को सामने देखकर उनके मन में धन्यवाद नहीं उठा हो। कोई नहीं कह सकता है कि उन्होंने सोचा हो कि आ गया भगवान का संदेशवाहक, झंझट मिटी,—बिदा होते हैं।

ध्यान भोजन है, बहुत सटल फुड, बहुत सूक्ष्म भोजन है। अकेले ध्यान पर भी जी सकते हैं आप। इसलिए जब कोई प्रेम में पड़ता है तो भूख कम हो जाती है। आपको पता है, अगर कोई आपको बहुत प्रेम करता है तो भूख एकदम कम हो जाती है। क्यों कम हो जाती है? जब कोई प्रेम करता है, प्रेम का मतलब ही क्या है कि कोई आप पर ध्यान देता है। और मतलब क्या है? और जब कोई आप पर ध्यान नहीं देताआपको पता है, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब कोई ध्यान नहीं देता तब लोग ज्यादा भोजन करने लगते हैं। जब कोई ध्यान देता है तो कम भोजन करते हैं। क्योंकि ध्यान भी कहीं गहरे में भोजन का काम करता है, बहुत सूक्ष्म तल पर काम करना है। जिस चीज को हम ध्यान देते हैं, उसको शक्ति देते हैं—यह मैं कह रहा हूं। और अब इसको कहने के वैज्ञानिक आधार हैं। अब इसको नापने के भी उपाय हैं।

मैंने पीछे आपसे निकोलिएव और कामिनिएव का नाम लिया । ये दोनों व्यक्ति टैलिपैथिक कम्युनिकेशन में इस समय पृथ्वी पर

141

□

महावीर-वाणी भाग : 1

सबसे ज्यादा निष्णात लोग हैं। निकोलिएव विचार भेजता है, ब्राडकास्ट करता है और हजारों मील दूर कामिनिएव उस विचार को पकड़ता है। वैज्ञानिकों ने यंत्र लगाकर बड़े चकित हो गए कि जब निकोलिएव विचार भेजता है, तो उसकी शक्ति क्षीण होती है। उसके चारों तरफ यंत्र बताते हैं कि उसकी शक्ति क्षीण हो रही है। और जब हजारों मील दूर कामिनिएव विचार को ग्रहण करता है, तब उसकी शक्ति, यंत्र बताते हैं कि बढ़ गयी। आश्चर्यजनक! हजारों मील दूर। लेकिन जब निकोलिएव विचार भेजता है कामिनिएव को, तब उससे पूछा गया कि वह करता क्या है? वह कहता है—मैं आंख बन्द करके ध्यान करता हूं कि कामिनिएव मेरे सामने उपस्थित है—वह दूर नहीं है, मेरे सामने उपस्थित है। मैं अपने

सारे ध्यान को उस पर लगा देता हूं। सब भूल जाता हूं सिर्फ कामिनिएव रह जाता है। और जब कामिनिएव रह जाता है और मुझे प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने लगता है कि यह सामने खड़ा है, तब मैं उससे बोलता हूं।

ध्यानवह अटैंशन दे रहा है। तो उसकी ऊर्जा हजारों मील दूर बैठे हुए व्यक्ति को उपलब्ध हो जाती है। जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं वहां शक्ति संगृहीत होती है और जहां से हम ध्यान देते हैं वहां से शक्ति हटती है और विसर्जित होती है। जिस वृत्ति पर आप ध्यान देते हैं उस पर शक्ति संगृहीत हो जाती है। जब आप का मवासना का विचार करते हैं तो आपके कामवासना का जो केच्नदर है वह शक्ति को इकट्ठा करने लगता है। जिस चीज पर आप ध्यान देते हैं वह वृत्ति का केच्नदर आपके भीतर शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। आप ही शक्ति देते हैं ध्यान देकर। फिर वह केच्नदर शक्ति से भर जाता है तो वह शक्ति से मुक्त होना चाहता है, क्योंकि बोझिल हो जाता है। यह जाल है आदमी के भीतर।

लेकिन, कामवासना पर ध्यान दो तरह से दिया जा सकता है। एक, कि आप कामवासना में रस लें तो भी ध्यान दिया जा सकता है। तो प्रकृतिस्थ, नेचुरल कामवासना आप में घनीभूत होगी, नैसर्गिक कामवासना आप में शक्तिशाली हो जाएगी। एक विकृत ध्यान दिया जा सकता है। एक आदमी कामवासना पर ध्यान देता है कि मुझे का मवासना से लड़ना है, मुझे कामवासना को भीतर प्रविष्ट नहीं होने देना है—वह भी ध्यान दे रहा है। उसका भी काम का सेंटर, सैक्स सेंटर शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। अब बड़ी मुश्किल होती है। क्योंकि जो नैसर्गिक कामवासना को ध्यान देता है, वह तो नैसर्गिक रूप से शक्ति उसकी विसर्जित हो जाएगी। लेकिन जो विसर्जित नहीं करना चाहता और ध्यान देता है, इसका क्या होगा? इसकी शक्ति विकृत रूप लेना शुरू करेगी, यह विसर्जित हो नहीं सकती। यह शरीर के दूसरे अंगों में प्रवेश करेगी और उनको विकृत करने लगेगी। यह चित्त के दूसरे स्नायुओं में प्रवेश करेगी और विकृत करने लगेगी। यह आदमी भीतर से उलझता जाएगा और जाल में फंसता जाएगा—अपनी ही अपनी ही दी गयी शक्ति से।

ऐसा हुआ कि हम एक वृक्ष को पानी दिए जाते हैं और प्रार्थना किए जा ते हैं कि वृक्ष बड़ा न हो। यह वृक्ष बड़ा न हो, प्रार्थना किए जाते हैं और पानी दिए जाते हैं। जिस वृत्ति को आप ध्यान देते हैं चाहे पक्ष में, चाहे विपक्ष में, आप उसको पानी और भोजन देते हैं। तप का मूल सूत्र यही है कि ध्यान कहीं और दो। जहां तुम शक्ति को इकट्ठा करना चाहते हो वहां मत दो। ध्यान ही उठाओ ऊपर। अगर कामवासना से मुक्त होना है तो कामवासना पर ध्यान ही मत दो—पक्ष में भी नहीं, विपक्ष में भी नहीं। लेकिन ध्यान आपको देना ही पड़ेगा क्योंकि ध्यान आपकी शक्ति है, वह काम मांगती है।

तो तप का मूल सूत्र यह है कि ध्यान के लिए नए केच्नदर निर्मित करो। नए केच्नदर आदमी के भीतर हैं, और उन केच्नदरों पर ध्यान को ले जाओ। जैसे ही ध्यान को नया केच्नदर मिल जाता है, वह नए केच्नदर में शक्ति को उड़ेलने लगता है, वैसे ही पुराने केच्नदरों से मुक्त होने लगता है। पहाड़ पर चढ़ाई शुरू हो गयी है। काम वासना का केच्नदर हमारा सबसे नीचा केच्नदर है। वहां से हम प्रकृति से जुड़े हैं। सहस्रार हमारा सबसे ऊंचा केच्नदर है। वहां से हम परमात्म-ऊर्जा से जुड़े हैं—दिव्यता से, भव्यता से, भगवत्ता से जुड़े हैं।

142

□

तप : ऊर्जा का दिशा-परिवर्तन

जब भी आप ध्यान देते हैं, आपने खयाल किया है कि आ पके मस्तिष्क में विचार चलता है, कामवासना का, और आपका काम केंच्नदर तत्काल सक्रिय हो जाता है। यहां विचार चला—और विचार तो चलता है मस्तिष्क में और काम केच्नदर बहुत दूर है—वह तत्काल सक्रिय हो जाता है।

ठीक यही उपाय है। तपस्वी अपने सहस्रार की तरफ अपने ध्यान को लौटाकर करता है। वह जैसे ही सहस्रार की तरफ ध्यान देता है वैसे ही सहस्रार सक्रिय होना शुरू हो जाता है। और जब शक्ति ऊपर की तरफ जाती है तो नीचे की तरफ

नहीं जाती है। और जब शक्ति को मार्ग मिलने लगता है, शिखर पर चढ़ने का, तो घाटियां वह छोड़ने लगती है। अगर शक्ति का प्रकाश के जगत में प्रवेश होने लगता है तो अंधेरे के जगत से चुपचाप उठने लगती है। अंधेरे की निन्दा भी नहीं होती है उसके मन में, अंधेरे का विरोध भी नहीं होता है उसके मन में, अंधेरे का खयाल भी नहीं होता है उसके मन में, अंधेरे पर ध्यान ही नहीं होता है। ध्यान का रूपान्तरण है, तप।

अब इसको अगर इस तरह समझेंगे तो तप का मैं दूसरा अर्थ आपको कह सकूंगा । तप का ऐसे अर्थ होता है—अग्नि। तप का अर्थ होता है—अग्नि। तप का अर्थ होता है—भीतर की अग्नि। मनुष्य के भीतर जो जीवन की अग्नि है, उस अग्नि को ऊर्ध्वगमन की तरफ ले जाना तपस्वी का काम है। उसे नीचे की ओर ले जाना भोगी का काम है। भोगी का अर्थ है—जो अग्नि को नीचे की ओर प्रवाहित कर रहा है जीवन में—अधोगमन की ओर। तपस्वी का अर्थ है—जो ऊपर की ओर प्रवाहित कर रहा है उस अग्नि को, परमात्मा की ओर, सिद्धावस्था की ओर।

यह अग्नि दोनों तरफ जा सकती है। और बड़े मजे की बात यह है कि ऊपर की तरफ आसानी से जाती है, नीचे की तरफ बड़ी कठिनाई से जाती है, क्योंकि अग्नि का स्वभाव है ऊपर की तरफ जाना। आपने खयाल किया है? आप आग जलाते हैं, वह ऊपर की तरफ जाने लगती है। इसीलिए इसे तप नाम दिया, इसे अग्नि नाम दिया , इसे यज्ञ नाम दिया, ताकि यह खयाल में रहे कि अग्नि का स्वभाव तो है ऊपर की तरफ जाना। नीचे की तरफ तो बड़ी चेष्टा करके ले जानी पड़ती है।

पानी नीचे की तरफ बहता है। अगर ऊपर की तरफ ले जाना हो तो बड़ी चेष्टा करनी पड़ती है। और आप चेष्टा छोड़ दें तो पानी फिर नीचे की तरफ बहने लगेगा। आपने पंपिंग का इंतजाम छोड़ दिया तो पानी फिर नीचे बहने लगेगा। अगर ऊपर चढ़ाना है तो पंप करो, ताकत लगाओ, मेहनत करो। नीचे बहने के लिए पानी किसी की मेहनत नहीं मांगता, खुद बहता है। वह उसका स्वभाव है।

अग्नि को अगर नीचे की तरफ ले जाना है तो इंतजाम करना पड़ेगा। अपने से अग्नि ऊपर की तरफ उठती है—ऊर्ध्वगामी है। इसको तप कहने का कारण है क्योंकि भीतर की जो अग्नि है, जो जीवन-अग्नि है, वह स्वभाव से ऊर्ध्वगामी है। एक बार आपको उसके ऊर्ध्वगमन का अनुभव हो जाए, फिर आपको प्रयास नहीं करना पड़ता है, उसको ऊपर ले जाने के लिए। वह जाती रहती है। एक बार सहस्रार की तरफ तपस्वी का ध्यान मुड़ जाए तो फिर उसे चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। फिर वह अग्नि अपने आप बढ़ती रहती है। धीरे-धीरे वह भूल ही जाता है—क्या नीचे, क्या ऊपर। भूल ही जाता है, क्योंकि फिर तो अग्नि सहज ऊपर बहती रहती है। एक बार आग राह पकड़ ले तो ऊपर की तरफ जाना उसका स्वभाव है। नीचे की तरफ ले जाने के लिये आयोजन करना पड़ता है। लेकिन हम नीचे की तरफ ले जाने के लिये इतने लम्बे अभ्यस्त हैं कि जन्मों-जन्मों का हमारा अभ्यास है, नीचे की तरफ ले जाने का। इसलिए नीचे की तरफ ले जाना, जो कि वस्तुतः कठिन है, वह हमें सरल मा लूम पड़ता है। ऊपर की तरफ ले जाना जो कि वस्तुतः सरल है, वह हमें कठिन मालूम पड़ता है।

143

महावीर-वाणी भागः 1

कठिनाई हमारी आदत में है। आदतें बड़ी कठिन हो जाती हैं। और कभी-कभी स्वभाव, जो कि हमारी आदत नहीं है, जो कि वस्तु का धर्म है—उसके ऊपर हमारी आदत इतनी सख्त होकर बैठ जाती है कि स्वभाव को दबा देती है। हम सबके स्वभाव दबे हुए हैं आदतों से। जिसको महावीर कर्म का क्रम कहते हैं वह हमारी आदतों का क्रम है। हमने आदतें बना रखी हैं, वे हमें दबाए हुए हैं। वह आदतें लम्बी हैं, पुरानी हैं, गहरी हैं। उनसे छूट जाना आ ज इसी वक्त सम्भव नहीं हो जाएगा। तो हम उनसे लड़ना शुरू करते हैं और उल्टी आदतें बनाते हैं। लेकिन आदत फिर भी आदत ही होती है।

गलत तपस्वी सिर्फ आदत बनाता है तप की। ठीक तपस्वी स्वभाव को खोजता है, आदत नहीं बनाता। हैबिट और नेचर का फर्क समझ लें। हम सब आदतें बनवाते हैं। हम बच्चे को कहते हैं—क्रोध न करो, क्रोध की आदत बुरी है। न क्रोध करने की आदत बनाओ। वह न क्रोध करने की आदत तो बना लेता है, लेकिन उससे क्रोध नष्ट नहीं होता, क्रोध भीतर चलने लगता है। कामवासना पकड़ती है तो हम कहते हैं कि ब्रह्मचर्य की आदत बनाओ। वह आदत बन जाती है। लेकिन कामवासना भीतर सरकती रहती है, वह नीचे की तरफ बहती रहती है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तपस्वी खोजता है—स्वभाव के सूत्र को, ताओ को, धर्म को। वह क्या है जो मेरा स्वभाव है, उसे खोजता है। सब आदतों को हटाकर वह अपने स्वभाव का दर्शन करता है। लेकिन आदतों को हटाने का एक ही उपाय है—ध्यान मत दो, आदत पर ध्यान मत दो।

एक मित्र चार छह दिन पहले मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि आप कहते हैं कि बम्बई में रहकर, और ध्यान हो सकता है! यह सड़क का क्या करें, भोंपू का क्या करें? ट्रेन जा रही है, सीटी बज रही है, इसका क्या करें?

मैंने उनसे कहा—ध्यान मत दो।

उन्होंने कहा—कैसे ध्यान न दें! खोपड़ी पर भोंपू बज रहा है, नीचे कोई हार्न बजाए चला जा रहा है, ध्यान कैसे न दें!

मैंने उनसे कहा—एक प्रयास करो। भोंपू कोई नीचे बजाये जा रहा है, उसे भोंपू बजाने दो। तुम ऐसे बैठे रहो, कोई प्रतिक्रिया मत करो कि भोंपू अच्छा है कि भोंपू बुरा है, कि बजानेवाला दुश्मन कि बजानेवाला मित्र है, कि इसका सिर तोड़ देंगे अगर आगे बजाया। कुछ प्रतिक्रिया मत करो। तुम बैठे रहो, सुनते रहो। सिर्फ सुनो। थोड़ी देर में तुम पाओगे कि भोंपू बजता भी हो तो भी तुम्हारे लिए बजना बन्द हो जाएगा। एक्सेप्ट इट, स्वीकार करो।

जिस आदत को बदलना हो उसे स्वीकार कर लो। उससे लड़ो मत। स्वीकार कर लो, जिसे हम स्वीकार लेते हैं उस पर ध्यान देना बन्द हो जाता है। क्या आपको पता है, किसी स्त्री के आप प्रेम में हों, उस पर ध्यान होता है। फिर विवाह करके उसको पत्नी बना लिया, फिर वह स्वीकृत हो गयी, फिर ध्यान बंद हो जाता है। जिस चीज को हम स्वीकार कर लेते हैं! एक कार आपके पास नहीं है, वह सड़क पर निकलती है चमकती हुई, ध्यान खींचती है। फिर आ पको मिल गयी, फिर आप उसमें बैठ गये हैं। फिर थोड़े दिन में आपको खयाल ही नहीं आता है कि वह कार भी है, चारों तरफ जो ध्यान को खींचती थी, वह स्वीकार हो गयी।

जो चीज स्वीकृत हो जाती है उस पर ध्यान जाना बन्द हो जाता है। स्वीकार कर लो, जो है उसे स्वीकार कर लो। अपने बुरेसेबुरे हिस्से को भी स्वीकार कर लो। ध्यान देना बन्द कर दो, ध्यान मत दो। उसको ऊर्जा मिलनी बन्द हो जाएगी। वह धीरे-धीरे अपने आप क्षीण होकर सिकुड़ जाएगी, टूट जाएगी। और जो बचेगी ऊर्जा, उसका प्रवाह अपने आप भीतर की तरफ होना शुरू हो जाएगा।

गलत तपस्वी उन्हीं चीजों पर ध्यान देता है जिन पर भोगी देता है। सही तपस्वी ठीक तप की प्रक्रियाध्यान का रूपांतरण है। वह उन चीजों पर ध्यान देता है, जिन पर न भोगी ध्यान देता है, न तथाकथित त्यागी ध्यान देता है। वह ध्यान को ही बदल देता है। और ध्यान हमारा हमारे हाथ में है। हम वहीं देते हैं जहां हम देना चाहते हैं।

अभी यहां हम बैठे हैं, आप, मुझे सुन रहे हैं। अभी यहां आग लग जाए मकान में, आप एकदम भूल जाएंगे कि सुन रहे थे, कि कोई बोल रहा था, सब भूल जाएंगे। आग पर ध्यान दौड़ जाएगा, बाहर निकल जाएंगे, भूल ही जाएंगे कि कुछ सुन रहे थे। सुनने का कोई सवाल ही न रह जाएगा। ध्यान प्रतिपल बदल सकता है, ि सर्फ नए बिन्दु उसको मिलने

चाहिए। आग मिल गयी, वह ज्यादा जरूरी है जीवन को बचाने के लिए। आग हो गयी, तो तत्काल ध्यान वहां दौड़ जाएगा। आप के भीतर तप की प्रक्रिया में उन नए बिन्दुओं और केन्न्दरों की तलाश करनी है जहां ध्यान दा ैड़ जाए और जहां नए केन्न्दर सशक्त होने लगें। इसलिए तपस्वी कमजोर नहीं होता, शक्तिशाली हो जाता है। गलत तपस्वी कमजोर हो जाता है। गलत तपस्वी कमजोर होकर सोचता है कि हम जीत लेंगे, और भ्रांति पैदा होती है जीतने की।

अगर एक आदमी को तीस दिन भोजन नहीं दिया जाए, तो कामवासना क्षीण हो जाती है। इसलिए नहीं कि कामवासना चली गयी, इसलिए कि कामवासना के योग्य रस नहीं बनता शरीर में। फिर भोजन दिया जाए तो तीस दिन में जो वासना गई थी वह तीन दिन में वापस लौट आती है। भोजन मिला, शरीर को रस मिला। फिर केन्न्दर सक्रिय हो गया, फिर ध्यान दौड़ने लगा। इसलिए फिर जिसने भूखा रहकर कामवासना पर तथाकथित विजय पायी वह बेचारा फिर भूखा ही जीवनभर रहने की कोशिश में लगा रहता है, क्योंकि वह डरता है कि इधर भोजन दिया तो उधर वासना उठी। मगर यह निपट पागलपन है। वासना के बाहर हुए नहीं, यह सिर्फ कमजोरी की वजह से वासना को शक्ति नहीं मिल रही है।

असल में आदमी जितनी शक्ति पैदा करता है, उसमें कुछ तो जरूरी होती है जो उसके रोज के काम में समाप्त हो जाती है। एक खास मात्रा की कैलोरी उसके रोज के काम में—उठने में, बैठने में, नहाने में, खाने में, पचाने में, दुकान में आने में, जाने में व्यय हो जाती है। सोने में व्यय हो जाती है। उसके अतिरिक्त जो बचती है वह उस केन्न्दर को मिल जाती है जिस पर आपका ध्यान है। जो सुपरच्फलुअस है, जो अतिरिक्त है। अगर समझ लें कि एक हजार कैलोरी, मान लें कि आपके रोजमर्रा के काम में खर्च होती है और आपके भोजन और आपकी व्यवस्था से आपको दो हजार कैलोरी शक्ति शरीर में पैदा होती है, तो आपका ध्यान जिस केन्न्दर पर होगा; एक हजार कैलोरी जो शेष बची है, उस केन्न्दर पर दौड़ जाएगी। उसको कोई रास्ता नहीं है, ध्यान ही रास्ता है, ध्यान ही ऐरो है जिससे वह जाएगी। उसको और कुछ पता नहीं, कहां जाना है। आपका ध्यान उसको खबर देता है कि यहां जाना है, वह वहां चली जाती
है।

अब अगर आपको झूठे तप में उतरना है, तो आप भोजन इतना कर लें कि हजा र कैलोरी से ज्यादा आपके भीतर पैदा न हो। फिर आपको ब्रह्मचर्य सधा हुआ मालूम पड़ेगा। क्योंकि आपके पास अ तिरिक्त शक्ति बचती नहीं जो कि सेक्स के केन्न्दर को मिल जाए। हजार शक्ति पैदा होती है, हजार आप खर्च कर लेते हैं। इसलिए तपस्वी खाना कम कर देता है, पैदल चलने लगता है, श्रम ज्यादा करने लगता है और खाना कम करता चला जाता है। वह दोहरी प्र तिक्रियाएं करता है, ताकि शरीर में शक्ति कम हो और शक्ति व्यय ज्यादा हो। वह मिनिमम पर जीने लगता है। न होगी अतिरिक्त शक्ति, न वासना बनेगी।

मगर इससे वह वासना से मुक्त नहीं होता। वासना अपनी जगह खड़ी है। वासना का केन्न्दर प्रतीक्षा करेगा। अनंत जन्मों तक प्रतीक्षा करेगा, कहेगा जिस दिन शक्ति ज्यादा हो, मैं तैयार हूं। यह ि सर्फ भय में जीना है। इस जीने से कहीं कुछ उपलब्ध नहीं होता है। इससे प्रकृति तो चूक जाती है, संस्कृति नहीं मिलती। सिर्फ विकृ ति मिलती है और एक भयभीत चेतना रह जाती है।

नहीं, यह नहीं है मार्ग। ठीक पाजिटिव आस्टैरिटी का, ठीक विधायक तप का मार्ग है—शक्ति पैदा करो, ध्यान रूपांतरित करो। ध्यान नए केन्न्दरों तक ले जाओ, ताकि शक्ति वहां जाए। इसे हम धीरे-धीरे जब और गहरे उतरेंगे ध्यान के परिवर्तन के लिए, तो यह

प्रक्रिया खयाल में आ सकेगी। लेकिन सबसे पहले तो यह खयाल में ले लेना चाहिए कि मेरी अतिरिक्त शक्ति किस केन्द्र से व्यय हो रही है। उसके विपरीत जो केन्द्र है, उस केन्द्र पर ध्यान को लगाना पड़ेगा।

एक छोटी-सी घटना, और आज की बात मैं पूरी करूं। धर्मगुरुओं का एक सम्मेलन हुआ है। बड़े धर्मगुरु उस देश के एक नगर में इकट्ठे हुए हैं। चार बड़े धर्म हैं इस देश में, चारों के चार बड़े धर्मगुरु एक निजी वार्ता में लीन हैं। सब सम्मेलन निपटने के करीब हो गया। वह बैठकर बातें कर रहे हैं। ऊंची बातें हो चुकीं, नकली बातें हो चुकीं। वे अब बैठकर असली गप-शप कर रहे हैं। पचहत्तर साल का बूढ़ा धर्मगुरु कहता है कि हो गयी वे बातें, सुन गए लोग। लेकिन तुम्हारे सामने क्यों मैं छिपाऊं, और मैं आशा करता हूं कि तुम भी न छिपाओगे। अच्छा होगा कि हम बताएं कि असली जिन्दगी हमारी क्या है। मैं तो एक ही चीज से परेशान रहा हूं—वह धन। और दिन रात धन के विपरीत बोलता हूं। धन पर मेरी बड़ी पकड़ है। एक पैसा भी मेरा खो जाए तो रात भर मुझे नींद नहीं आती। या एक पैसा मिलने की आशा बंध जाए तो रातभर एक्साइटमेंट रहता है और नींद नहीं आती। बड़ी, धन ही मेरी कमजोरी है। बड़ी मुश्किल है। इसके पार मैं नहीं हो पा रहा हूं। क्या, आप में से कोई पार हो गया हो तो बताएं।

दूसरे ने कहा—पार तो हम भी नहीं, हमारी अपनी-अपनी मुसीबतें हैं।

एक ने कहा—मेरी मुसीबत तो यह अहंकार है। इसके लिए ही जीता हूं, इसी के लिए उठता हूं, इसी के लिए बैठता हूं। इसी के लिए अहंकार के खिलाफ भी बोलता हूं, पर है यही। इससे मैं बाहर नहीं हो पाता।

तीसरे ने कहा—मेरी कमजोरी तो यह कामवासना है। ये स्त्रियां मेरी कमजोरी हैं। दिन-रात समझाता हूं, प्रवचन करता हूं, ब्रह्मचर्य का व्याख्यान करता हूं चर्च में। लेकिन उस दिन बोलने में मजा ही नहीं आता, जिस दिन स्त्रियां नहीं आतीं। मुझे खुद ही मजा नहीं आता बोलने में। जिस दिन स्त्रियां आती हैं, उस दिन मेरा जोश देखने लायक रहता है। उस दिन जब मैं बोलता हूं तो बात ही और होती है। लेकिन अब मैं जानता हूं भली-भांति कि वह भी कामवासना ही है। मैं उसके बाहर नहीं हो पाता हूं।

चौथा आदमी मुल्ला नसरुद्दीन था। वह उठकर खड़ा हो गया और उसने कहा कि क्षमा करें, मैं जाता हूं।

उन्होंने कहा—लेकिन तुमने अपनी कमजोरी नहीं बतायी।

उसने कहा— मेरी सिर्फ एक कमजोरी है, वह है निन्दा। अब मैं नहीं रुक सकता एक भी क्षण। पूरा गांव मेरी राह देख रहा होगा। जो मैंने यहां सुना है, वह मुझे कहना होगा। क्षमा करें, मेरी एक ही कमजोरी है — अफवाह। और अब मेरा रुकना मुश्किल है।

उन तीनों ने उसे पकड़ने की कोशिश की कि तू ठहर भाई, तेरी यह कमजोरी थी, तो तूने पहले क्यों नहीं कहा, इतनी देर चुप क्यों रहा?

हर आदमी की कोई न कोई कमजोरी है। उस कमजोरी को ठीक से पहचान लें। उसी में आपकी ऊर्जा व्यय होती है।

मुल्ला ने कहा कि तब तक तो मैं बैठा रहा जब तक मैं पूरा न सुन पाया । लेकिन जब मैंने पूरा सुन लिया तो जग गयी मेरी शक्ति। अब इस रात सोना मेरे वश में नहीं है, अब जब तक एक-एक तक खबर न पहुंचा दूं शक्ति जग गयी मेरी ! वह जो कमजोरी है हमारी, वही हमारी शक्ति का निष्कासन है। वहीं से हमारी शक्ति व्यय होती है। मुल्ला तब तक बिलकुल सुस्त बैठा था, जैसे कोई प्राण ही न हों। अचानक ज्योति आ गयी, प्राण आ गए, चमक आ गयी!

मुल्ला ने कहा कि गजब हो गया। कभी सोचा भी न था कि इस कांफ्रेंस में और ऐसा आनन्द आनेवाला है।

हमारी कमजोरी हमारी शक्ति के व्यय का बिन्दु है। भोग हो या भोग के विपरीत त्याग हो, बिन्दु वही बना रहता है। ध्यान वहीं

केंद्रित रहता है, शक्ति वहीं से विसर्जित होती है, इवा परेट होती है, वाष्पीभूत होती है। तप ध्यान के केच्नदर बदलने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया पर कल मैं बात करूंगा। शायद लम्बी इस पर बात करनी पड़े क्योंकि महावीर ने फिर तप के बारह हिस्से किए हैं, और एक-एक हिस्सा वैज्ञानिक प्रक्रिया है। तो कल वैज्ञानिक प्रक्रिया को हम समझ लें, फिर महावीर के एक-एक तप के हिस्से पर हम बात करेंगे।

अभी जाएंगे नहीं—हालांकि मन की कमजोरी कह रही होगी कि भागो। तो थोड़ा रुकेंगे। जो कीर्तन संन्यासी करते हैं, उतना धैर्य और।

धम्म-सूत्र
धम्मो मंगलमुक्किच्ढं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

च्धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन-सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।
च150

तप : ऊर्जा-शरीर का अनुभव

नौवां प्रवचन

दिनांक 26 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला, पाटकर हाल, बम्बई

149

▯

तप के संबंध में, मनुष्य की प्राण ऊर्जा को रूपान्तरण करने की प्रक्रिया के संबंध में और थोड़े-से वैज्ञानिक तथ्य समझ लेने आवश्यक हैं। धर्म भी विज्ञान है, या कहें परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है। क्योंकि विज्ञान केवल पदार्थ का स्पर्श कर पाता है, धर्म उस चैतन्य का भी, जिसका स्पर्श करना असम्भव मालूम पड़ता है। विज्ञान केवल पदा र्थ को बदल पाता है, नए रूप दे पाता है; धर्म उस चेतना को भी रूपान्तरित करता है जिसे देखा भी नहीं जा सकता और छुआ भी नहीं जा सकता। इसलिए परम विज्ञान है।
विज्ञान से अर्थ होता है — टु नो दि हाउ। किसी चीज को कैसे किया जा सकता है, इसे जानना। विज्ञान का अर्थ होता है — उस प्रक्रिया को जानना, उस पद्धति को जानना, उस व्यवस्था को जानना जिससे कुछ किया जा सकता है। बुद्ध कहते

थे कि सत्य का अर्थ है — वह, जिससे कुछ किया जा सके। अगर सत्य इम्पोटेंट है, नसुंसक है, जिससे कुछ न हो सके, सिर्फ सिद्धान्त हो, तो व्यर्थ है। सत्य वही है, जो कुछ कर सके — कोई बदलाहट, कोई क्राच्नित, कोई परिवर्तन। और धर्म ऐसा ही सत्य है। इसलिए धर्म चिंतन नहीं है, विचार नहीं है; धर्म आमूल रूपान्तरण है, म्यूटेशन है। तप धर्म का, धर्म के रूपान्तरण की प्रक्रिया का प्राथ मिक सूत्र है। तप किन आधारों पर खड़ा है, वह हम समझ लें। किन प्रक्रियाओं से आदमी को बदलता है, वह हम समझ लें।

सबसे पहली बात इस जगत में जो भी हमें दिखाई पड़ता है, वह वैसा नहीं है जैसा दिखाई पड़ता है। क्योंकि जो भी दिखाई पड़ता है, वह मालूम होता है थिर पदार्थ है, ठहरा हुआ, जमा हुआ पदार्थ है। लेकिन अब विज्ञान कहता है — इस जगत में ठहरी हुई, जमी हुई कोई भी चीज नहीं है। जो कुछ है, सभी गत्यात्मक है, डाइनैं मिक है। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, वह ठहरी हुई चीज नहीं है; वह पूरे समय नदी के प्रवाह की तरह गत्यात्मक है। जो दीवार आ पको चारों तरफ दिखाई पड़ती है, वह दीवार ठोस नहीं है। विज्ञान कहता है — अब ठोस जैसी कोई चीज जगत में नहीं है। वह जो दीवा र चारों तरफ खड़ी है, वह भी तरल और लिक्विड है, बहाव है। लेकिन बहाव इतना तेज है कि आपकी आंखें उस बहाव के बीच के अन्तराल को, खाइयों को नहीं पकड़ पातीं। जैसे बिजली के पंखे को हम जोर से चला दें, इतने जोर से चला दें तो फिर आ प उसकी पंखुड़ियों को नहीं गिन पाते। अगर बहुत गति से चलता हो तो लगेगा कि एक गोल वर्तुल ही घूम रहा है पंखुडिँयां नहीं। बीच की पंखुड़ियों की जो खाली जगह है, वह दिखाई नहीं पड़ती।

वैज्ञानिक कहते हैं — बिजली के पंखे को इतनी तेजी से चलाया जा सकता है कि आप अगर गोली मारें तो बीच के स्थान से नहीं निकल सकेगी, खाली जगह से नहीं निकल सकेगी, पंखुड़ी को छेदकर निकलेगी। और इतने जोर से भी चलाया जा सकता है कि

151

आप अगर पंखे के, चलते पंखे के ऊपर बैठ जाएं तो आप बीच के स्थान से गिरेंगे नहीं। क्योंकि गिरने में जितना समय लगता है, उतनी देर में दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जाएगी। तबतब पंखा ठोस मालूम पड़ेगा, चलता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा।

अगर गति अधिक हो जाए तो चीजें ठहरी हुई मालूम पड़ती हैं। अधिक गति के कारण, ठहराव के कारण नहीं। जिस कुर्सी पर आप बैठे हैं, उसकी गति बहुत है। उसका एक-एक परमाणु उतनी ही गति से दौड़ रहा है अपने केच्नदर पर जितनी गति से सूर्य की किरण चलती हैं — एक सैकंड में एक लाख छियासी हजार मील। इतनी तीव्र गति से चलने की वजह से आप गिर नहीं जाते कुर्सी से, नहीं तो आप कभी भी गिर जाएं। तीव्र गति आपको संभाले हुए है।

फिर यह गति भी बहु-आयामी है, मल्टी-डायमैंशनल है। जिस कुर्सी पर आ प बैठे हैं उसकी पहली गति तो यह है कि उसके परमाणु अपने भीतर घूम रहे हैं। हर परमाणु अपने न्यूक्लियस पर, अपने केच्नदर पर चक्कर काट रहा है। फिर कुर्सी जिस पृथ्वी पर रखी है, वह पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है। उसके घूमने की वजह से भी कुर्सी में दूसरी गति है। एक गति कुर्सी की आन्तरिक है कि उसके परमाणु घूम रहे हैं, दूसरी गति — पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है इसलिए कुर्सी भी पूरे समय पृथ्वी के साथ घूम रही है। तीसरी गति — पृथ्वी अपनी कील पर घूम रही है और साथ ही पूरे सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण कर रही है; घूमते हुए अपनी कील पर सूर्य का चक्कर लगा रही है। वह तीसरी गति है। कुर्सी में वह ग ति भी काम कर रही है। चौथी गति — सूर्य अपनी कील पर घूम रहा है, और उसके साथ उसका पूरा सौर परिवार घूम रहा है। और पांचवी गति — सूर्य, वैज्ञानिक कहते हैं कि महासूर्य का चक्कर लगा रहा है। बड़ा चक्कर है वह, कोई बीस

करोड़ वर्ष में एक चक्कर पूरा हो पाता है। तो वह पांचवीं गति कुर्सी भी कर रही है। और वैज्ञानिक कहते हैं कि छठवीं गति का भी हमें आभास मिलता है कि वह जिस महासूर्य का, यह हमारा सूर्य परिभ्रमण कर रहा है; वह महासूर्य भी ठहरा हुआ नहीं है। वह अपनी कील पर घूम रहा है। और सातवीं गति का भी वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि वह जिस और महासूर्य का, जो अपनी कील पर घूम रहा है, वह दूसरे सौर परिवारों से प्रतिक्षण दूर हट रहा है। कोई और महासूर्य या कोई महाशून्य सातवीं गति का इशारा करता है। वैज्ञानिक कहते हैं — ये सात गतियां पदार्थ की हैं।

आदमी में एक आठवीं गति भी है, प्राण में, जीवन में एक आठवीं गति भी है। कुर्सी चल नहीं सकती, जीवन चल सकता है। आठवीं गति शुरू हो जाती है। एक नौवीं गति, धर्म कहता है मनुष्य में है और वह यह है कि आदमी चल भी सकता है और उसके भीतर जो ऊर्जा है वह नीचे की तरफ जा सकती है या ऊपर की तरफ जा सकती है। उस नौवीं गति से ही तप का संबंध है। आठ गतियों तक विज्ञान काम कर लेता है, उस नौवीं गति पर, दि नाइन्थ, वह जो परम गति है चेतना के ऊपर-नीचे जाने की, उस पर ही धर्म की सारी प्रक्रिया है।

मनुष्य के भीतर जो ऊर्जा है, वह नीचे या ऊपर जा सकती है। जब आप का मवासना से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा नीचे जाती है; जब आप आत्मा की खोज से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा ऊपर की तरफ जाती है। जब आप जीवन से भरे होते हैं तो वह ऊर्जा भीतर की तरफ जाती है। और भीतर और ऊपर धर्म की दृष्टि में एक ही दिशा के नाम हैं। और जब आप मरण से भरते हैं, मृत्यु निकट आती है तो वह ऊर्जा बाहर जाती है। दस वषोच पहले तक, केवल दस वषोच पहले तक वैज्ञानिक इस बात के लिए राजी नहीं थे कि मृत्यु में कोई ऊर्जा मनुष्य के बाहर जाती है, लेकिन रूस के डेविडो विच किरलियान की फोटोग्राफी ने पूरी धारणा को बदल दिया है।

किरलियान की बात मैंने आपसे पीछे की है। उस संबंध में जो एक बात आ ज काम की है और आपसे कहनी है। किरलियान ने जीवित व्यक्तियों के चित्र लिए हैं, तो उन चित्रों में शरीर के आ सपास ऊर्जा का वर्तुल, इनर्जी फील्ड चित्रों में आता है। हायर सेंसिटिविटी फोटोग्राफी में, बहुत संवेदनशील फोटोग्राफी में आपके आ सपास ऊर्जा का एक वर्तुल आता है। लेकिन अगर मरे आदमी

152

□

तप : ऊर्जा-शरीर का अनुभव

का, अभी मर गए आदमी का चित्र लेते हैं तो वर्तुल नहीं आता। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर जाते हुए, आते हैं। ऊर्जा के गुच्छे आदमी से दूर हटते हुए, भागते हुए आते हैं। और तीन दिन तक मरे हुए आदमी के शरीर से ऊर्जा के गुच्छे बाहर निकलते रहते हैं। पहले दिन ज्यादा, दूसरे दिन और कम, तीसरे दिन और कम। जब ऊर्जा के गुच्छों का बहिर्गमन पूरी तरह समाप्त हो जाता है, तब आदमी पूरी तरह मरा। वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक ऊर्जा निकल रही है तब तक उसको पुनरुज्जीवित करने की कोई विधि आज नहीं कल खोजी जा सकेगी।

मृत्यु में ऊर्जा आपके बाहर जा रही है, लेकिन शरीर का वजन कम नहीं होता है। निश्चित ही कोई ऐसी ऊर्जा है जिस पर ग्रैविटेशन का कोई असर नहीं होता। क्योंकि वजन का एक ही अर्थ होता है कि जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है उसका खिंचाव। आपका जितना वजन है, आप भूलकर यह मत समझना कि वह आपका वजन है। वह जमीन के खिंचाव का वजन है। जमीन जितनी ताकत से आपको खींच रही हो, उस ताकत का माप है। अगर आप चांद पर जाएंगे तो आपका वजन चार गुना कम हो जाएगा। क्योंकि चांद चार गुना कम ग्रैविटेशन रखता है। अगर आप सौ पौंड आपका वजन है तो पच्चीस पौंड चांद पर रह जाएगा। इसे आप ऐसा भी समझ सकते हैं कि अगर आप जमीन पर छह फीट ऊंचे कूद सकते हैं तो चांद पर आप जाकर चौबीस फीट ऊंचे कूद सकेंगे। और जब अंतरिक्ष में यात्री होता है, अपने यान में, कैप्सूल में

— तब उसका कोई वजन नहीं रहता, नो वेट। क्योंकि वहां कोई ग्रैविटेशन नहीं होता। इसलिए यात्री को पट्टों से बांधकर उसकी कुर्सी पर रखना पड़ता है। अगर पट्टा जरा छूट जाए तो वह जैसे गैसभरा गुब्बारा जाकर ऊपर टकराने लगे, ऐसा आदमी टकराने लगेगा क्योंकि उसमें कोई वजन नहीं है जो उसे नीचे खींच सके। वजन जो है वह जमीन के गुरुत्वाकर्षण से है। लेकिन किरलियान के प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि आदमी से ऊर्जा तो निकलती है लेकिन वजन कम नहीं होता। निश्चित ही उस ऊर्जा पर जमीन के गुरुत्वाकर्षण का कोई प्रभाव न पड़ता होगा। योग के लेविटेशन में जमीन से शरीर को उठाने के प्रयोग में उसी ऊर्जा का उपयोग है।

अभी एक बहुत अदभुत नृत्यकार था पश्चिम में — निजिन्सकी। उसका नृत्य असाधारण था, शायद पृथ्वी पर वैसा नृत्यकार इसके पहले नहीं था। असाधारणता यह थी कि वह अपने नाच में जमीन से इतने ऊपर उठ जाता था जितना कि साधारणतया उठना बहुत मुश्किल है। और इससे भी ज्यादा आश्चर्यजनक यह था कि वह ऊपर से जमीन की तरफ आता था तो इतने स्लोली, इतने धीमे आता था कि जो बहुत हैरानी की बात है। क्योंकि इतने धीमे नहीं आया जा सकता। जमीन का जो खिंचाव है वह उतने धीमे आने की आज्ञा नहीं देता। यह उसका चमत्कारपूर्ण हिस्सा था। उसने विवाह किया , उसकी पत्नी ने जब उसका नृत्य देखा तो वह आश्चर्यचकित हो गयी। वह खुद भी नर्तकी थी।

उसने एक दिन निजिन्सकी को कहा — उसकी पत्नी ने आत्मकथा में लिखा है, मैंने एक दिन अपने पति को कहा — व्हाट ए शेम दैट यू कैन नाट सी युअरसेल्फ डांसिंग—कैसा दुख कि तुम अपने को नाचते हुए नहीं देख सकते। निजिन्सकी ने कहा — हू सैड, आइ कैन नाट सी। आइ डू आलवेज सी। आइ एम आलवेज आउट। आइ मेक माइसेल्फ डान्स फ्राम दि आउटसाइड। निजिन्सकी ने कहा — मैं देखता हूं सदा, क्योंकि मैं सदा बाहर होता हूं और मैं बाहर से ही अपने को नाच करवाता हूं। और अगर मैं बाहर नहीं रहता हूं तो मैं इतने ऊपर नहीं जा पाता हूं और अगर मैं बाहर नहीं रहता हूं तो इतने धीमे जमीन पर वापस नहीं लौट पाता हूं। जब मैं भीतर होकर नाचता हूं तो मुझ में वजन होता है, और जब मैं बाहर होकर नाचता हूं तो उसमें वजन खो जाता है।

योग कहता है — अनाहत चक्र जब भी किसी व्यक्ति का सक्रिय हो जाए, तो जमीन का गुरुत्वाकर्षण उस पर प्रभाव कम कर देता है और विशेष नृत्यों का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है। अना यास ही मालूम होता है। निजिन्सकी ने नाचते-नाचते अनाहत चक्र

को सक्रिय कर लिया। और अनाहत चक्र की दूसरी खूबी है कि जिस व्यक्ति का अनाहत चक्र सक्रिय हो जाए वह आउट आफ बाडी ऐक्सपीरिएंस, शरीर के बाहर के अनुभवों में उतर जाता है। वह अपने शरीर के बाहर खड़े होकर देख पाता है। लेकिन जब आप शरीर के बाहर होते हैं, तब जो शरीर के बाहर होता है, वही आपकी प्रा ण ऊर्जा है। वही वस्तुतः आप हैं। वह जो ऊर्जा है उसे ही महावीर ने जीवन-अग्नि कहा है। और उस ऊर्जा को जगाने को ही वैदिक संस्कृति ने यज्ञ कहा है।

उस ऊर्जा के जग जाने पर जीवन में एक नयी ऊष्मा भर जाती है। एक नया उत्ताप, जो बहुत शीतल है। यही कठिनाई है समझने की, एक नया उत्ताप जो बहुत शीतल है। तो तपस्वी जितना शीतल होता है उतना कोई भी नहीं होता। यद्यपि हम उसे कहते हैं तपस्वी। तपस्वी का अर्थ हुआ कि वह ताप से भरा हुआ है। लेकिन तप ि जतनी जग जाती है यह अग्नि, उतना केन्द्र शीतल हो जाता है। चारों ओर शक्ति जग जाती है, भीतर केन्द्र पर शीतलता आ जाती है।

वैज्ञानिक पहले सोचते थे कि यह जो सूर्य है हमारा, यह जलती हुई अच्गिन है, है ही, उबलती हुई अग्नि। लेकिन अब वैज्ञानिक कहते हैं कि सूर्य अपने केच्नदर पर बिलकुल शीतल है, दि कोल्डेस्ट स्पा ट इन दि युनिवर्स, यह बहुत हैरानी की बात है। चारों ओर अग्नि का इतना वर्तुल है, सूर्य अपने केच्नदर पर सर्वाधिक शीतल बिन्दु है। और उसका कारण अब खयाल में आना शुरू हुआ है। क्योंकि जहां इतनी अग्नि हो, उसको संतुलित करने के लिए इतनी ही गहन शीतलता केच्नदर पर होनी चाहिए, नहीं तो संतुलन टूट जाएगा।

ठीक ऐसी ही घटना तपस्वी के जीवन में घटती है। चारों ओर ऊर्जा उत्तप्त हो जाती है, लेकिन उस उत्तप्त ऊर्जा को संतुलित करने के लिए केच्नदर बिलकुल शीतल हो जाता है। इसलिए तप से भरे व्यक्ति से ज्यादा शीतलता का बिन्दु इस जगत में दूसरा नहीं है, सूर्य भी नहीं। इस जगत में संतुलन अनिवार्य है। असंतुलन चीजें बिखर जाती हैं।

आपने कभी गर्मी के दिनों में उठ गया बवंडर देखा होगा, धूल का। जब बवंडर चला जाए तब आप धूल के ऊपर जाना या रेत के पास जाना। तो आप एक बात देखेंगे कि बवंडर चारों तरफ था, बवंडर के निशान चारों तरफ बने हैं, लेकिन बीच में एक बिन्दु है जहां कोई निशान नहीं है। वहां शून्य था। वह बवंडर शून्य की धुरी पर ही घूम रहा था। बैलगाड़ी चलती है, लेकिन उसका चाक चलता है, लेकिन उसकी कील खड़ी रहती है। अब यह बहुत मजे की बात है कि खड़ी हुई कील पर चलते हुए चाक को सहारा है। खड़ी हुई कील पर, ठहरी हुई कील पर, चलते हुए चाक को चलना पड़ता है। अगर कील भी चल जाए तो गाड़ी गिर जाए। विपरीत से संतुलन है। जीवन का सूत्र है — विपरीत से संतुलन।

तो तपस्वी की चेष्टा यह है कि वह इतनी अग्नि पैदा कर ले अपने चा रों ओर, ताकि उस अग्नि के अनुपात में भीतर शीतलता का बिन्दु पैदा हो। वह अपनी ओर इतनी डाइनैमिक फोसच्ज, इतनी गत्यात्मक शक्ति को जन्मा ले कि भीतर शून्य का बिन्दु उपलब्ध हो जाए। वह अपने चारों ओर इतने तीव्र परिभ्रमण से भर जाए ऊर्जा के कि उसकी कील ठहर जाए, खड़ी हो जाए।

उल्टा दिखाई पड़नेवाला यह क्रम है, इससे बड़ी भूल हो जाती है। इससे लगता है कि तपस्वी शायद ताप में उत्सुक है। तपस्वी शीतलता में उत्सुक है। लेकिन शीतलता को पैदा करने की विधि अपने चा रों ओर ताप को पैदा कर लेना है। और यह ताप बाच्ह्य नहीं है। यह अपने शरीर के आसपास आग की अंगीठी जला लेने से नहीं पैदा हो जाएगा। यह ताप आन्तरिक है। इसलिए महावीर ने, तपस्वी अपने चारों तरफ आग जलाए, इसका निषेध किया है। क्योंकि वह ताप बाच्ह्य है। उससे आंतरिक शीतलता पैदा नहीं होगी; ध्यान रहे आन्तरिक ताप होगा तो ही आंतरिक शीतलता पैदा होगी, बाच्ह्य ताप होगा, तो बाच्ह्य शीतलता पैदा होगी। यात्रा करनी है अन्तर की तो बाहर के सच्बसटीच्टयूट्स नहीं खोजने चाहिए। वे धोखे के हैं, खतरनाक हैं।

अन्तर में क्या ताप पैदा हो सकता है? किरलियान ने ऐसे लोगों का अध्ययन किया है, फोटोग्राफी में जो सिर्फ अपने ध्यान से हाथ

से लपटें निकाल सकते हैं। एक व्यक्ति है स्विस, जो अपने हाथ में पांच कैंडल का बल्ब रखकर जला सकता है, सिर्फ ध्यान से। सिर्फ वह ध्यान करता है भीतर कि उसकी जीवन अग्नि बहनी शुरू हो गयी हा थ से और थोड़ी ही देर में बल्ब जल जाता है।

पिछले कोई पंद्रह वर्ष पहले हालैंड की एक अदालत ने एक तलाक स्वीकार किया। और वह तलाक इस बात से स्वीकार किया कि वह जो स्त्री थी, उसके भीतर कुछ दुर्घटना घट गयी थी। वह एक कार के एक्सीडेंट में गिर गयी, पत्नी। और

उसके बाद जो भी उसको छुए उसे बिजली के शाक लगने शुरू हो गए। उसके पति ने कहा — मैं मर जाऊंगा। इसे छूना ही असम्भव है।

यह पहला तलाक है क्योंकि इस कारण से पहले कभी कोई तलाक नहीं हुआ था। कानून में कोई जगह न थी, क्योंकि कानून ने कभी सोचा न था। लेकिन यह तलाक स्वीकार करना पड़ा। उस स्त्री की अन्तर-ऊर्जा में कहीं लीकेज पैदा हो गया।

आपके शरीर में भी च्ण और धन विद्युत ऊर्जा का वर्तुल है। उसमें कहीं से भी टूट पैदा हो जाए तो आपके शरीर से भी दूसरे को शाक लगना शुरू हो जाएगा। और कभी कभी आपको किसी अंग में अचानक झटका लगता है, वह इसी आकस्मिक लीकेज का कारण है। आप आकस्मिक कभी आप रात लेटे हैं और एकदम झटका खा जाते हैं। उसका और कोई कारण नहीं है। सोते वक्त आपकी ऊर्जा को शांत होना चाहिए आपकी निद्रा के साथ, वह नहीं हो पाती। व्यवधान पैदा हो जाता है। शाक खा सकते हैं आप।

यह जो अन्तर-ऊर्जा है, हिप्नोसिस के प्रयोगों ने इस पर बहुत बड़ा काम किया है। सम्मोहन के द्वारा आपकी अन्तर-ऊर्जा को कितना ही घटाया और बढ़ाया जा सकता है। जो लोग आग के अंगारों पर चलते रहे हैं, मुसलमान फकीर, सूफी फकीर या और योगी — उनके चलने का कुल कारण, कुल रहस्य इतना है कि वह अपनी अन्तर-ऊर्जा को इतना जगा लेते हैं कि आग के अंगारे की गर्मी उससे कम पड़ती है। और कोई कारण नहीं है। रिलेटिवली, सापेक्ष रूप से आपकी गर्मी कम हो जाती है इसलिए अंगारे ठण्डे मालूम पड़ते हैं। उनके शरीर की गर्मी, अन्तर-ऊर्जा का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि उस प्रवाह के कारण बाहर की गर्मी कम मालूम होती है।

गर्मी का अनुभव सापेक्ष है। अगर आप अपने दोनों हाथ एक हाथ को बर्फ पर रखकर ठण्डा कर लें और अपने एक हाथ को आग की सिगड़ी पर रखकर गर्म कर लें। फिर दोनों हाथ को एक बाल्टी में डाल दें, पानी से भरी हुई, तो आपके दोनों हाथ अलग-अलग खबर देंगे। एक हाथ कहेगा — पानी बहुत ठण्डा है; एक हाथ कहेगा — पानी बहुत गर्म है। जो हाथ ठण्डा है वह कहेगा पानी गर्म है, जो हाथ गर्म है वह कहेगा पानी ठण्डा है। आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे कि वक्तव्य क्या दें। अगर अदालत में गवाही देनी हो कि पानी ठण्डा है या गर्म? क्योंकि आप साधा रणतः हमारे शरीर का ताप एक होता है, इसलिए हम कह सकते हैं पानी ठण्डा है या गर्म। एक हाथ को गर्म कर लें, एक को ठण्डा, फिर एक ही बाल्टी में डाल दें। आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। और आपको महावीर का वक्तव्य देना पड़ेगा — शायद पानी गर्म है, शा यद पानी ठण्डा है—परहेप्स। बायां हाथ कहता है, ठण्डा है, दायां हाथ कहता है, गर्म है। पानी क्या है फिर? आपका वक्तव्य सापेक्ष है। आप जो कह रहे हैं, वह वक्तव्य पानी के संबंध में नहीं, आपके हाथ के संबंध में है।

अगर आपकी अन्तर-ऊर्जा इतनी जग गयी, तो आप अंगारे पर चल सकते हैं और अंगारे ठण्डे मालूम पड़ेंगे। पैर पर फफोले नहीं आएगे। इससे -उल्टी घटना हिप्नोसिस में घट जाती है। अगर मैं आ पको हिप्नोटाइज करके बेहोश कर दूं, जो कि बड़ी सरल-सी बात है, और आपके हाथ पर एक साधारण-सा कंकड़ रख दूं और कहूं कि अंगारा रखा है, आपका हाथ फौरन जल जाएगा। आप कंकड़ को फेंककर चीख मार देंगे। यहां तक ठीक है, आपके हाथ पर फफोला आ जाएगा। क्या, हुआ क्या? जैसे ही मैंने कहा कि अंगारा रखा है, आपके हाथ की ऊर्जा घबराहट में पीछे हट गयी। रिलेटिव गैप, जगह हो गयी। खाली जगह हो गयी, हाथ जल

गया। अंगारा नहीं जलाता, आपकी ऊर्जा हट जाती है, इस लिए आप जलते हैं। अगर अंगारा भी रखा जाए हिप्नोटाइज्ड आदमी के हाथ में, और कहा जाए, ठण्डा कंकड़ है — नहीं जलाता है। क्योंकि हा थ की ऊर्जा अपनी जगह खड़ी रहती है।

इसका अर्थ यह भी हुआ कि ऊर्जा आपके संकल्प से हटती या घटती या आ गे या पीछे होती है। कभी ऐसे छोटे-मोटे प्रयोग करके देखें, तो आपके खयाल में आसान हो जाएगा। थर्मामीटर से अपना ता प नाप लें। फिर थर्मामीटर को नीचे रख लें। दस मिनट आंख बन्द करके बैठ जाएं और एक ही भाव करें कि तीव्र रूप से गर्मी आपके शरीर में पैदा हो रही है — सिर्फ भाव करें। और दस मिनट बाद आप फिर थर्मामीटर से नापें। आप चकित हो जाएंगे कि आपने थर्मामीटर के पारे को और ऊपर चढ़ने के लिए बाध्य कर दिया — सिर्फ भाव से। और अगर एक डिग्री चढ़ सकता है थमार्मीटर तो दस डिग्री क्यों नहीं चढ़ सकता है। फिर कोई कारण नहीं है, फिर आपके प्रयास की बात है, फिर आपके श्रम की बा त है। और अगर दस डिग्री चढ़ सकता है तो दस डिग्री उतर क्यों नहीं सकता है।

तिब्बत में हजारों वषोच से साधक नग्न बर्फ की शिलाओं पर बैठा रहता है; ध्यान करने के लिए, घण्टों। कुल कारण है कि वह अपने आसपास, अपनी जीवन ऊर्जा के वर्तुल को सजग कर देता है, भाव से। तिब्बत यूनिवर्सिटी, ल्हासा विश्वविद्यालय अपने चिकित्सकों को, तिब्बतन मैडिसिन में जो लोग शिक्षा पाते थे; उनको तब तक डिग्री नहीं देता था — यह चीन के आक्रमण के पहले की बात है — तब तक डिग्री नहीं देता था, जब तक कि चिकित्सक बर्फ ि गरती रात में खड़ा होकर अपने शरीर से पसीना न निकाल पाए। तब तक डिग्री नहीं देता था। क्योंकि जिस चिकित्सक का अपनी जीवन-ऊर्जा पर इतना प्रभाव नहीं है, वह दूसरे की जीवन-ऊर्जा को क्या प्रभावित करेगा। शिक्षा पूरी हो जाती थी, लेकिन डिग्री तो तभी मिलती थी। और आप चकित होंगे कि करीब-करीब जो लोग भी चिकित्सक हो जाते थे, वे सभी इसे करने में समर्थ होते थे। कोई इस वर्ष, कोई अगले वर्ष किसी को छह महीने लगता, किसी को सालभर। और जो बहुत ही अग्रणी हो जाते थे, जिन्हें पुरस्का र मिलते थे, गोल्ड मैडल मिलते थे — वे, वे लोग होते थे जो कि रात में, बर्फ गिरती रात में एक बार नहीं, बीस-बीस बार शरीर से पसीना निकाल देते थे। और हर बार जब पसीना निकलता तो ठण्डे पानी से उनको नहला दिया जाता। वे फिर दोबारा पसीना निकाल देते, फिर तीसरी बार पसीना निकाल देते सिर्फ खयाल से, सिर्फ विचार से, सिर्फ संकल्प से।

किरलियान फोटोग्राफी में जब कोई व्यक्ति संकल्प करता है ऊर्जा का तो वर्तुल बड़ा हो जाता है। फोटोग्राफी में वर्तुल बड़ा आ जाता है। जब आप घृणा से भरे होते हैं, जब आप क्रोध से भरे होते हैं तब आपके शरीर से उसी तरह की ऊर्जा के गुच्छे निकलते हैं, जैसे मृत्यु में निकलते हैं। जब आप प्रेम से भरे होते हैं तब उल्टी घटना घटती है। जब आप करुणा से भरे होते हैं तब उल्टी घटती है। इस विराट ब्रह्म से आपकी तरफ ऊर्जा के गुच्छे प्रवेश करने लगते हैं। अब आप हैरान होंगे यह बात जानकर कि प्रेम में आप कुछ पाते हैं, क्रोध में कुछ देते हैं। आमतौर से प्रेम में हमें लगता है कि कुछ हम देते हैं और क्रोध में लगता है, हम कुछ छीनते हैं। प्रेम में हमें लगता है, कुछ हम देते हैं। लेकिन ध्यान रहे, प्रेम में आप पाते हैं। करुणा में आप पाते हैं, दया में आप पाते हैं। जीवन ऊर्जा आपकी बढ़ जाती है इसलिए क्रोध के बाद आप थक जाते हैं और करुणा के बाद आप और भी सशक्त, स्वच्छ, ताजे हो जाते हैं। इसलिए करुणावान कभी भी थकता नहीं। क्रोधी थका ही जीता है।

किरलियान फोटोग्राफी के हिसाब से मृत्यु में जो घटना घटती है, वही छोटे अंश में क्रोध में घटती है। बड़े अंश में मृत्यु में घटती है, बहुत ऊर्जा बाहर निकलने लगती है। किरलियान ने एक फूल का चित्र ि लया है जो अभी डाली से लगा है। उसके चारों तरफ ऊर्जा का जीवंत वर्तुल है और विराट से, चारों ओर से ऊर्जा की किरणें फूल में प्रवेश कर रही हैं। ये फोटोग्राफ अब उपलब्ध हैं, देखे

156

तप : ऊर्जा-शरीर का अनुभव

जा सकते हैं। और अब तो किरलियान का कैमरा भी तैयार हो गया है, वह भी जल्दी उपलब्ध हो जाएगा। उसने फूल को डाली से तोड़ लिया फिर फोटो लिया। तब स्थिति बदल गई। वे जो किरणें प्रवेश कर रही थीं वे वापस लौट रही हैं। एक सैकेंड का फासला, डाली से टूटा फूल। घंटेभर में ऊर्जा बिखरती चली जाती है। जब आपकी पंखुड़ियां सुस्त होकर ढल जाती हैं, वह वही क्षण है जब ऊर्जा निकलने के करीब पहुंचकर पूरी शून्य होने लगती है।

इस फूल के साथ किरलियान ने और भी अनूठे प्रयोग किए जिससे बहुत कुछ दृष्टि मिलती है — तप के लिए। किरलियान ने आधे फूल को काटकर अलग कर दिया। छह पंखुड़ियां हैं तीन तोड़कर फेंक दीं। चित्र लिया है तीन पंखुड़ियों का, लेकिन चकित हुआ — पंखुड़ियां तो तीन रहीं, लेकिन फूल के आसपास जो वर्तुल था वह अब भी पूरा रहा, जैसा कि छह पंखुड़ियों के आसपास था। छह पंखुड़ियों के आसपास जो वर्तुल, आभामंडल था, ऑरा था; तीन पंखुड़ियां तोड़ दीं, वह आभामंडल अब भी पूरा रहा। दो पंखुड़ियां उसने और तोड़ दीं, एक ही पंखुड़ी रह गई। लेकिन आ भामंडल पूरा रहा। यद्यपि तीव्रता से विसर्जित होने लगा, लेकिन पूरा रहा।

इसीलिए, आप जब बेहोश कर दिए जाते हैं अनस्थीसिया से या हिप्नोसिस से — आपका हाथ काट डाला जाए, आपको पता नहीं चलता। उसका कुल कारण इतना है कि आपका वास्तविक अनुभव अपने शरीर का, ऊर्जा-शरीर से है। वह हाथ कट जाने पर भी पूरा ही रहता है। वह तो जब आप जगेंगे और हाथ कटा हुआ देखेंगे तब तकलीफ शुरू होगी। अगर आपको गहरी निद्रा में मार भी डाला जाए तो भी आपको तकलीफ नहीं होगी। क्योंकि गहरी निच्दरा में, सम्मोहन में या अनस्थीसिया में आपका तादाच्तमय इस शरीर से छूट जाता है और आपके ऊर्जा-शरीर से ही रह जाता है। आ पका अनुभव पूरा ही बना रहता है। अैर इसीलिए अगर आप लंगड़े भी हो गए हैं पैर से, तब भी आपको ऐसा नहीं लगता कि आ पके भीतर वस्तुतः कोई चीज कम हो गयी है। बाहर तो तकलीफ हो जाती है। अड़चन हो जाती है लेकिन भीतर नहीं लगता है कि कोई चीज कम हो गयी है। आप बूढ़े भी हो जाते हैं तो भी भीतर नहीं लगता कि आपके भीतर कोई चीज बूढ़ी हो गई है। क्योंकि वह ऊर्जा-शरीर है, वह वैसा का वैसा ही काम करता रहता है।

अमरीकन मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक ड्ड ग्रीन ने आदमी के मस्तिच्षक के बहुत से हिस्से काटकर देखे और वह चकित हुआ। मस्तिष्क के हिस्से कट जाने पर भी मन के काम में कोई बाधा नहीं पड़ती। मन अपना काम वैसा ही जारी रखता है। इससे ग्रीन ने कहा कि यह परिपूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है कि मस्तिष्क केवल उपकरण है, वास्तविक मालिक कहीं कोई पीछे है। वह पूरा का पूरा ही काम करता रहता है। आपके शरीर के आसपास जो आभामंडल निर्मित होता है, वह इस शरीर का रेडिएशन नहीं है, इस शरीर से विकीर्णन नहीं है, वरन किरलियान ने वक्तव्य दिया है कि आन दि कांट्रेरी दिस बाडी ओनली मिरर्स दि इनर बाडी, वह जो भीतर का शरीर है, उसके लिए यह सिर्फ दर्पण की तरह बाहर प्रगट कर देती है। इस शरीर के द्वारा वे किरणें नहीं निकल रही हैं, वे किरणें किसी और शरीर के द्वारा निकल रही हैं। इस शरीर से केवल प्रगट होती हैं।

जैसे हमने एक दीया जलाया हो, चारों तरफ एक ट्रांसपैरेंट कांच का घेरा लगा दिया हो, उस कांच के घेरे के बाहर हमें किरणों का वर्तुल दिखाई पड़ेगा। हम शायद सोचें कि वह कांच से निकल रहा है तो गलती है। वह कांच से निकल रहा है, लेकिन कांच से आ नहीं रहा है। वह आ रहा है भीतर के दीये से। हमारे शरीर से जो ऊर्जा निकलती है वह इस भौतिक शरीर की ऊर्जा नहीं है, क्योंकि मरे हुए आदमी के शरीर में समस्त भौतिक तत्व यही का यही होता है, लेकिन ऊर्जा का वर्तुल खो जाता है। उस ऊर्जा के

वर्तुल को योग सूच्म शरीर कहता रहा है। और तप के लिए उस सूच्म शरीर पर ही काम करने पड़ते हैं। सारा काम उस सूच्म शरीर पर है।

लेकिन आमतौर से जिन्हें हम तपस्वी समझते हैं, वे, वे लोग हैं जो इस भौतिक शरीर को ही सताने में लगे रहते हैं। इससे कुछ लेना-देना नहीं है। असली काम इस शरीर के भीतर जो दूसरा छिपा हुआ शरीर है — ऊर्जा-शरीर, इनर्जी-बाडी — उस पर काम का है। और योग ने जिन चक्रों की बात की है, वे इस शरीर में कहीं भी नहीं हैं, वे उस ऊर्जा शरीर में हैं।
इसलिए वैज्ञानिक जब इस शरीर को काटते हैं, फिजियोलाजिस्ट, तो वे कहते हैं — तुम्हारे चक्र कहीं मिलते नहीं। कहां है अनाहत, कहां है स्वाधिष्ठान, कहां है मणिपुर — कहीं कुछ नहीं मिलता । पूरे शरीर को काटकर देख डालते हैं, वह चक्र कहीं मिलते नहीं। वे मिलेंगे भी नहीं। वे उस ऊर्जा-शरीर के बिंदु हैं। यद्यपि उन ऊर्जा-शरीर के बिन्दुओं को करस्पांड करने वाले, उनके ठीक समतुल इस शरीर में स्थान हैं — लेकिन वे चक्र नहीं हैं।
जैसे, जब आप प्रेम से भरते हैं तो हृदय पर हाथ रख लेते हैं। जहां आप हाथ रखे हुए हैं, अगर वैज्ञानिक जांच-पड़ताल, काट-पीट करेगा तो सिवाय फेफड़े के कुछ नहीं है। हवा को पंप करने का इन्तजा म भर है वहां, और कुछ भी नहीं है। उसी से धड़कन चल रही है। पम्पिंग सिस्टम है। इसको बदला जा सकता है। अब तो बदला जा सकता है और इसकी जगह पूरा प्लास्टिक का फेफड़ा रखा जा सकता है। वह भी इतना ही काम करता है, बल्कि वैज्ञानिक कहते हैं, जल्दी ही इससे बेहतर काम करेगा। क्योंकि न वह सड़ सकेगा, न गल सकेगा, कुछ भी नहीं। लेकिन एक मजे की बात है कि प्लास्टिक के फेफड़े में भी हार्ट अटेक होंगे, यह बहुत मजे की बात है। प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट अटैक नहीं होने चाहिए, क्योंकि प्लास्टिक और हार्ट अटैक का क्या संबंध है! निश्चित ही हार्ट अटैक कहीं और गहरे से आता होगा, नहीं तो प्लास्टिक के फेफड़े में हार्ट अटैक नहीं हो सकता। प्लास्टिक का फेफड़ा टूट जाए, फूट जाए, लेकिन चोट खा जाए, यह सब हो सकता है — लेकिन एक प्रेमी मर जाए और हार्ट अटैक हो जाए, यह नहीं हो सकता क्योंकि प्लास्टिक के फेफड़े को क्या पता चलेगा कि प्रेमी मर गया है। या मर भी जाए तो प्लास्टिक पर उसका क्या परिणाम हो सकता है? कोई भी परिणाम नहीं हो सकता है। अभी भी जो फेफड़ा आ पका धड़क रहा है उस पर कोई परिणाम नहीं होता। उसके पीछे एक दूसरे शरीर में जो हृदय का चक्र है, उस पर परिणाम होता है। लेकिन उसका परिणाम तत्काल इस शरीर पर मिरर होता है, दर्पण की तरह दिखाई पड़ता है।
योगी बहुत दिनों से हृदय की धड़कन को बन्द करने में समर्थ रहे हैं, फिर भी मर नहीं जाते। क्योंकि जीवन का स्रोत कहीं गहरे में है। इसलिए हृदय की धड़कन भी बन्द हो जाती है, तो भी जीवन धड़कता रहता है। हालांकि पकड़ा नहीं जा सकता। फिर कोई यंत्र नहीं पकड़ पाते कि जीवन कहां धड़क रहा है। यह शरीर जो हमारा है, सिर्फ उपकरण है। इस शरीर के भीतर छिपा हुआ और इस शरीर के बाहर भी चारों तरफ इसे घेरे हुए जो आभामंडल है, वह हमा रा वास्तविक शरीर है। वही हमारा तप-शरीर है। उस पर जो केन्द्र है उन पर ही काम तप का, सारी की सारी पद्धति, टैक्नोलाजी, तकनीक उन शरीर के बिंदुओं पर काम करने की है।
मैंने आपसे पीछे कहा कि चाइनीज एक्युपंक्चर की विधि मानती है कि शरीर में कोई सात सौ बिन्दु हैं, जहां वह ऊर्जा-शरीर इस शरीर को स्पर्श कर रहा है — सात सौ बिन्दु। आपने कभी खयाल न किया होगा, लेकिन खयाल करना मजेदार होगा। कभी बैठ जाएं उघाड़े होकर और किसी को कहें कि आपकी पीठ में पीछे कई जगह सुई चुभाएं। आप बहुत चकित होंगे, कुछ जगह वह सुई चुभायी जाएगी, आपको पता नहीं चलेगा। आपकी पीठ पर ब्लाइंड स्पा ट्स हैं, जहां सुई चुभाई जाएगी, आपको पता नहीं चलेगा। और आपकी पीठ पर सेंसिटिव स्पाट हैं, जहां सुई जरा-सी चुभायी जाएगी और आपको पता चलेगा। एक्युपंक्चर पांच हजार साल पुरानी चिकित्सा विधि है। वह कहती है — जिन बिन्दुओं पर सुई

चुभाने से पता नहीं चलता, वहां आपका ऊर्जा-शरीर स्पर्श नहीं कर रहा है। वह डैड स्पाट है, वहां से आपका जो भीतर का तपस्-शरीर है वह स्पर्श नहीं कर रहा है, इसलिए वहां पता कैसे चलेगा!

158

□

तप : ऊर्जा-शरीर का अनुभव

पता तो उसका चलता है जो भीतर है। संवेदनशील जगह पर छुआ जाता है, उसका मतलब यह है कि वहां से ऊर्जा शरीर कांटैक्ट में है। वहां से वहां तक चोट पहुंच जाती है। जब आपको अनस्थीसिया दे दिया जाता है आपरेशन की टेबल पर तो आपके ऊर्जा शरीर का और इस शरीर का संबंध तोड़ दिया जाता है। जब लोकल अनस्थीसिया दिया जाता है कि मेरे हाथ को भर अनस्थीसिया दे दिया गया है कि मेरा हाथ सो जाए, तो सिर्फ मेरे हाथ के जो बिन्दु हैं, जिनसे मेरा तपस्-शरीर जुड़ा हुआ है, उनका संबंध टूट जाता है। फिर इस हाथ को काटो-पीटो, मुझे पता नहीं चलता। क्योंकि मुझे तभी पता चल सकता है जब मेरे ऊर्जा-शरीर से संबंध कुछ हो अन्यथा मुझे पता नहीं चलता।
इसलिए बहुत हैरानी की घटना घटती है, और आप भूल ऐसी न करना। कभी-कभी कुछ लोग सोते हुए मर जाते हैं। आप कभी भी सोते हुए मत मरना। सोते में जब कोई मर जाता है तो उसको कई दिन लग जाते हैं यह अनुभव करने में कि मैं मर गया। क्योंकि गहरी नींद में ऊर्जा-शरीर और इस शरीर के संबंध शिथिल हो जाते हैं। अगर कोई गहरी नींद में एकदम से मर जाता है तो उसकी समझ में नहीं आता कि मैं मर गया। क्योंकि समझ में तो तभी आ सकता है, जब इस शरीर से संबंध टूटते हुए अनुभव में आएं। वह अनुभव में नहीं आते तो उसमें पता नहीं चलता कि मैं मर गया।
यह जो सारी दुनिया में हम शरीर को गड़ाते हैं या जलाते हैं या कुछ करते हैं तत्काल, उसका कुल कारण इतना है, ताकि वह जो ऊर्जा-शरीर है उसे यह अनुभव में आ जाए कि वह मर गया। इस जगत से उसका संबंध इस शरीर के साथ इसको नष्ट करता हुआ वह देख ले कि वह शरीर नष्ट हो गया है, जिसको मैं समझता था कि यह मेरा है। यह शरीर को जलाने के लिए मरघट और कब्रिस्तान और गड़ाने के लिए सारा इन्तजाम है, यह सिर्फ सफाई का इंतजाम नहीं है कि एक आदमी मर गया — तो उसको समाप्त करना ही पड़ेगा, नहीं तो सड़ेगा, गलेगा। इसके गहरे में जो चिन्ता है वह उस आदमी की चेतना को अनुभव कराने की है कि यह शरीर तेरा नहीं है, तेरा नहीं था। तू अब तक इसको अपना समझता रहा है। अब हम इसे जलाए देते हैं, ताकि पक्का तुझे भरोसा हो जाए।
अगर हम शरीर को सुरक्षित रख सकें, तो उस चेतना को हो सकता है, खयाल ही न आए कि वह मर गई है। वह इस शरीर के आसपास भटकती रह सकती है। उसके नए जन्म में बाधा पड़ जाएगी, कठिनाई हो जाएगी। और अगर उसे भटकाना ही हो इस शरीर के आसपास, तो ईजिप्त में जो ममीज बनाई गई हैं, वे इसीलिए बनायी गयी थीं। शरीर को इस तरह से ट्रीट किया जाता था, इस तरह के रासायनिक द्रव्यों से निकाला जाता था कि वह सड़े न — इस आशा में कि किसी दिन पुनरुज्जीवन, उस सम्राट को फिर से जीवन मिल सकेगा। तो सात, साढ़े सात हजारों वर्ष पुराने शरीर भी सुरक्षित पिरामिडों के नीचे पड़े हैं। उस सम्राट को जिसके शरीर को इस तरह रखा जाता था, उसकी पत्नियों को, चाहे वे जीवित ही क्यों न हों, उनको भी उसके साथ दफना दिया जाता था। एक दो नहीं, कभी-कभी सौ-सौ पत्नियां भी होती थीं। उस सम्राट के सारे, जिन-जिन चीजों से उसे प्रेम था, वे सब उसकी ममी के आसपास रख दिए जाते थे, ताकि जब उसका पुनरुज्जीवन हो तो वह तत्काल पुराने माहौल को पाए। उसकी पत्नियां, उसके कपड़े, उसकी गद्दियां, उसके प्याले, उसकी थालियां, वह सब वहां हों — ताकि तत्काल रीहैबिलिटेड, वह पुनर्स्थापित हो जाए अपने नए जीवन में। इस आशा में ममीज खड़ी की गयी थीं। और इसमें कुछ आश्चर्य न होगा कि जिनकी ममीज रखी हैं, उनका पुनर्जन्म होना

बहुत कठिन हो गया है; या न हो पाया हो; या उनकी अनेक की आत्माएं अपने पिरामिडों के आसपास अब भी भटकती हों।

हिन्दुओं ने इस भूमि पर प्राण-ऊर्जा के संबंध में सर्वाधिक गहरे अनुभव किए थे। इसलिए हमने सर्वाधिक तीव्रता से शरीर को नष्ट करने के लिए आग का इन्तजाम किया, गड़ाने का भी नहीं। क्योंकि गड़ाने में भी छह महीने लग जाएंगे शरीर को गलने में, टूटने में, मिलने में मिट्टी में। उतने छह महीने तक आत्मा को भटकाव हो सकता है। तत्काल जला देने का प्रयोग हमने किया। वह

सिर्फ इसीलिए था ताकि इस बीच, इसी क्षण आत्मा को पता चल जाए कि शरीर नष्ट हो गया, मैं मर गया हूं। क्योंकि जब तक यह अनुभव में न आए कि मैं मर गया हूं, तब तक नए जीवन की खोज शुरू नहीं होती। मर गया हूं, तो नए जीवन की खोज पर आत्मा निकल जाती है।

यह जो एक्युपंक्चर ने सात सौ बिन्दु कहे हैं शरीर में — रूस के एक वैज्ञानिक एडामैंको ने अभी एक मशीन बनायी है उस मशीन के भीतर आपको खड़ा कर देते हैं। उस मशीन के चारों तरफ बल्ब लगे होते हैं, हजारों बल्ब लगे होते हैं। आपको मशीन के भीतर खड़ा कर देते हैं। जहां-जहां से आपका प्राण शरीर बह रहा है, वहां- वहां का बल्ब जल जाता है बाहर । सात सौ बल्ब जल जाते हैं हजारों बल्बों में, मशीन के बाहर। वह मशीन, आपकी प्राण ऊर्जा जहां-जहां संवेदनशील है, वहां-वहां बल्ब को जला देती है। तो अब एडामैंको की मशीन से प्रत्येक व्यक्ति के संवेदनशील बिन्दुओं का पता चल सकता है।

लेकिन योग ने सात सौ की बात नहीं की, सात चक्रों की बात की है। सात सौ बिन्दुओं की! योग की पकड़ एक्युपंक्चर से ज्यादा गहरी है। क्योंकि योग ने अनुभव किया है कि एक-एक बिन्दुबिन्दु परिधि पर है, केन्द्र नहीं है। सौ बिन्दुओं का एक केन्द्र है। सौ बिन्दु एक चक्र के आसपास निर्मित हैं। फिक्र छोड़ दी, परिधि की। उस केन्द्र को ही स्पर्श कर लिया जाए, ये सौ बिन्दु स्पर्शित हो जाते हैं। इसलिए सात चक्रों की बात की — प्रत्येक चक्र के आसपा स सौ बिन्दु निर्मित होते हैं इस शरीर को छूनेवाले। इसलिए आपके शरीर कासमझ लें उदाहरण के लिए, और आसान होगा, क्योंकि हमारे अनुभव की बात होती है तो आसान हो जाती हैसैक्स का एक सेंटर है आपके पास, यौन का चक्र। लेकिन उस यौन चक्र के सौ बिन्दु हैं आपके शरीर में। जहां-जहां यौन चक्र का बिन्दु है, वहां-वहां इरोटिक जोन हो जाते हैं। जैसे आपको कभी खयाल में भी न होगा कि जब आप किसी के साथ यौन संबंध में रत होते हैं तो आप शरीर के किन्हीं-किन्हीं अंगों को विशेष रूप से छूने लगते हैं। वह इरोटिक जोन है। वह काम के बिन्दु हैं शरीर पर फैले हुए। और कई बिन्दु तो ऐसे हैं कि आपको पता नहीं होगा क्योंकि आपके खयाल में नहीं आएंगे। लेकिन अलग-अलग संस्कृतियों ने अलग-अलग बिन्दुओं का पता लगा लिया है। अब तो वैज्ञानिकों ने सारे इरोटिक प्वाइंट्स खोज लिए हैं, शरीर में कहां-कहां हैं। जैसे आपको खयाल में नहीं होगा, आपके कान के नीचे की जो लम्बाई है, वह इरोटिक है। वह बहुत संवेदनशील है। स्तन जितने संवेदनशील हैं, उतना ही संवेदनशील आपके कान का हिस्सा है।

आपने कानफटे साधुओं को देखा होगा। कानफटे साधुओं की बात सुनी होगी, लेकिन कभी खयाल में न आया होगा कि कान फाड़ने से क्या मतलब हो सकता है? कान फाड़कर वे यौन के बिन्दु को प्रभावित करने की कोशिश में लगे हैं। वह सेंसिटिव है स्पाट, वह जगह बहुत संवेदनशील है। आपने कभी खयाल न किया होगा कि महावीर के कान का नीचे का लम्बा हिस्सा कंधे को छूता है। बुद्ध का भी छूता है। जैनों के चौबीस तीथच्करों का छूता है। तीथच्कर का वह एक लक्षण

समझा जाता था कि उसका कान का हिस्सा इतना लम्बा हो। लेकिन कान का हिस्सा इतना लम्बा हो, उसका अर्थ ही केवल इतना होता है — वह हो या न हो — लम्बे हिस्से का प्रतीक सिर्फ इसलिए है कि इस व्यक्ति की काम ऊर्जा बहुत होगी, सेक्स इनर्जी इस व्यक्ति में बहुत होगी। और यही ऊर्जा रूपांतरित होनेवाली है, कुंडलिनी बनेगी। यही ऊर्जा रूपांतरित होगी, ऊपर जाएगी और तप बनेगी। वह कान की लम्बाई सिर्फ प्रतीक है, वह इरोटिक जोन है। वहां से आपके काम की संवेदनशीलता पता चलती है। आपके शरीर पर बहुत से बिन्दु हैं जो काम के लिए संवेदनशील हैं। हर चक्र के आसपास सौ बिन्दु हैं शरीर में।

आपके शरीर में ऐसे बिन्दु हैं जिनके स्पर्श से, जिनके स्पर्श से, जिनकी मसाज से आपकी बुद्धि को प्रभावित किया जा सकता है। क्योंकि वे आपके बुद्धि के बिन्दु हैं। आपके शरीर में ऐसे बिन्दु हैं जिनसे आपके दूसरे चक्रों को प्रभावित किया जा सकता है। समस्त

160

तप ः ऊर्जा-शरीर का अनुभव

योगासन इन्हीं बिन्दुओं को दबाव डालने के प्रयोग हैं। और अलग-अलग योगासन अलग-अलग चक्र को सक्रिय कर देता है। जहां-जहां दबाव पड़ता है, वहां-वहां सक्रिय कर देता है।

एक्युपंक्चर ने तो बहुत ही सरल विधि निकाली है। वे तो सुई से आ पके संवेदनशील बिन्दु को छेदते हैं। छेदने से, सुई के छेदने से वहां की ऊर्जा सक्रिय होकर आगे बढ़ जाती है। वे कहते हैं — कोई भी बीमारी वे एक्युपंक्चर से ठीक कर सकते हैं। और अभी एक बहुत अदभुत किताब हिरोशिमा के बाबत अभी प्रकाशित हुई है। और जिस आदमी ने, जिस अमरीकी वैज्ञानिक ने वह सारा शोध किया है, वह चकित हो गया है। उसने कहा, हमारे पास एटम बम से पैदा हुई रेडिएशंस हैं, जो-जो नुकसान होते हैं उनको ठीक करने के लिए कोई उपाय नहीं है। लेकिन रेडिएशन से परेशान व्यक्ति को भी एक्युपंक्चर की सुई ठीक कर देती है। एटम से जो नुकसान होते हैं चारों तरफ के वायुमण्डल में उस नुकसान को भी एक्युपंक्चर की बिलकुल साधारण-सी सुई ठीक कर पाती है।

क्या होता है? जब एटम गिरता है तो इतनी ऊर्जा पैदा होती है बाहर कि वह ऊर्जा आपके शरीर की ऊर्जा को बाहर खींच लेती है। इतना बड़ा ग्रैविटेशन होता है, एटम की ऊर्जा का कि आपकी तपस्- शरीर की ऊर्जा बाहर खिंच जाती है। इसी वजह से आप दीन-हीन हो जाते हैं। अगर पैर की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप लंगड़े हो जाते हैं। अगर हृदय की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप तत्काल गिरते हैं और मर जाते हैं। अगर मस्तिष्क की ऊर्जा बाहर खिंच जाए तो आप ईडियट, जड़-बुद्धि हो जाते हैं। एक्युपंक्चर, इस खोज में पता चला है कि आपकी ऊर्जा की गति को, आपकी ऊर्जा के चक्र को साधारण-सी सुई के स्पर्श से पुनः सक्रिय कर देता है।

योग-आसन भी आपके शरीर में किन्हीं-किन्हीं विशेष बिन्दुओं पर दबाव डालने के प्रयोग हैं। निरंतर दबाव से वहां की ऊर्जा सक्रिय हो जाती है। और विपरीत दबाव से दूसरे केच्नदरों की ऊर्जा खींच ली जाती है। जैसे अगर आप शीर्षासन करते हैं तो शीर्षासन का अनिवार्य परिणाम कामवासना पर पड़ता है। क्योंकि शीर्षासन में आ पकी ऊर्जा का प्रवाह उल्टा हो जाता है, सिर की तरफ हो जाता है। ध्यान रहे, आपकी आदत आपकी शक्ति को नीचे की तरफ बहाने की है। जब आप उल्टे खड़े हो जाते हैं तब भी पुरानी आदत के हिसाब से आप शक्ति को नीचे की तरफ बहाते हैं। लेकिन अब वह नीचे की तरफ नहीं बह रही है, अब वह सिर की तरफ बह रही है। शीर्षासन का इतना मूल्य सिर्फ इसीलिए बन सका तपस्वियों के लिए कि वह काम ऊर्जा को सिर की तरफ ले जाने के लिए सुगम है। आपकी पुरानी आदत का उपयोग है। आदत है नीचे की तरफ बहाने की, खुद उल्टे खड़े हो गए। अभी भी नीचे की तरफ बहाएंगे, पुरानी आदत के वश।

लेकिन अब नीचे की तरफ का मतलब ऊपर की तरफ हो गया। बहेगी नीचे की तरफ, पहुंचेगी ऊपर की तरफ। ऊर्जाआपके भीतर जो जीवन ऊर्जा है उसको तप जगाता है, शक्तिशाली बनाता है, नए मागोच पर प्रवाहित करता है, नए केच्नदरों पर संग्रहीत करता है।

आज से दो साल पहले चैकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राहा के पास एक सड़क पर एक अनूठा प्रयोग हुआ जिसे देखने यूरोप के अनेक वैज्ञानिक इकट्ठे थे। एक आदमी है बेटिस्लाव काच्फका। इस आदमी ने सम्मोहन पर गहन प्रयोग किए। सम्भवतः इस समय पृथ्वी पर सम्मोहन के संबंध में सबसे बड़ा जानकार है। इसने अनेक लोग तैयार किए, अनेक दिशाओं के लिए। इसके पास एक आदमी है जो उड़ते पक्षी को सिर्फ आंख उठाकर देखे, और आप उससे कहें कि गिरा दो, तो वह पक्षी नीचे गिर जाता है। आकाश में उड़ता हुआ पक्षी, वृक्ष पर बैठा हुआ पक्षी, आप कहें, गिरा दो — पच्चीस पक्षी बैठे हुए हैं, आप कहें, इस शाखा पर बैठा हुआ यह सामने नम्बर एक का पक्षी है, इसे गिरा दो, वह आदमी एक क्षण उसे देखता है, वह पक्षी नीचे गिर जाता है। आप कहें, इसे

मारकर गिरा दो, तो वह पक्षी मरता है और जमीन पर मुर्दा होकर गिरता है। दो साल पहले प्राहा की सड़क पर जब यह प्रयोग हुआ,

तो कोई दो सौ वैज्ञानिक पूरे यूरोप महाद्वीप से इकट्ठे थे, देखने को। सैकड़ों पक्षी गिराकर बताए गए। अब पक्षियों को समझाकर राजी नहीं किया जा सकता। न ही उस आदमी ने अपनी मर्जी के पक्षी गिराए। सड़क पर चलते हुए वैज्ञानिकों ने कहा कि इस पक्षी को, तो उस पक्षी को गिरा दिया। जिन्दा कहा तो जिन्दा गिरा दिया, मुर्दा कहा तो मुर्दा गिरा दिया।

उस आदमी से पूछा जाता है और उसका जो प्रधान है साथ का, उससे पूछा जाता है कि क्या है राज? तो वह कहता है—हम कुछ नहीं करते। जैसा कि वैक्यूम क्लीनर होता है न आपके घर में, धूल को सक-अप कर लेता है, क्लीनर को आप चलाते हैं फर्श पर, धूल को वह भीतर खींच लेता है। क्लीनर खाली होता है और खींचने का रुख करता है—जैसे कि आप जोर से हवा को भीतर खींच लें, सक कर लें। जैसा कि बच्चा दूध पीता है मां के स्तन से—सक करता है, खींच लेता है। तो वह कहता है—हमने इस आदमी को इसी के लिए तैयार किया है कि उसकी प्राण ऊर्जा को सक कर ले, बस। वह पक्षी बैठा है, यह उस पर ध्यान करता है और प्राण-ऊर्जा को अपने भीतर खींचने का संकल्प करता है। अगर सिर्फ इतना ही संकल्प करता है कि इतनी प्राण ऊर्जा मेरे तक आए कि पक्षी बैठा न रह जाए, गिर जाए, तो पक्षी गिरता है। अगर यह पूरी प्राण-ऊर्जा को खींच लेता है तो पक्षी मर जाता है। इसके चित्र भी लिए गए कि जब वह सक-अप करता है, पक्षी से ऊर्जा के गुच्छे उस आदमी की तरफ भागते हुए चित्र में आए।

काच्फका का कहना है कि यह ऊर्जा हम इकट्ठी भी कर सकते हैं, और मरते हुए आदमी को जैसे आप आक्सीजन देते हैं, किसी न किसी दिन प्राण ऊर्जा भी दी जा सकेगी। जब तक आक्सीजन नहीं दे सकते थे, तब तक आदमी आक्सीजन की कमी से मर जाता था। काच्फका कहता है—बहुत जल्दी अस्पतालों में हम सिलिंडर रख देंगे, जिनमें प्राण-ऊर्जा भरी होगी और मरनेवाले आदमी को प्राण-ऊर्जा दे दी जाए। उसकी ऊर्जा बाहर निकल रही है, उसे दूसरी ऊर्जा दे दी जाए तो वह कुछ देर तक जीवित रह सकता है, ज्यादा देर भी जीवित रह सकता है।

अमरीका का एक वैज्ञानिक था, जिसका मैंने कल आपसे थोड़ा उल्लेख किया, और वह आदमी था, विलेहम रेक। आपने कभी आकाश के पास या समुद्र के किनारे बैठकर आकाश में देखा हो तो आपको कुछ आकृतियां आंख में ऊंची-नीची उठती दिखाई पड़ती हैं। सोचते हैं कि आंख का भ्रम होगा और अब तक वैज्ञानिक समझते थे कि सिर्फ आंख का भ्रम है,

एक डिल्यूजन है। या यह सोचते थे कि आंख पर कुछ स्पाट होंगे विकृत, उनकी वजह से वह आकृतियां बाहर दिखाई पड़ती हैं। लेकिन विलेहम रैक की खोजों ने यह सिद्ध किया है कि वे आकृतियां प्राण-ऊर्जा की हैं। उन आकृतियों को अगर कोई पीना सीख जाए, तो वह महा-प्राणवान हो जाएगा और वे आकृतियां हमसे ही निकलकर हमारे चारों तरफ फैल जाती हैं। उसको उसने आर्गान इनर्जी कहा है, जीवन ऊर्जा कहा है।

प्राण-योग, या प्राणायाम वस्तुतः मात्र वायु को भीतर ले जाने और बाहर ले जाने पर निर्भर नहीं है। गहरे में जो कि साधारणतः खयाल में नहीं आता कि एक आदमी प्राणायाम सीख रहा है तो वह सोचता है बस ब्रीदिंग की एक्सरसाइज है, वह सिर्फ वायु का कोई अभ्यास कर रहा है। लेकिन जो जानते हैं, और जाननेवाले निश्चित ही बहुत कम हैं, वे जानते हैं कि असली सवाल वायु को बाहर और भीतर ले जाने का नहीं है। असली सवाल वायु के मार्ग से वह जो आर्गान इनर्जी के गुच्छे चारों तरफ जीवन में फैले हुए हैं, उनको भीतर ले जाने का है। अगर वे भीतर जाते हैं तो ही प्राण- योग है, अन्यथा वायु-योग है, प्राण-योग नहीं है। प्राणायाम नहीं है, अगर वे गुच्छे भीतर नहीं जाते। वे गुच्छे भीतर जाते हैं तो ही प्राण-योग है। उन गुच्छों से आयी हुई शक्ति का उपयोग तप में किया जाता है। खुद की शक्ति का, चारों तरफ जीवन की शक्ति का, पौधों की शक्ति का, पदाथोच की शक्ति का प्रयोग किया जाता है।

एक अनूठी बात आपको कहूं। चकित होंगे आप जानकर कि काच्फका, किरलियान, विलेहम रेक और अनेक वैज्ञानिकों का अनुभव

162

तप : ऊर्जा-शरीर का अनुभव

है कि सोना एकमात्र धातु है जो सर्वाधिक रूप से प्राण ऊर्जा को अपनी तरफ आकर्षित करती है। और यही सोने का मूल्य है, अन्यथा कोई मूल्य नहीं है। इसलिए पुराने दिनों में, कोई दस हजार साल पुराने रिकार्ड उपलब्ध हैं, जिनमें सम्राटों ने प्रजा को सोना पहनने की मनाही कर रखी थी। कोई आदमी दूसरा सोना नहीं पहन सकता था, सिर्फ सम्राट पहन सकता था। उसका राज था कि वह सोना पहनकर, दूसरे लोगों को सोना पहनना रोककर ज्यादा जी सकता था। लोगों की प्राण ऊर्जा को अनजाने अपनी तरफ आकर्षित कर रहा था। जब आप सोने को देखकर आकर्षित होते हैं, तो सिर्फ सोने को देखकर आकर्षित नहीं होते, आपकी प्राण ऊर्जा सोने की तरफ बहनी शुरू हो जाती है, इसलिए आकर्षित होते हैं। इसलिए सम्राटों ने सोने का बड़ा उपयोग किया और आम आदमी को सोना पहनने की मनाही कर दी गयी थी कि कोई आम आदमी सोना नहीं पहन सकेगा ।

सोना सर्वाधिक खींचता है प्राण ऊर्जा को। यही उसके मूल्य का राज है अन्यथाअन्यथा कोई राज नहीं है। इस पर खोज चलती है। संभावना है कि बहुत शीघ्र, जो प्रेशियस स्टोन से, जो कीमती पत्थर हैं, उनके भीतर भी कुछ राज छिपे मिलेंगे। जो बता सकेंगे कि वे या तो प्राण ऊर्जा को खींचते हैं, या अपनी प्राण ऊर्जा न खींची जा सके, इसके लिए कोई रैजिस्टेंस खड़ा करते हैं। आदमी की जानकारी अभी भी बहुत कम है। लेकिन जानकारी कम हो या ज्यादा, हजा रों साल से जितनी जानकारी है उसके आधार पर बहुत काम किया जाता रहा है। और ऐसा भी प्रतीत होता है कि शायद बहुत- सी जानकारियां खो गई हैं।

लुकमान के जीवन में उल्लेख है कि एक आदमी को उसने भारत भेजा आ युवच्द की शिक्षा के लिए और उससे कहा कि तू बबूल के वृक्ष के नीचे सोता हुआ भारत पहुंच। और किसी वृक्ष के नीचे मत सोना—बबूल के वृक्ष के नीचे सोना रोज। वह आदमी जब तक भारत आया, क्षय रोग से पीड़ित हो गया। कश्मीर पहुंचकर उसने पहले चिकित्सक को कहा कि मैं

तो मरा जा रहा हूं। मैं तो सीखने आया था आयुवच्द, अब सीखना नहीं है, सिर्फ मेरी चिकित्सा कर दें। मैं ठीक हो जाऊं तो अपने घर वापस लौटूं। उस वैद्य ने उससे कहा,' तू किसी विशेष वृक्ष के नीचे सोता हुआ तो नहीं आया?'

'मुझे मेरे गुरु ने आज्ञा दी थी कि तू बबूल के वृक्ष के नीचे सोता हुआ जाना।'

वह वैद्य हंसा। उसने कहा,' तू कुछ मत कर। तू अब नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट जा।'

वह नीम के वृक्ष के नीचे सोता हुआ वापस लौट गया। वह जैसा स्वस्थ चला था, वैसा स्वस्थ लुकमान के पास पहुंच गया।

लुकमान ने पूछा, 'तू जिन्दा लौट आया? तब आयुवच्द में जरूर कोई रा ज है।'

उसने कहा, 'लेकिन मैंने कोई चिकित्सा नहीं की।

उसने कहा — इसका कोई सवाल नहीं है। क्योंकि मैंने तुझे जिस वृक्ष के नीचे सोते हुए भेजा था, तू जिन्दा लौट नहीं सकता था। तू लौटा कैसे? क्या किसी और वृक्ष के नीचे सोता हुआ लौटा?'

उसने कहा, 'मुझे आज्ञा दी कि अब बबूलभर से बचूं और नीम के नीचे सोता हुआ लौट आऊं।' तो लुकमान ने कहा कि वे भी जानते हैं।

असल में बबूल सक-अप करता है इनर्जी को। आपकी जो इनर्जी है, आपकी जो प्राण ऊर्जा है, उसे बबूल पीता है। बबूल के नीचे भूलकर मत सोना। और अगर बबूल की दातुन की जाती रही है तो उसका कुल कारण इतना है कि बबूल की दातुन में सर्वाधिक जीवन इनर्जी होती है, वह आपके दांतों को फायदा पहुंचा देती है, क्योंकि वह पाता रहता है। जो भी निकलेगा पास से वह उसकी इनर्जी पी लेता है। नीम आपकी इनर्जी नहीं पीती है, बल्कि अपनी इनर्जी आपको दे देती है, अपनी ऊर्जा आप में उड़ेल देती है।

163

□

महावीर-वाणी भाग : 1

लेकिन पीपल के वृक्ष के नीचे भी मत सोना। क्योंकि पीपल का वृक्ष इतनी ज्यादा इनर्जी उड़ेल देता है कि उसकी वजह से आप बीमार पड़ जाएंगे। पीपल का वृक्ष सर्वाधिक शक्ति देनेवाला वृक्ष है। इस लिए यह हैरानी की बात नहीं है कि पीपल का वृक्ष बोधि-वृक्ष बन गया, उसके नीचे लोगों को बुद्धत्व मिला। उसका कारण है कि वह सर्वाधिक शक्ति दे पाता है। वह अपने चारों ओर से शक्ति आप पर लुटा देता है। लेकिन साधारण आदमी उतनी शक्ति नहीं झेल पाएगा। सिर्फ पीपल अकेला वृक्ष है सारी पृथ्वी की वनस्पतियों में जो रात में भी और दिन में भी पूरे समय शक्ति दे रहा है। इसलिए उसको देवता कहा जाने लगा। उसका और कोई कारण नहीं है। सिर्फ देवता ही हो सकता है जो ले न और देता ही चला जाए। लेता नहीं, लेता ही नहीं, देता ही चला जाता है।

यह जो आपके भीतर प्राण-ऊर्जा है, इस प्राण-ऊर्जा को यही आप हैं। तो तप का पहला सूत्र आपसे कहता हूं इस शरीर से अपना तादात्त्मय छोड़ें। यह मानना छोड़ें कि मैं यह शरीर के जो दिखाई पड़ता है, जो छुआ जाता है। मैं यह शरीर हूं, जिसमें भोजन जाता है। मैं यह शरीर हूं जो पानी पीता है, जिसे भूख लगती है, जो थक जाता है, जो रात सोता है और सुबह उठता है। 'मैं यह शरीर हूं' इस सूत्र को तोड़ डालें। इस संबंध को छोड़ दें तो ही तप के जगत में प्रवेश हो सकेगा। यही भोग है। सारा भोग इसी से फैलता है। यह तादात्त्मय, यह आइडैंटिटी, यह इस भौतिक शरीर से स्वयं को एक मान लेने की भ्रांति आपके जीवन का भोग है। फिर इससे सब भोग पैदा होते हैं। जिस आदमी ने अपने को भौतिक शरीर समझा, वह दूसरे भौतिक शरीर को भोगने को आतुर हो जाता है। इससे सारी कामवासना पैदा होती है। जिस व्यक्ति ने अपने को यह भौतिक शरीर समझा वह भोजन में बहुत रसातुर हो जाता है। क्योंकि यह शरीर भोजन से ही निर्मित होता

है। जिस व्यक्ति ने इस शरीर को अपना शरीर समझा वह आदमी सब तरह की इच्निदरयों के हाथ में पड़ जाता है। क्योंकि वे सब इच्निदरयां इस शरीर के परिपोषण के मार्ग हैं।

पहला सूत्र, तप का — यह शरीर मैं नहीं हूं। इस तादाच्तमय को तोड़ें। इस तादाच्तमय को कैसे तोड़ेंगे, यह हम कल बात करेंगे। इस तादाच्तमय को कैसे तोड़ेंगे? तो महावीर ने छह उपाय कहे हैं, वह हम बात करेंगे। लेकिन इस तादाच्तमय को तोड़ना है, यह संकल्प अनिवार्य है। इस संकल्प के बिना गति नहीं है। और संकल्प से ही तादाच्तमय टूट जाता है क्योंकि संकल्प से ही निर्मित है। यह जन्मों-जन्मों के संकल्प का ही परिणाम है कि मैं यह शरीर हूं।

आप चकित होंगे जानकर — आपने पुरानी कहानियां पढ़ी हैं, बच्चों की कहानियों में सब जगह उल्लेख है। अब नयी कहानियों में बन्द हो गया है क्योंकि कोई कारण नहीं मिलते थे। पुरानी कहानियां कहती हैं कि कोई सम्राट है, उसका प्राण किसी तोते में बन्द है। अगर उस तोते को मार डालो तो सम्राट मर जाएगा। यह बच्चों के लिए ठीक है। हम समझते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है। लेकिन आप हैरान होंगे, यह सम्भव है। वैज्ञानिक रूप से सम्भव है। और यह कहानी नहीं है, इसके उपयोग किए जाते रहे हैं। अगर एक सम्राट को बचाना है मृत्यु से तो उसे गहरे सम्मोहन में ले जाकर यह भाव उसको जतलाना काफी है, बार-बार दोहराना उसके अन्तरतम में कि तेरा प्राण तेरे इस शरीर में नहीं, इस सामने बैठे तोते के शरीर में है। यह भरोसा उसका पक्का हो जाए, यह संकल्प गहरा हो जाए तो वह युद्ध के मैदान पर निर्भय चला जाएगा, और वह जानता है कि उसे कोई भी नहीं मार सकता। उसके प्राण तो तोते में बन्द हैं। और जब वह जानता है कि उसे कोई नहीं मार सकता तो इस पृथ्वी पर मारने का उपाय नहीं, यह पक्का ख्याल। लेकिन अगर उस सम्राट के सामने आप उसके तोते की गर्दन मरोड़ दें तो वह उसी वक्त मर जाएगा। क्योंकि खयाल ही सारा जीवन है, विचार जीवन है, संकल्प जीवन है।

सम्मोहन ने इस पर बहुत प्रयोग किए हैं और यह सिद्ध हो गया है कि यह बात सच है। आपको कहा जाए सम्मोहित करके कि यह कागज आपके सामने रखा है, अगर हम इसे फाड़ देंगे तो आप बीमार पड़ जाओगे, बिस्तर से न उठ सकोगे। इससे आपको

164

□

तप ः ऊर्जा-शरीर का अनुभव

सम्मोहित कर दिया जाए, कोई तीस दिन लगेंगे, तीस सिटिंग लेने पड़ेंगे — तीस दिन पच्नदरह-पच्नदरह मिनट आपको बेहोश करके कहना पड़ेगा कि आपकी प्राण-ऊर्जा इस कागज में है। और जिस दिन हम इसको फाड़ेंगे, तुम बिस्तर पर पड़ जाओगे, उठ न सकोगे। तीसवें दिन आपको होशपूर्वक आप बैठें, वह कागज फाड़ दिया जाए, आ प वहीं गिर जाएंगे, लकवा खा गए। उठ नहीं सकेंगे।

क्या हुआ? संकल्प गहन हो गया। संकल्प ही सत्य बन जाता है। यह हमा रा संकल्प है जन्मों-जन्मों का कि यह शरीर मैं हूं। यह संकल्प, वैसे ही जैसे कागज मैं हूं या तोता मैं हूं। इसमें कोई फर्क नहीं है। यह एक ही बात है। इस संकल्प को तोड़े बिना तप की यात्रा नहीं होगी। इस संकल्प के साथ भोग की यात्रा होगी। यह संकल्प हमने किया ही इसलिए है कि हम भोग की यात्रा कर सकें। अगर यह संकल्प हम न करें तो भोग की यात्रा नहीं हो सकेगी।

अगर मुझे यह पता हो कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो इस हाथ में कुछ रस न रह गया कि इस हाथ से मैं किसी सुन्दर शरीर को छुऊं। यह हाथ मैं हूं ही नहीं। यह तो ऐसा ही हुआ जैसा एक डंडा हाथ में ले लें और उस डंडे से किसी का शरीर छुऊं, तो कोई मजा न आए। क्योंकि डंडे से क्या मतलब है? हाथ से छूना चाहिए। लेकिन तपस्वी का हाथ भी डंडे की भांति हो जाता है। जैसे वह संकल्प को खींच लेता है भीतर कि यह हाथ मैं नहीं हूं, हाथ डंडा हो गया। अब इस हाथ से

किसी का सुन्दर चेहरा छुओ कि न छुओ, यह डंडे से छूने जैसा होगा। इसका कोई मूल्य न रहा। इसका कोई अर्थ न रहा। भोग की सीमा गिरनी और टूटनी और सिकुड़नी शुरू हो जाएगी।

भोग का सूत्र है — यह शरीर मैं हूं। तप का सूत्र है — यह शरीर मैं नहीं हूं। लेकिन भोग का सूत्र पाजिटिव है — यह शरीर मैं हूं। और अगर तप का इतना ही सूत्र है कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो तप हार जाएगा, भोग जीत जाएगा। क्योंकि तप का सूत्र निगेटिव है। तप का सूत्र नकारात्मक है कि यह मैं नहीं हूं। नकार में आप खड़े नहीं हो सकते। शून्य में खड़े नहीं हो सकते। खड़े होने के लिए जगह चाहिए पाजिटिव। जब आप कहते हैं — 'यह शरीर मैं हूं', तब कुछ पकड़ में आता है। जब आप कहते हैं —'यह शरीर मैं नहीं हूं', तब कुछ पकड़ में आता नहीं। इसलिए तप का दूसरा सूत्र है कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं। यह आधा हुआ, पहला हुआ कि यह शरीर मैं नहीं हूं, तत्काल दूसरा सूत्र इसके पीछे खड़ा होना चाहिए कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं, इनर्जी बाडी हूं। प्राण-शरीर हूं। अगर यह दूसरा सूत्र खड़ा न हो तो आप सोचते रहेंगे कि यह शरीर मैं नहीं हूं और इसी शरीर में जीते रहेंगे। लोग रोज सुबह बैठकर कहते हैं कि यह शरीर मैं नहीं हूं, यह शरीर तो पदार्थ है। और दिनभर उनका व्यवहार, यही शरीर है। इतना काफी नहीं है। किसी पाजिटिव विल को, किसी विधायक संकल्प को नकारात्मक संकल्प से नहीं तोड़ा जा सकता। उससे भी ज्यादा विधायक संकल्प चाहिए। यह शरीर मैं नहीं हूं, यह ठीक है। लेकिन आधा ठीक है। मैं प्राण-शरीर हूं, इससे पूरा सत्य बनेगा।

तो दो काम करें। इस शरीर से तादात्तमय छोड़ें और प्राण-ऊर्जा के शरीर से तादात्तमय स्थापित करें — बी आइडैंटिफाइड विद इट। मैं यह नहीं हूं और मैं यह हूं, और जोर पाजिटिव पर रहे। इम्फैसिस इस बात पर रहे कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं। ऊर्जा-शरीर हूं, इस पर जोर रहे — तो मैं यह भौतिक शरीर नहीं हूं, यह उसका परिणाम मात्र होगा, छाया मात्रा होगा। अगर आपका जोर इस बात पर रहा कि यह शरीर मैं नहीं हूं तो गलती हो जाएगी। क्योंकि वह मैं जो शरीर हूं वह छाया नहीं बन सकता, वह मूल है। उसे मूल में रखना पड़ेगा। इसलिए मैंने आपको समझाया, क्योंकि समझाने में पहले यही समझाना जरूरी है कि यह शरीर मैं नहीं हूं। लेकिन जब आप संकल्प करें तो संकल्प पर जोर दूसरे सूत्र पर रहे, अर्थात दूसरा सूत्र संकल्प में पहला सूत्र रहे और पहला सूत्र संकल्प में दूसरा सूत्र रहे। जोर कि मैं ऊर्जा-शरीर हूं, इसलिए मैंने इतनी ऊर्जा शरीर की आ पसे बात की कि ताकि आपके खयाल में आ जाए और यह भौतिक शरीर मैं नहीं हूं, यह तप की भूमिका है। कल से हम तप के अंगों पर चर्चा करेंगे।

महावीर ने तप के दो रूप—आंतरिक तप अंतर तप और बाह्य तप कहे हैं। अंतर तम में उन्होंने छह हिस्से किए हैं, छह सूत्र और बाह्य तप में भी छह हिस्से किए हैं। कल हम बाह्य तप से बात शुरू करेंगे। फिर अंतर तप से। और अगर तप की प्रक्रिया खयाल में आ जाए, संकल्प में चली जाए तो जीवन उस यात्रा पर निकल जाता है जिस यात्रा पर निकले बिना अमृत को कोई अनुभव नहीं है। हम जहां हैं वहां बार-बार मृत्यु का ही अनुभव होगा। क्योंकि जो हम नहीं हैं उससे हमने अपने को जोड़ रखा है। हम बार-बार टूटेंगे, मिटेंगे, नष्ट होंगे और जितना टूटेंगे, जितना मिटेंगे उतना ही उसी से अपने को बार-बार जोड़ते चले जाएंगे जो हम नहीं हैं। जो मैं नहीं हूं, उससे अपने को जोड़ना, मृत्यु के द्वार खोलना है, जो मैं हूं उससे अपने को जोड़ना, अमृत के द्वार खोलना है। तप अमृत के द्वार की सीढ़ी है। बारह सीढ़ियां हैं। कल से हम उनकी बात शुरु करेंगे।

आज के लिए इतना ही।

बैठेंगे पांच मिनट, ध्वनि करेंगे संन्यासी, उसमें सम्मिलित हों...।

165

अनशन : मध्य के क्षण का अनुभव

दसवां प्रवचन

दिनांक 27 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला, पाटकर हाल, बम्बई

167

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

168

होगी। और हम अपने बाहर खड़े हैं। हम वहां खड़े हैं जहां हमें नहीं होना चाहिए; हम वहां नहीं खड़े हैं जहां हमें होना चाहिए। हम अपने को ही छोड़कर, अपने से ही च्युत होकर, अपने से ही दूर खड़े हैं। हम दूसरों से अजनबी हैं—ऐसा नहीं, हम अपने से अजनबी हैं—च्सटरेंजर्स टु अवरसेच्लवज। दूसरों का तो शायद हमें थोड़ा बहुत पता भी हो, अपना उतना भी पता नहीं है। तप तो विभाजित नहीं हो सकता। लेकिन हम विभाजित मनुष्य हैं। हम अपने से ही विभाजित हो गए हैं, इस लिए हमारी समझ के बाहर होगा अविभाज्य तप।
महावीर उसे दो हिस्सों में बांटते हैं, हमारे कारण। इस बात को ठीक से पहले समझ लें। हमारे कारण ही दो हिस्सों में बांटते हैं, अन्यथा महावीर जैसी चेतना को बाहर और भीतर का कोई अन्तर नहीं रह जाता। जहां तक अन्तर है वहां तक तो महावीर जैसी चेतना का जन्म नहीं होता। जहां भेद है, जहां फासले हैं, जहां खंड हैं, वहां तक तो महावीर की अखंड चेतना जन्मती नहीं। महावीर तो वहां हैं जहां सब अखंड हो जाता है। जहां बाहर भीतर का ही एक छोर हो जाता है और जहां भीतर भी बाहर का ही एक छोर हो जाता है। जहां भीतर और बाहर एक ही लहर के दो अंग हो जाते हैं; जहां भीतर और बाहर दो वस्तुएं नहीं, किसी एक ही वस्तु के दो पहलू हो जाते हैं, इसलिए यह विभाजन हमारे लिए हैं।

महावीर ने बाच्ह्य तप और अन्तर तप, दो हिस्से किए हैं। उचित होता, ठीक होता कि अन्तर तप को महावीर पहले रखते, क्योंकि अन्तर ही पहले है। वह जो आन्तरिक है, वही प्राथमिक है। लेकिन महा वीर ने अन्तर तप को पहले नहीं रखा है, पहले रखा है बाच्ह्य तप को। क्योंकि महावीर दो ढंग से बोल सकते हैं, और इस पृथ्वी पर दो ढंग से बोलनेवाले लोग हुए हैं। एक वे लोग जो वहां से बोलते हैं जहां वे खड़े हैं। एक वे लोग जो वहां से बोलते हैं जहां सुननेवाला खड़ा है। महावीर की करुणा उन्हें कहती है कि वे वहीं से बोलें जहां सुननेवाला खड़ा है। महावीर के लिए आन्तरिक प्रथम हैं, लेकिन सुननेवाले के लिए आन्तरिक द्वितीय है, बाच्ह्य प्रथम है।

तो महावीर जब बाच्ह्य तप को पहला रखते हैं तो केवल इस कारण कि हम बाहर हैं। इससे सुविधा तो होती है समझने में, लेकिन आचरण करने में असुविधा भी हो जाती है। सभी सुविधाओं के साथ जुड़ी हुई असुविधाएं हैं। महावीर ने चूंकि बाच्ह्य तप को पहले रखा है, इसलिए महावीर के अनुयायियों ने बाच्ह्य तप को प्राथमिक समझा । वहां भूल हुई है। और तब बाच्ह्य तप को करने में ही

लगे रहने की लम्बी धारा चली। और आज करीब-करीब स्थि ति ऐसी आ गयी है कि बाच्ह्य तप ही पूरा नहीं हो पाता तो आन्तरिक तप तक जाने का सवाल नहीं उठता। बाच्ह्य तप ही जीवन को डुबा लेता है। और बाच्ह्य तप कभी पूरा नहीं होगा जब तक कि आन्तरिक तप पूरा न हो। इसे भी ध्यान में ले लें।

अन्तर और बाच्ह्य एक ही चीज है। इसलिए कोई सोचता हो कि बाच्ह्य तप पहले पूरा हो जाए तब मैं अन्तर तप में प्रवेश करूंगा, तो बाच्ह्य तप कभी पूरा नहीं होगा। क्योंकि बाच्ह्य तप स्वयं आधा हिस्सा है, वह पूरा नहीं हो सकता। जैन साधना जहां भटक गयी वह यही जगह है, बाच्ह्य तप पहले पूरा हो जाए तो फिर आन्तरिक तप में उतरेंगे। बाच्ह्य तप कभी पूरा नहीं हो सकता, क्योंकि बाच्ह्य जो है वह अधूरा ही है। वह तो पूरा तभी होगा जब आन्तरिक तप भी पूरा हो। इसका यह अर्थ हुआ कि अगर ये दोनों तप साथ-साथ चलें तो ही पूरा हो पाते हैं, अन्यथा पूरा नहीं हो पाते हैं। लेकिन ि वभाजन ने हमें ऐसा समझा दिया कि पहले हम बाहर को तो पूरा कर लें, हम बाहर को तो साध लें, फिर हम भीतर की यात्रा करेंगे। अभी जब बाहर का ही नहीं सध रहा है तो भीतर की यात्रा कैसे हो सकती है। ध्यान रहे, तप एक ही है। बाच्ह्य और भीतर सिर्फ काम चलाऊ विभाजन हैं।

अगर कोई अपने पैरों को स्वस्थ करना चाहे और सोचे कि पहले पैर स्वस्थ हो जाएं, फिर सिर स्वस्थ कर लेंगे, तो वह गलती में है। शरीर एक है, और शरीर का स्वास्थ्य पूरा होता है। अभी तक वैज्ञानिक सोचते थे कि शरीर के अंग बीमार पड़ते हैं, लोकल होती है बीमारी—हाथ बीमार होता है, पैर बीमार होता है। लेकिन अब धा रणा बदलती चली जा रही है। अब वैज्ञानिक कहते हैं—जब एक अंग बीमार होता है तो वह इसलिए बीमार होता है कि पूरा व्यक्ति बीमार हो गया होता है। हां, एक अंग से बीमारी प्रगट होती है लेकिन वह एक अंग की नहीं होती। मनुष्य का पूरा व्यच्कितत्व ही बीमार हो जाता है। यद्यपि बीमारी उस अंग से प्रगट होती है जो सर्वाधिक कमजोर है। लेकिन व्यक्तित्व पूरा बीमार हो जाता है।

इसलिए हैपोक्रेटीज ने, जिसने कि पश्चिम में चिकित्सा को जन्म दिया , उसने कहा था—ट्रीट दि डिसीज, बीमारी का इलाज करो। लेकिन अभी पश्चिम के अनेक मेडिकल कालेजिस में वह तख्ती हटा दी गयी है और वहां लिखा हुआ है—ट्रीट दि पेशेंट। बीमारी का इलाज मत करो, बीमार का इलाज करो, क्योंकि बीमारी लोकलाइज्ड होती है, बीमार तो फैला हुआ होता है। असली सवाल नहीं है बीमारी, असली सवाल है बीमार, पूरा व्यक्तित्व।

अन्तर और बाच्हय पूरे व्यक्तित्व के हिस्से हैं। इन्हें साइमलटेनियसली, युगपत प्रारम्भ करना पड़ेगा। विवेचन जब हम करेंगे तो विवेचन हमेशा वन डायमेंशनल होता है। मैं पहले एक अंग की बात करूंगा, ि फर दूसरे की, फिर तीसरे की, फिर चौथे की। स्वभावतः चारों अंगों की बात एक साथ कैसे की जा सकती है। भाषा वन डायमेंशनल है। एक रेखा में मुझे बात करनी पड़ेगी। पहले मैं आपके सिर की बात करूंगा, फिर आपके ह्रदय की बात करूंगा, ि फर आपके पैर की बात करूंगा। तीनों की बात एक साथ नहीं कर सकता हूं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि तीनों एक साथ नहीं हैं। वह तीनों एक साथ हैं — आपका सिर, आपका ह्रदय, आपके पैर; वह सब युगपत, एक साथ हैं; अलग-अलग नहीं हैं। चर्चा करने में बांट लेना पड़ता है लेकिन अस्तित्व में वे इकट्ठे हैं।

तो यह जो चर्चा मैं करूंगा बारह हिस्सों की—छह बाच्हय और छह आन्त रिक, चर्चा के लिए क्रम होगा—एक, दो, तीन, चार; लेकिन जिन्हें साधना है, उनके लिए क्रम नहीं होगा। एक साथ उन्हें साधना होगा, तभी पूर्णता उपलब्ध होती है, अन्यथा पूर्णता उपलब्ध नहीं होती। भाषा से बड़ी भूलें पैदा होती हैं, क्योंकि भाषा के पास एक सा थ बोलने का कोई उपाय नहीं है।

मैं यहां हूं; अगर मैं बाहर जाकर ब्यौरा दूं कि मेरे सामने की पंच्कित में कितने लोग बैठे थे तो मैं पहले, पहले का नाम लूंगा, फिर

170

अनशन : मध्य के क्षण का अनुभव

दूसरे का, फिर तीसरे का, फिर चौथे का। मेरे बोलने में क्रम होगा। लेकिन यहां जो लोग बैठे हैं उनके बैठने में क्रम नहीं है, वे एक साथ ही यहां मौजूद हैं। अस्तित्व इकट्ठा है, एक साथ है। भाषा क्रम बना देती है। उसमें कोई आगे हो जाता है, कोई पीछे हो जाता है। लेकिन अस्तित्व में कोई आगे पीछे नहीं होता है। इतनी बात खयाल में ले लें, फिर हम महावीर के बाच्हय तप से शुरू करें।

बाच्हय तप में महावीर ने पहला तप कहा है—अनशन। अनशन के संबंध में जो भी समझा जाता है वह गलत है। अनशन के संबंध में जो छिपा हुआ सूत्र है, जो एसोटेरिक है वह मैं आपसे कहना चाहता हूं। उसके बिना अनशन का कोई अर्थ नहीं है। जो गुच्हय अनशन की प्रक्रिया है वह मैं आपसे कहना चाहता हूं, उसे समझकर आपको नयी दिशा का बोध होगा।

मनुष्य के शरीर में दोहरे यंत्र हैं, डबल मैकेनिज्म हैं और दोहरा यंत्र इसलिए है ताकि इमजेच्सी में, संकट के किसी क्षण में एक यंत्र काम न करे तो दूसरा कर सके। एक यंत्र तो जिससे हम परिचित हैं, हमारा शरीर। आप भोजन करते हैं, शरीर भोजन को पचाता है, खून बनाता है, हड्डियां बनाता है, मांस-मज्जा बनाता है। ये साधारण यंत्र हैं। लेकिन कभी कोई आदमी जंगल में भटक जाए या सागर में नाव डूब जाए और कई दिनों तक किनारा न मिले तो भोजन नहीं मिलेगा। तब शरीर के पास एक इमजेच्सी अरेंजमेंट है, एक संकटकालीन व्यवस्था है, तब शरीर को भोजन तो नहीं मिलेगा लेकिन भोजन की जरूरत तो जारी रहेगी। क्योंकि श्वास भी लेना हो, हाथ भी हिलाना हो, जीना भी हो तो भोजन की जरूरत है। इच्धन की जरूरत है। आपको इच्धन न मिले तो आपके शरीर के पास एक ऐसी व्यवस्था चाहिए जो संकट की घड़ी में आपके शरीर के भीतर इकट्ठा जो इच्धन है उसको ही उपयोग में लाने लगे। शरीर के पास एक दूसरा इनर-मैकेनिज्म है। अगर आप सात दिन भूखे रहें तो शरीर अपने को ही पचाना शुरू कर देता है। भोजन आपको नहीं ले जाना पड़ता, आपके भीतर की चर्बी ही भोजन बननी शुरू हो जाती है। इसलिए उपवास में आपका एक पौंड वजन रोज गिरता चला जाएगा। वह एक पौंड आपकी ही चर्बी, आप पचा गए। कोई नब्बे दिन तक साधारण स्वस्थ आदमी मरेगा नहीं क्योंकि इतना

रिजर्वायर, इतना संग्रहीत तत्त्तव शरीर के पास है कि कम- से-कम तीन महीने तक वह अपने को बिना भोजन के जिला सकता है। ये दो हिस्से हैं शरीर के—एक शरीर की व्यवस्था सामान्य है, दैनंदिन है। असमय के लिए, संकट की घड़ी के लिए एक और व्यवस्था है, जब शरीर बाहर से भोजन न पा सके तो अपने भीतर संग्रहीत भोजन को पचाना शुरू कर दे।
अनशन की प्रक्रिया का राज यह है कि जब शरीर की एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था पर संक्रमण होता है, आप बदलते हैं तब बीच में कुछ क्षणों के लिए आप वहां पहुंच जाते हैं जहां शरीर नहीं होता। वही उसका सीक्रेट है। जब भी आप एक चीज से दूसरे पर बदलाहट करते हैं, एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर जाते हैं तो एक क्षण ऐसा होता है जब आप किसी भी सीढ़ी पर नहीं होते हैं। जब आप एक स्थिति से दूसरी स्थिति में छलांग लगाते हैं तो बीच में एक गैप, अंतराल हो जाता है जब आप किसी भी स्थिति में नहीं होते हैं, फिर भी होते हैं।
शरीर की एक व्यवस्था है सामान्य भोजन की, अगर यह व्यवस्था बन्द कर दी जाए तो अचानक आपको दूसरी व्यवस्था पर रूपान्तरित होना पड़ता है, और इस बीच कुछ क्षण हैं जब आप आत्म-स्थिति में होते हैं। उन्हीं क्षणों को पकड़ना अनशन का उपयोग है। इसलिए जो आदमी अनशन का अभ्यास करेगा वह अनशन का फायदा न उठा पाएगा। खयाल रखें जो अनशन का अभ्यास करेगा वह अनशन का फायदा न उठा पाएगा। अनशन सडन प्रयोग है, आकस्मिक, अचानक। जितना अचानक होगा, जितना आकस्मिक होगा, उतना ही अंतराल का बोध होगा। अगर आप अभ्यासी हैं तो आप इतने कुशल हो जाएंगे, एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने में, कि बीच का अन्तराल आपको पता ही नहीं चलेगा। इसलिए अभ्यासियों को अनशन से कोई लाभ नहीं होता। और अभ्यास करने की जो प्रक्रिया है वह यही है कि आपको बीच का अंतराल पता न चले। एक आदमी धीरे-धीरे अभ्यास करता

171

रहे तो वह इतना कुशल हो जाता है कि कब उसने स्थिति बदल ली, उसे पता नहीं चलता। हम रोज स्थिति बदलते हैं लेकिन अभ्यास के कारण पता नहीं चलता।
रात आप सोते हैं—जागने के लिए शरीर दूसरे मैकेनिज्म का उपयोग करता है, सोने के लिए दूसरे। दोनों के मैकेनिज्म अलग हैं, दोनों का यंत्र अलग है। आप उसी यंत्र से नहीं जागते जिससे आ प सोते हैं। इसीलिए तो अगर आपके जागने का यंत्र बहुत ज्यादा सक्रिय हो तो आप सो नहीं पाते। उसका और कोई कारण नहीं है, आप दूसरी व्यवस्था में प्रवेश नहीं कर पाते। पहली ही व्यवस्था में अटके रह जाते हैं। अगर आप दुकान, धंधे और काम की बा त सोचे चले जा रहे हैं तो आपके जागने का यंत्र काम करता चला जाता है, जब तक वह काम करता है तब तक चेतना उससे नहीं हट सकती। चेतना तभी हटेगी, जब वहां आपका काम बन्द हो जाए तो तत्काल शिफ्फट हो जाएगी। चेतना दूसरे यंत्र पर चली जाएगी, जो निद्रा का है। लेकिन हमें इतना अभ्यास है कि हमें पता नहीं चलता बीच के गैप का। वह जो जागने और नींद के बीच में जो क्षण आता है वह भी वही है जो भोजन छोड़ने और उपवास के बीच में आता है। इसलिए तो आपको नींद में भोजन की जरूरत नहीं पड़ती। आप दस घण्टे सोए रहें तो भी भोजन की जरूरत नहीं पड़ती है। दस घण्टे जागें तो भोजन की जरूरत पड़ती है।
आपको पता है, ध्रुव प्रदेश में पोलर बियर होता है, भालू होता है साइबेरिया में। छह महीने जब बर्फ भयंकर रूप से पड़ती है तो कोई भोजन नहीं मिलता। वह सो जाता है। बर्फ के नीचे दबकर सो जाता है। वह उसकी ट्रिक है, वह उसकी तरकीब है। क्योंकि नींद में तो भूख नहीं लगती। वह छह महीने सोया रहता है। छह महीने के बाद वह तभी जगता है जब भोजन फिर मिलने की सुविधा शुरू हो जाती है। आपके भीतर जो निद्रा का यंत्र है वहां आपको भोजन की कोई जरूरत नहीं,

क्योंकि वह यंत्र वही यंत्र है जो उपवास में प्रगट होता है। वह आपका इमजेन्सी मेजरमेंट है, खतरे की स्थिति में उसका उपयोग करना होता है। इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि अगर बहुत खतरा पैदा हो जाए तो आदमी नींद में चला जाता है। यह आप जानकर हैरान होंगे, अगर इतना खतरा पैदा हो जाए कि आप अपने मस्तिष्क से उसका मुकाबला न कर सकें तो आप नींद में चले जाएंगे। आप बेहोश हो जाते हैं, बहुत दुख हो जाए, तो। उसका और कोई कारण नहीं है, इतना दुख हो जा ता है कि आपका जाग्रत मस्तिष्क उसको सहने में असमर्थ है तो तत्काल शिफ्ट हो जाता है और गहरी तंद्रा में चला जाता है, बेहोश हो जाता है। बेहोशी दुख से बचने का उपाय है।

हम अकसर कहते हैं—मुझे बड़ा असह्य दुख है। लेकिन ध्यान रहे, असह्य दुख कभी नहीं होता। असह्य होने के पहले आप बेहोश हो जाते हैं। जब तक सहनीय होता है तभी तक आप होश में आते हैं। जैसे ही असहनीय हो जाता है, आप बेहोश हो जाते हैं। इसलिए असह्य दुख को कोई आदमी कभी नहीं भोग पाता। भोग ही नहीं सकता। इंतजाम ऐसा है कि असह्य दुख होने के पहले आप बेहोश हो जाएं। इसलिए मरने के पहले अधिक लोग बेहोश हो जा ते हैं। क्योंकि मरने के पहले जिस यंत्र से आप जी रहे थे, उसकी अब कोई जरूरत नहीं रह जाती। चेतना शिफ्ट हो जाती है उस यंत्र पर, जो इस यंत्र के पीछे छिपा है। मरने से पहले आप दूसरे यंत्र पर उतर जाते हैं।

मनुष्य के शरीर में दोहरा शरीर है। एक शरीर है जो दैनंदिन काम का है — जागने का, उठने का, बैठने का, बात करने का, सोचने का, व्यवहार का; एक और यंत्र है छिपा हुआ भीतर गुह्य, जो संकटकालीन है। अनशन का प्रयोग उस संकटकालीन यंत्र में प्रवेश का है। इस तरह के बहुत से प्रयोग हैं जिनसे मध्य का गैप, मध्य का जो अंतराल है वह उपलब्ध होता है। सूफियों ने अनशन का उपयोग नहीं किया, सूफियों ने जागने का उपयोग किया है। एक ही बा त है, उसमें फर्क नहीं है। प्रयोग अलग हैं, परिणाम एक हैं।

172

अनशन : मध्य के क्षण का अनुभव

सूफियों ने रात में जागने का प्रयोग किया है — सोओ मत, जागे रहो। इतने जागे रहो, जब नींद पकड़े तो मत नींद में जाओ, जागे ही रहो, जागे ही रहो, जागे ही रहो। अगर जागने की चेष्टा जारी रही, और जागने का यंत्र थक गया और बंद हो गया और एक क्षण को भी आप उस हालत में रह गए जब जागना भी न रहा और नींद भी न रही, तो आप बीच के अंतराल में उतर जाएंगे। इसलिए सूफियों ने नाइट विजिलेंस को, रात्रि जागरण को बड़ा मूल्य दिया। महा वीर ने उसी प्रयोग को अनशन के द्वारा किया है। वही प्रयोग है।

तंत्र का एक अदभुत ग्रन्थ है, विज्ञान भैरव। उसमें शंकर ने पार्वती को ऐसे सैकड़ों प्रयोग कहे हैं। हर प्रयोग दो पंक्तियों का है। हर प्रयोग का परिणाम वही है कि बीच का गैप आ जाए। शंकर कहते हैं — श्वास भीतर जाती है। श्वास बाहर जाती है पार्वती, तू दोनों के बीच में ठहर जाना तो तू स्वयं को जान लेगी। जब श्वास बाहर भी न जा रही हो और भीतर भी न आ रही हो, तब तू ठहर जाना, बीच में, दोनों के। किसी से प्रेम होता है, किसी से घृणा होती है, वहां ठहर जाना जब प्रेम भी न होता और घृणा भी नहीं होती; दोनों के बीच में ठहर जाना। तू स्वयं को उपलब्ध हो जाएगी। दुख होता है, सुख होता है; तू वहां ठहर जाना जहां न दुख है, न सुख; बीच में, मध्य में और तू ज्ञान को उपलब्ध हो जाएगी।

अनशन उसी का एक व्यवस्थित प्रयोग है। और महावीर ने अनशन क्यों चुना? मैं मानता हूं दो श्वासों के बीच में ठहरना बहुत कठिन मामला है। क्योंकि श्वास जो है वह नानवालेंटरी है, वह आपकी इच्छा से नहीं चलती, वह आपकी बिना इच्छा के चलती रहती है। आपकी कोई जरूरत नहीं होती है उसके लिए। आप रात सोए रहते हैं, तब भी चलती रहती है, भोजन नहीं चल सकता सोने में। भोजन वालेंटरी है। आप की इच्छा से रुक भी सकता है, चल भी सकता है। आप ज्यादा

भी कर सकते हैं, कम भी कर सकते हैं। आप भूखे भी रह सकते हैं तीस दिन, लेकिन बिना श्वास के नहीं रह सकते हैं। श्वास के बिना तो थोड़े-से क्षण भी रह जाना मुश्किल हो जाएगा और बिना श्वास के अगर थोड़े से क्षण भी रहे तो इतने बेचैन हो जाएंगे कि उस बेचैनी में वह जो बीच का गैप है, वह दिखाई नहीं पड़ेगा, बेचैनी ही रह जाएगी। इसलिए महावीर ने श्वास का प्रयोग नहीं कहा। महावीर ने एक वालेंटरी हिस्सा चुना, भोजन वालेंटरी हिस्सा है। नींद भी सूफियों ने जो चुना है वह भी थोड़ी कठिन है क्योंकि नींद भी नानवालेंटरी है, आप अपनी कोशिश से नहीं ला सकते। आती है तब आ जाती है। नहीं आती तो लाख उपाय करो, नहीं आती। नींद भी आपके वश में नहीं है। नींद भी आपके बाहर है, बहुत कठिन है नींद पर वश करना।

महावीर ने बहुत सरल-सा प्रयोग चुना, जिसे बहुत लोग कर सकें — भोजन। एक तो सुविधा यह है कि नब्बे दिन तक न भी करें तो कोई खतरा नहीं है। अगर नब्बे दिन तक बिना सोए रह जाएं तो पा गल हो जाएंगे। नब्बे दिन तो बहुत दूर है, नौ दिन भी अगर बिना सोए रह जाएं तो पागल हो जाएंगे। सब ब्लर्ड हो जाएगा। पता नहीं चलेगा कि जो देख रहे हैं वह सपना है या सच है। अगर नौ दिन आप न सोएं तो इस हाल में जो लोग बैठे हैं वह सच में बैठे हैं कि आप कोई सपना देख रहे हैं, आप फर्क न कर पाएंगे। ब्लर्ड हो जाएगा। नींद और जागरण ऐसा कंच्फयूज्ड हो जाएगा कि कुछ पक्का न रहेगा कि क्या हो रहा है। आप जो सुन रहे हैं वह वस्तुतः बोला जा रहा है, या सिर्फ आप सुन रहे हैं, यह तय करना मुश्किल हो जाएगा। और खतरनाक भी है। क्योंकि विक्षिप्त होने का पूरा डर है।

आज माओ के अनुयायी चीन में जो सबसे बड़ी पीड़ा दे रहे हैं अपने से विरोधियों को, वह, उनको न सोने देने की है। भूखा मारकर आप ज्यादा परेशान नहीं कर सकते क्योंकि सात आठ दिन के बाद भूख बन्द हो जाती है। शरीर दूसरे यंत्र पर चला जाता है। सात आठ दिन के बाद भूखमहावीर-वाणी भाग : 1

से भोजन पाना शुरू कर देता है। लेकिन नींद? बहुत मुश्किल मामला है। सात दिन भी अगर आदमी को बिना सोए रख दिया जाए तो वह विक्षिप्त हो जाता है। और वल्नरेबल हो जाता है। सात दिन अगर किसी को न सोने दिया जाए तो उसकी बुद्धि इतनी ज्यादा डावांडोल हो जाती है कि उससे फिर आप कुछ भी कहें, वह मानना शुरू कर देता है। इसलिए सात या नौ दिन चीन में विरोधी को बिना सोया रखेंगे और फिर कम्युनिज्म का प्रचार उसके सामने किया जाएगा। कम्युनिज्म की किताब पढ़ी जाएगी, माओ का संदेश सुनाया जाएगा। और जब वह इस हालत में नहीं होता कि रेसिस्ट कर सके कि तुम जो कह रहे हो, वह गलत है; तर्क टूट जाता है। नींद के विकृत होने के साथ ही तर्क टूट जाता है। अब उसको मानना ही पड़ेगा, जो आप कह रहे हैं; ठीक कह रहे हैं।

नींद का प्रयोग महावीर ने नहीं किया, अनशन का प्रयोग किया। मनुष्य के हाथ में जो सर्वाधिक सुविधापूर्ण, सरलतम प्रयोग है—दो यंत्रों के बीच में ठहर जाने का, वह भोजन है। लेकिन आप अगर अभ्यास कर लें तो अर्थ नहीं रह जाएगा। ये प्रयोग आकस्मिक हैं—अचानक।

आपने भोजन नहीं लिया है, और जब आपने भोजन नहीं लिया है तब ध्यान रखें न तो भोजन का, न उपवास का—ध्यान रखें उस मध्य के बिन्दु का कि वह कब आता है। आंख बन्द कर लें और अब भीतर ध्यान रखें कि शरीर का यंत्र कब स्थिति बदलता है। तीन दिन में, चार दिन में, पांच दिन में, सात दिन में, कभी स्थिति बदली जाएगी। और जब स्थिति बदलती है तब आप बिलकुल दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं। आपको पहली दफे पता चलता है कि आप शरीर नहीं हैं—न तो वह शरीर जो अब तक काम कर रहा था और न यह शरीर जो अब काम कर रहा है। दोनों के बीच में एक क्षण का बोध भी कि मैं शरीर नहीं हूं, मनुष्य के जीवन में अमृत का द्वार खोल देता है।

लेकिन महावीर के पीछे जो परंपरा चल रही है वह अनशन का अभ्यास कर रही है। अभ्यासी है, वर्ष-वर्ष अभ्यास कर रहे हैं, जीवनभर अभ्यास कर रहे हैं। वे इतने अभ्यासी हो गए हैं — जितने अभ्या सी, उतने अंधे। अब उनको कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। जैसे आप अपने घर जिस रास्ते पर रोज-रोज आते हैं उस रास्ते पर आप अंधे होकर चलने लगते हैं, फिर आपको उस रास्ते पर कुछ दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जब कोई आदमी पहली दफा उस रास्ते पर आता है उसे सब

दिखाई पड़ता है। अगर आप कश्मीर जाएंगे तो डल झील पर आपको जितना दिखाई पड़ता है वह जो माझी आपको घुमा रहा है, उसको दिखाई नहीं पड़ता। वह अंधा हो जाता है।

अभ्यास अंधा कर देता है। इसे थोड़ा समझ लें। वह इतनी बार देख चुका है कि देखने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह बिना देखे चलाता रहता है। इसलिए जिनके साथ हम रहते हैं उनके चेहरे हमें दिखाई नहीं पड़ते—जिनके साथ हम रहते हैं उनके चेहरे हमें दिखाई नहीं पड़ते। अगर ट्रेन में आपको कोई अजनबी मिल गया है तो उसका चेहरा आपको अभी भी याद हो सकता है। लेकिन अपनी मां का या अपने पिता का चेहरा आप आंख बंद करके याद करेंगे तो ब्लर्ड हो जाएगा, याद नहीं आएगा। न याद करें तो आपको लगेगा कि मुझे मालूम है कि मेरे पिता का चेहरा कैसा है। आंख बंद करें और याद करें तो आप पाएंगे कि खो गया। नहीं मिलता कैसा है। पिता का चेहरा फिर भी दूर है, आप अपना चेहरा तो रोज आइने में देखते हैं। आंख बंद करें और याद करें, खो जाएगा। नहीं मिलेगा। आप अंधे की तरह आइने के सामने देख लेते हैं। अभ्यास पक्का है।

अभ्यास अंधा कर देता है। और जो सूक्ष्म चीजें हैं वे दिखाई नहीं पड़तीं। और यह बहुत सूक्ष्म बिन्दु है। भोजन और अनशन के बीच का जो संक्रमण है, ट्रांसमिशन है, वह बहुत सूक्ष्म और बारीक है, बहुत डेलिकेट है, बहुत नाजुक है। जरा से अभ्यास से आप उसको चूक जाएंगे, वह आपको खयाल में नहीं आएगा। इसलिए अनशन का भूलकर अभ्यास न करें। कभी अचानक उसका

174

□

नहीं लगती, भूख समाप्त हो जाती है। क्योंकि शरीर नए ढंग से भोजन पाना शुरू कर देता है, भीतर

173

अनशन : मध्य के क्षण का अनुभव

उपयोग बड़ा कीमती है, बड़ा अदभुत है। जैसे अचानक आप यहां सोए थे, इस कमरे में, और आपकी नींद खुले, और आप पाएं, आप डल झील पर हैं तो आपकी मौजूदगी जितनी सघन होगी इतनी आप यहां से यात्रा करके डल झील पर जाएं तो नहीं होगी। आप अचानक आंख खोलें और पाएं तो आप घबरा जाएंगे, चौक जाएंगे कि मैं कहां सोया था और कहां हूं, यह क्या हो गया। आप इतने कांशस होंगे, इतने सचेत होंगे, जिसका कोई हिसाब नहीं।

गुरजिएफ के पास जो लोग जाते थे साधना के लिए—यह आदमी इस पचास वषोच में बहुत कीमती आदमी था—तो गुरजिएफ यही काम करता था, लेकिन बिलकुल उल्टे ढंग से। और कोई जैन न सोच सकेगा कि गुरजिएफ और महावीर के बीच कोई भी नाता हो सकता है। आप और गुरजिएफ के पास जाते तो पहले तो वह आ पको बहुत ज्यादा खाना खिलाना शुरू करता, इतना कि आपको लगे कि मैं मर जाऊंगा। इतना खाना खिलाना शुरू करता कि आपको लगे, मैं मर जाऊंगा। वह जिद्द करता था। कई लोग तो इसलिए भाग जाते थे कि उतना खाना खाने के लिए राजी नहीं हो सकते थे। रात दो बजे तक वह खाना खिलाता। वह इतना आग्रह करता—और गुरजिएफ जैसा आदमी आपसे आग्रह करे, या महावीर आपके सामने थाली में रखते चले जाएं कुछ, तो आपको इनकार करना भी मुश्किल होगा। और गुरजिएफ था कि कहता कि आ ैर, कि और—खिलाते ही चला जाता। वह इतना ओव्हरच्फलो हो जाए भोजन, वह दस पांच दिन आपको इतना खिलाता है कि आप खिलाने के, खाने की व्यवस्था से इस बुरी तरह अरुचिकर हो जाता। ध्यान रहे, अनशन भोजन में रुचि पैदा कर सकता है। अत्याधिक भोजन अरुचि पैदा कर देता है। वह इतना खिलाता, इतना खिलाता कि आप घबरा जाते, भागने को हो जाते। कहते कि मर जाएंगे, यह क्या कर रहे हैं आप। पेट ही पेट का स्मरण रहता है चौबीस घंटे। तब

अचानक वह आपका अनशन करवा देता है। तब गैप बड़ा हो जाता है। बहुत ज्यादा खाने से एकदम न खाने पर धक्का दे देता। तो वह जो बीच की जगह थोड़ी बड़ी हो जाती, क्योंकि एकदम बहुत खाना एक अति से एकदम दूसरी अति पर धक्का दे देता। दस दिन इतना खिलाया कि आप रो रहे थे, आप हाथपैर जोड़ रहे थे, कि अब और न खिलाएं। ग्यारहवें दिन सुबह उसने कहा कि खाना बंद—गैप को बड़ा किया उसने। उस खाना बंद करने में आपको अभी तक भोजन का स्मरण था, अब भोजन एकदम बंद।

गुरजिएफ गर्म पानी में नहलाता, इतना कि आपको जलने लगे, और फिर ठंडे फव्वारे के नीचे खड़ा कर देता और कहता—हमारे कारण, बी अवेयर आफ द गैप। वह जो गर्म पानी में शरीर तप्त हो गया, हमारे कारण पसीना-पसीना हो गया, फिर एकदम ठंडे पानी में डाल दिया बर्फीले। अकसर वह ऐसा करता है कि आग की अंगीठियां जलाकर बिठा देता, बाहर बर्फ पड़ रही, पसीना-पसीना हो जाते हैं, आप चिल्लाने लगते हैं कि मर जाऊंगा, जल जाऊंगा, मुझे बाहर निकालो, मगर वह न मानता। अचानक वह दरवाजा खोलता और कहता—भागो, सामने की झील में बर्फीले में कूद जाओ, और कहता, बीच में जो संक्रमण का क्षण है, उसका ध्यान रखना, और न मालूम कितने लोगों को वह गैप दिखाई पड़ा। दिखाई पड़ेगा।

महावीर के अनशन में भी वही प्रयोग है। मध्य का बिन्दु खयाल में आ जाए तो जब एक शरीर से दूसरे शरीर पर बदलते हैं, बदलाहट करते हैं—जैसे एक नाव से कोई दूसरी नाव पर बदलाहट कर रहा हो, एक क्षण तो दोनों नाव छूट जाती हैं, एक क्षण तो वह बीच में होता है, छलांग लगायी, अभी पहली नाव से हट गया और दूसरी नाव में नहीं पहुंचा—अभी झील के ऊपर है—ठीक वैसी ही छलांग भीतर अनशन में लगती है। और इस छलांग के क्षण में अगर आप होश से भर जाएं, जाग्रत होकर देख लें तो आपको पहली बार एक क्षणभर के लिए एक जरा-सा अनुभव, एक दृष्टि, एक द्वार खुलता हुआ मालूम पड़ेगा। वही अनशन का उपयोग है। लेकिन जैन साधु है, वह अनशन का अभ्यास कर लेता है, उसे वह कभी नहीं मिलेगा। वह अभ्यास की बात नहीं है। वह

आकस्मिक प्रयोग है। अभ्यास तो उसी बात को मार डालेगा जिस बात के लिए प्रयोग है। इसलिए भूलकर अनशन का अभ्यास मत करना। आकस्मिक, अचानक, छलांग लगा लेना एक अति से दूसरी अति पर ताकि बीच का हिस्सा खयाल में आ जाए।

अगर आपको विश्राम में जाना हो तो किताबें हैं जो आपको समझाती हैं कि बस लेट जाएं, एंड जस्ट रिलेक्स और विश्राम करें। आप कहेंगे, कैसे? अगर मालूम ही होता, 'जस्ट रिलेक्स' इतना आसान होता तो हम पहले ही कर गए होते। आप कहते हैं कि लेट जाओ, रिलेक्स कर जाओ, विश्राम में चले जाओ। कैसे चले जाएं? लेकिन झेन फकीर ऐसी सलाह नहीं देते जापान में। जो आदमी नहीं सो पाता, विश्राम नहीं कर पाता, वह उससे कहते हैं — पहले, बी टैंस ऐ मच ऐ यू कैन। हाथ पैरों को खींचो, जितने मस्तिष्क को खींच सकते हो, खींचो, हाथ पैरों को जितना तनाव दे सकते हो, दो, बिलकुल पागल की तरह अपने शरीर के साथ व्यवहार करो। जितने तुम तन सकते हो, तनो। रिलेक्स भर मत होना, तनो, बी टैंस। वे कहते हैं — मस्तिष्क को जितना सिकोड़ सकते हो, माथे की रेखाएं जितनी पैदा कर सकते हो, करो। सारे अंगों को ऐसे सिकोड़ लो कि जैसे कि आखिरी क्षण आ गया, सारी शक्ति को सिकोड़कर खींच डालो, और जब एक शिखर आता है तनाव का, तब झेन फकीर कहता है — नाउ रिलेक्स, अब छोड़ दो। आप एक अति से ठीक दूसरी अति

में गिर जाते हैं। और जब आप एक अति से दूसरी अति में गिरते हैं तो बीच में वह क्षण आता है मध्य का, जहां स्वयं का पहला स्वाद मिलता है।

इसके बहुत प्रयोग हैं, लेकिन सब प्रयोग एक अति से दूसरी अति में जाने के हैं। कहीं से भी एक अति से दूसरी अति में प्रवेश कर जाओ। अगर अभ्यास हो गया तो मध्य का बिन्दु छोटा हो जाता है, इतना छोटा हो जाता है कि पता भी नहीं चलता। उसका फिर कोई बोध नहीं होता।

अनशन की कुछ और दो तीन बातें खयाल में ले लेनी चाहिए कि महावीर का जोर अनशन पर बहुत ज्यादा था। कारण क्या होंगे? एक तो मैंने यह कहा, यह तो उसका एसोटेरिक, उसका आंतरिक हिस्सा है, उसका गुच्ह्यतम हिस्सा है। उसका राज, उसका सीक्रेट तो इसमें है। लेकिन और क्या बातें थीं? महावीर जानते हैं और जो भी प्रयोग किए हैं इस दिशा में—वे भी जानते हैं कि शरीर से, इस शरीर से आपका जो संबंध है वह भोजन के द्वारा है। इस शरीर और आपके बीच जो सेतु है, वह भोजन है। अगर यह जानना हो कि मैं यह शरीर नहीं हूं तो उस क्षण में जानना आसान होगा जब आपके शरीर में भोजन बिलकुल नहीं है। जोड़नेवाला लिंक जब बिलकुल नहीं है, तभी जानना आसान होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। जोड़नेवाली चीज जितनी ज्यादा शरीर में मौजूद है, उतना ही जानना मुश्किल होगा। भोजन ही जोड़ता है, इसलिए भोजन के अभाव में नब्बे दिन के बाद टूट जाएगा संबंध—आत्मा अलग हो जाएगी, शरीर अलग हो जाएगा। क्योंकि बीच का जो जोड़नेवाला हिस्सा था वह अलग हो गया, वह बीच से गिर गया। तो महावीर कहते हैं—जब तक शरीर में भोजन पड़ा है, जब तक जोड़ है उस स्थिति में अपने को ले आओ—जब शरीर में भोजन बिलकुल नहीं है तो तुम आसानी से जान सकोगे कि तुम शरीर से अलग हो, पृथक हो। आइडेंटिफिकेशन टूट सकेगा, तादात्त्मय टूट सकेगा।

यह सच है। इसलिए जितना ही ज्यादा शरीर में भोजन होता है उतना ही शरीर के साथ तादात्त्मय होता है—जितना ज्यादा शरीर में भोजन होता है उतना शरीर के साथ तादात्त्मय होता है। इसलिए भोजन के बाद नींद तत्काल आनी शुरू हो जाती है। शरीर के साथ तादात्त्मय बढ़ जाता है तब मूर्च्छा बढ़ जाती है। शरीर के साथ तादात्त्मय टूट जाता है तो होश बढ़ता है। इसलिए उपवासे आदमी को नींद आना बड़ा मुश्किल होता है। बिना खाए रात नींद नहीं आती। नींद मुश्किल हो जाती है।

इससे तीसरी बात खयाल में ले लें — महावीर का सारा का सारा प्रयोग जा गरण का है, अमूर्च्छा का है, होश का, अवेयरनेस का है। तो महावीर कहते हैं — भोजन चूंकि मूर्च्छा को बढ़ाता है, तंद्रा पैदा करता है, भोजन के बाद नींद अनिवार्य हो जाती है इसलिए

भोजन न लिया गया हो, भोजन न किया गया हो, तो इससे उल्टा होगा। होश बढ़ेगा, अवेयरनेस बढ़ेगा, जागरण बढ़ेगा। यह तो हम सब का अनुभव है। एक अनुभव तो हम सब का है कि भोजन के बाद नींद बढ़ती है। रात अगर खाली पेट सोकर देखें तो पता चल जाएगा कि नींद मुश्किल हो जाती है। बार-बार टूट जाती है।

पेट भरा हो तो नींद बढ़ती है, क्यों? तो उसका वैज्ञानिक कारण है। शरीर के अस्तित्व के लिए भोजन सर्वाधिक महत्वपूर्ण चीज है—सर्वाधिक, आपकी बुद्धि से भी ज्यादा। एक दफा बिना बुद्धि के चल जाएगा।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को चोरों ने एकदफा घेर लिया। आ ैर उन्होंने कहा—जेब खाली करते हो, नहीं, तो खोपड़ी में पिस्तौल मार देंगे। मुल्ला ने कहा कि बिना खोपड़ी के चल जाएगा लेकिन खाली जेब के कैसे चलेगा? मुल्ला

ने कहा कि बिना खोपड़ी के चल जाएगा। बहुत से लोग मैंने देखे हैं, बिना खोपड़ी के चला रहे हैं, लेकिन खाली जेब नहीं चलेगा। तुम खोपड़ी में गोली मार दो।

चोर बहुत हैरान हुए होंगे, लेकिन मुल्ला ने ठीक कहा; हम भी यही जानते हैं।

ऐसी कथा है कि मुल्ला का आपरेशन किया गया मस्तिष्क का। एक डाक्टर ने नयी चिकित्सा विधि विकसित की थी जिसमें वह पूरे मस्तिष्क को निकाल लेता, उसे ठीक करता और वापस मस्तिष्क में डालता। जब वह मस्तिष्क को निकालकर दूसरे कमरे में ठीक करने गया और जब ठीक करके लौटा तो देखा कि मुल्ला जा चुका था। छह साल बाद मुल्ला लौटा। वह डाक्टर परेशान हो गया था। उसने कहा कि तुम इतने दिन रहे कहां? और तुम भाग कैसे गए और इतने दिन तुम बचे कैसे? वह खोपड़ी तो तुम्हारी मेरे पास रखी है। मुल्ला ने कहा—नमस्कार! उसके बिना बड़े मजे से दिन कटे आ ैर मुझे इलेक्शन में चुन लिया गया, तो मैं दिल्ली में था। राजधानी से लौट रहा हूं। और अब जरूरत नहीं है, अब क्षमा करें। सिर्फ यही कहने आया हूं कि अब आप परेशान न हों, आप संभालें।

प्रकृति भी आपकी बुद्धि की फिक्र में नहीं है, आपके पेट की ि फक्र में है। इसलिए जैसे ही पेट में भोजन पड़ता है, आपके शरीर की सारी ऊर्जा पेट के भोजन को पचाने के लिए दौड़ जाती है। आपके मस्तिष्क की ऊर्जा जो आपको जाग्रत रखती है, वह पेट की तरफ उतर जाती है, वह पेट को पचाने में लग जाती है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है। यह वैज्ञानिक कारण है। इसलिए आपको तंद्रा मालूम होती है क्योंकि आपके मस्तिष्क की ऊर्जा, जो मस्तिष्क में काम आती वह अब पेट में भोजन पचाने में काम आती है, इसलिए जो लोग भी इस पृथ्वी पर मस्तिष्क से अधिक काम लेते हैं, उनका भोजन रोज-रोज कम होता चला जाता है। जो लोग मस्तिष्क से काम नहीं लेते, उनका भोजन बढ़ता चला जाता है क्योंकि वही जीवन रह जाता, और कोई जीवन नहीं रह जाता।

महावीर ने यह अनुभव किया कि जब भोजन बिलकुल नहीं होता शरीर में, तो प्रज्ञा अपनी पूरी शुद्ध अवस्था में होती है क्योंकि तब सारे शरीर की ऊर्जा मस्तिष्क को मिल जाती है, क्योंकि पेट में कोई जरूरत नहीं रह जाती पचाने की। इसलिए महावीर को और आगे समझेंगे तो हमें खयाल में आ जाएगा कि महावीर कहते थे कि भोजन बिलकुल बन्द हो, शरीर की सारी क्रियाएं बन्द हों, शरीर बिलकुल मूर्ति की तरह ठहरा हुआ रह जाए, हाथ भी हिले न, अंगुली भी व्यर्थ न हिले, सब मिनिमम पर आ जाए, सब न्यूनतम पर आ जाए क्रिया, तो शरीर की पूरी ऊर्जा जो अलग-अलग बंटी है वह मस्तिच्षक को उपलब्ध हो जाती है और मस्तिष्क पहली दफा जागने में समर्थ होता है। नहीं तो जागने में समर्थ नहीं होता।

अगर महावीर ने भोजन में भी पसन्दगियां कीं कि शाकाहार हो, मांसाहा र न हो, तो वह सिर्फ अहिंसा ही कारण नहीं था, अहिंसा एक कारण था। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कारण दूसरा था और वह यह था कि मांसाहार पचने में ज्यादा शक्ति मांगता है और बुद्धि

177

की मूर्च्छा बढ़ती है। अहिंसा अकेला कारण होता तो महा वीर कह सकते थे कि मरे हुए जानवर का मांस लेने में कोई हर्जा नहीं है, बुद्ध ने कहा था। अगर अहिंसा ही एक मात्र कारण है, तो मारकर मत क्योंकि मारने में हिंसा है, मांस खाने में तो कोई हिंसा नहीं है! अब एक जानवर मर गया है, हम तो मार नहीं रहे, मर गया है, अब तो मांस खा रहे हैं, तो मांस खाने में कौन-सी हिंसा है? मरे हुए के मांस खाने में कोई भी हिंसा नहीं है। इसीलिए बुद्ध ने आज्ञा दे दी, मरे हुए जानवर का मांस खाया जा सकता है। हिंसा तो मारने में थी। लेकिन महावीर ने मरे हुए जानवर का मांस खाने की भी आज्ञा नहीं दी। क्योंकि महावीर का प्रयोजन मात्र अहिंसा नहीं है। महावीर का उससे भी गहरा प्रयोजन यह है कि मांस पचने में ज्यादा

शक्ति मांगता है, शरीर को ज्यादा भारी कर जाता है, पेट को ज्यादा महत्वपूर्ण कर जाता है और मस्तिष्क की ऊर्जा क्षीण होती है, तंद्रा गहरी होती है।

इसलिए महावीर ने ऐसे हल्के भोजन की सलाह दी है जो कम-से-कम शक्ति मांगे और मस्तिष्क की ऊर्जा कम न हो। यह मस्तिष्क में ऊर्जा का प्रवाह बना रहे तो ही आप जाग्रत रह सकते हैं, अभी जिस स्थिति में आप हैं। इसलिए इसको बाच्ह्य-तप कहा है, इसको आंतरिक तप नहीं कहा। जो आदमी आंतरिक तप को उपलब्ध हो जाएगा वह तो नींद में भी जागा रहता है, उसका तो कोई सवाल नहीं है। जो आदमी आंतरिक तप को उपलब्ध हो जाता है उसे तो आप शराब भी पिला दें तो भी होश में होता है। उसे तो मार्फिया दे दें तो भी शरीर ही सुस्त हो जाता है, शरीर ही ढीला पड़ जाता है। भीतर उसकी ज्योति जागती रहती है। उसकी प्रज्ञा पर कोई भेद नहीं पड़ता।

लेकिन हमारी हालत ऐसी नहीं है। हमें तो जरा-सा, भोजन का एक टुकड़ा भी हमारी कांशसनेस को बदलता है, हमारी चेतना को बदलता है—जरा-सा एक टुकड़ा हमारी चेतना को डांवांडोल कर देता है। हम भीतर और हो जाते हैं। तो महावीर ने कहा है—इसे पहला तप कहा है, बाच्ह्य-तप में। चेतना को बढ़ाना है तो जब भोजन शरीर में नहीं है, आसानी से बढ़ाव हो सकेगा। छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं—छोटी-छोटी बातों के परिणाम होते हैं, क्योंकि हम जहां जीते हैं वहां हम छोटी-छोटी चीजों से ही भरे और बंधे हुए हैं। जिस दिन भी हम आदमी को भोजन की जरूरत से मुक्त कर सकेंगे उसी दिन आदमी परिपूर्ण रूप से चेतना से भर जाएगा। हम पृथ्वी से नहीं बंधे हैं, पेट से बंधे हैं। हमारा गहरा बंधन पदार्थ से नहीं है, ठीक कहें तो भोजन से है। जिस मात्रा में आप भोजन के लिए आतुर हैं, उसी मात्रा में आप मूर्च्छित होंगे, स्लीपी होंगे, और आपके भीतर जागरण को लाने में अड़चन पड़ेगी, कठिनाई पड़ेगी।

यह सवाल इतना ही नहीं है कि भोजन छोड़ दिया। यह तो सिर्फ बाच्ह्य रूप है। भीतर चेतना बढ़े। तो चेतना कैसे बढ़े, उसको हम आंतरिक तप में समझ पाएंगे कि चेतना कैसे बढ़े। लेकिन भोजन छोड़कर कभी-कभी चेतना बढ़ाने का प्रयोग कीमती है। लेकिन हम जब भोजन छोड़ते हैं तो चेतना वगैरह नहीं बढ़ती, केवल भोजन का िचंतन बढ़ता है। उसका कारण है कि हम भोजन भी छोड़ते हैं तो हमें यह पता नहीं कि हम किसलिए छोड़ते हैं। हमें यह बताया जा रहा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना ही पुण्य है। वह बिलकुल पागलपन है। अकेला भोजन छोड़ देना पुण्य नहीं है। भोजन छोड़ देने के पीछे जो रहस्य है उसमें पुण्य छिपा है। अगर आपने सोचा है कि सिर्फ भोजन छोड़ देना पुण्य है तो भोजन छोड़कर आप भोजन का िचंतन करते रहेंगे, क्योंकि भीतर का जो असली तत्व है उसका तो आपको कोई पता नहीं है। आप बैठकर भोजन का चिंतन करेंगे। और ध्यान रहे, भोजन के चिंतन से भोजन ही बेहतर है, क्योंकि भोजन का चिंतन बहुत खतरनाक है। उसका मतलब यह हुआ कि पेट का काम आ प मस्तिष्क से ले रहे हैं जो कि बहुत कंच्फयूजन पैदा करेगा। आपके पूरे व्यक्तित्व को रुग्ण कर जाएगा। इस पर हम पीछे बात करेंगे, क्योंकि दूसरे सूत्र पर, महावीर इस पर बहुत जोर देंगे।

178

शयालय में चले जाएंगे। सपने में आप ज्यादा सरल हैं, सीधे-साफ हैं।

इसलिए मनोवैज्ञानिक को — बेचारे को आपके सपने का पता लगाना पड़ता है, तभी आपके बाबत जानकारी मिलती है। आपसे आपके बाबत जानकारी नहीं मिलती। आपका जागना इतना झूठा है कि उससे कुछ पता नहीं चलें भोजन का चिंतन न चले, तो ही अनशन का कोई उपयोग है, तब, जब भोजन भी नहीं और भोजन का चिंतन भी नहीं।

आपको पता है कि आपके चिंतन के दो ही हिस्से हैं, या तो काम, या भोजन। या तो कामवासना मन को घेरे रहती है, या स्वाद की वासना मन को घेरे रहती है। गहरे में तो कामवासना ही है क्योंकि भोजन के बिना कामवासना सम्भव नहीं है। अगर भोजन आपका कम कर दिया जाए तो कामवासना को मुश्किल हो जाती है, कठिनाई हो जाती है। तो गहरे में तो कामवासना ही घेरे रहती है। चूंकि भोजन कामवासना को शक्ति देता है इसलिए भोजन घेरे रहता है। ऊपर से हमें भोजन

का चिंतन चलता रहता है। महावीर से पूछेंगे तो वे कहेंगे — जो आदमी भोजन में बहुत आतुर है वह आदमी कामवासना से भरा होगा। वह भोजन लक्षण है। क्योंकि भोजन शक्ति देता है, काम की शक्ति को बढ़ाता है, और कामवासना में दौड़ाता है। तो महावीर कहेंगे — जो भोजन के चिंतन से भरा है, भोजन की आकांक्षा से भरा है वह आदमी कामवासना से भरा है। भोजन की वासना छूटे तो कामवासना शिथिल होनी शुरू हो जाती है।

यह जो हम भोजन का चिंतन करते हैं, वह इसीलिए कि नहीं मिल रहा है भोजन तो हम सच्बसटीच्टयूट पैदा करते हैं। ध्यान रहे, हमारे मन की गहरी से गहरी तरकीब, सच्बसटीच्टयूट क्रिएशन है, परिपूरक पैदा करना है। अगर आपको भोजन नहीं मिलेगा तो मन आपसे भोजन का चिंतन करवाएगा। और उसमें उतना ही रस लेने लगेगा ि जतना भोजन में। बल्कि कभी-कभी ज्यादा रस लेगा, जितना भोजन में भी नहीं मिलता है। ज्यादा लेना पड़ेगा, क्योंकि ि जतना भोजन से मिलता है, उतना तो मिल नहीं सकता चिंतन से, इसलिए चिंतन में इतना रस लेना पड़ेगा कि जो भोजन की कमी रह गयी है वह भी चिंतन के ही रस से पूरी होती हुई मालूम पड़े। इसलिए अगर कामवासना से बचिएगा तो मन कामवासना का चिंतन करने लगेगा । रात कभी आप सोए हैं और आपने सपना देखा है कि जाकर पानी पी रहे हैं, वह सपना सिर्फ सच्बसटीच्टयूट है। आपको प्यास लगी होगी, प्यासे सो गए होंगे। भीतर प्यास चल रही होगी और नींद टूटना नहीं चाहती, क्योंकि अगर आपको पानी पीना पड़ेगा तो जागना पड़ेगा। नींद टूटना नहीं चाहती, तो नींद एक सपना पैदा करती है कि आप पहुंच गए हैं पानी के, फ्रीज के पास — पानी पी रहे हैं। पानी पीकर मजे से फिर सो गए हैं। यह सपना पैदा किया।

यह सपना तरकीब है जिससे प्यास की जो पीड़ा है वह भूल जाए और नींद जारी रहे। आपके सब सपने बताते हैं कि आपने दिन में क्या-क्या नहीं किया। और कुछ नहीं बताते। आपके सपने के बिना आपकी जिंदगी को समझना मुश्किल है, इसलिए आज का मनोवैज्ञानिक आपसे नहीं पूछता कि दिन में आपने क्या किया, वह पूछता है — रात में आपने क्या सपना देखा? अब सोचें थोड़ा, आपके बाबत जानकारी आपके दिन के काम से मनोवैज्ञानिक नहीं लेता। वह आपसे नहीं पूछता कि आपने कुछ भी किया हो, दुकान चलायी कि मंदिर गए, उससे कोई मूल्य नहीं है। वह पूछता है — सपने में कहां गए? वह कहता है — सपने में आप आथेंटिक हो, प्रामाणिक हो, वहां से पता चलेगा कि आदमी कैसे हो? आपके जा गने से कुछ पता नहीं चलेगा, वहां तो बहुत धोखाधड़ी है। जाना था वेश्यालय में, पहुंच गये मंदिर में। जागने में चल सकता है यह, सपने में नहीं चल सकता। सपने में यह धोखा आप नहीं कर सकते खड़ा, वेश्यालय में चले जाएंगे। सपने में आप ज्यादा सरल हैं, सीधे-साफ हैं।

इसलिए मनोवैज्ञानिक को — बेचारे को आपके सपने का पता लगाना पड़ता है, तभी आपके बाबत जानकारी मिलती है। आपसे आपके बाबत जानकारी नहीं मिलती। आपका जागना इतना झूठा है कि उससे कुछ पता नहीं चलता, आपकी नींद में उतरना पड़ता

है कि आप नींद में क्या कर रहे हो। उससे पता चलेगा, आ प आदमी कैसे हो, असली खोज क्या है आपकी? तो अगर आप दिन में उपवास किए तो उससे पता नहीं चलेगा। रात सपने में भोजन किए या नहीं, उससे पता चलेगा। अगर रात सपने में भोजन किए, दिन का अनशन बेकार गया, उपवास व्यर्थ हुआ। लेकिन जिस दिन आप उपवा स करते हैं, उस दिन सपने में भोजन करना ही पड़ता है, अनिवार्य है। कहीं न कहीं निमंत्रण मिल जाता है, आप कर भी क्या सकते हैं? राजमहल में भोज हो जाता है, आप कर भी क्या सकते हैं। जाना पड़ता है।

चिंतन जो नहीं हो पा रहा है वास्तविक रूप से उसे पूरा करने की डेसपरेट कोशिश है—भोजन नहीं किया तो चिंतन कर रहे हैं। और ध्यान रहे, भोजन करते तो पंद्रह मिनट में पूरा हो जाता, चिंतन से पंद्रह मिनट में नहीं चलेगा। पंद्रह मिनट का काम एक-सौ पचास घंटे चलाना पड़ेगा। चलता ही रहेगा, चलता ही रहेगा, क्योंकि तृप्ति तो मिलेगी नहीं भोजन की, रस तो मिलेगा नहीं भोजन का, शक्ति तो मिलेगी नहीं भोजन की, तो फिर चिंतन में ही उलझाए रखना पड़ेगा। इसलिए महावीर ने, इस चिंतन को अगर आपने किया, तो महावीर ने कहा है कि आप शरीर से करते हैं कोई काम या मन से, इसमें मैं भेद नहीं करता। आपने चोरी की, या चोरी के बाबत सोचा, मेरे लिए बराबर है। पाप हो गया। यह सवाल नहीं है कि आपने हत्या की, या हत्या के संबंध में सोचा।

अदालत फर्क करती है—अगर आप हत्या के संबंध में सोचें, कोई अदालत आ पको सजा नहीं दे सकती। आप खूब सोचें मजे से। कोई अदालत यह नहीं कह सकती कि आप जुर्मी हैं, अपराधी हैं। आप अदालत में कह भी सकते हैं—हम हत्या का बहुत रस लेते हैं, सपने भी देखते हैं, और दिन-रात सोचते हैं कि इसकी गर्दन काट दें, उसकी गर्दन काट दें, वह काटते ही रहते हैं। चाहे कहें या न कहें। अदालत आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती है, आप कानून की पकड़ के बाहर हैं। कानून सिर्फ कृत्य को पकड़ सकता है, कर्म को पकड़ सकता है

लेकिन महावीर कहते हैं—धर्म, भाव को भी पकड़ता है। धर्म की अदालत के बाहर नहीं हो सकते। भाव पर्याप्त हो गया। महावीर कहते हैं—कृत्य तो सिर्फ भाव की बाच्हय छाया है, मूल तो भाव है। अगर मैंने हत्या करनी चाही तो मैंने तो हत्या कर ही दी, बाहर की परिस्थितियों ने करने दी, यह बात दूसरी है। पुलिसवाला खड़ा था, अदालत खड़ी थी, सजा का डर था, फांसी का तख्ता था, इसलिए नहीं की। यह दूसरी बात है। बाहर की परिस्थितियों ने नहीं करने दी, यह दूसरी बात है। मेरी तरफ से मैंने कर दी। अगर परिस्थिति सुगम होती, सुविधापूर्ण होती, पुलिसवाला न होता या पुलिसवाला रिश्तेदार होता, या अदालत अपनी होती, मजिच्सटरेट अपना होता, कानून अपना चलता होता तो मैंने कर दी होती। फिर कोई मुझे रोकनेवाला नहीं।

न करने का कारण बाहर से आ रहा है, करने का कारण भीतर से आ रहा है। भीतर की ही तौल है, अंततः आप तौले जाएंगे, आपकी परिस्थितियां नहीं तौली जाएंगी। यह नहीं पूछा जाएगा कि जब आप हत्या करना चाह रहे थे तो आपके पास बंदूक नहीं थी इसलिए नहीं कर पाए। भाव पर्याप्त है, हत्या हो गयी।

अगर आपने भोजन का चिंतन किया, उपवास नष्ट हो गया। तब तो बड़ी कठिनाई है। इसका मतलब यह हुआ कि आप तब तक उपवास न कर पाएंगे जब तक आपका चिंतन पर नियंत्रण न हो, नहीं कर पाएंगे। इसलिए मैंने कहा—चर्चा के लिए हमने नंबर एक पर रखा है, लेकिन इसको आप अकेला न कर पाएंगे जब तक चिंतन पर नियंत्रण न हो, जब तक चिंतन आपके पीछे न चलता हो, जब तक जो आप चलाना चाहते हो चिंतन में, वही न चलता हो। अभी तो हालत यह है कि चिंतन जो चलाना चाहता है वहीं आपको चलना पड़ता है। जहां ले जाता है मन, वहीं आपको जाना पड़ता है। नौकर मालिक हो गए हैं।

सुना है मैंने कि अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति रथचाइल्ड, सुबह- सुबह जो भी भिखमंगे उसके पास आते थे उन्हें कुछ

180

अनशन : मध्य के क्षण का अनुभव

न कुछ देता था। एक भिखमंगा नियमित रूप से बीस वषोच से आता था। वह रोज उसे एक डालर देता था और उसके बूढ़े बाप के लिए भी एक डालर देता था। बाप कभी आता था, कभी नहीं आता था, बहुत बूढ़ा था, इसलिए बेटा ही ले जाता

था। धीरे-धीरे वह भिखारी इतना आश्वस्त हो गया कि अगर दो-चार दिन न आ पाता तो चा र दिन के बाद अपना पूरा बिल पेश कर देता कि पांच दिन हो गए हैं, मैं आ नहीं पाया चार दिन। वह चार डालर वसूल करता जो उसको मिलने चाहिए थे। फिर उसका बाप मर गया। रथचाइल्ड को पता चला कि उसका बाप मर गया है। लेकिन उसने, फिर भी उसने अपने बाप का भी डालर लेना जारी रखा। महीनेभर तक रथचाइल्ड ने कुछ न कहा, क्योंकि इसका बाप मरा है, और सदमा देना ठीक नहीं है—देता रहा। महीनेभर बाद उसने कहा कि अब तो हद होयी। अब तुम्हारा बाप मर गया, उसका डालर क्यों लेते हो?

उसने कहा—क्या समझते हो? बाप की दौलत का मैं हकदार हूं कि तुम? हू इज दि हेयर। मेरा बाप मरा कि तुम्हारा बाप मरा? बाप मेरा मरा है, उसकी संपत्ति का मालिक मैं हूं।

रथचाइल्ड ने अपनी जीवनकथा में लिखवाया है कि भिखारी भी मालिक हो जा ते हैं, अभ्यास से। चकित हो गया रथचाइल्ड, उसने कहा—ले जा भाई। तू दो डालर ले और अपने बेटे की वसीयत लिख जाना। जब तक हम हैं, देते रहेंगे, तेरे बेटे को भी देना पड़ेगा क्योंकि यह वसीयत है।

चिंतन सिर्फ आपका नौकर है, लेकिन मालिक हो गया है। सभी इंद्रियां आपकी नौकर हैं, लेकिन मालिक हो गयी हैं। अभ्यास लम्बा है। आपने कभी अपनी इंद्रियों को कोई आज्ञा नहीं दी। आपकी इंद्रियों ने आपको आज्ञा दी है।

तप का एक अर्थ आपको कहता हूं—तप का अर्थ है : अपनी इंद्रियों की मा लकियत, उनको आज्ञा देने की सामर्थ्य। पेट कहता है, भूख लगी है, आप कहते हैं, ठीक है, लगी है, लेकिन मैं आज भोजन लेने को राजी नहीं हूं। आप पेट से अलग हुए। मन कहता है कि आज भोजन का चिंतन करेंगे, और आप कहते हैं कि नहीं, जब भोजन ही नहीं किया तो चिंतन क्यों करेंगे? चिंतन नहीं करेंगे। तो ही आप अनशन कर पाएंगे और उपवास कर पाएंगे। अन्यथा कोई फर्क नहीं लगेगा। पेट कहता रहेगा, भूख लगी है, मन चिंतन करता रहेगा। आप और उलझ जाएंगे, और परेशान हो जाएंगे। और जैसा वह चार दिन के बाद अपना बिल लेकर हाजिर हो जाता था भिखारी, चार दिन के उपवास के बाद पेट अपना बिल लेकर हाजिर हो जाएगा कि चार दिन भोजन नहीं किया, अब ज्यादा कर डालो। तो पर्युषण के बाद दस दिन में सब पूरा कर डालेंगे। दुगुने तरह से बदला ले लेंगे। जो-जो चूक गया, उसको ठीक से भरपूर कर लेंगे। अपनी जगह वापस खड़े हो जाएंगे।

उपवास हो सकता है तभी जब चिंतन पर आपका वश हो। लेकिन चिंतन पर आ पका कोई भी वश नहीं है। आपने कभी कोई प्रयोग नहीं किया। हमें चिंतन की तो ट्रेनिंग दी गई है, हमें विचार का तो प्रशिक्षण दिया गया है, लेकिन विचार की मालकियत का कोई प्रशिक्षण नहीं है। आपको स्कूल में, कालेज में विचार करना सिखाया जा रहा है, दो और दो जोड़ना सिखाया जा रहा है—सब सिखाया जा रहा है। एक बात नहीं सिखायी जा रही है कि दो और दो जब जोड़ना हो तभी जोड़ना, जब न जोड़ना हो तो मत जोड़ना। लेकिन अगर मन दो और दो जोड़ना चाहे तो आप रोक नहीं सकते। आप कोशिश करके देख लें, आज घर पर। कहें कि हम दो और दो न जोड़ेंगे और मन दो और दो जोड़गा, उसी वक्त जोड़ेगा। वह आपको डिफाई करेगा, वह कहेगा तुम हो क्या? हम दो और दो चार होते हैं। आप आज कोशिश करना कि दो और दो हमें नहीं जोड़ना है, फौरन मन कहेगा, चार। आप कहना हमें जोड़ना नहीं है, वह कहेगा चार। वह आपको डिफाई करता है। और उसको डिफाई करना चाहिए। क्योंकि उसकी मालकियत आप छीन रहे हैं। अब तक आपने उसको मालिक बनाकर रखा है। एक दिन में यह नहीं हो जाएगा। लेकिन अगर इसके प्रति सजगता आ

जाए और यह खयाल आ जाए कि मैं अपनी ही इंद्रियों का गुलाम हो गया हूं तो शायद थोड़ी यात्रा करनी पड़े—थोड़ी यात्रा करनी पड़े इंद्रियों के विपरीत। अनशन, वैसी ही यात्रा की शुरुआत है।

महावीर कहते हैं, ठीक। आज नहीं, बात समाप्त हो गयी। लेकिन आपके नहीं और हां में बहुत फर्क नहीं है। आपके व्यक्तित्व में हां और नहीं में बहुत फर्क नहीं है। आपका बेटा आपसे कहता है—यह खिलौना लेना है। आप कहते हैं—नहीं। बड़ी ताकत से कहते हैं, लेकिन बेटा वहीं पैर पटकता खड़ा रहता है, वह कहता है कि लेंगे। दुबारा आप कहते हैं—मान जा, नहीं लेंगे। आपकी ताकत क्षीण हो गयी है। आपका नहीं, हां की तरफ चल पड़ा। वह बेटा पैर पटकता ही रहता है। वह कहता, लेंगे। आखिर आप लेते हैं। बेटा जानता है कि आपकी नहीं का कुल इतना मतलब है कि तीन चार दफे पैर पटकना पड़ेगा और हां हो जाएगी। और कुछ मतलब नहीं ज्यादा। छोटे से छोटे बच्चे भी जानते हैं कि आपके 'न' की ताकत कितनी है। एंड हाउ मच यू मीन बाई सेइंग नो। बच्चे जानते हैं और आपके न को कैसे काटना है, यह भी वे जानते हैं। और काट देते हैं। आपकी न को हां में बदल देते हैं। और जितने जोर से आप कहते हैं नहीं, उतने जोर से बच्चा जानता है कि यह कमजोरी की घोषणा है। यह आप डरवाने की कोशिश कर रहे हैं। डरे हुए अपने से ही हैं कि कहीं हां न निकल जाए। वह बच्चा समझ जाता है, जोर से बोले हैं, ठीक है, अभी थोड़ी देर में ठीक हो जाएंगे। नहीं, जो आदमी सच में शक्तिशाली है वह 'जोर से नहीं' कहीं कहता है, वह शान्ति से कह देता है, 'नहीं'। और बात समाप्त हो गयी।

आपकी इंद्रियां भी ठीक इसी तरह का टानट्रम सीख लेती हैं जैसा बच्चे सीख लेते हैं। आप कहते हैं—आज भोजन नहीं; तो आप हैरान होंगे, अगर आप रोज ग्यारह बजे भोजन करते हैं तो आपको रोज ग्यारह बजे भूख लगती है। लेकिन अगर आपने कल रात तय किया कि कल उपवास करेंगे तो छह बजे से भूख लगती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। ग्यारह बजे रोज भूख लगती थी, छह बजे कभी नहीं लगती थी। हुआ क्या? क्योंकि अभी आपने, अभी तो कुछ किया नहीं, अभी तो अनशन भी शुरू नहीं हुआ, वह ग्यारह बजे शुरू होगा। सिर्फ खयाल, रात में तय किया कि कल अनशन करना है, उपवास करना है, सुबह से भूख लगने लगी। सुबह से क्या, रात से शुरू हो जाएगी। वह आपके पेट ने आपके न को हां में बदलने की कोशिश उसी वक्त शुरू कर दी। उसने कहा, तुम क्या समझते हो? ग्यारह बजे तक वह नहीं रुकेगा। भूख इतने जोर से कभी नहीं लगती थी। रोज तो ऐसा था असल में कि ग्यारह बजे खाते थे इसलिए खाते थे। वह एक समय का बंधन था। लेकिन आज भूख बड़े जोर से लगेगी, और अभी ग्यारह नहीं बजे इसलिए वस्तुतः तो कहीं कोई फर्क नहीं पड़ा है। रोज भी ग्या रह बजे तक भूखे रहते थे, कोई फर्क नहीं पड़ा है कहीं भी लेकिन चित्त में फर्क पड़ गया और इंद्रियां अपनी मालकियत कायम करने की कोशिश करेंगी। वह कहेंगी कि नहीं, बहुत जोर से भूख लगी है, इतने जोर से कभी नहीं लगी थी, ऐसी भूख लगी है।

निश्चित ही कोई भी अपनी मालकियत आसानी से नहीं छोड़ देता। एक बा र मालकियत दे देना आसान है, वापस लेना थोड़ा कठिन पड़ता है। वही कठिनता तपश्चर्या है। लेकिन, अगर आप सुनिश्चित हैं आ ैर आपके न का मतलब न, और हां का मतलब हां होता है—सच में होता है, तो इंद्रियां बहुत जल्दी समझ जाती हैं। बहुत जल्दी समझ जाती हैं कि आपके न का मतलब न है और आपके हां का मतलब हां है।

इसलिए मैं आपसे कहता हूं, संकल्प अगर करना है तो फिर तोड़ना मत, अन्यथा करना ही मत। क्योंकि संकल्प करके तोड़ना आपको इतना दुर्बल कर जाता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। संकल्प करना ही मत, वह बेहतर है। क्योंकि संकल्प टूटेगा नहीं तो उतनी दुर्बलता नहीं आएगी। एक भरोसा तो रहेगा कि कभी करेंगे तो पूरा कर लेंगे। लेकिन संकल्प करके अगर आपने तोड़ा

तो आप अपनी ही आंखों में, अपने ही सामने दीन-हीन हो जाएंगे। और सदा के लिए वह दीनहीनता आपके पीछे रहेगी। और जब भी आप दुबारा संकल्प करेंगे, तब आप पहले से ही जानेंगे कि यह टूटेगा। यह चल नहीं सकता। छोटे संकल्प से शुरू करें, बहुत छोटे संकल्प से शुरू करें।

गुरजिएफ बहुत छोटे संकल्प से शुरू करवाता था। वह कहता, इस हाथ को ऊंचा कर लो। अब इसको नीचे मत करना। जैसे ही तय किया कि नीचे मत करना, पूरा हाथ कहता है नीचे करो। अब इसको नीचे मत करना। अब चाहे कुछ भी हो जाए इसको नीचे मत करना। जब तक कहता था गुरजिएफ, मैं न कहूं हाथ को नीचे मत करना। हाथ दलीलें करेगा। आप सोचेंगे, हाथ कैसे दलीलें करेगा? हाथ दलील करता है। वह आरगू करेगा। वह कहेगा—बहुत थक गया हूं, अब तो नीचे कर लो। वह कहेगा,गुरजिएफ यहां कहां देख रहा है, एक दफे ऊपर करके नीचे कर लो। उसकी तो पीठ है। और ध्यान रखें, गुरजिएफ जब भी ऐसी आज्ञा देता था तो पीठ करके बैठता था। हाथ पच्चीस आरगूमेंट खोजेगा। वह कहेगा—ऐसे में कहीं लकवा न लग जाए। और फिर हाथ कहेगा इससे फायदा भी क्या, हाथ ऊंचे करने से कोई भगवान मिलनेवाला है? अरे हाथ तो शरीर का हिस्सा है, इससे आत्मा का क्या संबंध है?

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं—कपड़े बदलने से क्या होगा? आत्मा बदलनी है। कपड़ा बदलने की हिम्मत नहीं है, आत्मा बदलनी है। वे कहते हैं—आत्मा बदलने से होगा। तो कपड़े बदलने से क्या होगा? वे सोच रहे हैं यह दलील वे दे रहे हैं, यह उनके कपड़े दे रहे हैं। यह दलील उनकी नहीं है, यह उनके कपड़ों की है। यह जो घर में साड़ियों का ढेर लगा हुआ है, वे साड़ियां कह रही हैं कि कपड़े से क्या होगा? लेकिन वे सोच रहे हैं कि बहुत आत्मिक खोज कर लाए। वे कह रहे हैं कि भीतर का परिवर्तन चाहिए, बाहर के परिवर्तन से क्या होगा। बाहर का परिवर्तन तक करने की सामर्थ्य नहीं जुटती, भीतर के परिवर्तन के सपने देख रहे हैं। बाहर इतना बाहर नहीं है जितना आप सोचते हैं। वह आपके भीतर तक फैला हुआ है। भीतर इतना भीतर नहीं है जितना आप सोचते हैं, वह आपके कपड़ों तक आ गया है। वह सब तरफ फैला हुआ है।

अपने को धोखा देना बहुत आसान है। जो भूखा नहीं रह सकता वह कहेगा अनशन से क्या होगा? भूखे मरने से क्या होगा? कुछ नहीं होगा। जो नग्न खड़ा नहीं हो सकता, वह कहेगा नग्न खड़े करने से क्या होगा? इससे क्या होनेवाला है? उपवास से कुछ भी नहीं होगा, तो क्या भोजन करने से हो जाएगा? नग्न खड़े होने से नहीं होगा, तो क्या कपड़े पहनने से हो जाएगा? तो गेरुवा वस्त्र पहनने से नहीं होगा तो दूसरे रंग के वस्त्र पहनने से हो जाएगा? क्योंकि दूसरे रंग के वस्त्र पहनते वक्त उसने यह दलील कभी नहीं दी कि कपड़ों से क्या होगा, लेकिन गेरुवा वस्त्र पहनते वक्त वही आदमी दलील लेकर आ जाता है कि कपड़े से क्या होगा? हमारा मन, हमारी इंद्रियां, हमारे कपड़े, हमारी चीजें, सब दलीलें देती हैं और हम रेशनलाइज करते हैं।

ध्यान रहे, री▯न और रेशनलाइजेशन में बहुत फर्क है। बुद्धिमत्ता में और बुद्धिमत्ता का धोखा खड़ा करने में बहुत फर्क है। और जब हाथ कहता है कि थक जाएंगे, मर जाएंगे—गुरजिएफ कहता है कि तुम नीचे मत करना, अगर हाथ थक जाएगा तो गिर जाएगा, तुम नीचे मत करना। थक जाएगा तो गिर जाएगा, तुम करोगे क्या? अगर हा थ सच में ही थक जाएगा तो रुकेगा कैसे? जब तक रुका है, तब तक तुम मत गिराना। तुम अपनी तरफ से मत गिराना। अगर हाथ गिरे तो तुम देख लेना कि गिर रहा है। पर तुम कोआपरेट मत करना, तुम सहयोग मत देना। पर बारीक है बात। हम बड़े धोखे से सहयोग दे सकते हैं। हम कह सकते हैं यह हाथ गिर रहा है, हम थोड़े ही गिरा रहे हैं। यह हाथ गिर रहा है, आ ैर आप भली-भांति जानते हैं कि यह गिर नहीं रहा है, आप गिरा रहे हैं। इतने भीतर अपने को साफ-साफ देखना पड़ेगा अपनी बेईमानियों को, अपनी वंचनाओं को, अपने डिसेप्शंस को। और जो

183

महावीर-वाणी भाग : 1

आदमी अपनी वंचनाओं को नहीं देखता, उसके हां और न में फर्क नहीं रह जाता। वह न कहता है और हां कर लेता है। हां कहता है और न कर लेता है।

मुल्ला नसरुद्दीन का लड़का पैदा हुआ। बड़ा हुआ तो नसरुद्दीन ने सोचा कि क्या बनेगा, इसकी कुछ जांच कर लेनी चाहिए। उसने कुरान रख दी, पास एक शराब की बोतल रख दी, एक दस रुपए का नोट रख दिया और छोड़ दिया उसको कमरे में और छिपकर खड़ा हो गया। लड़का गया, उसने दस रुपये का नोट जेब में रखा, कुरान बगल में दबायी और शराब पीने लगा। नसरुद्दीन भागा, अपनी बीबी से बोला कि यह राजनीतिज्ञ हो जाएगा। कुरान पढ़ता तो सोचते धार्मिक हो जाएगा, शराब पीता तो सोचते अधार्मिक हो जाएगा, रुपया जेब में रखकर भाग गया होता तो सोचते व्यापारी हो जाएगा। यह पालिटिशियन हो जाएगा। यह कहेगा कुछ, करेगा कुछ, होगा कुछ। यह सब एक साथ करेगा।

हमारा चित्त ऐसा ही कर रहा है—धर्म भी कर रहा है, अधर्म भी सोच रहा है। जो कर रहा है, जो सोच रहा है, दोनों से कोई संबंध नहीं है, खुद कुछ और ही है। और यह सब जाल एक साथ है। तपश्चर्या इस जाल को काटने का नाम है और व्यक्तित्व को एक प्रतिमा देने की प्रक्रिया है—इस बात की कोशिश है कि व्यक्तित्व में एक स्पष्ट रूप निखर आए, एक आकार बन जाए। आप ऐसे विकृत कुछ भी आकार न रह जाएं, आप में एक आकार उभरे, आहिस्ता-आहिस्ता आप स्पष्ट होते जाएं, एक क्लेरिटी हो। अगर आपको नहीं भोजन लेना है तो नहीं लेना है, यह आपके पूरे व्यक्तित्व की आवाज हो जाए, बात खत्म हो गयी। अब यह बात नहीं उठेगी जब तक नहीं लेना है।

महावीर तो बहुत अनूठा प्रयोग करते थे क्योंकि यह भी हो सकता है उसीके बचाव के लिए वह प्रयोग था। यह भी हो सकता है कि आपने तय कर लिया है कि चौबीस घंटे नहीं लेंगे भोजन और न सोचेंगे। तो मन कहता है — कोई हर्जा नहीं, चौबीस ही घंटे की बात है न। चौबीस घंटे बाद तो सोचेंगे, करेंगे। ठीक है किसी तरह चौबीस घंटे निकाल देंगे। मन इसके लिए भी राजी हो सकता है। क्योंकि इनडेफिनिट नहीं है मामला, डेफिनिट है, निश्चित है। चौबीस घंटे के बाद तो कर ही लेना है, तो चौबीस ही घंटे की बात है न! एक मजबूरी जैसा आप ढो लेंगे। लेकिन तब आपको उपवास की प्रफुल्लता न मिलेगी, बोझ होगा। तब उपवास का आनन्द आपके भीतर न खिलेगा। वह एक्सटैसी, वह लहर आपके भीतर न आएगी जो इंद्रियों के ऊपर मालकियत के होने से आती है। तब सिर्फ एक बोझ होगा कि चौबीस घंटे ढो लेना है। गुजार देंगे चौबीस घंटे। निकाल देंगे, समय को। काट लेंगे समय को स्थानक में, मंदिर में देरासर में, कहीं बैठकर समय गुजार देंगे, किसी तरह निपटा ही देंगे।

लेकिन तब, तब अनशन नहीं हुआ। महावीर निश्चित न करते थे कि कब भोजन लेंगे। और अनिश्चय पर छोड़ते थे, नियति पर। बहुत हैरानी का प्रयोग था, वह महावीर ने अकेले ही इस पृथ्वी पर किया। वे कहते थे कि भोजन मैं तब लूंगा जब ऐसी घटना घटेगी। तब घटना अपने हाथ में नहीं। रास्ते पर निकलूंगा अगर किसी बैलगाड़ी के सामने कोई आदमी खड़ा होकर रो रहा होगा, अगर बैल काले रंग के होंगे, अगर उस आदमी की एक आंख फूटी होगी और एक आंख से आंसू टपक रहा होगा, तो मैं भोजन ले लूंगा। और वह भी अगर वहीं कोई भोजन देने के लिए निमंत्रण दे देगा। नहीं तो आगे बढ़ जाऊंगा। अनेक दिन महावीर गांव में जाते, वे जो तय करके जाते थे—जो तय उन्होंने कर लिया था पहले दिन भोजन के छोड़ने के, वह पूरा नहीं होता, वे वापस लौट आते लेकिन वे बड़े आनन्दित वापस लौटते, क्योंकि वे कहते कि जब नियति की ही इच्छा नहीं है तो हम क्यों इच्छा करें? जब कास्मिक, जब जागतिक शक्ति कहती है कि नहीं आज भोजन, तो बात खत्म हो गयी। अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने, नियति जाने। वे वापस लौट आते। गांवभर रोता, गांवभर परेशान होता, क्योंकि गांव में अनेक लोग खड़े होते भोजन ले लेकर और अनेक इंतजाम

□

अनशन : मध्य के क्षण का अनुभव

करके खड़े होते।

अभी भी खड़े होते हैं, लेकिन अब जैन दिगम्बर मुनि—वैसा प्रयोग करता है अभी भी—लेकिन वह सब जाहिर है कि वह क्या-क्या नियम लेता है। पांच-सात नियम जाहिर हैं, वह वही के वही लेता है, पांच-सात घरों में वे नियम पूरे कर देते हैं। किसी घर के सामने केले लटके होंगे। अब वह मालूम है। वे केले लटका लेते हैं सब लोग, अपने घर के सामने। कोई स्त्री सफेद साड़ी पहनकर भोजन के लिए निमंत्रण करेगी, वह मालूम है। अब पांच-सात नियम फिच्कसड हो गए हैं। पांच-सात नियम पांच-सात घरों में लोग खड़े हो जाते हैं करके। अब जैन मुनि कभी बिना भोजन लिए नहीं लौटता। निश्चित ही वह महावीर से ज्यादा होशियार है। कभी नहीं लौटता खाली हाथ। तब तो उसको मिलता ही है, इसलिए पक्का मा मला है उसको और उसको बनानेवाले, भोजन बनानेवालों में कोई न कोई सांठगांठ है। भोजन बनानेवालों को पता है, उसको पता है। वह वही नियम लेता है, वही भोजन बनानेवाले पूरा कर देते हैं। भोजन लेकर वह लौट जाता है। आदमी अपने को कितने धोखे दे सकता है!

महावीर की प्रक्रिया बहुत और है। वह यह थी—वे किसी को कहेंगे नहीं, वह उनके भीतर है बात। अब वह क्या है? कभी-कभी तीन तीन महीने महावीर को खाली, बिना भोजन लिए गांव से लौट जाना पड़ा। बात खत्म हो गयी, पर इनडेफिनिट है। और जब मन के लिए कोई सीमा नहीं होती तो मन को तोड़ना बहुत आसान हो जाता है; जब मन के लिए सीमा होती है तो खींचना बहुत आसान होता है। एक ही घंटे की तो बात है, तो निकाल देंगे। चौबीस घंटे की बात है, गुजार देंगे लेकिन इनडेफिनिट। महावीर का जो अनशन था, उसकी कोई सीमा न थी। वह कब पूरा होगा कि नहीं होगा, कि यह जीवन का अंतिम होगा भोजन, इसके बाद नहीं होगा इसका भी कुछ पक्का पता नहीं। वह कल पर है, कल की बात है। कल गांव में वे जाएंगे—हो गया, हो गया; नहीं हुआ, नहीं हुआ; वापिस लौट आएंगे, बात खत्म हो गयी।

इसलिए महावीर ने उपवास और अनशन पर जैसे गहरे प्रयोग किए, इस पृथ्वी पर किसी ने कभी नहीं किए। मगर आश्चर्य की बात है कि इतने कठिन प्रयोग करके भी महावीर को फिर भी भोजन तो कभी-कभी मिल ही जाता था। बारह वर्ष में तीन सौ पैंसठ बार भोजन मिला। कभी पंद्रह दिन बाद, कभी दो महीने बाद, कभी तीन महीने बाद, कभी चार महीने बाद, पर भोजन मिला। तो महावीर कहते थे—जो मिलनेवाला है, वह मिल ही जाता है। और महावीर कहते थे—त्याग तो उसी का किया जा सकता है जो नहीं मिलनेवाला है। उसका तो त्याग भी कैसे हो सकता है जो मिलनेवाला ही है। और तब महावीर कहते थे—जो नियति से मिला है, उसका कर्म-बंधन मेरे ऊपर नहीं है। मेरा नहीं है कोई संबंध उससे। क्योंकि मैंने किसी से मांगा नहीं, मैंने किसी से कहा नहीं, छोड़ दिया अनंत के ऊपर। कि होगी जगत को कोई जरूरत मुझे चलाने की तो और चला लेगा। और नहीं होगी जरूरत तो बात खत्म हो गयी। मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है। ध्यान रहे महावीर की सा री प्रक्रिया जीवेषणा छोड़ने की प्रक्रिया है। महावीर कहते हैं — मैं जीवित रहने के लिए कोई एषणा नहीं करता हूं। अगर इस अस्तित्व को ही, अगर इस होने को ही जरूरत हो मेरी कोई, इंतजाम तुम जुटा लेना, वह मेरा इंतजाम नहीं है। और तुम्हें कोई जरूरत न रह जाए तो मेरी तरफ से जरूरत पहले ही छोड़ चुका हूं।

लेकिन आश्चर्य तो यही है कि फिर भी महावीर जिये चालीस वर्ष — स्वस्थ जिये, आनंद से जिये। इस भूख ने उन्हें मार न डाला। इस नियति पर छोड़ देने से वे दीन-हीन न हो गए। यह जीवेषणा को हटा देने से मौत न आ गयी। जरूर बहुत से राज पता चलते हैं। हमारी यह चेष्टा कि मैं ही मुझे जिला रहा हूं, विक्षिप्तता है। आ ैर हमारा यह खयाल कि जब तक मैं न मरूंगा, कैसे मरूंगा? नासमझी है। बहुत कुछ हमारे हाथ के बाहर है, उसे भी हम समझते हैं कि हमारे हाथ के भीतर है। जो हमारे हाथ के बाहर है उसे हाथ

के भीतर समझने से ही अहंकार का जन्म होता है।जो हमारे हाथ के बाहर है, उसे हाथ के बाहर ही समझने से अहंकार विसर्जित

हो जाता है।

महावीर अपना भोजन भी पैदा नहीं करते। महावीर स्नान भी नहीं करते अपनी तरफ से। वर्षा का पानी जितना धुला देता है, धुला देता है। लेकिन बड़ी मजेदार बात है कि महावीर के शरीर से पसीने की दुगन्ध नहीं आती थी। आनी चाहिए, बहुत ज्यादा आनी चाहिए, क्योंकि महावीर स्नान नहीं करते हैं। पर आपने कभी खयाल किया , सैकड़ों पशु पक्षी हैं, स्नान नहीं करते। वर्षा का पानी बस काफी है। उनके शरीर से दुर्गन्ध आती है! एक आदमी अकेला ऐसा जानवर है जो बहुत दुर्गन्धित है, डीओडरेंट की जरूरत पड़ती है। रोज सुगंध छिड़को, डीओडरेंट साबुनों से नहाओ, सब तरह का इंतजा म करो, फिर भी पांच-सात मिनट किसी के पास बैठ जाओ तो असली खबर मिल जाती है।

आदमी अकेला जानवर है जो दुगन्ध देता है। महावीर के जीवन में जिन लोगों को जानकारी थी, जो उनके निकट थे वे बहुत चकित थे कि उनके शरीर से दुगन्ध नहीं आती। असल में महावीर ऐसे जीते हैं, जैसे पशु पक्षी जीते हैं, उतने ही नियति पर अपने को छोड़कर। जो मर्जी इस विराट की, इस अनंत सत्ता की जो मर्जी, वही उसके लिए रा जी। ऐसा भी नहीं कि पसीना आएगा तो वे परेशान होंगे, कि नाराज ही होंगे। पसीने के लिए राजी होंगे; दुगन्ध आएगी, दुगन्ध के लिए राजी होंगे। असल में राजी होने से एक नयी तरह की सुगंध जीवन में आनी शुरू होती है। एक्सेप्टिबिलिटी। जब हम सब स्वीका र कर लेते हैं तो एक अनूठी सुगंध से जीवन भरना शुरू हो जाता है। सब दुगन्ध अस्वीकार की दुगन्ध है। सब दुगन्ध अस्वीकार की दुगन्ध है और सब कुरूपता अस्वीकार की कुरूपता है। स्वीकार के साथ ही एक अनूठा सौंदर्य है और स्वीकार के साथ ही एक अनूठी सुगंध से जीवन भर जाता है, एक सुवास से जीवन भर जाता है।

महावीर को पानी गिरे तो समझेंगे, स्नान कराना था बादलों को। इसको जब कथाओं में लिखा गया तो हमने बड़ी भूलें कर दीं। क्योंकि कथाएं तो कवि लिखते हैं, और जब लिखते हैं तो फिर प्रतीक आ ैर सारा काव्य उसमें संयुक्त होता है, मिथ बन जाती है। कवियों ने जब इसी बात को कहा तो खराब हो गयी बात। मजा चला गया। क वियों ने कहा — जब देवताओं ने स्नान करवाया, सब बात खराब हो गई, उसका मजा चला गया। वह मजा ही चला गया, बात ही खत्म हो गई। अभिषेक देवताओं ने किया। महावीर खुद तो स्नान नहीं करते तो देवता बेचैन हो गए, वे आए और उन्होंने स्नान करवाया। असल में ऐसी बात नहीं है। बात कुल इतनी ही है कि महावीर ने समस्त पर स्वयं को छोड़ दिया। जब बादल बरसे, स्नान हो गया। लेकिन उन दिनों लोग बादलों को भी देवता कहते थे। इंद्र था, तो कथा में जब लिखा गया तो लिखा गया कि इंद्र आया और उसने स्नान करवाए। ये सब प्रतीक हैं। बात कुल इतनी है कि महावीर ने छोड़ दिया नियति पर, प्रकृति पर सब, जो करना हो कर, मैं राजी हूं।

यह राजी होना अहिंसा है। और इस राजी होने के लिए उन्होंने अनशन को प्राथमिक सूत्र कहा है। क्यों? क्योंकि आप राजी कैसे होंगे, जब तक आपकी सब इंद्रियां आपसे राजी नहीं हैं तो आप प्रकृ ति से राजी कैसे होंगे? इसे थोड़ा देख लें। यह डबल हिस्सा है। आपकी इंद्रियां ही आपसे राजी नहीं है — पेट कहता है, भोजन दो; शरीर कहता है कपड़े, दो; पीठ कहती है, विश्राम चाहिए। आपकी एक-एक इंद्रिय आपसे बगावत किए हुए है। वह कहती है, यह दो, नहीं तो तुम्हारी जिंदगी बेकार है, अकारथ है। तुम बेकार जी रहे हो। मर जाओ, इससे तो बेहतर है अगर एक अच्छा बिस्तर नहीं जुटा पा रहे हो — मर जाओ। आपकी इंद्रियां आपसे नाराजी हैं, आपसे राजी नहीं हैं। और आपको खींच रही हैं, तो आप इस विराट से कैसे राजी हो पाएंगे! इतने छोटे-से शरीर में इतनी छोटी-सी इंद्रियां आपसे राजी नहीं हो पातीं, तो इस विराट शरीर में, इस ब्रह्मांड में आप कैसे राजी हो पाएंगे। और फिर जब तक आपका ध्यान

इंद्रियों से उलझा है तब तक आपका ध्यान उस विराट पर जाएगा भी कैसे, यहीं क्षुद्र में ही अटका रह जाता है। कभी पैर में कांटा

186

अनशन : मध्य के क्षण का अनुभव

गड़ँ जाता है, कभी सिर में दर्द हो जाता है; कभी यह पसली दुखती है, कभी वह इंद्रिय मांग करती है। इन्हीं के पीछे दा ैड़ते-दौड़ते सब समय जाया हो जाता है।

तो महावीर कहते हैं—पहले इन इंद्रियों को अपने से राजी करो। अनशन का वही अर्थ है, पेट को अपने से राजी करो, तुम पेट से राजी मत हो जाओ। जानो भलीभांति कि पेट तुम्हारे लिए है, तुम पेट के लिए नहीं हो। लेकिन बहुत कम लोग हैं जो हिम्मत से यह कह सकें कि हम पेट के लिए नहीं हैं। भलीभांति वह जानते हैं कि हम पेट के लिए हैं, पेट हमारे लिए नहीं है। हम साधन हैं और पेट साध्य हो गया है। पेट का अर्थ, सभी इंद्रियां साध्य हो गयी हैं। खींचती रहती हैं, बुलाती रहती हैं, हम दौड़ते रहते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मकान पर बैठकर खप्पर ठीक कर रहा है। वर्षा आने के करीब है, वह अपने खपड़े ठीक कर रहा है। एक भिखारी ने नीचे से आवाज दी कि नसरुद्दीनच नीचे आओ। नसरुद्दीन ने कहा कि तुझे क्या कहना है, वहीं से कह दे। उसने कहा—माफ करो, नीचे आओ। नसरुद्दीन बेचारा सीढ़ियों से नीचे उतरा, भिखारी के पास गया। भिखारी ने कहा कि कुछ खाने को मिल जाए। नसरुद्दीन ने कहा—नासमझ! यह तो तू नीचे से ही कह सकता था। इसके लिए मुझे नीचे बुलाने की जरूरत? उसने कहा—बड़ा संकोच लगता था, जोर से बोलूंगा, कोई सुन लेगा। नसरुद्दीन ने कहा—बिलकुल ठीक। चल, ऊपर चल। भिखारी बड़ा मोटा तगड़ा था। बामुश्किल चढ़ पाया। जाकर नसरुद्दीन ऊपर अपने खपड़े जमाने में लग गया। थोड़ी देर भिखारी खड़ा रहा। उसने कहा कि भूल गए क्या? नसरुद्दीन ने कहा—भीख नहीं देनी है, यही कहने के लिए ऊपर लाया हूं। उसने कहा—तू आदमी कैसा है, नीचे ही क्यों न कह दिया? नसरुद्दीन ने कहा—बड़ा संकोच लगा। कोई सुन लेगा। जब तू भिखारी होकर मुझे नीचे बुला सकता है तो मैं मालिक होकर तुझे ऊपर नहीं बुला सकता?

पर सब इंद्रियां हमें नीचे बुलाए चली जाती हैं, हम इंद्रियों को ऊपर नहीं बुला पाते। अनशन का अर्थ है—इंद्रियों को हम ऊपर बुलाएंगे, हम इंद्रियों के साथ नीचे नहीं जाएंगे।

आज इतना ही।

कल हम दूसरे तथ्य पर विचार करेंगे। लेकिन पांच मिनट जाएंगे नहीं, बैठे रहेंगे।

ऊणोदरी एवं वृत्ति- संक्षेप

ग्यारहवां प्रवचन

दिनांक 28 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला, पाटकर हाल, बम्बई

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

190

अनशन के बाद महावीर ने दूसरा बाच्ह्य-तप ऊणोदरी कहा है। ऊणोदरी का अर्थ है : अपूर्ण भोजन, अपूर्ण आहार। आश्चर्य होगा कि अनशन के बाद ऊणोदरी के लिए क्यों महावीर ने कहा है! अनशन का अर्थ तो है निराहार। अगर ऊणोदरी को कहना भी था तो अनशन के पहले कहना था, थोड़ा आहार। और आमतौर से जो लोग भी अनशन का अभ्यास करते हैं वे पहले ऊणोदरी का अभ्यास करते हैं। वे पहले आहार को कम करने की कोशिश करते हैं। जब आहार कम में सुविधा हो जाती है, आदत हो जाती है तभी वे अनशन का प्रयोग करते हैं और वह बिलकुल ही गलत है। महा वीर ने जानकर ही पहले अनशन कहा और फिर ऊणोदरी कहा। ऊणोदरी का अभ्यास आसान है। लेकिन एक बार ऊणोदरी का अभ्यास हो जाए तो अभ्यास हो जाने के बाद अनशन का कोई अर्थ, कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। वह मैंने आपसे कल कहा कि अनशन तो जितना आकस्मिक हो और जितना अभ्यासशून्य हो, जितना प्रयत्नरहित हो, जितना अव्यवस्थित और अराजक हो, उतनी ही बड़ी छलांग भीतर दिखाई पड़ती है।
ऊणोदरी को द्वितीय नम्बर महावीर ने दिया है, उसका कारण समझ लेना जरूरी है। ऊणोदरी शब्द का तो इतना ही अर्थ होता है कि जितना पेट मांगे उतना नहीं देना। लेकिन आपको यह पता ही नहीं है कि पेट कितना मांगता है। और अकसर जितना मांगता है वह पेट नहीं मांगता है, वह आपकी आदत मांगती है। और आदत में और स्वभाव में फर्क न हो तो अत्यंत कठिन हो जाएगी बात। जब रोज आपको भूख लगती है, तो आप इस भ्रम में मत रहना कि भूख लगती है। स्वाभाविक भूख तो बहुत मुश्किल से लगती है; नियम से बंधी हुई भूख रोज लग आती है।
जीव विज्ञानी कहते हैं, बायोलाजिस्ट कहते हैं कि आदमी के भीतर एक बायोलाजिकल क्लाक है, आदमी के भीतर एक जैविक घड़ी है। लेकिन आदमी के भीतर एक हैबिट क्लाक भी है, आदत की घड़ी भी है। और जीव विज्ञानी जिस घड़ी की बात करते हैं, जो हमारे गहरे में है उसके ऊपर हमारी आदत की घड़ी जो हमने अभ्यास से निर्मित कर ली है। इस पृथ्वी पर ऐसे कबीले हैं, जो दिन में एक ही बार भोजन करते हैं, हजारों वर्ष से। और जब उन्हें पहली बार पता चला कि ऐसे लोग भी हैं जो दिन में दो बार भोजन करते हैं तो वे बहुत हैरान हुए। उनकी समझ में ही नहीं आया कि दिन में दो बार

भोजन करने का क्या प्रयोजन होता है! इस पृथ्वी पर ऐसे कबीले हैं जो दिन में दो बार भोजन कर रहे हैं हजारों वषोच से। ऐसे भी कबीले हैं जो दिन में पांच बार भी भोजन कर रहे हैं। इसका बायोलाजिकल, जैविक जगत से कोई संबंध नहीं है। हमारी आदतों की बात है। आदतें हम निर्मित कर लेते हैं इसलिए आदतें हमारा दूसरा स्वभाव बन जाती हैं। और हमारा फिर पहला प्राथमिक स्वभाव आदतों के जाल के नीचे ढंक जाता है।

191

महावीर-वाणी भाग : 1

झेन फकीर बोकोजू से किसी ने पूछा कि तुम्हारी साधना क्या है? उसने कहा—जब मुझे भूख लगती है तब मैं भोजन करता हूं। और जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं। और जब मेरी नींद टूटती है तब मैं जग जाता हूं। उस आदमी ने कहा—यह भी कोई साधना है, यह तो हम सभी करते हैं! बोकोजू ने कहा—काश, तुम सभी यह कर लो तो इस पृथ्वी पर बुद्धों की गिनती करना मुश्किल हो जाए। यह तुम नहीं करते हो। तुम्हें जब भूख नहीं लगती, तब भी तुम खाते हो। और जब तुम्हें भूख लगती है तब भी तुम हो सकता है, न खाते हो। और जब तुम्हें नींद नहीं आती, तब तुम सो जाते हो। और यह भी हो सकता है कि जब तुम्हें नींद आती हो तब तुम न सोते हो। और जब तुम्हारी नींद नहीं टूटती तब तुम उसे तोड़ लेते हो, और जब टूटनी चाहिए तब तुम सोए रह जाते हो। यह विकृति हमारे भीतर दोहरी प्रक्रियाओं से हो जाती है। एक तो हमारा स्वभाव है, जैसा प्रकृति ने हमें निर्मित किया। प्रकृति सदा सन्तुलित है। प्रकृति उतना ही मांगती है जितनी जरूरत है। आदतों का कोई अन्त नहीं है। आदतें अभ्यास है, और अभ्यास से कितना ही मांगा जा सकता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन के गांव में एक प्रतियोगिता हुई कि कौन आदमी सबसे ज्यादा भोजन कर सकता है। मुल्ला ने सभी प्रतियोगियों को बहुत पीछे छोड़ दिया। कोई बीस रोटी पर रुक गया , कोई पच्चीस रोटी पर रुक गया, कोई तीस रोटी पर रुक गया। फिर लोग घबराने लगे क्योंकि मुल्ला पचास रोटी पर चल रहा था, और लोग रुक गये थे। लोगों ने कहा—मुल्ला, अब तुम जीत ही गए हो। अब तुम अकारण अपने को परेशान मत करो, अब तुम रुको। मुल्ला ने कहा—मैं एक ही शर्त पर रुक सकता हूं कि मेरे घर कोई खबर न पहुंचाए, नहीं तो मेरा सांझ का भोजन पत्नी नहीं देगी। यह खबर घर तक न जाए कि मैं पचास रोटी खा गया, नहीं तो सांझ का भोजन गड़बड़ हो जाएगा।

आप इस पेट को अप्राकृतिक रूप से भी भर सकते हैं, विक्षिप्त रूप से भी भर सकते हैं। पेट को ही नहीं, यहां उदर केवल सांकेतिक है। हमारी प्रत्येक इंद्रिय का उदर है; हमारी प्रत्येक इंद्रिय का पेट है। और आप प्रत्येक इंद्रिय के उदर को जरूरत से ज्यादा भर सकते हैं। जितना देखने की जरूरत नहीं है उतना हम देखते हैं। जितना सुनने की जरूरत नहीं है उतना हम सुनते हैं। और इसका परिणाम बड़ा अदभुत होता है। वह परिणाम यह होता है कि जितना ज्यादा हम सुनते हैं उतने ही सुनने की क्षमता और संवेदनशीलता कम हो जाती है; इसलिए तृप्ति भी नहीं मिलती है। और जब तृप्ति नहीं मिलती तो विसियस सर्किल पैदा होता है। हम सोचते हैं और ज्यादा देखें तो तृप्ति मिलेगी। और ज्यादा खाएं तो तृप्ति मिलेगी। जितना ज्यादा खाते हैं उतना ही वह जो स्वभाव की भूख है, वह दबती और नष्ट होती है। और वही तृप्त हो सकती है। और जब वह दब जाती है, नष्ट हो जाती है, विस्मृत हो जाती है तो आपकी जो आदत की भूख है, वह कभी तृप्त नहीं हो सकती है क्योंकि उसकी तृप्ति का कोई अंत नहीं है।

निरंतर हम सुनते हैं कि वासनाओं का कोई अंत नहीं है। लेकिन सच्चाई यह है कि स्वभाव में जो भी वासनाएं हैं, उन सबका अंत नहीं है। आदत से जो वासनाएं हम निर्मित करते हैं उनका कोई अंत नहीं है। इसलिए किसी जानवर को आप बीमारी में खाने के लिए राजी नहीं कर सकते। जो होशियार जानवर हैं वे तो जरा बीमार होंगे कि वामिट कर देंगे, वह जो पेट में है उसे बाहर फेंक देंगे। वे प्रकृति से जीते हैं, आदमी आदत से जीता है और आदत से जीने के कारण हम अपने को

रोज-रोज अस्वाभाविक करते चले जाते हैं। यह अस्वाभाविक होना इतना ज्यादा हो जाता है कि हमें याद ही नहीं रहता है कि हमारी प्राकृतिक आकांक्षाएं क्या हैं!

तो बायोलाजिस्ट जिस जीव घड़ी की बात करते हैं, वह हमारे भीतर है। पर हम उसकी सुनें तब! वह हमें कहती है—कब भूख लगी है; वह हमें कहती है कि कब सो जाना है; वह हमें कहती है कि कब उठ आना है। लेकिन हम उसकी सुनते नहीं, हम उसके ऊपर अपनी व्यवस्था देते हैं। तो ऊणोदरी बहुत कठिन है। कठिन इस लिहा ज से है कि आपको पहले तो यही पता नहीं कि स्वाभाविक

भूख कितनी है। तो पहले तो स्वाभाविक भूख खोजनी पड़े। इसीलिए अनशन को पहले रखा है। अनशन आपकी स्वाभाविक भूख को खोजने में सहयोगी होगा। जब आप बिलकुल भूखे रहेंगे —जब भूखे रहेंगे, लेकिन इस संकल्प पर आप पीछे चलेंगे तो आप थोड़े ही समय में पाएंगे कि आदत की भूख तो भूल गई क्योंकि वह असली भूख न थी। वह दो चार दिन पुकार कर आवाज दे दी कि भूख लगी है, ठीक समय पर। फिर दो-चार दिन आप उसकी नहीं सुनेंगे, वह शांत हो जाएगी। फिर आपके भीतर से स्वाभाविक भूख आवाज देगी। जब आप उसकी भी नहीं सुनेंगे तभी आपके भीतर का यंत्र रूपांतरित होगा और आप स्वयं को पचाने के काम में लगेंगे।

तो पहले आदत की भूख टूटेगी। वह तीन दिन में टूट जाती है, चार दिन में टूट जाती है; एक दो दिन किसी को आगे पीछे लगता है। फिर स्वाभाविक भूख की व्यवस्था टूटेगी और तब आप दूसरी व्यवस्था पर जाएंगे। लेकिन अनशन में आपको पता चल जाएगा कि झूठी आवाज क्या थी और सच्ची आवाज क्या थी। क्योंकि झूठी आ वाज मानसिक होगी। ध्यान रहे, सेरिब्रल होगी। जब आपको झूठी भूख लगेगी तो मन कहेगा कि भूख लगी है। और जब असली भूख लगेगी तो पूरे शरीर का रोयां-रोयां कहेगा कि भूख लगी है। अगर झूठी भूख लगी है, अगर आप बारह बजे रोज दोपहर भोजन करते हैं तो ठीक बारह बजे लग जाएगी। लेकिन अगर किसी ने घड़ी एक घंटा आगे पीछे कर दी हो तो घड़ी में जब बारह बजेंगे तब लग जाएगी। आपको पता नहीं होना चाहिए कि अब एक बज गया है, और घड़ी में बारह ही बजे हों, तो आप एक बजे तक बिना भूख लगे रह जाएंगे। क्योंकि आदत की, मन की भूख मानसिक है, शारीरिक नहीं है। वह बाहर की घड़ी देखती रहती है, बारह बज गए, भूख लग गई। ग्यारह ही बजे हों असली में लेकिन घड़ी में बारह बजा दिए गए हों तो आपकी भूख का क्रम तत्काल पैदा हो जाएगा कि भूख लग गयी। मानसिक भूख मानसिक है; झूठी भूख मानसिक है। वह मन से लगती है, शरीर से नहीं। तीन चार दिन के अनशन में मानसिक भूख की व्यवस्था टूट जाती है। शारीरिक भूख शुरू होती है। आपको पहली दफा लगता है कि शरीर से भूख आ रही है। इसको हम और तरह से देख सकते हैं।

मनुष्य को छोड़कर सारे पशु और पक्षियों की यौन व्यवस्था सावधिक है। एक विशेष मौसम में वे यौन पीड़ित होते हैं, कामातुर होते हैं; बाकी वर्षभर नहीं होते। सिर्फ आदमी अकेला जानवर है जो वर्षभर काम पीड़ित होता है। यह काम पीड़ा मानसिक है, मेंटल है। अगर आदमी भी स्वाभाविक हो तो वह भी एक सीमा में, एक समय पर का मातुर होगा; शेष समय कामातुरता नहीं होगी। लेकिन आदमी ने सभी स्वाभाविक व्यवस्था के ऊपर मानसिक व्यवस्था जड़ दी है। सभी चीजों के ऊपर उसने अपना इंतजाम अलग से कर लिया है। वह अलग इंतजाम हमारे जीवन की विकृति है, और हमारी वि क्षिप्तता है। न तो आपको पता चलता है कि आप में कामवासना जगी है, वह स्वाभाविक है, बायोलाजिकल है या साइकोलाजिकल है! आपको पता नहीं चलता क्योंकि बायोलाजिकल कामवासना को आपने जाना ही नहीं है। इसके पहले कि वह जगती, मानसिक कामवासना जग जाती है। छोटे-छोटे बच्चे जो कि चौदह वर्ष में जाकर बायोलाजिकली

मेच्योर होंगे, जैविक अथोच में कामवा सना के योग्य होंगे, लेकिन चौदह वर्ष के पहले ही मानसिक वासना के वे बहुत पहले योग्य और समर्थ हो गए होते हैं।
सुना है मैंने कि एक बूढ़ी औरत अपने नाती-पोतों को लेकर अजायबघर में गयी। वहां स्टार्क नाम के पक्षी के बाबत यूरोप में कथा है, बच्चों को समझाने के लिए कि जब घर में बच्चे पैदा होते हैं तो बड़े-बूढ़ों से बच्चे पूछते हैं कि बच्चे कहां से आए? तो बड़े-बूढ़े कहते हैं—यह स्टार्क पक्षी ले आया। वहां अजायबघर में स्टार्क पक्षी के पा स वह बूढ़ी गयी। उन बच्चों ने पूछा—यह कौन-सा पक्षी है? उस बूढ़ी ने कहा—यह वही पक्षी है जो बच्चों को लाता है। छोटे-छोटे बच्चे हैं, वे एक दूसरे की तरफ देखकर हंसे, और

एक बच्चे ने अपने पड़ौसी बच्चे से कहा कि क्या इस ना समझ बूढ़ी को हम असली राज बता दें? मे वी टैल हर दि रियल सीक्रेट, दिस पुअर ओल्ड लेडी। इसको अभी तक पता नहीं इस गरीब को, यह अभी स्टार्क पक्षी से समझ रही है कि बच्चे आते हैं।
चारों तरफ की हवा, चारों तरफ का वातावरण बहुत छोटे-छोटे बच्चों के मन में एक मानसिक कामातुरता को जगा देता है। फिर यह मानसिक कामातुरता उनके ऊपर हावी हो जाती है, यह जीवनभर पीछा करती है। और उन्हें पता ही नहीं चलेगा कि जो बायोलाजिकल अर्ज थी, वह जो जैविक वासना थी, वह उठ ही नहीं पायी, या जब उठी तब उन्हें पता नहीं चला। और तब एक अदभुत घटना घटेगी, और वह अदभुत घटना यह है कि वे कभी तृप्त न होंगे। क्योंकि मानसिक कामवासना कभी तृप्त नहीं हो सकती है, जो वास्तविक नहीं है वह तृप्त नहीं हो सकता। असली भूख तृप्त हो सकती है; झूठी भूख तृप्त नहीं हो सकती। इसलिए वासनाएं तो तृप्त हो सकती हैं लेकिन हमारे द्वारा जो कल्टीवेटेड डिजायर्स हैं, हमने ही जो आयोजन कर ली हैं वासनाएं, वे कभी तृप्त नहीं हो सकतीं।
इसलिए पशु-पक्षी, वे भी वासनाओं में जीते हैं, लेकिन हमारे जैसे तना वग्रस्त नहीं हैं। कोई तनाव नहीं दिखाई पड़ता उनमें। गाय की आंख में झांककर देखिए, वह कोई निर्वासना को उपलब्ध नहीं हो गयी है, कोई ऋषि-मुनि नहीं हो गई है, कोई तीथच्कर नहीं हो गयी है, पर उसकी आंखों में वही सरलता होती है जो तीथच्कर की आंखों में होती है। बात क्या है? वह तो वासना में जी रही है। लेकिन फिर भी उसकी वासना प्राकृतिक है। प्राकृतिक वासना तनाव नहीं लाती है। ऊपर नहीं ले जा सकती प्राकृतिक वासना, लेकिन नीचे भी नहीं गिराती। ऊपर जाना हो तो प्राकृतिक वासना से ऊपर उठना होता है। लेकिन अगर नीचे गिरना हो तो प्राकृतिक वासना के ऊपर अप्राकृतिक वासना को स्थापित करना होता है।
तो अनशन को महावीर ने पहले कहा था कि झूठी भूख टूट जाए, असली भूख का पता चल जाए, जब रोयां-रोयां पुकारने लगे। आपको प्यास लगती है। जरूरी नहीं है कि वह प्यास असली हो। हो सकता है अखबार में कोके का ऐडवरटाइजमेंट देखकर लगी हो। जरूरी नहीं है कि वह प्यास वास्तविक हो। अखबार में देखकर भी—िलव्वा लिटिल हाट लग गयी हो। वैज्ञानिक, विशेषकर विज्ञापन विशेषज्ञ भली-भांति जानते हैं कि आपको झूठी प्या सें पकड़ायी जा सकती हैं और वे आपको झूठी प्यासें पकड़ा रहे हैं। आज जमीन पर जितनी चीजें बिक रही हैं, उनकी कोई जरूरत नहीं है। आज करीब-करीब दुनिया की पचास प्रतिशत इंडच्सटरी उन जरूरतों को पूरा करने में लगी हैं जो जरूरतें हैं ही नहीं। पर वे पैदा की जा सकती हैं। आदमी को राजी किया जा सकता है कि जरूरतें हैं। और एक दफा उसके मन में खयाल आ जाए कि जरूरत है, तो जरूरत बन जाती है।

प्यास तो आपको पता ही नहीं है, वह तो कभी रेगिस्तान में कल्पना करें कि किसी रेगिस्तान में भटक गए हैं आप। पानी का कोई पता नहीं है। तब आपको प्यास लगेगी, वह आपके रोएं-रोएं की प्यास होगी। वह आपके शरीर का कण-कण मांगेगा। वह मानसिक नहीं हो सकता, वह किसी अखबार के विज्ञापन को पढ़कर नहीं लगी होगी। तो अनशन आपके भीतर वास्तविक को उघाड़ने में सहयोगी होगा। और जब वास्तविक उघड़ जाए तो महावीर कहते हैं, ऊणोदरी। जब वास्तविक उघड़ जाए तो वास्तविक से कम लेना। जितनी वास्तविक—अवास्तविक भूख को तो पूरा करना ही मत, वह तो खतरनाक है। वास्तविक भूख का जब पता चल जाए तब वास्तविक भूख से भी थोड़ा कम लेना, थोड़ी जगह खाली रखना। इस खाली रखने में क्या राज हो सकता है? आदमी के मन के नियम समझना जरूरी है।

हमारे मन के नियम ऐसे हैं कि हम जब भी कोई काम में लगते हैं, या किसी वासना की तृप्ति में या किसी भूख की तृप्ति में लगते हैं, तब एक सीमा हम पार करते हैं। वहां तक भूख या वासना ऐच्छिक होती है, वालंटरी होती है। उस सीमा के बाद नानवालंटरी

एक बच्चे ने अपने पड़ौसी बच्चे से कहा कि क्या इस ना समझ बूढ़ी को हम असली राज बता दें? मे वी टैल हर दि रियल सीक्रेट, दिस पुअर ओल्ड लेडी। इसको अभी तक पता नहीं इस गरीब को, यह अभी स्टार्क पक्षी से समझ रही है कि बच्चे आते हैं।

चारों तरफ की हवा, चारों तरफ का वातावरण बहुत छोटे-छोटे बच्चों के मन में एक मानसिक कामातुरता को जगा देता है। फिर यह मानसिक कामातुरता उनके ऊपर हावी हो जाती है, यह जीवनभर पीछा करती है। और उन्हें पता ही नहीं चलेगा कि जो बायोलाजिकल अर्ज थी, वह जो जैविक वासना थी, वह उठ ही नहीं पायी, या जब उठी तब उन्हें पता नहीं चला। और तब एक अदभुत घटना घटेगी, और वह अदभुत घटना यह है कि वे कभी तृप्त न होंगे। क्योंकि मानसिक कामवासना कभी तृप्त नहीं हो सकती है, जो वास्तविक नहीं है वह तृप्त नहीं हो सकता। असली भूख तृप्त हो सकती है; झूठी भूख तृप्त नहीं हो सकती। इसलिए वासनाएं तो तृप्त हो सकती हैं लेकिन हमारे द्वारा जो कल्टीवेटेड डिजायर्स हैं, हमने ही जो आयोजन कर ली हैं वासनाएं, वे कभी तृप्त नहीं हो सकतीं।

इसलिए पशु-पक्षी, वे भी वासनाओं में जीते हैं, लेकिन हमारे जैसे तना वग्रस्त नहीं हैं। कोई तनाव नहीं दिखाई पड़ता उनमें। गाय की आंख में झांककर देखिए, वह कोई निर्वासना को उपलब्ध नहीं हो गयी है, कोई चषि-मुनि नहीं हो गई है, कोई तीथच्कर नहीं हो गयी है, पर उसकी आंखों में वही सरलता होती है जो तीथच्कर की आंखों में होती है। बात क्या है? वह तो वासना में जी रही है। लेकिन फिर भी उसकी वासना प्राकृतिक है। प्राकृतिक वासना तनाव नहीं लाती है। ऊपर नहीं ले जा सकती प्राकृतिक वासना, लेकिन नीचे भी नहीं गिराती। ऊपर जाना हो तो प्राकृतिक वासना से ऊपर उठना होता है। लेकिन अगर नीचे गिरना हो तो प्राकृतिक वासना के ऊपर अप्राकृतिक वासना को स्थापित करना होता है।

तो अनशन को महावीर ने पहले कहा था कि झूठी भूख टूट जाए, असली भूख का पता चल जाए, जब रोयां-रोयां पुकारने लगे। आपको प्यास लगती है। जरूरी नहीं है कि वह प्यास असली हो। हो सकता है अखबार में कोके का ऐडवरटाइजमेंट देखकर लगी हो। जरूरी नहीं है कि वह प्यास वास्तविक हो। अखबार में देखकर भी—ि लव्वा लिटिल हाट लग गयी हो। वैज्ञानिक, विशेषकर विज्ञापन विशेषज्ञ भली-भांति जानते हैं कि आपको झूठी प्या सें पकड़ायी जा सकती हैं और वे आपको झूठी प्यासें पकड़ा रहे हैं। आज जमीन पर जितनी चीजें बिक रही हैं, उनकी कोई जरूरत नहीं है। आज करीब-करीब दुनिया की पचास प्रतिशत इंडच्सटरी उन जरूरतों को पूरा करने में लगी हैं जो जरूरतें हैं ही नहीं। पर

वे पैदा की जा सकती हैं। आदमी को राजी किया जा सकता है कि जरूरतें हैं। और एक दफा उसके मन में खयाल आ जाए कि जरूरत है, तो जरूरत बन जाती है।

प्यास तो आपको पता ही नहीं है, वह तो कभी रेगिस्तान में कल्पना करें कि किसी रेगिस्तान में भटक गए हैं आप। पानी का कोई पता नहीं है। तब आपको प्यास लगेगी, वह आपके रोएं-रोएं की प्यास होगी। वह आपके शरीर का कण-कण मांगेगा। वह मानसिक नहीं हो सकता, वह किसी अखबार के विज्ञापन को पढ़कर नहीं लगी होगी। तो अनशन आपके भीतर वास्तविक को उघाड़ने में सहयोगी होगा। और जब वास्तविक उघड़ जाए तो महावीर कहते हैं, ऊणोदरी। जब वास्तविक उघड़ जाए तो वास्तविक से कम लेना। जितनी वास्तविक—अवास्तविक भूख को तो पूरा करना ही मत, वह तो खतरनाक है। वास्तविक भूख का जब पता चल जाए तब वास्तविक भूख से भी थोड़ा कम लेना, थोड़ी जगह खाली रखना। इस खाली रखने में क्या राज हो सकता है? आदमी के मन के नियम समझना जरूरी है।

हमारे मन के नियम ऐसे हैं कि हम जब भी कोई काम में लगते हैं, या किसी वासना की तृप्ति में या किसी भूख की तृप्ति में लगते हैं, तब एक सीमा हम पार करते हैं। वहां तक भूख या वासना ऐच्छिक होती है, वालंटरी होती है। उस सीमा के बाद नानवालंटरी

हो जाती है। जैसे हम पानी को गर्म करते हैं। पानी सौ डिग्री पर जाकर भाप बनता है। लेकिन अगर आप निन्यानबे डिग्री पर रुक जाएं तो पानी वापस पानी ही ठण्डा हो जाएगा। लेकिन अगर आप सौ डिग्री के बाद रुकना चाहें तो फिर पानी वापस नहीं लौटेगा, वह भाप बन चुका होगा। एक डिग्री का फासला फिर लौटने नहीं देगा, फिर नो-रिटर्न प्वाइंट आ जाता है। अगर आप सौ डिग्री के पहले निन्यानबे डिग्री पर रुक गए तो पानी गर्म होकर फिर ठंडा होकर पानी रह जाएगा। भाप नहीं बनेगा। आप रुक सकते हैं, अभी रुकने का उपाय है। सौ डिग्री के बाद अगर आप रुकते हैं तो पानी भाप बन चुका होगा। फिर पानी आपको मिलेगा नहीं। आपके हाथ के बाहर बात हो गयी।

जब आप क्रोध के विचार से भरते हैं, तब भी एक डिग्री आती है, उसके पहले आप रुक सकते थे। उस डिग्री के बाद आप नहीं रुक सकेंगे क्योंकि आपके भीतर वालंटरी मेकेनिज्म जब अपनी वृत्ति को नानवालंटरी मेकेनिज्म को सौंप देता है, फिर आपके रुकने के बाहर बात हो जाती है। इसे ठीक से समझ लें। जब ऐच्छिक यंत्र सबसे पहले आपके भीतर कोई भी चीज इच्छा की भांति शुरू होती है। एक सीमा है, अगर आप इच्छा को बढ़ाए ही चले गए तो एक सीमा पर इच्छा का यंत्र आपके भीतर जो आपकी इच्छा के बाहर चलनेवाला यंत्र है, उसको सौंप देता है। उसके हाथ में जाने के बाद आप नहीं रोक सकते। अगर आप क्रोध एक सीमा के पहले रोक लिए तो रोक लिए, एक सीमा के बाद क्रोध नहीं रोका जा सकेगा, वह प्रगट होकर रहेगा। अगर आपने कामवासना को एक सीमा पर रोक लिया तो ठीक, अन्यथा एक सीमा के बाद कामवासना आ पके ऐच्छिक यंत्र के बाहर हो जाएगी। फिर आप उसको नहीं रोक सकते। फिर आप विक्षिप्त की तरह उसको पूरा करके ही रहेंगे, फिर उसे रोकना मुश्किल है।

ऊणोदरी का अर्थ है—ऐच्छिक यंत्र से अनैच्छिक यंत्र के हाथ में जब जाती है कोई बात तो उसी सीमा पर रुक जाना। इसका मतलब इतना ही नहीं है केवल कि आप तीन रोटी रोज खाते हैं तो आज ढाई रोटी खा लेंगे तो ऊणोदरी हो जाएगी। नहीं, ऊणोदरी का अर्थ है — इच्छा के भीतर रुक जाना, आपकी सामर्थ्य के भीतर रुक जाना । अपनी सामर्थ्य के बाहर किसी बात को न जाने देना, क्योंकि आपकी सामर्थ्य के बाहर जाते ही आप गुलाम हो जाते हैं। फिर आप मालिक नहीं रह जाते। लेकिन मन पूरी कोशिश करेगा कि क्लाइमेक्स तक ले चलो, किसी भी चीज को उसके चरम तक ले चलो। क्योंकि

मन को तब तक तृप्ति नहीं मालूम पड़ती जब तक कोई चीज चरम पर न पहुंच जाये। और मजा यह है कि चरम पर पहुंच जाने के बाद सिवाय विषाद, फ्रच्सटरेशन के कुछ हाथ नहीं लगता। तृप्ति हाथ नहीं लगती। अगर मन ने भोजन के संबंध में सोचना शुरू किया तो वह उस सीमा तक खायेगा जहां तक खा सकता है। और फिर दुखी, परेशान और पीड़ित होगा।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने बुढ़ापे में अपने गांव में मजिच्सटरेट हो गया। पहला जो मुकदमा उसके हाथ में आया वह एक आदमी का था जो करीब-करीब नग्न, सिर्फ अंडरवियर पहने अदालत में आकर खड़ा हुआ । और उसने कहा कि मैं लूट लिया गया हूं और तुम्हारे गांव के पास ही लूटा गया हूं।

मुल्ला ने कहा—मेरे गांव के पास ही लूटे गए हो? क्या-क्या तुम्हा रा लूट लिया गया है?

उसने सब फेहरिश्त बतायी। मुल्ला ने कहा—लेकिन जहां तक मैं देख सकता हूं, तुम अंडरवियर पहने हुए हो।

उसने कहा—हां, मैं अंडरवियर पहने हुए हूं।

मुल्ला ने कहा—मेरी अदालत तुम्हारा मुकदमा लेने से इनकार करती है। वी नैवर डू ऐनीथिंग हाफ-हार्टेडली एण्ड पार्शियली। हमारे गांव में कोई आदमी आधा काम नहीं करता, न आधे हृदय से काम करता है। अगर हमारे गांव में लूटे गये थे तो अंडरवियर भी निकाल लिया गया होता। तुम किसी और गांव के आदमियों के द्वारा लूटे गए हो। तुम्हारा मुकदमा लेने से मैं इनकार करता हूं।

ऐसा कभी हमारे गांव में हुआ ही नहीं है। जब भी हम कोई काम करते हैं, हम पूरा ही करते हैं।

जिस गांव में हम रहते हैं — इच्छाओं के जिस गांव में हम रहते हैं वहां भी हम पूरा ही काम करते हैं। वहां भी इंच भर हम पहले नहीं लौटते। और चरम के बाद सिवाय विषाद के कुछ हाथ नहीं लगता। लेकिन जैसे ही हम किसी वासना में बढ़ना शुरू करते हैं, वासना खींचती है, और जितना हम आगे बढ़ते हैं, उसके खींचने की शक्ति बढ़ती जाती है और हम कमजोर होते चले जाते हैं।

महावीर कहते हैं—चरम पर पहुंचने के पहले रुक जाना। उसका मतलब यह है कि जब किसी को क्रोध इतना आ गया हो कि वह हाथ उठाकर आपको चोट ही मारने लगे—तब महावीर कहते हैं—जब हाथ दूसरे के सिर के करीब ही पहुंच जाए तब रुक जाना। तब तुम्हारी मालकियत का तुम्हें अनुभव होगा। उस वक्त रुकना सर्वाधिक कठिन है। बहुत कठिन है। उस वक्त मन कहेगा—अब क्या रुकना?

मुसलमान खलीफा अली के संबंध में एक बहुत अदभुत घटना है। युद्ध के मैदान में लड़ रहा है। वषोच से यह युद्ध चल रहा है। वह घड़ी आ गयी जब उसने अपने दुश्मन को नीचे गिरा लिया और उसकी छाती पर बैठ गया और उसने अपना भाला उठाया और उसकी छाती में भोंकने को है। एक क्षण की और देर थी कि भाला दुश्मन की छाती में आरपार हो जाता। उस दुश्मन की, जो वषोच से परेशान किए हुए था और इसी क्षण की प्रतीक्षा थी अली को। लेकिन उस नीचे पड़े दुश्मन ने, जैसे ही भाला अली ने भोंकने के लिए उठाया, अली के मुंह पर थूक दिया। अली ने अपना मुंह पर पड़ा थूक पोंछ लिया, भाला वापस अपने स्थान पर रख दिया, और उस आदमी से कहा कि कल अब हम फिर लड़ेंगे। पर उस आदमी ने कहा—यह मौका अली तुम चूक रहे हो। मैं तुम्हारी जगह होता तो नहीं चूक सकता था। इसकी तुम वषोच से प्रतीक्षा करते थे। मैं भी प्रतीक्षा करता था। संयोग कि तुम ऊपर हो, मैं नीचे हूं। प्रतीक्षा मेरी भी यही थी। अगर तुम्हारी जगह मैं होता तो यह उठा हुआ भाला वापस नहीं लौट सकता था। इसी के लिए तो दो वर्ष से परेशान हैं। तुम क्यों छोड़ कर जा रहे हो?

अली ने कहा—मुझे मुहम्मद की आज्ञा है कि अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। एक तो हिंसा करना मत और अगर हिंसा भी करो तो क्रोध में मत करना। अभी तक मैं शान्ति से लड़ रहा था। लेकिन तेरा मेरे ऊपर थूक देना, मेरे मन में क्रोध उठ आया। अब कल हम फिर लड़ेंगे। अभी तक मैं शान्ति से लड़ रहा था, अभी तक कोई क्रोध की आग न थी। ठीक था, सब ठीक था। निपटारा करना था, कर रहा था। हल निकालना था, निकाल रहा था। लेकिन कोई क्रोध की लपट न थी। लेकिन तूने थूककर क्रोध की लपट पैदा कर दी। अब अगर इस वक्त मैं तुझे मारता हूं तो यह मारना व्यक्तिगत और निजी है। मैं मार रहा हूं अब। अब यह लड़ाई किसी सिद्धान्त की लड़ाई नहीं है। इसलिए अब कल फिर लड़ेंगे।

कल तो वह लड़ाई नहीं हुई क्योंकि उस आदमी ने अली के पैर पकड़ लिए। उसने कहा—मैं सोच भी नहीं सकता था कि वषोंच के दुश्मन की छाती के पास आया हुआ भाला किसी भी कारण से लाैट सकता है, और ऐसे समय में तो लौट ही नहीं सकता जब मैंने थूका था, तब तो और जोर से चला गया होता।

मन के नियम हैं। ऊणोदरी का अर्थ है—जहां मन सर्वाधिक जोर मारे, उसी सीमा से वापस लौट जाएं। जहां मन कहे कि एक और, और जहां सर्वाधिक जोर मारता हो। अब इस सन्तुलन को खोजना पड़ेगा। इसे रोज-रोज प्रयोग करके प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर खोज लेगा कि कब मन बहुत जोर मारता है, और कब इच्छा के बाहर बात हो जाती है। फिर ऐसा नहीं होता कि आप मार रहे हैं, ऐसा होता है कि आपसे मारा जा रहा है। फिर ऐसा नहीं होता कि आपने चांटा मारा, फिर ऐसा होता है कि अब आप चांटा

196

ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप

मारने से रुक ही न सकते थे। वही जगह लौट आने की है, वही ऊण की जगह है। वहीं से वापस लौट आने का नाम है अपूर्ण पर छूट जाना।

ऊणोदरी का अर्थ है—अपूर्ण रह जाए उदर, पूरा न भर पाए। तो आप चार रोटी खाते हैं, तीन खा लें तो उससे कुछ ऊणोदरी नहीं हो जाएगी। पहले वास्तविक भूख खोज लें, फिर वास्तविक भूख को खोजकर भोजन करने बैठें। किसी भी इंद्रिय का भोजन हो, यह सवाल नहीं है। फिल्म देखने आप गए हैं। नब्बे प्रतिशत फिल्म आपने देख ली है, तभी असली वक्त आता है जब छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है क्योंकि अन्त क्या होगा! लोग उपन्यास पढ़ते हैं, तो अधिक लोग पहले अंत पढ़ लेते हैं कि अंत क्या होगा! इतनी जिज्ञासा मन की होती है अंत की । पहले अन्त पढ़ लेते हैं, फिर शुरू करते हैं। लेकिन उपन्यास पढ़ रहे हैं और दो पन्ने रह गए हैं और डिटेक्टिव कथा है और अब इन दो पन्नों में ही सारा राज खुलने को है, और आप रुक जाएं तो ऊणोदरी है। ठहर जाएं, मन बहुत धक्के मारेगा कि अब तो मौका ही आया था जानने का। यह इतनी देर तो हम केवल भटक रहे थे, अब राज खुलने के करीब था। डिटेक्टिव कथा थी, अब तो राज खुलता। अभी रुक जाएं और भूल जाएं।

फिल्म देख रहे हैं, आखिरी क्षण आ गया है। अभी सब चीजें क्लाइमेक्स को छूएंगी। उठ जाएं और लौटकर याद भी न आए कि अंत क्या हुआ होगा। किसी से पूछने को भी न जाएं कि अंत क्या हुआ। ऐसे चुपचाप उठकर चले जाएं, जैसे अंत हो गया। ऊणोदरी का अर्थ आपके खयाल में दिलाना चाहता हूं। ऐसे उठकर चले जाएं अंत होने के पहले, जैसे अंत हो गया। तो आपको अपने मन पर एक नए ढंग का काबू आना शुरू हो जाएगा। एक नई शक्ति आ पको अनुभव होगी। आपकी सारी शक्ति की क्षीणता, आपकी शक्ति का खोना, डिस्सीपेशन, आपकी शक्ति का रोज-रोज व्यर्थ नष्ट होना, आपकी मन की इस आदत के कारण है जो हर चीज को पूर्ण पर ले जाने की कोशिश में लगी है। महावीर कहते हैं—पूर्ण

पर जाना ही मत। उसके एक क्षण पहले, एक डिग्री पहले रुक जाना। तो तुम्हारी शक्ति जो पूर्ण को, चरम को छूकर बिखरती है आ ैर खोती है, वह नहीं बिखरेगी, नहीं खोएगी। तुम निन्यानबे डिग्री पर वापस लौट आओगे, भाप नहीं बन पाओगे। तुम्हारी शक्ति ि फर संगृहीत हो जाएगी। तुम्हारे हाथ में होगी, और तुम धीरे-धीरे अपनी शक्ति के मालिक हो जाओगे।

इसे सब तरफ प्रयोग किया जा सकता है। प्रत्येक इंद्रिय का उदर है, प्रत्येक इंद्रिय का अपना पेट है, और प्रत्येक इंद्रिय मांग करती है कि मेरी भूख को पूरा करो। कान कहते हैं संगीत सुनो; आंख कहती है सौंदर्य देखो; हाथ कहते हैं कुछ स्पर्श करो। सब इंद्रियां मांग करती हैं कि हमें भरो। प्रत्येक इंद्रिय पर ऊण पर ठहर जाना इंद्रिय विजय का मार्ग है। बिलकुल ठहर जाना आसान है। ध्यान रहे, किसी उपन्यास को बिलकुल न पढ़ना आसान है। नहीं पढ़ा बात खत्म हो गयी। लेकिन किसी उपन्यास को अंत के पहले तक पढ़कर रुक जाना ज्यादा कठिन है। इसलिए ऊणोदरी को नम्बर दो पर रखा है। किसी फिल्म को न देखने में इतनी अड़चन नहीं है; लेकिन किसी फिल्म को देखकर और अंत के पहले ही उठ जाने में ज्यादा अड़चन है। किसी को प्रेम ही नहीं किया, इसमें ज्यादा अड़चन नहीं है; लेकिन प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुंचे, उसके पहले वापस लौट जाना अति कठिन है। उस वक्त आप विवश हो जाएंगे, आब्सेस्ड हो जाएंगे, उस वक्त तो ऐसा लगेगा कि चीज को पूरा हो जाने दो। जो भी हो रहा है उसे पूरा हो जाने दो। इस वृत्ति पर संयम मनुष्य की शक्तियों को बचाने की अत्यंत वैज्ञानिक व्यवस्था है।

ऊणोदरी अनशन का ही प्रयोग है लेकिन थोड़ा कठिन है। आमतौर से आ पने सुना और समझा होगा कि ऊणोदरी सरल प्रयोग है।,, जिससे अनशन नहीं बन सकता वह ऊणोदरी करे। मैं आपसे कहता हूं —ऊणोदरी अनशन से कठिन प्रयोग है। जिससे अनशन बन सकता है, वही ऊणोदरी कर सकता है।

197

महावीर-वाणी भाग : 1

महावीर का तीसरा सूत्र है, वृत्ति-संक्षेप। वृत्ति- संक्षेप से परंपरागत जो अर्थ लिया जाता है वह यह है कि अपनी वृत्तियों और वासनाओं को सिकोड़ना। अगर दस कपड़ों से काम चल सकता है तो ग्यारह पास में न रखना। अगर एक बार भोजन से काम चल सकता है तो दो बार भोजन न करना। ऐसा साधारण अर्थ है, लेकिन वह अर्थ केच्नदर से संबंधित न होकर केवल परिधि से संबंधित है। नहीं, महावीर का अर्थ गहरा है और दूसरा है। इसे थोड़ा गहरे में समझना पड़ेगा।

वृत्ति-संक्षेप एक प्रक्रिया है। आपके भीतर प्रत्येक वृत्ति का केच्नदर है—जैसे, सेक्स का एक केच्नदर है, भूख का एक केच्नदर है, प्रेम का एक केच्नदर है, बुद्धि का एक केच्नदर है। लेकिन साधारणतः हमारे सा रे केच्नदर कंच्फयूज्ड हैं क्योंकि एक केच्नदर का काम दूसरे केच्नदर से हम लेते रहते हैं। दूसरे का तीसरे से लेते रहते हैं। काम भी नहीं हो पाता है, और केच्नदर की शक्ति भी व्यय और व्यर्थ नष्ट होती है। गुरजिएफ कहा करता था—गुरजिएफ ने वृत्ति-संक्षेप के प्रयोग को बहुत आधारभूत बनाया था अपनी साधना में। गुरजिएफ कहा करता था कि पहले तो तुम अपने प्रत्येक केच्नदर को स्पष्ट कर लो और प्रत्येक केच्नदर के काम को उसी को सौंप दो, दूसरे केच्नदर से काम मत लो। अब जैसे कामवासना है तो उसका अपना केच्नदर है प्रकृति में, लेकिन आप मन से उस केच्नदर का काम लेते हैं, सेरिब्रल हो जाता है सेक्स, मन में ही सोचते रहते हैं। कभी-कभी तो इतना से रिब्रल हो जाता है कि वास्तविक कामवासना उतना रस नहीं देती, जितना कामवासना का चिंतन रस देता है। अब यह बहुत अजीब बात है। यह ऐसा हुआ है कि वास्तविक भोजन रस नहीं देता, जितना भोजन का चिन्तन रस देता है। यह ऐसे हुआ है कि पहाड़ पर जाने में उतना मजा नहीं आता जितना घर बैठकर पहाड़ पर जाने के संबंध में सोचने में, सपने देखने में मजा आता है।

और हम प्रत्येक केन्नदर को ट्रांसफर करते हैं, दूसरे केन्नदर पर सरका देते हैं; इससे खतरे होते हैं। दो खतरे होते हैं—एक खतरा तो यह होता है कि जिस केन्नदर का काम नहीं है, अगर उस पर हम कोई दूसरा काम डाल देते हैं तो वह उसे पूरी तरह तो कर नहीं सकता, वह उसका काम नहीं है। वह कभी नहीं कर सकता। इसलिए सदा अतृप्त बना रहेगा, तृप्त कभी नहीं हो सकता है। कहीं बुद्धि से सोच-सोचकर भूख तृप्त हो सकती है? कहीं कामवासना का ि चंतन कामवासना को तृप्त कर सकता है? कैसे करेगा, वह उस केन्नदर का काम ही नहीं है। वह तो ऐसा है जैसे कोई आदमी सिर के बल चलने की कोशिश करे। काम पैर का है, वह सिर से चलने की कोशिश करे। तो दोहरे दुष्परिणाम होंगे। जिस केन्नदर से आप दूसरे केन्नदर का काम ले रहे हैं, वह कर नहीं सकता है, एक। जो वह कर सकता था वह भी नहीं कर पाएगा। क्योंकि आप उसको ऐसे काम में लगा रहे हैं, उसकी शक्ति उसमें व्यय हो तो जो वह कर सकता था, नहीं कर पाएगा। और जिस केन्नदर से आपने का म छीन लिया है, उस पर शक्ति इकट्ठी होती रहेगी। वह धीरे-धीरे विक्षिप्त होने लगेगा, क्योंकि उससे आप काम नहीं ले रहे हैं। आप पूरे के पूरे कंच्फयूज्ड हो जाएंगे। आप का व्यक्तित्व एक उलझाव हो जाएगा, एक सुलझाव नहीं।

गुरजिएफ कहता था—प्रत्येक केन्नदर को उसके काम पर सीमित कर दो। महा वीर का वृत्ति-संक्षेप से यही अर्थ है। प्रत्येक वृत्ति को उसके केन्नदर पर संक्षिप्त कर दो, उसके केन्नदर के आसपास मत फैलने दो, मत भटकने दो। तो व्यक्तित्व में एक सुगढ़ता आती है, स्पष्टता आती है और आप कुछ भी करने में समर्थ हो पाते हैं। अन्यथा हमारी सारी वृत्तियां करीब-करीब बुद्धि के आसपास इकट्ठी हो गयी हैं। तो बुद्धि जिस काम को कर सकती है वह नहीं कर पाती है, क्योंकि आप उससे दूसरे काम ले रहे हैं। और जो काम आप ले रहे हैं वह बुद्धि कर नहीं सकती क्योंकि वह उसकी प्रकृति के बाहर है, वह उसका काम नहीं है। इस दुनिया में जो इतनी बुद्धिहीनता है उसका कारण यह नहीं है कि इतने बुद्धिहीन आदमी पैदा होते हैं। इस दुनिया में जो इतनी स्टुपिडिटी दिखाई पड़ती है, इतनी जड़ता दिखाई पड़ती है, उसका यह कारण नहीं है कि इतने बुद्धि ि रक्त लोग पैदा होते हैं, उसका कुल कारण इतना है कि बुद्धि

जो काम कर सकती है वह आप उससे लेते नहीं। जो नहीं कर सकती है वह आप उससे लेते हैं। बुद्धि धीरे-धीरे मंद होती चली जाती है।

थोड़ा सोचें—कितने आदमी दुनिया में लंगड़े हैं, या कितने आदमी दुनिया में अंधे हैं, या कितने आदमी दुनिया में बहरे हैं? अगर दुनिया में बुद्धू भी होंगे तो वही अनुपात होगा, उससे ज्यादा नहीं हो सकता। लेकिन बुद्धू बहुत दिखाई पड़ते हैं। बुद्धि नाममात्र को पता नहीं चलती। क्या कारण हो सकता है, इतनी बुद्धि की कमी का? इसकी कमी का कारण यह नहीं है कि बुद्धि कम है, इसकी कमी का कुल कारण इतना है कि बुद्धि से जो काम लेना था वह आपने ि लया नहीं, जो नहीं लेना था वह आपने लिया है। इससे बुद्धि धीरे-धीरे जड़ता को उपलब्ध हो जाती है। मनसविद कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिभा लेकर पैदा होता है, और प्रत्येक व्यक्ति जड़ होकर मरता है। बच्चे प्रतिभाशाली पैदा होते हैं और बूढ़े प्र तिभाहीन मरते हैं। होना उल्टा चाहिए कि जितनी प्रतिभा लेकर बच्चा पैदा हुआ था उसमें और निखार आता, अनुभव उसमें और रंग जोड़ते। जीवन की यात्रा उसको और प्रगाढ़ करती। पर यह नहीं होता।

पिछले महायुद्ध में दस लाख सैनिकों का बुद्धि माप किया गया तो पाया गया कि साढ़े तेरह वर्ष उनकी मानसिक आयु थी — मानसिक आयु साढ़े तेरह वर्ष थी। उनकी उम्र पचास साल होगी शरीर से, किसी की चालीस होगी, किसी की तीस

होगी और तब बहुत हैरान करनेवाला निष्कर्ष अनुभव में आया कि शरीर तो बढ़ता जाता है और बुद्धि मालूम होती है, तेरह-चौदह के करीब ठहर जाती है। उसके बाद नहीं बढ़ती।

मगर यह औसत है। इस औसत में बुद्धिमान सम्मिलित हैं। यह औसत वैसे ही है जैसे हिन्दुस्तान में आम आदमी की औसत आमदनी का पता लगाया जाए तो उसमें बिड़ला भी और डालमियां भी और साहू भी सब सम्मिलित होंगे। और जो औसत निकलेगी वह आम आदमी की औसत नहीं है क्योंकि उसमें धनपति भी सम्मिलित होंगे। अगर हम धनपतियों को अलग कर दें और आम आदमी की औसत पता लगाएं तो बहुत कम पायी जायेगी, वह बहुत कम हो जाएगी। नेहरू और लोहिया के बीच वही विवाद वषोच तक चलता रहा पार्लियामेंट में। क्योंकि नेहरू जितना बताते थे, लोहिया उससे बहुत कम बताते थे। लोहिया कहते थे—पांच-दस आदमियों को छोड़ दें, ये औसत आदमी नहीं हैं, इनका क्या हिसाब रखना है! फिर बाकी को सोच लें तो फिर बाकी के पास तो नए पैसे में ही आमदनी रह जाती है। फिर कोई आमदनी नहीं रह जाती। लेकिन अगर सबकी आमदनी बांट दी जाए तो ठीक है। सबके पास आमदनी दिखाई पड़ती है, वह है नहीं।

यह जो तेरह-साढ़े तेरह वर्ष उम्र है, इसमें आइंस्टीन भी संयुक्त हो जाता है, इसमें बट्रेन्ड रसल भी संयुक्त हो जाता है। यह औसत है। इसमें वे सारे लोग सम्मिलित हो जाते हैं जो शिखर छूते हैं बुद्धि का। इसमें बुद्धिहीनों के पास भी औसत में थोड़ा-सा हिस्सा आ जाता है। इसमें शिखर के लोगों को छोड़ दें। अगर जमीन पर सौ अदमियों को छोड़ दिया जाए किसी भी युग में तो आम आदमी के पास बुद्धि की मात्रा इतनी कम रह जाती है कि उसको गणना करने की कोई भी जरूरत नहीं है। उससे कुछ नहीं होता। उससे इतना ही होता है, आप अपने घर से दच्फतर चले जाते हैं, दच्फतर से घर आ जाते हैं। उससे इतना ही होता है कि दच्फतर का आप ट्रिक सीख लेते हैं कि क्या क्या करना है। उतना करके लौट आते है। घर में भी आप ट्रिक सीख लेते हैं। कि क्या-क्या बोलना, उतना बोलकर आप अपना काम चला लेते हैं। यह तो मशीन भी कर सकती है, और आ पसे बेहतर ढंग से कर सकती है। इसलिए जहां भी मशीन और आदमी में काम्पटीशन होता है, आदमी हार जाता है। जहां भी मशीन से प्रतियोगिता हुई कि आप गए। मशीन से आप कहीं नहीं जीत सकते। जिस दिन आपकी जिस सीमा में मशीन से प्र तियोगिता होती है, उसी दिन आदमी बेकार हो जाते हैं।

अब अमरीका के वैज्ञानिक कहते हैं कि बीस साल के भीतर आदमी के लिए कोई काम नहीं रह जाएगा क्योंकि मशीनें सभी काम ज्यादा बेहतर ढंग से कर सकती हैं। और सबसे बड़ा सवाल जो उनके सा मने है वह यही है कि बीस साल बाद हम आदमी का क्या करेंगे और इससे क्या काम लेंगे? अगर यह बेकाम हो जाएगा तो उपद्रव करेगा। इससे कुछ न कुछ तो काम लेना ही पड़ेगा। हो सकता है काम ऐसे लेना पड़े इस आदमी से जैसा घर-घर में बच्चे उपद्रव करते हैं तब खिलौने पकड़ाकर काम लिया जाता है। बस इतना ही काम लेना पड़ेगा कि कुछ खिलौने आपको पकड़ाने पड़ें। जिनमें आप घुंघरू वगैरह बजाते रहें। वह आपके लिए जरा बड़े ढंग के खिलौने होंगे। बिलकुल बच्चे जैसे नहीं होंगे, क्योंकि उसमें आप नाराज होंगे।

बाकी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों के खिलौनों में और बड़े आदमियों के खिलौनों में सिर्फ कीमत का फर्क होता है, और कोई फर्क नहीं होता। वह गुड़िया से खेलते रहते हैं, आप एक स्त्री से खेलते रहते हैं। जरा कीमत का फर्क होता है। यह जरा महंगा खिलौना है। बाकी खेल वही है।

वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है—दो कारणों से वृत्ति-संक्षेप पर महावीर का जोर है—एक तो प्रत्येक काम को, प्रत्येक वृत्ति को उसके केच्न्दर पर कंसंट्रेट कर देना है। सबसे पहली तो जरूरत इसलिए है कि जो वृत्ति अपने केच्न्दर पर संग्रहीत हो

जाती है, कंसंट्रेट हो जाती है, एकाग्र हो जाती है, आपको उसके वास्तविक अनुभव मिलने शुरू होते हैं। और वास्तविक अनुभव से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। यह वास्तविक अनुभव बहुत दुखद है। स्त्री की कल्पना से मुक्त होना बहुत कठिन है, क्योंकि धन के ढेर से मुक्त हो जाना बहुत आसान है। कल्पना से मुक्त होना कठिन है क्योंकि कल्पना कहीं फ्रच्सटरेट ही नहीं होती, कल्पना तो दौड़ती चली जाती है, कोई अंत ही नहीं आता। कहीं ऐसा नहीं होता जहां कल्पना थक जाए, टूट जाए, हार जाए। वास्तविकता का तो हर जगह अंत आ जाता है। हर चीज टूट जाती है। प्रत्येक वृत्ति अपने केच्न्दर पर आ जाए तो इतनी सघन हो जाती है कि आपको उसके वास्तविक, एक्चुअल अनुभव होने शुरू होते हैं। और जितना वास्तविक अनुभव हो उतनी ही जल्दी छुटकारा है, क्योंकि उसमें कोई रस नहीं रह जाता। आपको पता चलता है, वह सिर्फ पागल मन की दौड़ थी, कुछ रस था नहीं। आपने सोचा था, कल्पना की थी, कोई रस था नहीं।

एक अनूठी घटना अमेरिका में इधर पिछले दस वषोच में घटना शुरू हुई है। हिप्पी और बीटल और बीटनिक, इनके कारण एक अनूठी घटना शुरू हुई है। वह यह है कि पहली दफे हिप्पियों ने कामवा सना को मुक्त भाव से भोगने का प्रयोग किया—मुक्त भाव से। जिन्होंने यह प्रयोग दस साल पहले शुरू किया था, उन्होंने सोचा था, बड़ा आनंद उपलब्ध होगा। क्योंकि जितनी स्त्रियां चाहिए, या जितने पुरुष चाहिए, जितने संबंध बनाने हैं उतने संबंध बनाने की स्वतंत्रता है। कोई ऊपरी बाधा नहीं है, कोई कानून नहीं है, कोई अदालत नहीं है, कोई ऊपरी बाधा नहीं है, दो व्यक्तियों की निजी स्वतंत्रता है। लेकिन दस साल में जो सबसे हैरानी का अनुभव हिप्पियों को हुआ है वह यह कि सेक्स बिलकुल ही बेमानी मालूम पड़ने लगा, मीनिंगलैस। उसमें कोई मतलब ही नहीं रहा।

दस हजार साल पति-पत्नियों वाली दुनिया में सेक्स मीनिंगफुल बना रहा , और दस साल में पति-पत्नी का हिसाब छोड़ दें, और सेक्स मीनिंगलैस हो जाता है। बात क्या है? बहुत तरह के प्रयोग हिप्पियों ने किए और सब प्रयोग बेमानी हो जाते। ग्रुप मैरिज— कि आठ लड़के और आठ लड़कियां शादी कर लेते हैं — ग्रुप मैरिज, एक दूसरे ग्रुप से मैरिज कर रहा है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से नहीं। अब इनमें से जो जिससे राजी होगा, जिस तरह राजी होगा, जिस तरह भी होगा — यह पति का ग्रुप है दस का या आठ का, या पत्नी का आठ का, ये दोनों ग्रुप इकट्ठे हो गए, अब यह एक फैमिली है। अब इसमें सब पति हैं, सब पत्नियां हैं। ग्रुप सेक्स ने इस बुरी तरह अनुभव दिए कि अभी मैं एक अनुभवी व्यक्ति का, जो इन सारे अनुभवों से गुजरा, संस्मरण पढ़ रहा था। तो उसने लिखा कि अगर सेक्स में रस वापस लौटाना है तो वह पति-पत्नी वाली दुनिया बेहतर थी। सेक्स में रस वापस लौटाना — आप

सोचते होंगे, ये अनैतिक हैं। आप सोचते होंगे, यह सब अनीति चल रही है। लेकिन आप हैरान होंगे कि जब भी कोई अनुभव पूरे रूप से मिलता है तो आप उसके बाहर हो जाते हैं। असल में सेक्स में रस बचाने के लिए परिवार और दाम्पत्य और विवाह की व्यवस्था है। ध्यान रहे, जिन मुल्कों में स्त्रियां बुकच ओढ़ती हैं, उस मुल्क में जितनी स्त्रियां सुंदर होती हैं उतनी उस मुल्क में नहीं होतीं, जहां बुकच नहीं ओढ़तीं।

नसरुद्दीन की जब शादी हुई और पत्नी का बुर्का उसने पहली दफे उघा ड़ा तो वह घबरा गया। क्योंकि बुकच में ही देखा था इसको। बड़े सौंदर्य की कल्पनाएं की थीं। और जैसे सभी बुकच उघाड़ने पर सौंदर्य बिदा हो जाता है, ऐसा ही बिदा हो गया। घबरा गया। मुसलमान रिवाज है कि पत्नी पति के घर आकर पहली बार यह पूछती है उससे कि मुझे तुम किन-किन के सामने बुर्का उघाड़ने की आज्ञा देते हो? पत्नी ने पूछा। नसरुद्दीन ने कहा—जब तक कि तू मेरे सामने न उघाड़े और किसी के भी सामने उघाड़। इतना ही ध्यान रखना कि अब दुबारा दर्शन मुझे मत देना।

जो चीजें उघड़ जाती हैं, अर्थहीन हो जाती हैं। जो चीजें ढंकी रह जाती हैं, अर्थपूर्ण हो जाती हैं। आपने शरीर के जिन-जिन अंगों को ढांक लिया है उनको अर्थ दिया है। ढांक-ढांककर आप अर्थ दे रहे हैं। आप सोच रहे हैं, ढांककर आप बचा रहे हैं, लेकिन सत्य यह है कि ढांककर आप अर्थ दे रहे हैं—यू आर क्रिएटिंग मीनिंग। कोई चीज ढांक लो उसमें अर्थ पैदा हो जाता है। क्योंकि कोई भी चीज ढांक लो, आसपास जो बुद्धुओं की जमात है वह उघाड़ने को उत्सुक हो जाते हैं। उघाड़ने की कोशिश में अर्थ आ जाता है। जितना उघाड़ने की कोशिश चलती है, उतनी ढांकने की कोशिश चलती है। फिर अर्थ बढ़ता चला जाता है। चीजें अगर सीधी और साफ खुल जाएं तो अर्थहीन हो जाती हैं।

अमरीका ने पहली दफा समाज पैदा किया है जो समाज सेक्स से मुक्त एक अर्थ में हो गया कि उसमें अर्थ नहीं दिखाई पड़ रहा। लेकिन इससे बड़ी परेशानी पैदा हुई है, और इसलिए अब नए अर्थ खोजे जा रहे हैं। एल्रएस्रडी में, मारिज्युआना में, और तरह के ड्रग्स में अर्थ खोजे जा रहे हैं। क्योंकि अब सेक्स से तो कोई तृप्ति होती नहीं, सेक्स में तो कुछ मतलब ही नहीं रहा। वह तो बेमानी बात हो गयी। अब हमें और कोई सेंसेशन और कोई अनुभूतियां चा हिए। और अमरीका लाख उपाय करे, ड्रग्स नहीं रोके जा सकते, कोई विज्ञापन नहीं होता है एल्रएस्रडी का। लेकिन घर-घर में पहुंचा जा रहा है। कोई विज्ञापन नहीं है, कोई अखबारों में खबर नहीं है कि आप एल्रएस्रडी जरूर पियो। लेकिन एक-एक यूनिवर्सिटी के कैम्पस पर एक-एक विद्यार्थी के पास पहुंचा जा रहा है। अमरीका तब तक सफल नहीं होगा—कानून बना डाले, विरोध किया है, अदालतें मुकदमें चला रही हैं, सजाएं दी गयी हैं—एल्रएस्रडी के प्रचार के लिए जो सबसे बड़ा पुरोहित था वहां, ि तमोथी लेरी, उसको सजा दे दी आजीवन की—लेकिन इससे रुकेगा नहीं, जब तक आप सेक्स का मीनिंग वापस नहीं लौटा लेंगे अमरीका में, तब तक ड्रग्स नहीं रुक सकते। क्योंकि आदमी बिना मीनिंग के नहीं जी सकता। और या फिर कोई आत्मा का, परमात्मा का मीनिंग खड़ा करे। कोई नया अर्थ, जिसकी खोज में आदमी निकल जाए। कोई नए शिखर, जिन पर वह चढ़ जाए।

एक शिखर है आदमी के पास संभोग का, वह उसकी तलाश में भटकता रहता है। और वह इतना सुरक्षित और व्यवस्थित है कि वह कभी भी यह अनुभव नहीं कर पाता कि वह व्यर्थ है। अगर उसकी पत्नी व्यर्थ हो जाती है, पति व्यर्थ हो जाता है तो भी और स्त्रियां हैं जो सार्थक बनी रहती हैं। पदच पर फिल्म की स्त्रियां हैं, जो सार्थक बनी रहती हैं। कोई न कोई है जहां अर्थ बना रहता है, वह उस अर्थ की तलाश में लगा रहता है, उस खोज में लगा रहता है, जिंदगी खो देता है।

महावीर कहते हैं—वृत्ति-संक्षेप—यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। इसका एक अर्थ तो यह है कि प्रत्येक वृत्ति, प्रत्येक वृत्ति उसकी

201

महावीर-वाणी भाग : 1

टोटल इंटेंसिटी में जीयी जा सकेगी। और जिस वृत्ति को भी आप उसकी समग्रता में जीते हैं, वह व्यर्थ हो जाती है। और वृत्तियों का व्यर्थ हो जाना जरूरी है आत्मदर्शन के पूर्व। दूसरी बात—सारी वृत्तियां मन को घेर लेती हैं क्योंकि आप मन से ही सारा काम करते हैं। भोजन भी मन से करना पड़ता है; संभोग भी मन से करना पड़ता है; कपड़े भी मन से पहनने पड़ते हैं; कार भी मन से चलानी पड़ती है; दच्फतर भी मन से—सारा काम बुद्धि को घेर लेता है इसलिए बुद्धि निर्बल और निर्वीर्य हो जाती है, इतना काम उस पर हो जाता है। इतना बाहरी काम हो जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उससे कहा है कि अपने मालिक से कहो कि कुछ तनख्वाह बढ़ाए। बहुत दिन हो गए, कोई तनख्वाह नहीं बढ़ी। मुल्ला ने कहा—मैं कहता हूं, लेकिन वह सुनकर टाल देता है। उसकी पत्नी ने कहा—तुम जाकर बताओ, उसको कि तुम्हारी मां बीमार है, उसके इलाज की जरूरत है। तुम्हारे पिता को लकवा लग गया है, उनकी सेवा

की जरूरत है। तुम्हारी सास भी तुम्हारे पास रहती है। तुम्हारे इतने बच्चे हैं, इनकी शिक्षा का सवाल है। तुम्हारे पास अपना मकान नहीं है, तुम्हें मकान बनाना है। ऐसी उसने बड़ी फेहरिस्त बतायी।

मुल्ला दूसरे दिन बड़ा प्रसन्न लौटा दच्फतर से। उसकी पत्नी ने कहा —क्या तनख्वाह बढ़ गयी है? मुल्ला ने कहा—नहीं, मेरे मालिक ने कहा—यू हैव टू मच आउटसाइड एक्टिविटीज। नौकरी खत्म कर दी। तुम दच्फतर का काम कब करोगे? जब इतना तुम्हारा सब काम है—सास भी घर में है तो दच्फतर का काम कब करोगे? उसने छुट्टी दे दी।

बुद्धि के ऊपर इतना ज्यादा काम है कि बुद्धि अपना काम कब करेगी। उसको सब तरफ से बोझिल किए हुए हैं, वह अपना काम कब करेगी? तो आप बुद्धिमत्ता का कोई काम जीवन में नहीं कर पाते। बुद्धि से आप नींद का ही काम लेते हैं। कभी धन कमाने का काम करते हैं, कभी शादी करने का काम करते हैं, कभी रेडियो सुनने का काम करते हैं। लेकिन बुद्धि की बुद्धिमत्ता, बुद्धि का अपना निजी काम क्या है? बुद्धि का निजी काम ध्यान है। जब बुद्धि अपने में ठहरती है, जब बुद्धि अपने में रुकती है, तो विसडम, बुद्धिमत्ता आती है और तब पहली दफे जीवन को आप और ढंग से देख पाते हैं, एक बुद्धिमान की आंखों से। लेकिन वह मौका नहीं आ पाता। बहुत ज्यादा काम है। वह उसी में दबी-दबी नष्ट हो जा ती है। जो आपके पास श्रेष्ठतम बिन्दु है काम का, उससे आप बहुत निकृष्ट काम ले रहे हैं। जो आपके पास श्रेष्ठतम शक्ति है, उससे आप ऐसे काम ले रहे हैं, जिनको कि सुई से कर सकते थे, उनका काम आप तलवार से ले रहे हैं। तलवार से लेने की वजह से सुई से जो हो सकता था, वह भी नहीं हो पाता। और तलवार जो कर सकती थी, उसका तो कोई सवाल ही नहीं है, वह सुई के काम में उलझी हुई होती है।

वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है—प्रत्येक वृत्ति को उसके अपने केच्नदर पर संक्षिप्त करो। उसे फैलने मत दो। भूख लगे तो पेट से लगने दो भूख, बुद्धि से मत लगने दो। बुद्धि को कह दो—तु चुप रह। कितना बजा है, फिक्र छोड़। पेट खबर देगा न, कि भूख लगी है, तब हम सुन लेंगे। सोने का काम करना है तो बुद्धि को मत करने दो। नींद आएगी तो खुद ही खबर देगी, शरीर खबर देगा तब सो जाना। नींद तोड़नी हो तो भी बुद्धि को काम मत दो कि वह अला र्म भरकर रख दें। जब नींद टूटेगी तब टूट जाएगी। उसको टूटने दो स्वयं। नींद के यंत्र को अपना काम करने दो; भोजन के यंत्र को अपना काम करने दो; कामवासना के यंत्र को अपना काम करने दो। शरीर के सारे काम स्पेशलाइज्ड हैं, उनके अपने-अपने में चले जाने दो। उनको सबको इकट्ठा मत करो, अन्यथा वे सब विकृत हो जाएंगे और उनको सम्भालना कठिन हो जाएगा।

और मजे की बात यह है कि जिस केच्नदर पर काम पहुंच जाता है, बुद्धि का इतना काम है कि वह केच्नदर अपना काम को समग्रता से करे ताकि उसका केच्नदर का काम किसी दूसरे केच्नदर पर न फैलने पाए। बुद्धि इतना देखे तो पर्याप्त है, तो बुद्धि नियंता हो जाती है।

202

ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप

वह कंट्रोलर हो जाती है। वह मध्य में बैठ जाती है और मालिक हो जाती है, उसकी नजर सब इंद्रियों पर हो जाती है। और प्रत्येक इंद्रिय अपना काम करे, यही उसकी दृष्टि हो जाती है। जैसे ही कोई इंद्रिय अपना काम करती है, बुद्धि देख पाती है कि उस काम में कुछ रस मिलता है या नहीं मिलता है, तो जो व्यर्थ काम हैं वे बन्द होने शुरू हो जाते हैं। जो सार्थक काम हैं वे बढ़ने शुरू हो जाते हैं। बहुत शीघ्र वह वक्त आ जाता है—जब आपके जीवन से व्यर्थ ि गर जाता है और गिराना नहीं पड़ता है। और सार्थक बच रहता है, बचाना नहीं पड़ता। आपके जीवन से कांटे गिर जाते हैं, फूल बच जाते हैं। इसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता है। बुद्धि का सिर्फ देखना ही पर्याप्त होता है। उसका साथी होना पर्याप्त होता है। साक्षी होना ही बुद्धि का स्वभाव है। वही उसका काम है। बुद्धि किसी की मीन्स नहीं है, किसी का साधन नहीं है। वह स्वयं

साध्य है। सभी इंद्रियां अपने अनुभव को बुद्धि को दे दें, लेकिन कोई इंद्रिय अपने काम को बुद्धि से न ले पाए, यह वृत्ति-संक्षेप का अर्थ है।

निश्चित ही इसका परिणाम होगा। इसका परिणाम होगा कि जब प्रत्येक केन्चदर अपना काम करेगा तो आपके बहुत से काम जो बाहर के जगत में फैलाव लाते थे, वे गिरने शुरू हो जाएंगे, वे सिकुड़ने शुरू हो जाएंगे, बिना आपके प्रयत्न के। आपको धन की दौड़ छोड़नी नहीं पड़ेगी, आप अचानक पाएंगे, उसमें जो-जो व्यर्थ है वह छूट गया। आपको बड़ा मकान बनाने का पागलपन छोड़ना नहीं पड़ेगा, आपको दिख जाएगा कि कितना मकान आपके लिए जरूरी है। उससे ज्यादा व्यर्थ हो गया। आपको कपड़ों का ढेर लगाने का पागलपन नहीं हो जाएगा, आब्सेशन नहीं हो जाएगा, आप गिनती करके मजा न लेने लगेंगे कि अब तीन सौ साड़ी पूरी हो गयीं, अब चार सौ साड़ी पूरी हुई हैं, अब पांच सौ साड़ी पूरी हो गयीं। आ पकी बुद्धि आपको कहेगी—पांच सौ साड़ी पहनिएगा कब? लेकिन आदमी अदभूत है।

मैंने सुना है कि दो सेल्समैन आपस में एक दिन बात कर रहे थे। एक सेल्समैन बड़ी बातें कर रहा था कि आज मैंने इतनी बिक्री की। एक आदमी एक ही टाई खरीदने आया था, मैंने उसको छह टाई बेच दी। दूसरे ने कहा—दिस इज नथिंग, यह कुछ भी नहीं है। एक औरत अपने मरे हुए पति के लिए सूट खरीदने आयी थी, मैने उसे दो सूट बेच दिये। एक औरत अपने मरे हुए पति के लिये कपड़े खरीदने आयी थी, मैंने उसे दो जोड़े कपड़े बेच दिए। मैंने कहा—यह दूसरा और भी ज्यादा जंचता है और कभी-कभी बदलने के लिए बिलकुल ठीक रहेंगे।

कोई औरत ले जा सकती है दो जोड़े, क्योंकि जिंदगी हमारी कीमत से जीती है, बुद्धि से नहीं जीती है। वह पति मर गया है, यह सवाल थोड़े ही है। और पति को दूसरा जोड़ा पहनने का मौका कभी नहीं आएगा, यह भी सवाल नहीं है। लेकिन दूसरा जोड़ा भी जंच रहा है, और दो जोड़े — तो मन का एक रस है। करीब-करीब हम सब यही कर रहे हैं। कौन पहनेगा, कब पहनेगा, इसका सवाल नहीं है। कितना? वह महत्वपूर्ण है। कौन खाएगा, कब खाएगा, इसका सवाल नहीं है। कितना? मात्रा ही अपने आप में मूल्यवान हो गयी है। उपयोग जैसे कुछ भी नहीं है, संख्या ही उपयोगी हो गयी है। कितनी संख्या हम बता सकते हैं, उसका उपयोग है।

मैं घरों में जाता हूं, देखता हूं कोई आदमी सौ जूते के जोड़े रखे हुए है। इससे तो बेहतर यही है, आदमी चमार हो जाए। गिनती का मजा लेता रहे। यह नाहक, अकारण चमार बना हुआ है मुच्फत। गिनती ही करनी है न! तो चमार हो जाए, जोड़े गिनता रहे। नए-नए जोड़े रोज आते जाएंगे उसको बड़ी तृप्ति मिलेगी। अब यह आदमी बुद्धि से चमार है। सौ जोड़े का क्या करिएगा? नहीं, लेकिन सौ जोड़े की प्रतिष्ठा है। जिसके पास है उसके मन में तो है ही, जिसके पास नहीं है वह पीड़ित है कि हमारे पास सौ जोड़े जूते नहीं हैं। चमारी में भी प्रतियोगिता है। वह दूसरा हमसे ज्यादा चमार हुआ जा रहा है, हम बिलकुल पिछड़े जा रहे हैं। महावीर-वाणी भाग : 1

सौ जोड़े जूते हम पर कब होंगे? अकसर ऐसा होता है कि जूते के जोड़ तो इकट्ठे हो जाते हैं, लेकिन जोड़े-जूते इकट्ठा करने में पैर इस योग्य नहीं रह जाते कि चल भी पाएं। और सौ पर कोई संख्या रुकती नहीं है।

तिब्बत में एक पुरानी कथा है कि दो भाई हैं। पिता मर गया है, तो उनके पास सौ घोड़े थे। घोड़े का काम था। सवारियों को लाने-ले जाने का काम था। तो पिता मरते वक्त बड़े भाई को कह गया कि तू बुद्धिमान है, छोटा तो अभी छोटा है। तू अपनी मर्जी से जैसा भी बंटवारा करना चाहे, कर देना। तो बड़े भाई ने बंटवारा कर दिया। निन्यानबे घोड़े उसने रख लिए, एक घोड़ा छोटे भाई को दे दिया।आस-पास के लोग चौंके भी। पड़ोसियों ने कहा भी कि यह तुम क्या कर रहे हो? तो बड़े भाई ने कहा कि मामला ऐसा है, यह अभी छोटा है, समझ कम है। निन्यानबे कैसे सम्भालेगा? तो मैं निन्यानबे ले लेता हूं, एक उसे दे देता हूं।

ठीक छोटा भी थोड़े दिन में बड़ा हो गया, लेकिन वह एक से काफी प्रसन्न था, एक से काम चल जाता था। वह खुद ही नौकर नहीं रखने पड़ते थे, अलग इंतजाम नहीं करना पड़ता था—वह खुद ही सईस की तरह चला जाता था। यात्रा करवा आता था लोगों के लिए। उसका भोजन का काम चल जाता था। लेकिन बड़ा भाई बड़ा परेशान था। निन्यानबे घोड़े थे,

निन्यानबे चक्कर थे। नौकर रखने पड़ते। अस्तबल बनाना पड़ता। कभी कोई घोड़ा बीमार हो जा ता, कभी कुछ हो जाता। कभी कोई घोड़ा भाग जाता, कभी कोई नौकर न लौटता। रात हो जाती, देर हो जाती, वह जागता, वह बहुत परेशान था। एक दिन आकर उसने अपने छोटे भाई को कहा कि तुझसे मेरी एक प्रार्थना है कि तेरा जो एक घोड़ा है वह भी तू मुझे दे दे। उसने कहा—क्यों? तो उस बड़े भाई ने कहा—तेरे पास एक ही घोड़ा है, नहीं भी रहा तो कुछ ज्यादा नहीं खो जाएगा। मेरे पास निन्यानबे हैं, अगर एक मुझे और मिल जाए तो सौ हो जाएंगे। पर मेरे लिए बड़ा सवाल है। क्योंकि मेरे पास निन्यानबे हैं। एक मिलते ही पूरी सेंचुरी, पूरे सौ हो जाएंगे। तो मेरी प्रतिष्ठा आ ैर इज्जत का सवाल है। अपने बाप के पास सौ घोड़े थे, कम-से-कम बाप की इज्जत का भी इसमें सवाल जुड़ा हुआ है। छोटे भाई ने कहा, आ प यह घोड़ा भी ले जाएं। क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि निन्यानबे में आपको मैं बड़ी तकलीफ में देखता हूं, तो मैं सोचता हूं, एक में भी निन्यानबे बंटे नहीं, लेकिन थोड़ी बहुत तकलीफ तो होगी ही। यह भी आप ले जाएं।
तो वह छोटा उस दिन से इतने आनन्द में हो गया क्योंकि अब वह खुद ही घोड़े का काम करने लगा। अब तक कभी घोड़ा बीमार पड़ता था, कभी दवा लानी पड़ती थी; कभी घोड़ा राजी नहीं होता था जाने को; कभी थककर बैठ जाता था। हजार पंचायतें होती थीं। वह भी बात खत्म हो गयी। अब तक घोड़े की नौकरी करनी पड़ती थी। उसकी लगाम पकड़कर चलानी पड़ती थी, वह बात भी खत्म हो गयी। अपना मालिक हो गया। अब वह खुद ही बोझ ले लेता, लोगों को कंधे पर बिठा लेता और यात्रा कराता। लेकिन बड़ा बहुत परेशान हो गया। वह बीमार ही रहने लगा। क्योंकि सा ै में से अब कहीं एकाध कम न हो जाए, कोई घोड़ा मर न जाए, कोई घोड़ा खो न जाए, नहीं तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
मारपा यह कहानी अकसर कहा करता था—एक तिब्बती फकीर था—वह अकसर यह कहानी कहा करता था। और वह कहता था—मैंने दो ही तरह के आदमी देखे—एक, वे जो वस्तुओं पर इतना भरोसा कर लेते हैं कि उनकी वजह से ही परेशान हो जाते हैं। और एक वे, जो अपने पर इतने भरोसे से भरे होते हैं कि वस्तुएं उन्हें परेशान नहीं कर पातीं। दो ही तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर। दूसरी तरह के लोग बहुत कम हैं इसलिए पृथ्वी पर आनंद बहुत कम है। पहले तरह के लोग बहुत हैं, इसलिए पृथ्वी पर दुख बहुत है। वृत्ति-संक्षेप का अर्थ सीधा नहीं है यह कि आप अपने परिग्रह को कम करें। जब भीतर आपकी वृत्ति संक्षिप्त होती है तो बाहर परिग्रह कम हो जाता है।

204

ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप

इसका यह अर्थ नहीं है कि आप सब छोड़कर भाग जाएं, तो आप बदल जाएंगे—जरूरी नहीं है। क्योंकि चीजें छोड़ने से अगर आप बदल सकें तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। अगर चीजें छोड़ने से मैं बदल जाता हूं तो चीजें बहुत कीमती हो जाती हैं। और अगर चीजें छोड़ने से मुझे मोक्ष मिलता है तो ठीक है, मोक्ष का भी सौदा हो जाता है। चीजों की ही कीमत चुकाकर मोक्ष मिल जाता है। अगर एक मकान छोड़ने से, एक पत्नी और एक बेटे को छोड़ देने से मुझे मोक्ष मिल जाता है, तो मोक्ष की कीमत कितनी हुई? इतनी ही कीमत हुई जितनी मकान की हो सकती है, एक पत्नी की, एक बेटे की हो सकती है। अगर मैं चीजें छोड़ने से त्यागी हो जाता हूं तो ठीक है। चीजें छोड़ने से लोग त्यागी हो जाते हैं, चीजें होने से भोगी हो जाते हैं। लेकिन चीजों का मूल्य, उसकी वेल्यू तो कायम रहती है। फिर जिसके पास चीज नहीं हो, वह त्यागी कैसे होगा ? जिसके पास छोड़ने का महल नहीं हो, वह महात्यागी कैसे होगा? बड़ी मुश्किल है, पहले महल होना चाहिए।
नसरुद्दीन से किसी ने पूछा है कि मोक्ष जाने का मार्ग क्या है? तो नसरुद्दीन ने कहा—यू मस्ट सिन फर्स्ट। पहले पाप करो।

उसने कहा—यह क्या पागलपन की बात है? तुम मोक्ष जाने का रास्ता बता रहे हो कि नर्क जाने का?

नसरुद्दीन ने कहा कि जब पाप नहीं करोगे तो पश्चाताप कैसे करोगे? आ ैर जब पश्चाताप नहीं करोगे तो मोक्ष जाओगे कैसे? और जब पाप नहीं करोगे तो भगवान तुम पर दया कैसे करेगा, और जब दया नहीं करेगा तो कुछ होगा ही नहीं बिना उसकी दया के। पहले पाप करो, तब पश्चात्ताप करो, तब भगवान दया करेगा, तब स्वर्ग का द्वार खुलेगा, तुम भीतर प्रवेश कर जाओगे। तो जो एसेंशियल चीज है, नसरुद्दीन ने कहा वह पाप है। उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता, वही हम सबकी भी बुद्धि है।

एसेंशियल चीज, वस्तुएं हैं। पहले इकट्ठी करो, फिर त्याग करो। अगर त्याग न करोगे तो मोक्ष कैसे जाओगे? लेकिन त्याग करोगे कैसे, अगर इकट्ठी न करोगे? तो पहले इकट्ठी करो, फिर त्याग करो, ि फर मोक्ष जाओ। मगर जाओगे वस्तुओं से ही मोक्ष। वस्तुओं पर ही चढ़कर मोक्ष जाना होगा। तो फिर मोक्ष कम कीमती हो गया है, वस्तुएं ही ज्यादा कीमती हो गयीं हैं। क्योंकि जो पहुंचा दे, उसी की कीमत है।

कबीर ने कहा—गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव। गुरु और गोि वंद दोनों ही एक दिन सामने खड़े हो गए हैं, अब किसके पैर लगूं? तो फिर कबीर ने सोचा कि गुरु के ही पैर लगना ठीक है क्योंकि उसी से गोविंद का पता चलेगा।

तो अगर वस्तुओं से मोक्ष जाना है तो वस्तुओं की ही शरणागति जाना पड़ेगा, तो उनके ही पैर पड़ो क्योंकि उनसे ही मोक्ष मिलेगा। न करोगे त्याग, न मिलेगा मोक्ष। त्याग क्या करोगे? कुछ होना चाहिए, तब त्याग करोगे। तब फिर वस्तुओं का मूल्य थिर है, अपनी जगह। भोगी के लिए भी, त्यागी के लिए भी।

नहीं, महावीर का यह अर्थ नहीं है। महावीर वस्तु को मूल्य नहीं दे सकते। इसलिए मैं कहता हूं कि महावीर का यह अर्थ नहीं है कि वस्तुओं के त्याग का नाम वृत्ति-संक्षेप है। महावीर वस्तुओं को मूल्य दे ही नहीं सकते। इतना भी मूल्य नहीं दे सकते कि उनके त्याग का कोई अर्थ है। नहीं, महावीर का आंतरिक प्रयोग है। भीतर वृत्ति-केच्नदर पर ठहर जाए तो बाहर फैलाव अपने आप बन्द हो जाता है। वैसे ही, जैसे हमने एक दीया जलाया हो और अगर हम उसकी बाती को भीतर नीचे की तरफ कम कर दें तो बाहर प्रकाश का घेरा कम हो जाता है। जहां दीये की बाती छोटी होती जाती है वहां प्रकाश का घेरा कम होता जाता है। लेकिन आप सोचते हों कि प्रकाश का घेरा कम करके हम दीये की बाती छोटी कर लेंगे तो आप बड़ी गलती में हैं। कभी नहीं होगा, आप धोखा दे सकते हैं। धोखा देने की तरकीब? तरकीब यह है कि आप अपनी आंख बन्द करते चले जाएं, दीया उतना ही जलता रहेगा, प्रकाश उतना ही पड़ता रहेगा। आप अपनी आंख धीरे-धीरे बन्द करते चले जाएं। आप बिलकुल अंधेरे में बैठ सकते हैं, लेकिन वह धोखा

है और आंख खोलेंगे और पाएंगे दीये का वर्तुल, प्रका श उतना का उतना है। क्योंकि दीये का वर्तुल मूल नहीं है, मूल उसकी बाती है। उसकी बाती नीचे छोटी होती जाए तो बाहर प्रकाश का वर्तुल छोटा होता जाता है। बाती डूब जाए, शून्य हो जाए तो वर्तुल खो जाता है।

हम सबके भीतर, जो बाहर फैलाव दिखाई पड़ता है — हमारे भीतर उसकी बा ती है। प्रत्येक हमारे केच्नदर पर, वासना के केच्नदर पर, हम कितना फैलाव कर रहे हैं, उससे बाहर फैलता है। बाहर तो सिर्फ प्रदर्शन है। असली बात तो भीतर है। भीतर सिकुड़ाव हो जाता है, बाहर सब सिकुड़ जाता है। ध्यान रहे, जो बाहर से ि सकुड़ने में लगता है वह गलत, बिलकुल गलत मार्ग से चल रहा है। वह परेशान होगा, पहुंचेगा कहीं भी नहीं।

हालांकि कुछ लोग परेशानी को तप समझ लेते हैं। जो परेशानी को तप समझ लेते हैं, उनकी नासमझी का कोई हिसाब नहीं है। तप से ज्यादा आनंद नहीं है, लेकिन तप को लोग परेशानी समझ लेते हैं क्योंकि परेशानी यही है, उनको दस कपड़े चाहिए थे, उन्होंने नौ रख लिया, वे बड़े परेशान हैं। परेशानी उतनी ही है जितना दस में मजा था। दस के मजे का अनुपात ही परेशानी बन जाएगा। दस में कम हो गया तो परेशानी शुरू हो गयी। अब वह परेशानी को तप समझ रहे हैं। परेशानी तप नहीं है।

यह मैंने मुल्ला की पत्नी की बात आपसे की। यह उसने जानकर उस स्त्री से शादी की। गांवभर में खबर थी कि वह बहुत दुष्ट है, कलहपूर्ण है। चालीस साल तक उससे कोई शादी करनेवाला नहीं मिला था। और जब नसरुद्दीन ने खबर की कि मैं उससे शादी करता हूं, तो मित्रों ने कहा—तू पागल तो नहीं हो गया है नसरुद्दीन? इस औरत को कोई शादी करनेवाला नहीं मिला है। यह खतरनाक है, तेरी गर्दन दबा देगी। यह तेरे प्राण ले लेगी; यह तुझे जीने न देगी; तू बहुत मुश्किल में पड़ जाएगा।

नसरुद्दीन ने कहा—मैं भी चालीस साल तक अविवाहित रहा। अविवाहित रहने में मैंने बहुत पाप कर लिए। इससे शादी करके मैं प्रायश्चित करना चाहता हूं। दिस इज गोइंग टु बी ए पिनांस। यह एक तप है। जानकर कर रहा हूं। लेकिन पश्चाताप तो करना पड़ेगा न। स्त्रियों से इतना सुख पाया, जब इतना ही दुख पाऊंगा, तब तो हल होगा न! और यह स्त्री जितना दुख दे सकती है, शायद दूसरी न दे सके। यह बड़ी अदभुत है। नसरुद्दीन ने शादी कर ली। मित्रों ने बहुत समझाया, न माना।

लेकिन नसरुद्दीन की पत्नी के पास खबर पहुंच गयी कि नसरुद्दीन ने इसलिए शादी की है ताकि यह स्त्री उसको सताए और उसका तप हो जाए। और उसने कहा, भूल में न रहो। तुम मेरे ऊपर चढ़कर स्वर्ग न जा सकोगे। मैं किसी का साधन नहीं बन सकती। आज से मैंने, कलह बन्द। कहते हैं वह स्त्री नसरुद्दीन से जिंदगीभर न लड़ी। उसको नर्क जाना ही पड़ा, नहीं लड़ी। उसने कहा—मुझे तुम साधन बनाना चाहते हो, स्वर्ग जाने का? यह नहीं होगा। यह कभी नहीं हो सकता, तुम नरक जाकर ही रहोगे। वह इसी जमीन पर नरक पैदा करती, उसने पैदा नहीं किया। उसने अगले का इंतजाम कर दिया।

आप किस चीज को साधन बनाकर जाना चाहते हैं स्वयं तक? वस्तुओं को? अपरिग्रह को? बाहर से रोककर अपने को, संभालकर? वह नहीं होगा। आप परेशान भला हो जाएं, तप नहीं होगा। परेशानी तप नहीं है। तप तो बड़ा आनन्द है और तपस्वी के आनंद का कोई हिसाब नहीं है। वस्तुएं दुख हैं। लेकिन यह दुख तभी पता चलेगा आपको जब आपकी वृत्ति के केन्द्र पर आप अनुभव करेंगे और दुख पाएंगे और सुख की कोई रेखा न दिखाई पड़ेगी। अंधेरा ही अंधेरा पाएंगे, कोई प्रकाश की ज्योति न दिखाई पड़ेगी। कांटे ही कांटे पाएंगे, कोई फूल खिलता न दिखाई पड़ेगा। भीतरभीतर केन्द्र व्यर्थ हो जाएगा, बाहर से आभामण्डल तिरोहित हो जाएगा। अचानक आप पाएंगे, बाहर अब कोई अर्थ नहीं रह गया । लोगों को दिखायी पड़ेगा। आपने बाहर कुछ छोड़ दिया। आप बाहर कुछ भी न छोड़ेंगे, भीतर कुछ टूट गया। भीतर कोई ज्योति ही बुझ गई। तो एक-एक केन्द्र पर उसकी वृत्ति को

206

ऊणोदरी एवं वृत्ति-संक्षेप

ठहरा देना और बुद्धि को सजग रखकर देखना कि उस वृत्ति के अनुभव क्या हैं।

बहुत आदमी के संबंध में जो बड़े से बड़ा आश्चर्य है वह यह है कि जिस चीज को आप आज कहते हैं कि कल मुझे मिल जाए तो सुख मिलेगा, कल जब वह चीज मिलती है तो आप कभी तौल नहीं करते कि कल मैंने कितना सुख सोचा था, वह मिला या नहीं मिला! बड़ा आश्चर्य है। यह भी बड़ा आश्चर्य है कि उससे दुख मिलता है, फिर भी दूसरे दिन

आप फिर उसी की चाह करने लगते हैं और कभी नहीं सोचते कि कल पाकर इसे दुख पाया था, अब मैं फिर दुख की तलाश में जाता हूं। हम कभी तौलते ही नहीं, बुद्धि का वही काम है, वही हम नहीं लेते उससे। वही काम है कि जिस चीज में सोचा था कि सुख मिलेगा, उसमें मिला? जिस चीज में सोचा था सुख मिलेगा उसमें दुख मिला, यह अनुभव में आता है और इस अनुभव को हम याद नहीं रखते और जिसमें दुख मिला उसको फिर दुबारा चाहने लगते हैं।

ऐसे जिंदगी सिर्फ एक कोल्हू के बैल जैसी हो जाती है। बस एक ही रास्ते पर घूमते रहते हैं। कोई गति नहीं, कहीं कोई पहुंचना नहीं होता। घूमते-घूमते मर जाते हैं। जहां पैदा होते हैं, उसी जमीन पर खड़े-खड़े मर जाते हैं। कहीं एक इंच आगे नहीं बढ़ पाते। बढ़ भी नहीं पाएंगे। क्योंकि बढ़ने की जो सम्भावना थी वह आपकी बुद्धिमत्ता से थी, आपकी विसडम से थी, आपकी प्रज्ञा में थी। वह तो प्रज्ञा कभी विकसित नहीं होती।

तो महावीर वृत्ति-संक्षेप पर जोर देते हैं ताकि प्रत्येक वृत्ति अपनी-अपनी निखार तीव्रता में, अपनी प्योरिटी में अनुभव में आ जाए और अनुभव कह जाए दुख है, कि दुख है वहां, सुख नहीं। और बुद्धि इस अनुभव को संग्रहीत करे, बुद्धि इस अनुभव को जिए और पिए और इस बुद्धि के रोएं-रोएं में यह समा जाए तो आपके भीतर वृत्तियों से ऊपर आपकी प्रज्ञा, आपकी बुद्धिमत्ता उठने लगेगी। और जैसे-जैसे बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है, वैसे-वैसे वृत्तियां ि सकुड़ती जाती हैं। इधर वृत्तियां सिकुड़ती हैं, इधर बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है। और बाहर परिग्रह कम होता चला जाता है। जैसे बुद्धिमत्ता ऊपर उठती है वैसे संसार बाहर कम होता चला जाता है। जिस दिन आपकी समग्र शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर बुद्धि को मिल जा ती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं। जिस दिन आपकी सारी शक्ति वृत्तियों से मुक्त होकर प्रज्ञा के साथ खड़ी हो जाती है, उसी दिन आप मुक्त हो जाते हैं।

जिस दिन कामवासना की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन लोभ की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन क्रोध की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन मोह की शक्ति भी बुद्धि को मिल जाती है; जिस दिन समस्त शक्तियां बुद्धि की तरफ प्रवाहित होने लगती हैं; जैसे नदियां सागर की तरफ जा रही हों, उस दिन बुद्धि का महासागर आपके भीतर फलित होता है। उस महासागर का आनंद, उस महासागर की प्रतीति और अनुभूति दुख की नहीं है, परेशानी की नहीं है, वह परम आनंद की है। वह प्रफुल्लता की है। वह किसी फूल के खिल जाने जैसी है। वह किसी दीये के जल जाने जैसी है। वह कहीं मृतक में जैसे जीवन आ जाए, ऐसी है।

आज इतना ही।

कल आगे के नियम पर बात करेंगे। लेकिन उठें न। जो कीर्तन के लिए आना चाहते हैं वे ऊपर आ जाएं। पांच मिनट कीर्तन करें, फिर जाएं।

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

210

□

बाच्ह्य-तप का चौथा चरण है — रस-परित्याग। परंपरा रस-परित्याग से अर्थ लेती रही है। किन्हीं रसों का, किन्हीं स्वादों का निषेध, नियंत्रण। इतनी स्थूल बात रस-परित्याग नहीं है। वस्तुतः सधना के जगत में स्थूल से स्थूल दिखाई पड़ने वाली बात भी स्थूल नहीं होती। कितने ही स्थूल शब्दों का प्रयोग किया जाए बात तो सूच्म ही होती है। मजबूरी है कि स्थूल शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि सूच्म के लिए कोई शब्द नहीं है। वह जो अन्तर्जगत है, वहां इशारे करने वाले कोई शब्द हमारे पास नहीं हैं। अन्तर्जगत की कोई भाषा नहीं है। इसलिए बाच्ह्य जगत के ही शब्दों का प्रयोग करना मजबूरी है। उस मजबूरी से खतरा भी पैदा होता है क्योंकि तब उन शब्दों का स्थूल अर्थ लिया जाना शुरू हो जाता है। रस-परित्याग से यही लगता है कि कभी खट्टे का त्याग कर दो; कभी मीठे का त्याग कर दो; कभी घी का त्याग कर दो; कभी कुछ और त्याग कर दो। रस-परित्याग से ऐसा प्रयोजन महावीर का नहीं है। महावीर का क्या प्रयोजन है, वह दो-तीन हिस्सों में समझ लेना जरूरी है।

पहली बात तो यह कि रस की पूरी प्रक्रिया क्या है? जब आप कोई स्वाद लेते हैं तो स्वाद वस्तु में होता है या स्वाद आपकी स्वाद इंद्रिय में होता है? या स्वाद स्वादेंद्रिय के पीछे वह जो आपका अनुभव करने वाला मन है, उसमें होता है? या स्वाद उस मन के साथ आपकी चेतना का जो तादाच्तमय है उसमें होता है? स्वाद कहां है? रस कहां है? तभी परित्याग खयाल में आ सकेगा। जो स्थूल देखते हैं उन्हें लगता है कि स्वाद या रस वस्तु में होता है, इसलिए वस्तु को छोड़ दो। वस्तु में स्वाद नहीं होता, न रस होता है; वस्तु केवल निमित्त बनती है। और अगर भीतर रस की पूरी प्रक्रिया काम न कर रही हो तो वस्तु निमित्त बनने में असमर्थ है। जैसे आपको फांसी की सजा दी जा रही हो और आपको मिष्ठान्न खाने को दे दिया जाए, तो भी मीठा नहीं लगेगा। मिष्ठान्न अब भी मीठा ही है, और जो मीठे को भोग सकता था, वह एकदम अनुपस्थित हो गया है। स्वादेंद्रिय अब भी खबर देगी क्योंकि स्वादेंद्रिय को कोई भी पता नहीं है कि फांसी लग रही है, न पता हो सकता है। स्वादेंद्रिय के संवेदनशील तत्व अब भी भीतर खबर पहुंचाएंगे कि मीठा है — मिठाई मुंह पर है, जीभ पर है। लेकिन मन उस खबर को लेने की तैयारी नहीं दिखाएगा। मन भी उस खबर को ले ले तो मन के पीछे जो चेतना है उस का और मन के बीच का सेतु टूट गया है, संबंध टूट गया है। मृत्यु के क्षण में वह संबंध नहीं रह जाता। इसलिए मन भी खबर ले लेगा कि जीभ ने क्या खबर दी है, तो भी चेतना को कोई पता नहीं चलेगा।

आपके व्यक्तित्व को बदलने के लिए हजारों वषोंच से, जब भी कोई बहुत उलझन होती है तो शाक ट्रीटमेंट का उपयोग करते रहे हैं चिकित्सक — जब भी कोई उलझन होती है तो आपको इतना गहरा धक्का देने का प्रयोग करते रहे हैं, शाक का, और उससे कई

211

□

बार बहुत गहरी उलझन सुलझ जाती है। और शाक ट्रीटमेंट का कुल अर्थ इतना ही है कि आपकी चेतना और आपके मन का सेतु क्षणभर को टूट जाए। उस सेतु के टूटते ही आपके भीतर की सारी व्यवस्था जैसी कल तक थी रुग्ण, वह

अव्यवस्थित हो जाती है, अराजक हो जाती है। और नयी व्यवस्था कोई भी रुग्ण नहीं बनाना चाहता। इसलिए शाक ट्रीटमेंट का कुल भरोसा इतना है कि एक बार पुरानी व्यवस्था का ढांचा टूट जाए तो आप फिर शायद उस ढांचे को न बना सकेंगे।

सुना है मैंने कि एक बहुत बड़े मनोचिकित्सक के पास एक रुग्ण कैथलिक नन, कैथलिक साध्वी को लाया गया था। छह महीने से निरंतर उसे हिचकी आ रही थी, वह बंद नहीं होती थी। वह नींद में भी चलती रहती थी। सारी चिकित्सा, सारे उपाय कर लिए गए थे, वह हिचकी बंद नहीं हो रही थी। चिकित्सक थक गए थे और उन्होंने कहा—अब हमारे पास कोई उपाय नहीं है। शायद मनस चिकित्सक कुछ कर सकें। तो मनस चिकित्सक के पास लाया गया। बहुत लोग उस साध्वी को माननेवाले थे। आदर करने वाले थे, वे सब उसके साथ आए थे। वह साध्वी प्रभु का भजन करती हुई भीतर प्रविष्ट हुई। वह निरंतर प्रभु का स्मरण करती रहती थी। चिकित्सक ने पता नहीं उससे क्या कहा कि दो ही क्षण बाद वह रोती हुई बाहर वापस लौटी। उसके भक्त देखकर हैरान हुए कि वह एक क्षण में ही रोती हुई वापस आ गई। रो रही है ! भगवान का छह महीने का स्मरण जो नहीं कर सका था, वह हो गया है। रो तो जरूर रही है, लेकिन हिचकी बंद हो गई है।

पीछे से चिकित्सक आया। वह तो साध्वी दौड़कर बाहर निकल गई। उसके भक्तों ने पूछा—आपने ऐसा क्या कहा कि उसको इतनी पीड़ा पहुंची? चिकित्सक ने कहा कि मैंने उससे कहा— हिचकी तो कुछ भी नहीं है, यू आर प्रेगनेंट, तुम गर्भवती हो। अब कैथलिक नन, कैथलिक साध्वी गर्भवती हो, इससे बड़ा शाक नहीं हो सकता। उसके भक्तों ने कहा—आप यह क्या कह रहे हैं? उस चिकित्सक ने कहा—तुम घबराओ मत, इसके अतिरिक्त हिचकी बन्द नहीं हो सकती थी। बिजली के शाक को भी वह महिला झेल गयी। लेकिन अब हिचकी बंद हो गयी। हुआ क्या?

कैथलिक नन, आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर प्रवेश करती है। वह गर्भिणी है, भारी धक्का लगा। मन और चेतना का जो संबंध था, चेतना और शरीर का जो संबंध सेतु था, वह एकदम टूट गया। एक क्षण को भी वह टूट गया तो हिचकी बन्द हो गयी, क्योंकि हिचकी की अपनी व्यवस्था थी। वह सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। हिचकी लेने के लिए भी सुविधा चाहिए, वह सुविधा न रही। हिचकी का जो पुराना जाल था, छह महीने से निश्चित, वह अब का रगर न रहा। शरीर वही है, हिचकी कैसे खो गई! कोई दवा नहीं दी गई, कोई इलाज नहीं किया गया है, हिचकी कैसे खो गई! मनोचिकित्सक कहते हैं कि अगर चेतना और मन के संबंध में कहीं भी, जरा-सा भेद पड़ जाए एक क्षण के लिए भी तो आदमी का व्यक्तित्व दूसरा हो जाता है। वह पुराना ढांचा टूट जाता है। रस-परित्याग उस ढांचे को तोड़ने की प्रक्रिया है।

वस्तु में रस नहीं होता, सिर्फ रस का निमित्त होता है। इसे हम ऐसा समझें तो आसानी हो जाएगी। आप इस कमरे में आए हैं। दीवारें एक रंग की हैं, फर्श दूसरे रंग का है, कुर्सियां तीसरे रंग की हैं, अलग-अलग लोग अलग-अलग रंगों के कपड़े पहने हुए हैं। स्वभावतः आप सोचते होंगे कि इन सब चीजों में रंग है। और जब हम कमरे के बाहर चले जाएंगे तब भी कुर्सियां एक रंग की रहेंगी, दीवार दूसरे रंग की रहेंगी, फर्श तीसरे रंग का रहेगा। अगर आप ऐसा सोचते हैं तो आप कोई आधुनिक विज्ञान की किसी भी कीमती खोज से परिचित नहीं हैं। जब इस कमरे में कोई नहीं रह जाएगा तो वस्तुओं में कोई रंग नहीं रह जाता। यह बहुत मन को हैरान करता है। यह बात भरोसे की नहीं मालूम पड़ती। हमारा मन होगा कि हम किसी छेद से झांककर देख लें कि रंग रह गया कि नहीं। लेकिन आपने झांककर देखा कि वस्तुओं में रंग शुरू हो जाता है। वैज्ञानिक कहते हैं—किसी वस्तु में कोई रंग नहीं होता, वस्तु

केवल निमित्त होती है, किसी रंग को आपके भीतर पैदा करने के लिए। जब आप नहीं होते, जब आब्जर्वर नहीं होता, जब कोई देखने वाला नहीं होता, वस्तु रंगहीन हो जाती है, कलरलैस हो जाती है।

असल में प्रकाश की किरण जब किसी वस्तु पर पड़ती है तो वस्तु प्रका श की किरण को पीती है। अगर वह सारी किरणों को पी जाती है तो काली दिखाई पड़ती है। अगर वह सारी किरणों को छोड़ देती है और नहीं पीती तो सफेद दिखाई पड़ती है। अगर वह लाल रंग की किरण को छोड़ देती है और बाकी किरणों को पी लेती है तो लाल दिखाई पड़ती है। अब यह बहुत हैरानी होगी कि जो वस्तु लाल दिखाई पड़ती है वह लाल को छोड़कर सब रंगों को पीती है, सिर्फ लाल को छोड़ देती है। वह जो छूटी हुई लाल किरण है वह आपकी आंख पर पड़ती है, और उस किरण की वजह से वस्तु लाल दिखाई पड़ती है, जहां से वह आती हुई मालूम पड़ती है। लेकिन अगर कोई आंख ही नहीं है तो लाल किसको दिखाई पड़ेगी? उस किरण को पकड़ने के लिए कोई आंख चाहिए तब वह लाल दिखाई पड़ेगी। आपका बाहर जाना भी जरूरी नहीं है।

जब आप आंख बंद कर लेते हैं तो वस्तुएं रंगहीन हो जाती हैं, कलरलैस हो जाती हैं। कोई रंग नहीं रह जाता। इसका यह भी मतलब नहीं है कि वे सब एक जैसी हो जाती हैं। क्योंकि अगर वे सब एक जैसी हो जाएं तो जब आप आंख खोलेंगे तो उनमें सब में एक-सा रंग दिखाई पड़ना चाहिए। रंगहीन हो जाती हैं, लेकिन उनके रंगों की संभावना मौजूद बनी रहती है, पोटेंशियलिटी। जब आप आंख खोलेंगे तो लाल-लाल होगी, हरी-हरी होगी। जब आप आंख बंद कर लेंगे तो लाल-लाल न रह जाएगी, हरी-हरी न रह जाएगी। इसे ऐसा समझें कि लाल रंग की वस्तु सिर्फ वस्तु का रंग नहीं है, वस्तु और आपकी आंख के बीच का संबंध है, रिलेशनशिप है। क्योंकि आंख बन्द हो गई, रिलेशनशिप टूट गई, संबंध टूट गया। लाल रंग की कुर्सी नहीं है। आपकी आंख और कुर्सी के बीच लाल रंग का संबंध है। अगर आंख नहीं है तो संबंध टूट गया।

जब आप किसी चीज को कहते हैं—मीठा, तब भी वस्तु और आपके स्वादेंद्रिय के बीच का संबंध है। वस्तु मीठी नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि कड़वी और मीठी वस्तु में कोई फर्क नहीं है। पोटेंशियल फर्क है। बीज फर्क है, लेकिन अगर जीभ पर न रखा जाए तो कोई फर्क नहीं है। न कड़वी कड़वी है; आप यह नहीं कह सकते कि नीम कड़वी है जब तक आप जीभ पर नहीं रखते। आप कहेंगे—मैं रखूं या न रखूं, मेरे न रखने पर भी नीम कड़वी तो होगी ही। तब आप भूल करते हैं। क्योंकि कड़वा होना आपकी जीभ और नीम के बीच का संबंध है। नीम का अपना स्वभाव नहीं है, सिर्फ संबंध है।

इसे ऐसा समझें कि एक बच्चा पैदा हुआ एक स्त्री को। जब बच्चा पैदा होता है तो बच्चा ही पैदा नहीं होता, मां भी पैदा होती है। क्योंकि मां एक संबंध है। वह स्त्री बच्चा होने के पहले मां नहीं थी। और अगर बच्चा मर जाए तो फिर मां नहीं रह जाएगी। मां होना एक संबंध है। वह बच्चे और उस स्त्री के बीच जो संबंध है, उसका नाम है। बच्चे के बिना वह मां नहीं हो सकती। बच्चा भी मां के बिना नहीं हो सकता।

इस बात को खयाल में ले लें कि हमारे सब रस संबंध हैं वस्तुओं और हमारी जीभ के बीच। लेकिन अगर बात इतनी ही होती तो संबंध दो तरह से टूट सकता था—या तो हम जीभ को संवेदनहीन कर लें, उसकी सेंसिटीविटी को मार डालें, जीभ को जला लें तो रस नष्ट हो जाएगा। या हम वस्तु का त्याग कर दें तो रस नष्ट हो जाएगा। अगर बात इतनी ही आसान होती तो दो तरफ से संबंध तोड़े जा सकते हैं — या तो हम वस्तु को छोड़ दें जैसा कि साधारणतः महावीर की परम्परा में चलने वाला साधु करता है। वस्तु को छोड़ देता है। तब सोचता है कि रस से मुक्ति हो गई। रस से मुक्ति नहीं हुई। वस्तु में अभी भी पोटेंशियल रस है और जीभ में अभी भी पोटेंशियल सेंसिटीविटी है। अभी भी जीभ अनुभव करने में क्षम है और अभी भी वस्तु अनुभव देने में क्षम है। सिर्फ

बीच का संबंध टूट गया है इसलिए बात अप्रगट हो गई है। कभी भी प्रगट हो सकती है। अप्रगट हो जाने का अर्थ नष्ट हो जाना नहीं है। फिर दोनों को जोड़ दिया जाए, फिर प्रगट हो जाएगी। हमने बिजली का बटन बंद कर दिया है इसलिए बिजली नष्ट नहीं हो गयी है। सिर्फ बिजली की धारा में और बल्ब के बीच का संबंध टूट गया है। और बल्ब भी समर्थ है बिजली प्रगट करने में। बिजली की धारा भी समर्थ है अभी बल्ब से प्रगट होने में। सिर्फ संबंध टूट गया है, बिजली नष्ट नहीं हो गयी। फिर बटन आप आन कर देते हैं, बिजली जल जाती है।

जो आदमी वस्तुओं को छोड़कर सोच रहा है, रस का परित्याग हो गया, वह सिर्फ रस को अप्रगट कर रहा है, परित्याग नहीं। महावीर ने रस अप्रगट करने को नहीं कहा है, रस-परित्याग को कहा है। सिर्फ अनमैनिफेस्ट हो गया, अब प्रगट नहीं हो रहा है। इसका यह मतलब नहीं कि नष्ट हो गया। बहुत-सी चीजें आप में प्रगट नहीं होती हैं, बहुत मौकों पर। जब कोई आदमी आपकी छाती पर छुरा रख देता है तब कामवासना प्रगट नहीं होती, लेकिन मुक्त नहीं हो गए हैं आप, सिर्फ छिप जाती है। कितनी ही भूख लगी हो और एक आदमी बंदूक लेकर आपके पीछे लग जाए, भूख मिट जाती है। इसका यह मतलब नहीं भूख मिट गयी, सिर्फ छिप गयी। अभी अवसर नहीं है प्रगट होने का। अभी निमित्त नहीं है प्रगट होने का इसलिए छिप गयी। छिप जाने को त्याग मत समझ लेना।

और अकसर तो बात ऐसी है कि जो-जो छिप जाता है वह छिपकर और प्रबल और सशक्त हो जाता है। इसलिए जो आदमी रोज मिठाई खा रहा है, उसको मीठे का जितना अनुभव होता है, जिस आदमी ने बहुत दिन तक मिठाई नहीं खायी है, वह जब मिठाई खाता है तो उसका अनुभव और भी तीव्र होता है। उसका अनुभव और भी तीव्र होता है क्योंकि इतने दिनों तक रुका हुआ रस का जो अप्रगट रूप है, वह एकदम से प्रगट होता है, वह च्फलडेड, उसमें बाढ़ आ जाती है। आ ही जाएगी। इसलिए जो आदमी वस्तुएं छोड़ने से शुरू करेगा वह वस्तुओं से भयभीत होने लगेगा। वह डरेगा कि कहीं वस्तु पास न आ जाए। अन्यथा रस पैदा हो सकता है।

एक दूसरा उपाय है कि आप इंद्रिय को ही नष्ट कर लें। जीभ को जला डा लें, जैसा कि बुखार में हो जाता है, लम्बी बीमारी में हो जाता है। इंद्रिय के संवेदनशील जो तंतु हैं वे रुग्ण हो जाते हैं, बीमार हो जाते हैं, सो जाते हैं। लेकिन तब भी रस का कोई अंत नहीं होता। अगर मेरी आंख फूट जाए तो भी रूप देखने की आकांक्षा नहीं चली जाती। अगर आंख ही से रूप देखने की आकांक्षा जाती होती, तो बहुत आसान था। आंख हट जाने से, टूट जाने से, फूट जाने से रूप की आकांक्षा नहीं टूटती। कान फूट जाए तो भी ध्वनि का रस नहीं छूट जाता। मेरे पैर टूट जाएं, तो भी चलने का मन नष्ट नहीं हो जाता । जो जानते हैं वे तो कहते हैं—पूरा शरीर भी छूट जाए तो भी जीवेषणा नष्ट नहीं होती। नहीं तो दोबारा जन्म होना असम्भव है। जब पूरा शरीर छूटकर भी नया जीवन हम फिर से पकड़ लेते हैं तो एक-एक इंद्रिय को मारकर क्या होगा? मृत्यु तो सभी इंद्रियों को मार डा लती है। सभी इंद्रियां मर जाती हैं, फिर सभी इंद्रियों को हम पैदा कर लेते हैं, क्योंकि इंद्रियां मूल नहीं हैं। मूल कहीं इंद्रियों से भी पीछे है। इसलिए जो आंख-कान तोड़ने में लगा हो, वह भी बचकानी बातों में लगा है, वह नासमझी की बातों में लगा है। उससे रस नष्ट नहीं होगा। इंद्रिय के नष्ट होने से रस नष्ट नहीं होता। वस्तु के त्याग से रस नष्ट नहीं होता, इंद्रिय के नष्ट होने से रस नष्ट नहीं होता।

तो क्या हम मन को मार डालें? मन को मारने में भी लोग लगे हैं। सोचते हैं कि मन को दबा-दबाकर नष्ट कर डालें तो शायद। लेकिन मन बहुत उल्टा है। मन का नियम यही है कि जिस बात को हम मन से नष्ट करना चाहते हैं, मन उसी बात में ज्यादा रसपूर्ण हो जाता है।

एक सुबह मुल्ला के गांव में उसके मकान के सामने बड़ी भीड़ है। वह अपनी पांचवीं मंजिल पर चढ़ा हुआ कूदने को तत्पर है।

रस-परित्याग और काया-क्लेश

पुलिस भी आ गयी है, लेकिन उसने सब सीढ़ियों पर ताले डाल रखे हैं। कोई ऊपर चढ़ नहीं पा रहा है। गांव का मेयर भी आ गया है। सारा गांव नीचे धीरे-धीरे इकट्ठा हो गया है, और मुल्ला ऊपर खड़ा है। वह कहता है—मैं कूदकर मरूंगा। आखिर मेयर ने उसे समझाया कि तू कुछ तो सोच ! अपने मां-बाप के संबंध में सोच ! मुल्ला ने कहा —मेरे मां-बाप मर चुके। उनके संबंध में सोचता हूं तो और होता है जल्दी मर जाऊं। मेयर ने चिल्ला कर कहा—अपनी पत्नी के संबंध में तो सोच !

उसने कहा — वह याद ही मत दिलाना, नहीं तो और जल्दी कूद जाऊंगा। मेयर ने कहा—कानून के संबंध में सोच, अगर आत्महत्या की कोशिश की, फंसेगा। मुल्ला ने कहा—जब मर ही जाऊंगा तो कौन फंसेगा ! यह देखते हैं, बड़ी मुश्किल थी। मेयर न समझा पाया। आखिर गुस्से में उसने कहा कि तेरी मर्जी तो कूद, इसी वक्त कूद और मर जा। मुल्ला ने कहा, तू कौन है मुझे सलाह देने वाला कि मैं मर जाऊं ! नहीं मरूंगा।

आदमी का मन ऐसा चलता है। अगर कोई आपको समझाए कि मर जाओ, जीने का मन पैदा होता है। कोई आपको समझाए कि जियो, तो मरने का मन पैदा होता है। मन विपरीत में रस लेता है। इसलिए जो लोग मन को मारने में लगते हैं उनका मन और रसपूर्ण होता चला जाता है। न वस्तु को छोड़ने से रस का परित्याग होता है; न इंद्रिय को मारने से रस का परित्याग होता है; न मन से लड़ने से रस का परित्याग होता है। हम सभी तो मन से लड़ते हैं, लेकिन कौन सा रस का परित्याग हो जाता है ! मात्राओं के भेद होंगे, लेकिन हम सभी मन से लड़ने वाले हैं। हम मन को कितना दबाते हैं, कितना समझाते हैं! इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिस चीज के लिए आप मन को समझाते हैं, मन उसी की मांग बढ़ाता चला जाता है। असल में आप जब समझाते हैं, तभी आप स्वीकार कर लेते हैं कि आप कमजोर हैं, और मन ताकतवर है। और जब एक बार आपने अपने मन के सा मने अपनी कमजोरी स्वीकार कर ली तो मन फिर आपकी गर्दन को दबाता चला जाता है। आप मन से कहते हैं—यह मत मांग, यह मत मांग, यह मत मांग। लेकिन आपको खयाल है कि नियम क्या है? जितना ही आप कहते हैं, मत मांग, मांगने में रस आ जाता है। लगता है, जरूर कुछ मांगने जैसी चीज है। जरूर कुछ पाने जैसी चीज है। मन को जितना रोकते हैं, उसकी उत्सुकता बढ़ती है और गहन होती है। मन के जितने द्वार बन्द करते हैं, उसकी जिज्ञासा उतनी बढ़ती है, उतना लगता है कि कोई द्वार खोलकर झांक लूं और देख लूं।

तो जो भी मन के साथ लड़ने में लगेगा, वह रस को जगाने में लगेगा। यह भी ध्यान रखें कि मन से हम जिस चीज को भुलाने की कोशिश करते हैं वहां हम एक बहुत ही अमनोवैज्ञानिक काम कर रहे हैं। क्योंकि भुलाने की हर कोशिश याद करने की व्यवस्था है। इसलिए कोई आदमी किसी को भुला नहीं सकता। भूल सकता है, भुला नहीं सकता। अगर आप किसी को भुलाना चाहते हैं तो आप कभी न भुला पाएंगे। क्योंकि जब भी आप भुलाते हैं, तभी आप फिर से याद करते हैं। आखिर भुलाने के लिए भी याद तो करना पड़ेगा, और तब याद करने का क्रम सघन होता जाता है, और याद की रेखा मजबूत और गहरी होती चली जाती है।

तो जिसे आपको याद रखना हो, उसे भुलाने की कोशिश करना और जिसे आपको भुला देना हो, उसे कभी भी भुलाने की कोशिश मत करना, तो वह भूला जा सकता है। क्योंकि पुनरुक्ति याद बनती है, प्रेमियों का यही कष्ट है सारी दुनिया में। वे किसी प्रेमी को भुला देना चाहते हैं। जितना भुलाते हैं उतनी मुश्किल में पड़ जाते हैं। भुलाने की ज्यादा बेहतर तरकीब वह शादी कर लें और प्रेमी को घर में ले आएं। फिर बिलकुल याद नहीं आती। मन का यह नियम ठीक से खयाल में ले लें, अन्यथा बड़ी कठिनाई होती है। तथाकथित साधु, तपस्वी इसी मन के गहरे नियम को न समझने के कारण बहुत उलझाव में पड़ जाते हैं। भुलाने में लगे हैं। स्त्री न दिखाई पड़े, इसलिए आंख बंद करने में लगे हैं। भोजन न दिखाई पड़े

इसलिए इच्निदरयों को सिकोड़ने में लगे हैं। कहीं कोई रस न आ जाए, मन को वहां से विपरीत किसी दूसरी दिशा में उलझाने में लगे हैं। लेकिन इस सबसे जहां-जहां से वे अपने को हटा

215

रहे हैं वहीं-वहीं मन और गहरी रेखाएं स्मृति की निर्मित कर लेता है।

नहीं, मन को दबाने, समझाने, भुलाने की कोई व्यवस्था रस-परित्याग नहीं लाती। फिर रस-परित्याग कैसे फलित होता है? रस-परित्याग का जो वास्तविक रूपांतरण है, वह मन और चेतना के बीच संबंध टूटने से घटित होता है। मन और चेतना के बीच ही असली घटना घटती है।

इसे थोड़ा समझ लें तो खयाल में आ जाए।

मन उसी बात में रस ले पाता है जिसमें चेतना का सहयोग हो, को-आ परेशन हो। जिस बात में चेतना का सहयोग न हो, उसमें मन रस नहीं ले पा ता। असमर्थ है। एक आदमी रास्ते से भागा जा रहा है। आज भी रास्ते की दुकानों के विंडो केसेज में वे ही चीजें सजी हैं जो कल तक सजी थीं, लेकिन आज उसे दिखाई नहीं पड़तीं। रास्ते पर अब भी सुंदर कारें भागी जा रही हैं, लेकिन आज उसे दिखाई नहीं पड़तीं। उसके घर में आग लगी है, वह भागा चला जा रहा है। क्या हुआ? घर में आग लगी है तो हो क्या गया? चीजें तो अब भी गुजर रही हैं। मन वही है, इंद्रियां वही हैं, उन पर संघात वही पड़ रहे हैं, संवेदनाएं वही हैं, लेकिन आज उसकी चेतना कहीं और है। आज उसकी चेतना अपने मन के, अपनी इंद्रियों के साथ नहीं है। आज उसकी चेतना भाग गई है। वह वहां है जहां मकान में आग लगी है। लेकिन घर जाकर पहुंचे और पता चले कि किसी और के मकान में आग लगी है। गलत खबर मिली थी। सब वापस लौट आएगा ।

दोस्तोवस्की को फांसी की सजा दी गयी थी—रूस के एक चिंतक, विचारक, लेखक को। लेकिन ऐन वक्त पर माफ कर दिया गया। ठीक छह बजे जीवन नष्ट होने को था, और छह बजने के पांच मिनट पहले खबर आयी जार की कि वह क्षमा कर दिया गया है। दोस्तोवस्की नेच्च्बाद में निरंतर कहता था—उस क्षण जब छह बजने के करीब आ रहे थे तब मेरे मन में न कोई वासना थी, न कोई इच्छा थी, न कोई रस था, कुछ भी न था। मैं इतना शांत हो गया था, और मैं इतना शून्य हो गया था कि मैंने उस क्षण में जाना कि साधु, संत जिस समाधि की बात करते हैं वह क्या है। लेकिन जैसे ही जार का आदेश पहुंचा और मुझे सुनाया गया कि मैं छोड़ दिया जा रहा हूं, मेरी फांसी की सजा माफ कर दी गई। अचानक, जैसे मैं किसी शिखर से नीचे गिर गया। बस वापस लौट आया। सब इच्छाएं; सब क्षुद्रतम इच्छाएं, जिनका कोई मूल्य नहीं था क्षणभर पहले, वे सब वापस लौट आयीं। पैर में जूता काट रहा था, उसका फिर पता चलने लगा। जूता काट रहा था पैर में, उसका फिर पता चलने लगा। नया जूता लेना है, उसकी योजना चल रही थी—सब वापस। दोस्तोवस्की कहता था—उस शिखर को मैं दुबारा नहीं छू पाया। जो उस दिन आसन्न मृत्यु के निकट अचानक घटित हुआ था।

हुआ क्या था? अब मृत्यु इतनी सुनिश्चित हो तो चेतना सब संबंध छोड़ देती है। इसलिए समस्त साधकों ने मृत्यु के सुनिश्चय के अनुभव पर बहुत जोर दिया है। बुद्ध तो भिक्षुओं को मरघट में भेज देते थे कि तुम तीन महीने लोगों को मरते, जलते, मिटते, राख होते देखो। ताकि तुम्हें अपनी मृत्यु बहुत सुनिश्चित हो जाए। और जब तीन महीने बाद कोई साधक मृत्यु पर ध्यान करके लौटता था तो जो पहली घटना उसके मित्रों को दिखाई पड़ती थी, वह थी रस-परित्याग। रस चला गया। रस के जाने का सूत्र है—चेतना और मन का संबंध टूट जाए। वह संबंध कैसे टूटेगा और संबंध कैसे निर्मित हुआ है? जब तक मैं सोचता हूं—मैं मन हूं, तब तक संबंध है। यह आइडेंटिटी, यह तादात्त्मय कि मैं मन हूं, तब तक संबंध है। यह संबंध का टूट जाना, यह जानना कि मैं मन नहीं हूं, रस छिन्न-भिन्न हो जाता है—खो जाता है।

रस-परित्याग की प्रक्रिया है — मन के प्रति साक्षीभाव, विटनेसिंग। जब आप भोजन कर रहे हैं तो मैं नहीं कहूंगा आपको कि

216

रस-परित्याग और काया-क्लेश

आप भोजन मत करें, यह रसपूर्ण है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूंगा कि आप जीभ को जला लें क्योंकि जीभ रस देती है। मैं आपसे यह भी नहीं कहूंगा कि मन में आप अनुभव न करें कि यह खट्टा है, यह मीठा है। मैं आप से कहूंगा—भोजन करें, जीभ को स्वाद लेने दें; मन को पूरी खबर होने दें, पूरी संवेदना होने दें कि बहुत स्वादिष्ट है। सिर्फ भीतर इस सारी प्रक्रिया के साक्षी बनकर खड़े रहें। देखते रहें कि मैं देखने वाला हूं। मन को स्वाद मिल रहा; जीभ को रस आ रहा; वस्तु प्रीतिकर मालूम पड़ती रही; लेकिन मैं पीछे खड़ा देख रहा हूं। जस्ट बियांड—एक कदम भी पार खड़े होकर देख रहा हूं। मैं देख रहा हूं; मैं द्रष्टा हूं; मैं साक्षी हूं।

रस के अनुभव में सिर्फ इतना भाव गहन हो जाए तो आप अचानक पाएंगे कि इंद्रियां वही हैं, उन्हें नष्ट करना नहीं पड़ा। पदार्थ वही हैं, उन्हें छोड़कर भागना नहीं पड़ा। मन वही है, वह उतना ही संवेदनशील है, उतना ही सजग, जीवंत है; लेकिन रस का जो आकर्षण था वह खो गया। रस जो बुलाता था, पुकारता था, रस की जो पुनरा वृत्ति की इच्छा थी—रस का आकर्षण है कि उसे फिर से दोहराओ; उसे फिर से दोहराओ; उसे दोहराओ बार-बार, उसके चक्कर में घूमो—वह खो गया है। वह बिलकुल खो गया है। उसकी पुनरुक्ति की कोई आकांक्षा नहीं रही। और हम ऐसे रसों तक की पुनरुक्ति करने लगते हैं जो चाहे जीवन को नष्ट करने वाले क्यों न हों। अब एक आदमी शराब पी रहा है। वह जानता है, सुनता है, पढ़ता है कि जहर है, पर उसकी भी पुनरुक्ति की मांग है। मन कहता है दोहराओ। एक आदमी धूम्रपान कर रहा है। वह जानता है कि वह निमंत्रण दे रहा है न मालूम कितनी बीमारियों को—वह भली-भांति जानता है। अगर किसी और को समझाना हो तो वह समझा ता है। अगर अपने बेटे को रोकना हो तो वह कहता है—भूलकर कभी धूम्रपान मत करना। लेकिन वह खुद करता है। पुनरुक्ति की आकांक्षा है। विकृत रस भी अगर संयुक्त हो जाएं, और विकृत रस भी संयुक्त हो जाते हैं, एसोसिएशन से।

शिलर एक जर्मन लेखक हुआ। जब उसने अपनी पहली कविता लिखी थी तो वृक्षों पर सेव पक गए थे, नीचे गिर रहे थे। वह उस बगीचे में बैठा था। कुछ सेव नीचे गिरकर सड़ गए थे, और सड़े हुए सेवों की गंध पूरी हवाओं में तैर रही थी। तभी उसने पहली कविता लिखी। यह पहली कविता का जन्म और सड़े हुए सेवों की गंध एसोसिएटेड हो गए, संयुक्त हो गए। इसके बाद शिलर जिंदगीभर कुछ भी न लिख सका जब तक अपनी टेबल के आसपास वह सड़े हुए सेव न रख ले। बिलकुल पागलपन था। वह खुद कहता था कि बिलकुल पागलपन है। लेकिन जब तक सड़े हुए सेवों की गंध नहीं आती, मेरे भीतर काव्य सक्रिय नहीं होता। उसमें गति नहीं पकड़ती। मैं साधारण आदमी बना रहता हूं, शिलर नहीं हो पाता। जैसे ही सड़े हुए सेवों की गंध चारों तरफ से मेरे नासापुटों को घेर लेती है, मैं बदल जाता हूं। मैं दूसरा आदमी हो जा ता हूं। वह कहता था कि माना कि बड़ा रुग्ण मामला है कि सड़े हुए सेव, और भी गंधें हो सकती हैं, फूल रखे जा सकते हैं। लेकिन नहीं, यह संयुक्त हो गया।

अगर एक आदमी सिगरेट पी रहा है तो सिगरेट का पहला अनुभव सुखद नहीं है, दुखद है। लेकिन यह दुखद अनुभव भी निरंतर दोहराने से किसी क्षण की अनुभूति से अगर संयुक्त हो गया, तो फिर ि जंदगीभर पुनरुक्ति मांगता रहेगा। और हो सकता है संयुक्त। जब आप सिगरेट पीते हैं तो एक अथोच में सारी दुनिया से टूट जाते हैं। सिगरेट पीना एक अर्थ में मैस्टरबेटरी है, वह हस्तमैथुन जैसी चीज है।

मनोवैज्ञानिक ऐसा कहते हैं — आप अपने में ही बंद हो जाते हैं; दुनिया से कोई लेना-देना नहीं; अपना धुआं है, उड़ा रहे हैं, बैठे हैं। दुनिया टूट गयी, आपके और दुनिया के बीच एक स्मोक करटेन आ गया। पत्नी घर है, मतलब नहीं। दुकान चलती है कि नहीं चलती, मतलब नहीं। कहां क्या हो रहा है, मतलब नहीं। आपको इतना मतलब है कि आप धुआं भीतर खींच रहे हैं, बाहर छोड़ रहे हैं। आप सारे जगत से टूट गए, आइसोलेट हो गए। अकेले हो गए। अकेले में एक तरह का रस आता है, आइसोलेशन

217

महावीर-वाणी भाग : 1

में रस है। वही तो एकांत के साधक को आता है। अब आप यह जानकर हैरान होंगे कि एकांत के साधक को जो आता है, अगर वह किसी क्षण में सिगरेट पीने में आ गया, और आ सकता है, और आ जा ता है, क्योंकि सिगरेट भी तोड़ती है। इसलिए अकेला आदमी बैठा रहे तो थोड़ी देर में सिगरेट पीना शुरू कर देता है। खयाल मिट जाता है सब चारों तरफ का। अपने में बंद हो जाता है, क्लोजिंग हो जाती है।

यह वैसा ही है जैसे छोटा बच्चा अकेला पड़ा हुआ अपना अंगूठा पीता रहे। जब छोटा बच्चा अपना अंगूठा पीता है, ही इ डिसकनेक्टेड, उसका दुनिया से कोई संबंध नहीं रहा। दुनिया से उसे कोई मतलब नहीं, उसे अपनी मां से भी अब मतलब नहीं है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं—बच्चे को बहुत ज्यादा अंगूठा मत पीने देना। अन्यथा उसकी जिंदगी में सामाजिकता कम हो जाएगी। अगर कोई बच्चा बहुत दिनों तक अंगूठा पीता रहे तो वह एकांगी और अकेला हो जाएगा। वह दूसरों से मित्रता नहीं बना सकेगा। मित्रता की जरूरत नहीं। अपना अंगूठा ही मित्र का काम देता है। किसी से कुछ मतलब नहीं। जो बच्चा अंगूठा पीने लगेगा, उसका मां से प्रेम निर्मित नहीं हो पाएगा, क्योंकि मां से जो प्रेम निर्मित होता है वह उसके स्तन के माध्यम से ही होता है, आ र कोई माध्यम नहीं है। अगर वह अपने अंगूठे से इतना रस लेने लगा जितना मां के स्तन से मिलता रहा है, तो वह मां से इनडिपेंडेंट हो गया। अब उसकी कोई डिपेंडेंस नहीं मालूम होती उसको। अब वह निर्भर नहीं है। और जो बच्चा अपनी मां से प्रेम नहीं कर पाएगा, इस दुनिया में वह फिर किसी से प्रेम नहीं कर पाएगा, क्योंकि प्रेम का पहला पार्ट ही नहीं हो पाया। वह बच्चा अपने में बंद हो गया। एक अर्थ में वह बच्चा अब समाज का हिस्सा नहीं रह गया।

और जानकर आप हैरान होंगे कि जो बच्चे बचपन में ज्यादा अंगूठा पीते हैं, वे ही बच्चे बड़े होकर सिगरेट पीते हैं। जिन बच्चों ने बचपन में अंगूठा कम पिया है या नहीं पिया है, उनके जीवन में ि सगरेट पीने की सम्भावना ना के बराबर हो जाती है। क्योंकि सिगरेट जो है वह अंगूठे का सच्बसटीच्टयूट है, वह उसका परिपूरक है। बड़ा आदमी अंगूठा पीए तो जरा बेहूदा मालूम पड़ेगा। तो उसने सिगरेट ईजाद की है, चुरुट ईजाद किया है। उसने ईजाद की है चीजें, उसने हुक्का ईजाद किया है, लेकिन पी रहा है वह अंगूठा। वह कुछ और नहीं पी रहा है। लेकिन बड़ा है तो एकदम सीधा-सीधा अंगूठा ि पएगा तो जरा बेहूदा लगेगा। लोग क्या कहेंगे! इसलिए उसने एक परिपूरक इंतजाम कर लिया है। अब लोग कुछ भी न कहेंगे। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहेंगे कि सिगरेट पीने से नुकसान होता है। अंगूठा पीने से कोई भी न कहेगा कि नुकसान होता है, लेकिन अंगूठा पीते देखकर आदमी चौंक जाएंगे कि यह क्या कर रहे हो! सिगरेट पीने से इतना ही कहेंगे कि नुकसान होता है। वह कहेगा—क्या करें मजबूरी है, यह तो मैं भी जानता हूं, लेकिन आदत पड़ गयी है। अंगूठे में वह बुद्धू मालूम पड़ेगा, सिगरेट में वह समझदा र मालूम पड़ेगा।

सच्बसटीच्टयूट सिर्फ धोखा देते हैं। लेकिन, अगर एक बार रस आ जाए तो गलत से गलत चीज संयुक्त हो जाती है।

मुल्ला की पत्नी एक दिन उसके काफी हाउस में पहुंच गयी जहां वह शराब पीता रहता था बैठकर। मुल्ला अपना टेबल पर गिलास और बोतल लिए बैठा था। पत्नी आ गयी तो घबराया तो बहुत, लेकिन उसने, पत्नी आ गयी थी तो एक प्याली में उसको भी डालकर शराब दी। पत्नी भी आयी थी आज जांचने कि यह क्या करता रहता है! शराब उसने एक घूंट पिया, नितान्त तिक्त और बेस्वाद था, उसने नीचे रख दिया और मुंह बिगाड़ा, और उसने कहा कि मुल्ला, तुम यह पीते रहते हो? मुल्ला ने कहा—सोचो, तू सोचती थी मैं बड़ा आनंद मनाता रहता हूं। यही दुख भोगने के लिए हम यहां आते हैं। समझ गयी, अब दुबारा भूलकर मत कहना कि वहां तुम बड़ा आनंद करने जाते हो।
शराब का पहला अनुभव तो दुखद ही है, लेकिन शराब के गहरे अनुभव धीरे-धीरे सुखद होने शुरू हो जाते हैं, क्योंकि शराब

आपको जगत से तोड़ देती है, जगत की चिन्ताओं से तोड़ देती है। जगत मिट जाता है, आप ही रह जाते हैं। यह बहुत ही मजे की बात है कि ध्यान और शराब में थोड़ा संबंध है। इसलिए विलियम जेम्स ने, जिसने कि इस सदी में धर्म और नशे के बीच संबंध खोजने में सर्वाधिक शोध कार्य किया, विलियम जेम्स ने कहा कि शराब का इतना आकर्षण गहरे में कहीं न कहीं धर्म से संबंधित है, अन्यथा इतना आकर्षण हो नहीं सकता। कहीं न कहीं शराब कुछ ऐसा करती होगी जो मनुष्य की गहरी धार्मिक आकांक्षा को तृप्त करता है—है संबंध। और इसलिए वेद के सोमरस से लेकर एलडूअस हक्सले तक, एल्र एस्र डी तक, धार्मिक आदमी का बड़ा हिस्सा नशों का उपयोग करता रहा है—बड़ा हिस्सा। और नशे के उपयोग में कहीं न कहीं कोई तालमेल है। वह तालमेल इतना ही है कि शराब आपको जगत से तोड़ देती है इस बुरी तरह कि आप बिलकुल अकेले हो जाते हैं। अकेले होने में एक रस है। संसार की सारी चिन्ताएं भूल जाती हैं। आप एक गहरे अर्थ में निश्चिंत मालूम पड़ते हैं। हो तो नहीं जाते। शराब तो थोड़ी देर बाद विदा हो जाएगी, चिन्ता वापस लौट आएगी, लेकिन शराब के सा थ इस निश्चिंतता का रस जुड़ जाएगा। बस वह एक दफा रस जुड़ गया, फिर आप शराब के नाम से जहर पीते रहेंगे। वह कितना ही तिक्त मालूम पड़े, वह रस जो संयुक्त हो गया। हम विकृत रसों से भी जुड़ जा सकते हैं, और फिर उनकी पुनरुक्ति की मांग शुरू हो जाती है।
मुल्ला एक दिन अपने मकान के दरवाजे पर उदास बैठा है। पड़ोसी बहुत हैरान हुआ क्योंकि दो सप्ताह से वह बहुत प्रसन्न मालूम पड़ रहा था, इतना जितना कभी नहीं मालूम पड़ा था। उदास देखकर पड़ोसी ने पूछा कि आज नसरुद्दीन बहुत उदास मालूम पड़ते हो, बात क्या है? नसरुद्दीन ने कहा—बात! बात बहुत कुछ है। इस महीने के पहले सप्ताह मेरे दादा मर गए और मेरे नाम पचास हजार रुपए छोड़ गए। दूसरे सप्ताह मेरे चाचा मर गए और मेरे नाम तीस हजार रुपए छोड़ गए और तीसरा सप्ताह पूरा होने को है, अभी तक कुछ नहीं हुआ।
मन पुनरुक्ति मांगता है। इसका सवाल नहीं है कि कोई मरेगा तब कुछ होगा। मरने का दुख एक तरफ रह गया। वह पचास हजार रुपए मिलने का सुख है। इसलिए मनसविद कहते हैं कि सिर्फ गरीब बाप के मरने से बेटे दुखी होते हैं; अमीर बाप के मरने से केवल दुख प्रगट करते हैं। इसमें सच्चाई है। क्योंकि मृत्यु से भी ज्यादा कुछ और साथ में अमीर बाप के साथ घटता है। उसका धन भी बेटे के हाथ में आ जाता है। दुख वह प्रगट करता है, लेकिन वह दुख ऊपरी हो जाता है। भीतर एक रस भी आ जाता है। और अगर उसे पता चले कि बाप पुनः जिन्दा हो गया, तो आप समझ सकते हैं, मुसीबत कैसी मालूम पड़े। वह नहीं होता कभी जिन्दा, यह दूसरी बात है।

मुल्ला की जिंदगी में ऐसी तकलीफ हो गयी थी। उसकी पत्नी मर गयी, बा मुश्किल मरी। अर्थी को उठाकर ले जा रहे थे कि अर्थी सामने लगे हुए नीम के वृक्ष से टकरा गयी। अंदर से आवाज आयी हलन-चलन की। लोगों ने अर्थी उतारी, पत्नी मरी नहीं थी, सिर्फ बेहोश थी। मुल्ला बड़ा छाती पीटकर रो रहा था। पत्नी को ि जंदा देखकर बड़ा दुखी हो गया—छाती पीटकर रो रहा था, पत्नी को जिन्दा देखकर वह बड़ा दुखी हो गया। फिर पत्नी तीन सा ल और जिन्दा रही, फिर मरी, और जब अर्थी उठाकर लोग चलने लगे तो मुल्ला फिर छाती पीटकर रो रहा था। जब नीम के पास पहुंचे, तो उसने कहा—भाइयो, जरा सम्भालकर, फिर से मत टकरा देना।

आदमी, जो प्रगट करता है, वही उसके भीतर है, ऐसा जरूरी नहीं है। ज्यादा सम्भावना तो यह है कि वह जो प्रगट करता है, उससे विपरीत उसके भीतर होता है। शायद वह प्रगट ही इसलिए करता है कि वह जो विपरीत भीतर है वह छिपा रहे, वह प्रगट न हो जाए। अगर ज्यादा जोर से छाती महावीर-वाणी भाग : 1

कि दुख नहीं है तो छाती पीटकर रो सकता है। भीतर अन्यथा भी हो सकता है। कितनी ही गलत चीज में अगर रस आ जाए तो उसकी पुनरुक्ति शुरू हो जाती है। गलत से गलत चीज में शुरू हो जाती है, तो सही चीज में तो कोई कठिनाई नहीं है।

पर यह जोड़ कब पैदा होता है? यह लिंक कब बनती है? यह लिंक, यह जोड़, यह संबंध तब बनता है जब व्यक्ति अपने मन से अपने को दूर नहीं पाता, एक पाता है। वही उसके जुड़ने का ढंग है, जब हम पाते हैं कि मैं मन हूं। अब आपको क्रोध आता है और आप कहते हैं कि मैं क्रोधी हो गया, तो आपको पता नहीं, आप मन के साथ जोड़ बना रहे हैं। जब आपके जीवन में दुख आता है और आप कहते हैं—मैं दुखी हो गया, तो आपको पता नहीं, आप मन के साथ अपने को एक समझने की भ्रांति में पड़ रहे हैं। जब सुख आता है तो आप कहते हैं—मैं सुखी हो गया, तब आप ि फर मन के साथ तादात्त्मय कर रहे हैं।

अगर रस-परित्याग साधना है तो जब क्रोध आए तब कहना कि क्रोध आया , ऐसा मैं देखता हूं—ऐसा नहीं कि क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा है—तब आप फिर संबंधित हो गए। ध्यान रहे अगर आपने कहा —नहीं, क्रोध मुझे आ ही नहीं रहा, और क्रोध आ रहा है तो आप क्रोध से संबंधित हों या अक्रोध से संबंधित हों, दोनों हालत में रस-परित्याग नहीं होगा। जब क्रोध आए तब रस-परित्याग की साधना करने वाला व्यक्ति कहेगा, क्रोध आ रहा है, क्रोध जल रहा है, लेकिन मैं देख रहा हूं।

और सच यही है कि आप देखते हैं, आप कभी क्रोधी होते नहीं। वह भ्रांति है कि आप क्रोधी होते हैं। आप सदा देखनेवाले बने रहते हैं। जब पेट में भूख लगती है तब आप भूखे नहीं हो जाते, आ प सिर्फ जाननेवाले होते हैं कि भूख लगी है। जब पैर में कांटा गड़ता है तो आप दर्द नहीं हो जाते, तब आप जानते हैं कि पैर में दर्द हो रहा है, ऐसा मैं जानता हूं।

लेकिन इस जानने का बोध आपका प्रगाढ़ नहीं है, बहुत फीका है। वह इतना फीका है कि जब पैर का कांटा जोर से चुभता है तो भूल जाता है उस बोध को प्रगाढ़ करने का नाम रस-परित्याग है। वह बोध जितना प्रगाढ़ होता जाए, तब जीभ आपकी कहेगी — बहुत स्वादिष्ट है। आप कहेंगे कि ठीक है, जीभ कहती है कि स्वादिष्ट है—ऐसा मैं सुनता हूं, ऐसा मैं देखता हूं, ऐसा मैं समझता हूं, लेकिन मैं अलग हूं। रसानुभव के बीच में साक्षी हूं। कोई सम्मान कर रहा है, फूल मालाएं डाल रहा है, तब आप जानते हैं कि फूल मालाएं डाली जा रही हैं, कोई सम्मान कर रहा है, मैं देख रहा हूं। कोई पत्थर मार रहा है, कोई गालियां दे रहा है, तब आप जानते हैं कि गालियां दी जा रही हैं, पत्थर मारे जा रहे हैं, मैं देख रहा हूं।

और एक बार इस द्रष्टा के साथ संबंध बन जाए और इस मन के संबंध शिथिल हो जाएं तो आप पाएंगे, सब रस खो गए। न वस्तुएं छोड़नी पड़तीं, न आंखें फोड़नी पड़तीं, न तथाकथित आरोपण अपने ऊपर करना पड़ता, लेकिन रस खो जाते हैं। और जब रस खो जाते हैं तो वस्तुएं अपने आप छूट जाती हैं। और जब रस खो जा ते हैं तो इंद्रियां अपने आप शांत हो जाती हैं। और जब रस खो जाते हैं तो मन पुनरुक्ति की मांग बन्द कर देता है। क्योंकि वह करता ही इसलिए था

कि रस मिलता था। अब जब मालिक को ही रस नहीं मिलता तो बात समाप्त हो गयी। मन हमारा नौकर है, छा या की तरह हमारे पीछे चलता है। हम जो कहते हैं वह मन दोहरा देता है। मन जो दोहराता है इंद्रियां वही मांगने लगती हैं। इंद्रिया जो मांगने लगती हैं, हम उन्हीं के पदाथोच को इकट्ठा करने में जुट जाते हैं। ऐसा चक्कर है।
इसे आप पहले केंद्र से ही तोड़ें। फिर भी महावीर इसे कहते हैं, यह बाच्हय-तप है।यह बड़े मजे की बात है। इसे तोड़ना पड़ेगा भीतर, लेकिन फिर भी यह बाच्हय-तप है। क्योंकि जिससे आप तोड़ रहे हैं वह बाहर की ही चीज है, फिर भी बाहर की चीज है। अगर मैं साक्षी हो रहा हूं तो भी तो बाहर का हो रहा हूं, वस्तु का ही हो रहा हूं, इंद्रियों का हो रहा हूं, मन का हो रहा हूं। वे सब पराए हैं, वे सब बाहर हैं।

220

रस-परित्याग और काया-क्लेश

ध्यान रहे, महावीर कहते हैं, साक्षी होना भी बाहर है। इसलिए जब केवली होता है कोई तब वह साक्षी भी नहीं होता। किसका साक्षी होना है? वह सिर्फ होता है — जस्ट बीइंग, सिर्फ होता है। साक्षी भी नहीं होता क्योंकि साक्षी में भी द्वैत है। कोई है जिसका मैं साक्षी हूं। अभी वह कोई मौजूद है। इसलिए केवली साक्षी भी नहीं होता । जब तक मैं ज्ञाता हूं तब तक कोई ज्ञेय मौजूद है, इसलिए केवली ज्ञाता भी नहीं होता, मात्र ज्ञान रह जाता है।
इसलिए महावीर इसे भी बाच्हय कहेंगे। यह भी बाहर है। लेकिन बाहर का यह मतलब नहीं है कि आप बाहर की वस्तु को छोड़ने से शुरू करें। बाहर की वस्तु छूटना शुरू होगी, यह परिणाम होगा। अगर किसी व्यक्ति ने बाहर की वस्तु छोड़ने से शुरू किया तो वह मुश्किलों में पड़ जाएगा, उलझ जाएगा। वह जिस वस्तु को छोड़ेगा उसमें आकर्षण बढ़ जाएगा। वह जिससे भागेगा उसका निमंत्रण मिलने लगेगा। वह जिसका निषेध करेगा उसकी पुकार बढ़ जाएगी। जीभ से लड़ेगा, आंख से लड़ेगा तो मन और भी ज्यादा प्रताड़ित करने लगेगा। रस कायम है और इंद्रिय पास में नहीं तो मन और भी ज्यादा प्रताड़ित करेगा। अगर मन को दबाएगा, हटाएगा, समझाएगा, बुझाएगा तो मन उल्टी मांग करता है। सिर्फ एक ही जगह है जहां से रस टूट जाता है, वह है साक्षीभाव। रस-परित्याग की प्रक्रिया है, साक्षीभाव।
रस-परित्याग के बाद महावीर ने कहा है — काया-क्लेश। यह महावीर के साधना सूत्रों में सबसे ज्यादा गलत समझा गया साधना सूत्र है। काया-क्लेश शब्द साफ है। लगता है — शरीर को कष्ट दो, का या को क्लेश दो, काया को सताओ; लेकिन महावीर सताने की किसी भी बात में गवाही नहीं हो सकते। क्योंकि सब सताना हिंसा है। अपना ही शरीर सताना भी हिंसा है, क्योंकि महावीर कहते हैं — वह भी तुम्हारा है! सच तुम्हारा है जो तुम उसे सता सकोगे? पदा र्थ पर है। मेरे शरीर में जो खून की धारा दौड़ रही है वह उतनी ही मुझसे दूर है जितनी आपके शरीर में खून की धारा दौड़ रही है। मेरे शरीर में जो हड्डी है, वह भी मैं नहीं हूं। उतना ही मैं नहीं हूं जितना आपके शरीर की हड्डी मैं नहीं हूं। और जब मेरे शरीर की हड्डी निकालकर और आपके शरीर की हड्डी निकालकर रख दी जाए तो मै पता भी न लगा पाऊंगा कि कौन-सी मेरी हड्डी है — कि लगा पाऊंगा? कोई पता न लगेगा। हड्डी सिर्फ हड्डी है। वह मेरी-तेरी नहीं है। और मेरी हड्डी जिस नियम से बनती है उसी नियम से आपकी हड्डी भी बनती है। वह सब बाहर की ही व्यवस्था है।
तो महावीर अपने शरीर को भी सताने की बात नहीं कह सकते क्योंकि महा वीर भलीभांति जानते हैं कि अपना वहां क्या है? वहां भी सब पराया है। सिर्फ डिसटेंस का फासला है। मेरा शरीर मुझसे थोड़ा कम दूरी पर, आपका शरीर मुझसे थोड़ी ज्यादा दूरी पर है, बस इतना ही फासला है। और तो कोई फासला नहीं है। पर महावीर की परम्परा ने ऐसा ही समझा कि काया को सताओ, और इसलिए मेसोचिस्ट का, आत्मपीड़कों का बड़ा वर्ग महावीर की धारा में सम्मिलित हुआ। जिन-जिन को लगता था कि अपने को सताने में मजा आ सकता है वे सम्मिलित हुए।

अब ध्यान रहे, महावीर ने अपने बालों का लोंच किया, अपने बाल उखा ड़कर फेंक दिए। क्योंकि महावीर कहते थे — अब बालों को उखाड़ने के लिए भी कोई साधन पास में रखना पड़े, कोई रेजर साथ रखो या किसी नाई पर निर्भर रहो, या नाई के यहां क्यू लगाकर खड़े हो, महावीर ने कहा, फिजूल-फिजूल समय इसमें खोना जरूरी नहीं है। महावीर अपने बाल उखाड़ देते थे। लेकिन महावीर बाल उखाड़ते थे इसलिए नहीं कि बाल उखाड़ने में जो पीड़ा होती थी उस पीड़ा में उन्हें कोई रस था। सच तो यह है कि महावीर को बाल उखाड़ने में पीड़ा नहीं होती थी । यह थोड़ा समझने जैसा है। आपके शरीर में बाल और नाखून डैडपार्ट्स हैं, जिन्दा हिस्से नहीं हैं। नाखून और बाल मरे हुए हिस्से हैं इसलिए तो कैंची से काटकर दर्द नहीं होता। उंगली काटिए ! बाल कैंची से कटता है,

221

महावीर-वाणी भाग : 1

आप को दर्द क्यों नहीं होता? इफ इट इ ए पार्ट—अगर आ पका ही हिस्सा है तो दर्द होना चाहिए, यदि वह जिन्दा है तो दर्द होना चाहिए। लेकिन आपके बाल कटते रहते हैं, आपको पता भी नहीं चलता। बा ल मरा हुआ हिस्सा है। असल में शरीर में जो जीव कोष मर जाते हैं उन कोषों को बाहर निकालने की तरकीब है—बाल और ना खून और अनेक तरह से, पसीने से, और सब तरह से। शरीर के मरे हुए कोष शरीर बाहर फेंक देता है। तो बाल आपके शरीर के मरे हुए कोष हैं। अगर मरे हुए कोषों को भी खींचने से पीड़ा होती है तो वह भ्रांति है सिर्फ । वह सिर्फ खयाल है कि पीड़ा होगी, इसलिए होती है।

आप कहेंगे, क्या सारे लोग भ्रांति में हैं? तो मैं आपको एक छोटी-सी वैज्ञानिक घटना कहूं जिससे खयाल में आए। फ्रांस में एक आदमी है, लोरेंजो। उसने पीड़ारहित प्रसव के हजारों प्रयोग किए। कोई अब तक वह एक लाख स्त्रियों को बिना दर्द के प्रसव करवाया है। बिना कोई दवा दिए, बिना कोई अनस्थेसिया दिए, बिना बेहोश किए। जैसी स्त्री है वैसी ही उसे लिटाकर बिना दर्द के बच्चे को पैदा करवा देता है। वह कहता है—सिर्फ यह भ्रांति है कि बच्चे के पैदा होने में दर्द होता है, यह सिर्फ खयाल है। और चूंकि यह खयाल है इसलिए जब मां को बच्चा होने के करीब आता है तब वह भयभीत होनी शुरू हो जाती है कि अब दर्द होनेवाला है। अब दर्द होगा। और चूंकि दर्द जब भी खयाल में आता है तो वह अपनी पूरी मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है।

दर्द सिकोड़ता है—ध्यान रहे, सुख फैलाता है, दुख सिकोड़ता है। जब आप दुख में होते हैं तो सिकुड़ते हैं। अगर एक आदमी आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए, आपकी सब मांस-पेशियां भीतर सिकुड़ जाती हैं। कोई आपके गले में फूलमाला डाल दे, आपका सब फैल जाता है। फूलमाला डलवाकर कभी वजन मत तुलवाना, ज्यादा निकल सकता है। आप हैरान होंगे, यह वैज्ञानिक निरीक्षित तथ्य है कि भगतसिंह का वजन फांसी पर बढ़ गया। जेल में तौला गया और जेल से ले जाकर फांसी के तख्ते पर तौला गया, फांसी लगनेवाली थी तो भगतसिंह का वजन कोई डेढ़ पौंड बढ़ गया। यह कैसे बढ़ गया? भगतसिंह इतना आनंदित था कि फैल सकता है। जब आप दुख में होते हैं तो अपने को आप िसकोड़ते हैं रक्षा के लिए।

तो जब मां को डर लगता है कि अब पीड़ा आनेवाली है, अब बच्चा होनेवाला है और उसने देखी हैं चीखें, कराहें सुनी हैं अस्पतालों में, घर में। सब उसे पता है। वह अपनी मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ने लगती है। जब वह मांस-पेशियों को भीतर सिकोड़ती है और बच्चा बाहर निकलने के लिए धक्का देता है, पीड़ा शुरू होती है, दर्द शुरू हो जाता है। दर्द शुरू होता है, मां का भरोसा पक्का हो जाता है कि दर्द होने लगा। वह और जोर से सिकोड़ती है। वह िजतने जोर से सिकोड़ती है, बच्चा उतने जोर से धक्के देता है। उसे बाहर निकलना है। दोनों के संघर्ष में पीड़ा और पेन पैदा होता है।

लोरेंजो कहता है—यह पेन सिर्फ मां पैदा करवाती है। यह सजेशन है उसका , खयाल है। पेन होने की जरूरत ही नहीं। किसी जानवर को नहीं होता है, जंगली आदिवासियों को नहीं होता है। आदिवा सी स्त्री बच्चा पैदा हो जाता है जंगल में, उसको टोकरी में रखकर अपने घर चल पड़ती है। उसे विश्राम की भी कोई जरूरत नहीं रहती क्योंकि जब दर्द ही नहीं हुआ तो विश्राम की क्या जरूरत? दर्द हुआ तो फिर महीनेभर विश्राम की जरूरत है। यह सारा का सारा मानसिक है, लोरेंजो कहता है। और अब तो लोरेंजो की व्यवस्था रूस और अमरीका सब तरफ फैलती जा रही है। और वह सिर्फ मां को इतना समझाता है कि तू खींच मत अपनी मांस-पेशियों को, रिलेक्स रख। बच्चे को को-आपरेट कर बाहर आने में। तू सोच कि बच्चा बाहर जा रहा है। इसलिए आप देखेंगे कि कोई पचहत्तर प्रतिशत बच्चे रात में पैदा होते हैं। उनको रात में पैदा होना पड़ता है। क्योंकि नींद में मां लड़ाई नहीं करती। नहीं तो हिसाब से पचास परसेंट रात में हों, चलेगा। पचास परसेंट दिन में हों, चलेगा। इससे ज्यादा—इससे ज्यादा का मतलब है कि मां कुछ गड़बड़ करती है। या बच्चे रात में जगत में उतरने को ज्यादा आतुर हैं। कुल कारण इतना है कि मां जब तक जगी रहती है, वह ज्यादा सख्ती से

222

अपनी मांस-पेशियों को खींचे रहती है। वह सो जाती है तो शिथिल हो जाती है। सम्मोहन में बच्चे बिना दर्द के पैदा हो जाते हैं क्योंकि मां नींद में—गहरी नींद में सम्मोहित हो जाती है। बच्चा पैदा हो जाता है।
लेकिन लोरेंजो कहता है—को-आपरेट विद दि चाइल्ड। और लोरेंजो यह भी कहता है कि जिस मां ने बच्चे के पैदा होने में सहयोग नहीं दिया वह बाद में भी नहीं दे पाएगी। और जिस बच्चे के सा थ पहला अनुभव दुख का हो गया उस बच्चे के साथ सुख का अनुभव लेना बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि पहला अनुभव एक्सपोजर है, गहरा। वह गहरे में उतर जाता है। जिस बच्चे ने पहले ही दिन पीड़ा दे दी, अब वह पीड़ा ही देगा। यह प्रतीति गहन हो गयी। तो इसलिए मां बुढ़ापे तक कहती रहती है कि मैंने तुझे नौ महीने पेट में रखकर दुख झेला। वह भूलती नहीं। मैंने कितनी-कितनी तकलीफें झेलीं। बच्चे के साथ सुख का अनुभव, मां कभी कम ही कहती सुनी जाती है। दुख के अनुभव ही कहती सुनी जाती है। शायद ही कोई मां यह कहती हो कि मैंने तुझे नौ महीने रखकर कितना सुख पाया। और जो मां ऐसा कह सकेगी, उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं रहेगी, लेकिन कहने का सवाल नहीं है, अनुभव की बात है। और जो मां बच्चे को नौ महीने पेट में रखकर आनंद नहीं पा सकी, उसने मां होने का हक खो दिया। दुख पाया तो दुश्मन हो गया। और जिसके साथ इतना दुख पाया अब उसके साथ दुख की ही सम्भावना का सूत्र गहन हो गया। अब जब वह दुख देगा, तभी खयाल में आएगा, जब वह सुख देगा तो खयाल में नहीं आएगा। क्योंकि हमारी च्वाइस शुरू हो गयी, हमारा चुनाव शुरू हो गया।
लोरेंजो ने लाखों स्त्रियों को बिना दर्द के, प्रसव करवाकर यह प्रमाणित कर दिया कि दर्द हमारा खयाल है। अगर प्रसव बिना दर्द के हो सकता है तो आप सोचते हैं, बाल बिना दर्द के नहीं निकल सकते! बहुत आसान-सी बात है। महावीर अपने बाल उखाड़ कर फेंक देते हैं।
लेकिन पागलों की एक जमात है और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पागलों का एक खास वर्ग है जो बाल नोंचने में रस लेता है। जिसको बाल नोंचने में रस आता है, अगर वह ऐसा ही बाजार में खड़े होकर बाल नोंचे, तो आप उसको पागलखाने भेज देंगे। अगर वह महावीर का अनुयायी होकर नोंचे तो आप उसके पैर छुएंगे। अब यह आदमी अगर थोड़ी भी इसमें बुद्धि है और पागलों में काफी होती है—काफी होती है। इसलिए काफी बुद्धिवाले लोग भी कभी-कभी पागल होते हैं। पागलों में काफी बुद्धि होती है। और जहां तक उनका पागलपन है वह अपनी बुद्धि का उसमें पूरा प्रयोग करते हैं। तो जो बाल नोंचनेवाले पागल हैं वे महावीर में उत्सुक होकर साथ खड़े हो जाएंगे। कुछ पागल हैं, जिनको नग्न होने में रस आता

है। उनको मनोवैज्ञानिक एक्जीबीशिनिस्ट कहते हैं। अगर वे ऐसे ही नग्न होकर खड़े हों तो पुलिस पकड़कर ले जाएगी। लेकिन महावीर को नग्न देखकर उनको बहुत मजा आ जाएगा। वे नग्न खड़े हो जाएंगे। और तब आप उनके पैर छूने पहुंच जाएंगे। पता लगाना बहुत मुश्किल है कि वह नग्नता की वजह से महावीर के अनुयायी हो गए, या महावीर के अनुयायी होने की वजह से वे नग्न हुए हैं। बाल नोंचने में उनको मजा आता है इसलिए महावीर के साथ चले गए, या महावीर के साथ चले गए और उस राज को पा गए जहां बाल नोंचने में कोई दर्द नहीं होता। यह तय करना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर क्या हो रहा है, यह बाहर से जांच बड़ी कठिन है।

मुल्ला एक दिन चर्च में गया है सुनने। कोई बड़ा पादरी बोलने आया है। चला गया। एक ईसाई मित्र ने कहा, जाकर बैठ गया। आगे ही बैठा है। प्रभावशाली आदमी है। पादरी की भी नजर उस पर बार-बार जाती है। जब पादरी ने टेन कमांडमेंट्स पर बोलना शुरू किया, दस आज्ञाओं पर और जब उसने एक आज्ञा पर काफी बातें समझायीं — दाउ शैल्ट नाट स्टील, चोरी नहीं करना तुम। तो मुल्ला बड़ा बेचैन हो गया। उसके माथे पर पसीना आ गया। पादरी को खयाल भी आया कि बहुत बेचैन है यह आदमी, क्या

बात है! इतना बेचैन है कि लगता है कि वह उठकर न चला जाए। हाथ पैर उसके सीधे नहीं हैं। फिर पादरी दूसरी आज्ञा पर आया —दाउ शैल्ट नाट कमिट एडल्टरी, व्यभिचार मत करना तुम। मुल्ला हंसने लगा। बड़ा प्रसन्न हुआ। बड़ा शांत और आनंदित दिखाई पड़ने लगा। पादरी और भी हैरान हुआ कि इसको हो क्या रहा है! जब सभा समाप्त हो गयी, उसने मुल्ला को पकड़ा और कोने में ले गया। और पूछा कि राज क्या है तुम्हारा? जब मैंने कहा— चोरी मत करना तो तुम बहुत परेशान थे। तुम्हारे माथे पर पसीना आ गया। और जब मैंने कहा—व्यभिचार मत करना तो तुम बड़े आनंदित हो गए।

मुल्ला ने कहा कि जब आप नहीं मानते तो बताए देता हूं। जब आपने कहा चोरी मत करना तब मुझे खयाल आया कि मेरा छाता कोई चुरा ले गया। छाता दिखाई नहीं पड़ रहा, तो मैं मुसीबत में पड़ गया कि जरूर कोई चोर—मुझे गुस्सा भी बहुत आया कि यह कैसा चर्च है, जहां चोर इकट्ठे हैं। लेकिन जब आपने कहा कि व्य भिचार मत करना, तब मुझे फौरन खयाल आ गया कि रात में मैं छाता कहां छोड़ आया हूं—कोई हर्जा नहीं, कोई हर्जा नहीं।

आदमी के भीतर क्या हो रहा है, वह उसके बाहर देखकर पता लगाना बहुत मुश्किल है। आदमी के भीतर सूक्ष्म में वह जो घटित होता है वह बाहर के प्रतीकों से पकड़ना अत्यंत कठिन है। अकसर ऐसा हुआ है कि महावीर के पास वे लोग भी इकट्ठे हो जाएंगे और जैसे-जैसे महावीर से फासला बढ़ता जाएगा, उनकी संख्या बढ़ती जाएगी। और एक वक्त आएगा कि महावीर के पीछे चलने वाली भीड़ में अधिक लोग वे होंगे जो उन बातों से उत्सुक हुए जिन बा तों से उत्सुक नहीं होना चाहिए था। और जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए था, उनका खयाल ही मिट जाएगा। क्योंकि जिन बातों से उत्सुक होना चाहिए वे गहन हैं, और जिन बातों से हम उत्सुक होते हैं वे ऊपरी हैं, बाहरी हैं। अब महावीर को लोगों ने देखा है कि अपने बाल उखाड़ रहे हैं, भूखे खड़े हैं, नग्न खड़े हैं, धूप-सर्दी, वर्षा में खड़े हैं, तो जिन लोगों को भी अपने को सताना है, महावीर की आड़ में वे बड़ी आसानी से कर सकते हैं। लेकिन महावीर अपने को सता नहीं रहे। काया-क्लेश का अर्थ महावीर के लिए सताना नहीं है।

पर यह शब्द क्यों प्रयोग किया? महावीर का जो अर्थ है, वह यह है कि काया-क्लेश है। इसे थोड़ा समझें। शरीर दुख है, शरीर ही दुख है। शरीर के साथ सुख मिलता ही नहीं कभी, दुख ही मिलता है। शरीर के साथ कभी सुख मिलता ही नहीं,

शरीर दुख ही देगा। इसलिए साधक जैसे ही आगे बढ़ेगा उसे शरीर से बहुत-से दुख दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे जो कल तक दिखाई नहीं पड़ते थे। क्योंकि वह अपने मोह और भ्रमों में जी रहा था। डिसइल्यूजनमेंट होगा। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं—जब से ध्यान शुरू किया तब से मन में बड़ी अशांति मालूम पड़ती है। ध्यान से अशांति नहीं हो सकती। अगर ध्यान से अशांति होती तो फिर शांति किस चीज से होगी? मैं जानता हूं, अशांति मालूम पड़ती है ज्यादा ध्यान करने पर। क्योंकि जो अशांति आपने कभी भी नहीं देखी थी अपने भीतर, वह ध्यान के साथ दिखाई पड़नी शुरू होगी। दिखती नहीं थी, इसलिए आप सोचते थे, है नहीं। जब दिखती तब पता चलता है कि है। इसलिए ध्यान के पहले अनुभव तो अशांति के बढ़ने के अनुभव हैं। जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, अशांति पूरी प्रगट होती है। एक घड़ी आएगी कि भय लगने लगेगा कि मैं पागल तो नहीं हो जाऊंगा! अगर आप उस घड़ी को पार कर गए तो अशांति समाप्त हो जाएगी। अगर आप उस घड़ी को पार नहीं किए तो आप वापस अपनी अशांति की दुनिया में फिर लौट जाएंगे, सोए हुए।

एक आदमी सोया है। उसे पता नहीं चलता कि पैर में दर्द है। जागता है तो पता चलता है। लेकिन जागने से दर्द नहीं होता, जागने से पता चलता है। प्रत्यभिज्ञा होती है। महावीर जानते हैं कि काया-क्लेश बढ़ेगा। जैसे ही कोई व्यक्ति साधना में उतरेगा, उसकी काया उसे और ज्यादा दुख देती हुई मालूम पड़ेगी। क्योंकि सुख तो देना बन्द हो जाएगा। सुख उसने कभी दिया नहीं था, सिर्फ

हमने सोचा था कि देगी। वह हमारा भ्रम था, वह हमारा खया ल था वह तो पर्दा उठ जाएगा, दुख ही दुख दिखाई पड़ेगा। उसे देखकर लौट मत जाना। महावीर कहते हैं—इस काया-क्लेश को सहना। यह काया-क्लेश देना नहीं है अपने को। काया-क्लेश बढ़ेगा। काया के दुख दिखाई पड़ने शुरू होंगे। उसकी बीमारियां दिखाई पड़ेंगी, तनाव दिखाई पड़ेंगे, असुविधाएं दिखाई पड़ेंगी, रुग्णता, बुढ़ापा आएगा, मौत आएगी, यह सब दिखाई पड़ेगा। जन्म से लेकर मृत्यु तक दुख की लम्बी यात्रा दिखाई पड़ेगी। घबरा मत जाना। उस काया-क्लेश को सहना; उसको देखना; उससे राजी रहना, भागना मत।

तो काया-क्लेश का यह अर्थ नहीं है कि दुख देना। काया-क्लेश का अर्थ है—दुख आएगा, दुख प्रतीत होगा, दुख अनुभव में उतरेगा; तब तुम बचाव मत करना, स्वीकार करना। अब यह बहुत अलग अर्थ है। और ऐसा देखेंगे तो महावीर की पूरी बात बहुत और दिखाई पड़ेगी। तब महावीर यह नहीं कह रहे कि तुम सताना, क्योंकि महावीर कह रहे हैं—सताने की जरूरत नहीं है। काया खुद ही इतना सताती है कि अब तुम और क्या सताओगे? काया के अपने ही दुख इतने पर्याप्त हैं कि तुम्हें और दुख ईजाद करने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन काया के दुख पता न चलें, इसलिए हम सुख ईजाद करते हैं, ताकि काया के दुख पता न चलें। सुख का हम आयोजन करते हैं। कल हो जाएगा आयोजन, परसों हो जाएगा आ योजन। किसी न किसी दिन तो सुख मिलेगा ही। आज नहीं मिला, कल मिलेगा, परसों मिलेगा। तो कल पर टालते जाते हैं, स्थगित करते जाते हैं। आज का दुख भुलाने के लिए कल का सुख निर्मित करते रहते हैं। आज पर पर्दा पड़ जाए इसलिए कल की रंगीन तस्वीर बनाए रखते हैं। इसलिए कोई आदमी आज में नहीं जीना चाहता। आज बड़ा दुखद है। सब कल पर टालते रहते हैं। आज बड़ा दुखद है। अभी अगर हम जाग जाएं तो सुख का सब भ्रम टूट जाए।

महावीर जानते हैं कि जैसे साधना में भीतर प्रवेश होगा, कल टूटने लगेगा, आज ही जीना होगा। और सारे दुख प्रगाढ़ होकर चुभेंगे, सब तरफ से दुख खड़े हो जाएंगे। सब तरफ बुढ़ापा और मौत दिखाई पड़ने लगेगी, कहीं सुख का कोई सहारा न रहेगा। जो कागज की नाव आप सोचते थे, पार कर देगी, वह डूब जाएगी। जो आप सोचते थे सहारा है, वह खो

जाएगा। जिन भ्रमों के आसरे आप जीते थे वे मिट जाएंगे। जब बिलकुल भ्रम शून्य, डिसइल्यूजंड आप सागर में खड़े होंगे, डूबते होंगे, न नाव होगी, न सहारा होगा, न किनारा दिखाई पड़ता होगा तब बड़ा क्लेश होगा। उस क्लेश को सहना। उस क्लेश को स्वीकार करना। जानना कि वह जीवन की नियति है। जानना कि वह प्रकृति का स्वभाव है। जानना कि ऐसा है।

काया-क्लेश का अर्थ है यह—जो भी क्लेश आए, उसे स्वीकार करना, जानना कि ऐसा है। उससे बचने की कोशिश मत करना। उससे बचने की कोशिश ही भविष्य के स्वप्न में ले जाती है। उसके विपरीत सुख बनाने की चिंता में मत पड़ना। क्योंकि वह सुख बनाने की चिंता उसे देखने नहीं देती, जानने नहीं देती, पहचानने नहीं देती। और ध्यान रहे, इस जगत में जिसे मुक्त होना है, सुख से मुक्त कोई नहीं हो सकता, दुख से ही मुक्त होना होता है। सुख है ही नहीं, उससे मुक्त क्या होइएगा, वह भ्रम है। दुख से मुक्त होना होता है और दुख से मुक्ति दुख की स्वीकृति में छिपी है—एक्सेप्टिबिलिटी में छिपी है, टोटल एक्सेप्टिबिलिटी, समग्र स्वीकार। काया-क्लेश का अर्थ है—काया दुख है, उसका समग्र स्वीकार। वह स्वीकार इतना हो जाना चाहिए कि आपके मन में यह सवाल भी न उठे कि काया दुख है। यह दूसरा हिस्सा काया-क्लेश का आपसे कहता हूं।

क्योंकि जब तक आपको लगता है, काया दुख है, इसका मतलब है कि आ पको काया से सुख की आकांक्षा है। अगर मैं मानता हूं कि मेरा मित्र मुझे दुख दे रहा है, तो इसका कुल मतलब इतना है कि मैं अभी भी सोचता हूं कि मेरे मित्र से मुझे सुख मिलना चाहिए। अगर मैं कहता हूं कि मेरा शरीर दुख देता है तो उसका मतलब यह है कि मेरे शरीर से सुख की आकांक्षा कहीं शेष है। काया-क्लेश

का अर्थ है कि स्वीकार कर लो दुख को, इतना स्वीकार कर लो कि तुम्हें क्लेश का भी बोध मिट जाए। क्लेश का बोध उसी दिन मिट जाएगा जिस दिन पूर्ण स्वीकृति होगी। इसलिए महावीर सब दुखों के बीच आनंद से भरे घूमते रहते हैं। वे जब वर्षा में खड़े हैं, या धूप में पड़े हैं, या नग्न हैं, या बाल उखाड़ रहे हैं, या भोजन नहीं कर रहे हैं तो किसी दुख में नहीं हैं। उन्हें दुख का अब पता ही नहीं है। काया-क्लेश की स्वीकृति इतनी गहन हो गई है कि अब दुख का कोई पता भी नहीं चलता। अब वह कैसे कहें कि यह दुख है।

अगर मैं अपेक्षा करता हूं कि जब रास्ते से मैं गुजरूं तो आप मुझे नमस्कार करें। अगर न करें तो दुख होगा। अगर मैं अपेक्षा ही नहीं करता तो न करें तो कैसे दुख होगा! अगर आप मुझे गाली देते हैं और मुझे दुख होता है तो उसका मतलब ही यह है कि मैंने अपेक्षा की थी कि आप गाली नहीं देंगे। नहीं देते तो मुझे सुख होता है, देते हैं तो मुझे दुख होता है। लेकिन अगर मेरी कोई अपेक्षा नहीं थी, अगर मेरा सिर्फ स्वीकार था कि आप गाली देंगे तो स्वीकार करूंगा। तब मैं जानूंगा कि यही नियति है। इस क्षण गाली ही पैदा हो सकती थी, वह हो गयी है। आपसे गाली ही मिल सकती थी, वह मिल गयी है। इसमें कहीं कोई विपरीत दूसरी आकांक्षा नहीं हो, तो फिर कोई दुख नहीं रह जाता — एक तथ्य हो जाती है, एक फेक्टीसिटी। फिर इसके पीछे हमारी कोई कामना नहीं है।

काया-क्लेश की साधना शुरू होती है, दुख के स्वीकार से—पूर्ण होती है दुख के विसर्जन से। विसर्जित नहीं हो जाता दुख, ध्यान रहे, जब तक जीवन है, दुख तो रहेगा। जीवन दुख है। लेकिन जिस दिन स्वीकार पूरा हो जाता है, उस दिन आपके लिए दुख नहीं रह जाता। महावीर अब भी रास्ते पर चलेंगे तो पैर थकेंगे। कोई पत्थर मारेगा तो सिर फूटेगा। कोई

कान में खीलें ठोंक देगा तो शरीर दुख पाएगा। लेकिन महावीर अब दुखी नहीं होंगे। यह स्वीकार ही कर लिया कि ऐसा है। स्वीकार के साथ इतना बड़ा रूपांतरण होता है, इतना बड़ा ट्रांसफामच्शन, जिसका हमें पता भी नहीं।

युद्ध के मैदान पर सैनिक जाता है तो जब तक नहीं जाता, तब तक भयभीत रहता है। बहुत घबराया रहता है। बचाव की कोशिश में लगा रहता है कि किसी तरह बच जाऊं। लेकिन युद्ध के मैदान पर पहुंचता है। एक-दो दिन उसकी नींद खोई रहती है, सो नहीं पाता है, चौंक-चौंक उठता है। बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं। पर दो-चार दिन के बाद आप दंग होंगे कि वही सैनिक, बम गिर रहे हैं, गोलियां चल रही हैं, सो रहा है। वही सैनिक, लाशें पड़ी हैं, भोजन कर रहा है। वही सैनिक, पास से गोलियां सरसराती निकल जाती हैं, ताश खेल रहा है। क्या हो गया इसको? एक बार युद्ध की स्थिति स्वीकृत हो गई, फेक्ट हो गया कि ठीक है, अब युद्ध है। बात खत्म हो गई।

लंदन पर बमबारी दूसरे महायुद्ध में चलती थी। चिन्तित थे लोग कि क्या होगा? लेकिन दो-चार दिन के बाद बमबारी चलती रही, स्त्रियां बाजार में सामान खरीदने निकलने लगीं, बच्चे स्कूल पढ़ने जाने लगे। स्वीकृत हो गया। युद्ध एक तथ्य हो गया। ऐसा नहीं है कि युद्ध के मैदान पर वह जो लाश पास में पड़ी होती है वह ला श नहीं होती। और ऐसा भी नहीं है कि वह आदमी कठोर हो गया, अन्धा हो गया, बहरा हो गया। नहीं, वह आदमी वही है। लेकिन तथ्य की स्वीकृति सारी स्थिति को बदल देती है। अस्वीकार जब तक करेंगे, तब तक तथ्य आपको सताएगा। जिस दिन स्वीकार कर लेंगे, बात समाप्त हो गई। अगर मैंने ऐसा जान ही लिया कि शरीर के साथ मौत अनिवार्य है तो मौत का दुख नष्ट हो गया। मौत आएगी, मौत नष्ट नहीं हो गई—मौत आएगी। लेकिन अब मुझे नहीं छू पाएगी।

काया-क्लेश की साधना दुख की स्वीकृति से दुख की मुक्ति का उपाय है। लेकिन भूलकर भी काया को कष्ट देने की कोशिश

226

काया-क्लेश की साधना नहीं है। क्योंकि जो आदमी काया को दुख देने में लगा है, वह आदमी फिर किसी सुख की आकांक्षा में पड़ा। प्रयत्न हम सुख के लिए ही करते हैं। ध्यान रहे प्रयत्न मात्र सुख के लिए है। जब तक हम कोई प्रयत्न करते हैं, तब तक हम सुख की ही आकांक्षा से करते हैं। एक आदमी अपने शरीर को भी सता सकता है, सिर्फ इस आशा में कि इससे मोक्ष मिलेगा, आनंद मिलेगा, आत्मा मिलेगी, परमात्मा मिलेगा। तो सुख की आकांक्षा जारी है।

महावीर की काया-क्लेश की धारणा किसी सुख के लिए शरीर को दुख देने की नहीं है। परंपरागत व्याख्याकार कहते हैं कि जैसे आदमी धन कमाने के लिए दुख उठाता है, ऐसा ही मोक्ष पाने के लिए दुख उठाना पड़ेगा। गलत कहते हैं। बिलकुल ही गलत कहते हैं। जैसे कोई आदमी व्यायाम करता है तो शरीर को कष्ट देता है ताकि स्वास्थ्य ठीक हो जाए, ऐसा ही काया-क्लेश करना पड़ेगा। गलत कहते हैं। बिलकुल गलत कहते हैं। काया तो क्लेश ही है अब और क्लेश आप उसमें जोड़ नहीं सकते। आपके हाथ के बाहर है क्लेश जोड़ना। अगर आपके हाथ के भीतर हो क्लेश जोड़ना, तब तो क्लेश कम करना भी आपके हाथ के भीतर हो जाएगा। यह समझ लें। अगर आप शरीर में दुख जोड़ सकते हैं तो घटा क्यों नहीं सकते। फिर वह सांसारिक कौन-सी गलती कर रहा है, वह कह रहा है—तुम जोड़ने की कोशिश में लगे हो। अगर जोड़ने में सफल हो जाओगे—पांच दुख की जगह अगर तुम दस कर सकते हो तो मैं पांच की जगह शून्य क्यों नहीं कर सकता!

अगर दुख जुड़ सकते हैं तो दुख घट भी सकते हैं। जहां जोड़ हो सकता है, वहां घटना भी हो सकता है। तो यह तथाकथित धार्मिक आदमी जो शरीर को दुख दे रहा है इसमें, और भोगी जो शरीर के दुख कम करने में लगा है, कोई भेद

नहीं है। इनका तर्क एक ही है। इनकी निष्ठा भी एक है। इनकी श्रद्धा में भेद नहीं है। एक कह रहा है—हम जोड़ लेंगे; एक कह रहा है—हम घटा लेंगे। इनके गणित में फर्क नहीं है। इनके गणित का हिसाब एक ही है।
महावीर कहते हैं—न तुम जोड़ सकते, न तुम घटा सकते। जो है, उसे चाहो तो स्वीकार कर लो, चाहो तो अस्वीकार कर दो। इतना तुम कर सकते हो। जो आल्टरनेटिव है, जो विकल्प है वह स्वीकार और अस्वीकार में है। वह घटाने और बढ़ाने में नहीं है। तुम चाहो तो स्वीकार कर लो, तुम चाहो तो अस्वीकार कर दो। ध्यान रहे, स्वीकार कर लोगे तो दुख शून्य हो जाएगा। अस्वीकार कर दोगे तो दुख जितना अस्वीकार करोगे, उतना गुना ज्यादा हो जाएगा। काया-क्लेश का अर्थ है, पूर्ण स्वीकृति, जो है उसकी वैसी ही स्वीकृति।
महावीर के कानों में जिस दिन खीलें ठोंके गए, तो कथा कहती है, इंद्र ने आकर महावीर को कहा कि आप मुझे आज्ञा दें। हमें बड़ी पीड़ा होती है। आप जैसे निस्पृह व्यक्ति को लोग आकर कानों में खीलें ठोंक दें, सतायें, परेशान करें—हमें पीड़ा होती है।
तो महावीर ने कहा कि मेरे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें इतनी पीड़ा होती है तो तुम्हारे शरीर में ठोंके जाने से तुम्हें कितनी न होगी?
इंद्र कुछ भी न समझा। उसने कहा कि निश्चित होती है। तो मैं आपकी रक्षा करने लगूं? महावीर ने कहा—तुम भरोसा देते हो कि तुम्हारी रक्षा से मेरे दुख कम हो जाएंगे? इंद्र ने कहा—कोशिश कर सकता हूं। कम होंगे कि नहीं, मैं नहीं कह सकता। महावीर ने कहा—मैंने भी जन्मों-जन्मों तक कोशिश करके देखी, कम नहीं हुए। अब मैंने कोशिश छोड़ दी। अब मैं इतनी कोशिश भी न करूंगा कि तुमको मैं रक्षा के लिए रखूं। नहीं, तुम जाओ। तुम्हारी भी भूल वही है जो उस कान में खीलें ठोंकनेवाले की भूल थी। वह सोचता था खीलें ठोंककर मेरे दुख बढ़ा देगा; तुम सोचते हो मेरे सा थ रहकर मेरे दुख घटा दोगे। गणित तुम्हारा एक है। मुझे छोड़ दो, जो है मुझे स्वीकार है। उसने खीलें जरूर ठोंके। मुझ तक नहीं पहुंची उसकी खीलें, मैं बहुत दूर खड़ा हूं। मैंने स्वीकार कर लिया है, मैं दूर खड़ा हूं। एक्सेप्टेंस इज ट्रासेंडेंस। जैसे ही किसी ने स्वीकार किया, अतिक्रमण हो जाता है। जिस स्थिति को आप

स्वीकार करते हैं, आप उसके ऊपर उठ जाते हैं—तत्क्षण।
काया-क्लेश का यही अर्थ है। छठवां महावीर का बाच्ह्य तप है—संलीनता। उस पर हम कल बात करेंगे।

अभी बैठेंगे!

संलीनता : अंतर-तप का प्रवेश-द्वार

तेरहवा प्रवचन
दिनांक 30 अगस्त, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला,पाटकर हाल, बम्बई

बाच्ह्य तप का अन्तिम सूत्र, अन्तिम अंग है—संलीनता। संलीनता सेतु है, बाच्ह्य-तप और अंतर-तप के बीच। संलीनता के बिना कोई बाच्ह्य-तप से अंतर-तप की सीमा में प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए संलीनता को बहुत ध्यानपूर्वक समझ लेना जरूरी है। संलीनता सीमांत है; वहीं से बाच्ह्य-तप समाप्त होते और अंतर- तप शुरू होते हैं।
संलीनता का अर्थ और संलीनता का प्रयोग बहुत अदभुत है। परम्परा जितना कहती है, वह तो इतना ही कहती है कि अपने शरीर के अंगों को व्यर्थ संचालित न करना संलीनता है। अकारण शरीर न हिले डुले, संयत हो, तो संलीनता है। इतनी ही बात नहीं, यह तो कुछ भी नहीं है। यह तो संलीनता का बाहर की रूपरेखा को भी स्पर्श करना नहीं है। संलीनता के गहरे अर्थ हैं। तीन हिस्सों में हम इसे समझें—पहला तो आपके शरीर में, आपके मन में, आपके प्राण में कोई भी हलन-चलन नहीं होती है, जब तक आपकी चेतना न कंपे। अंगुली भी हिलती है तो भीतर आत्मा में कंपन पैदा होता है। दिखाई तो अंगुली पड़ती है कि हिली, लेकिन कंपन भीतर से आता है; सूच्म से आता है और स्थूल तक फैल जाता है। इतना ही सवाल नहीं है कि अंगुली न हिले क्योंकि यह हो सकता है अंगुली न हिले लेकिन भीतर कंपन हो। तो कोई अपने शरीर को संलीन करके बैठ जा सकता है, योगासन लगाकर बैठ जा सकता है, अभ्यास कर ले सकता है और शरीर पर कोई भी कंपन दिखाई न पड़े और भीतर तूफान चले, और ज्वालामुखी का लावा उबलता रहे और आग जले।
संलीनता वस्तुतः तो तब घटित होती है, जब भीतर सब इतना शांत हो जा ता है कि भीतर से कोई तरंग नहीं आती जो शरीर पर कंपन बने, लहर बने। पर हमें शरीर से ही शुरू करना पड़ेगा क्योंकि हम शरीर पर ही खड़े हैं। तो संलीनता के अभ्यास में जिसे उतरना हो उसे पहले तो अपनी शरीर की गतिविधियों का निरीक्षण करना होता है।यह पहला हिस्सा है।
क्या कभी आपने खयाल किया है कि जब आप क्रोध में होते हैं तो और ढंग से चलते हैं? जब आप क्रोध में होते हैं तब आपके चेहरे की रेखाएं और हो जाती हैं; आपकी आंख पर अलग रंग फैल जाते हैं; आपके दांतों में कोई गति हो जाती है। आपकी अंगुलियां किसी भार से, शक्ति से भर जाती हैं। आपके समस्त स्नायु मंडल में परिवर्तन हो जाता है। जब आप उदास होते हैं तब आप और ढंग से चलते हैं, आपके पैर भारी हो गए होते हैं, उठाने का मन भी नहीं होता, कहीं जाने का भी मन नहीं होता। आपके प्राण पर जैसे पत्थर रख दिया हो, ऐसी आपकी सारी इंद्रियां पत्थर से दब जा ती हैं। जब आप उदास होते हैं तब आपके चेहरे का रंग बदल जाता है, रेखा बदल जाती है। जब आप प्रेम में होते हैं तब, जब आप शांत होते हैं तब, तब सब फर्क पड़ते हैं। लेकिन आपने

231

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

निरीक्षण न किया होगा। संलीनता का प्रयोग समझना हो तो जब आप क्रोध में हों तो भागें और दर्पण के सामने पहुंच जाएं। और देखें कि चेहरे में कैसी स्थिति है क्योंकि आपका क्रोध से भरा चेहरा दूसरों ने देखा है, आपने नहीं देखा। देखें कि आपका चेहरा कैसा है। जब आप उदास हों तब आईने के सामने पहुंच जाएं और देखें कि आंखें कैसी हैं। जब आप चल रहे हों उदास, तब खयाल करें कि पैर कैसे पड़ते हैं, शरीर झुका हुआ है, उठा हुआ है।

हिटलर ने एक मनस्विद को फ्रांस पर हमला करने के पहले फ्रांस भेजा था और पूछा था कि जरा फ्रांस की सड़कों पर देखो कि युवक कैसे चलते हैं, उनकी रीढ़ सीधी है या झुकी हुई है? उस मनस्विद ने खबर दी कि फ्रांस में लोग झुके-झुके चलते हैं। हिटलर ने कहा—फिर उनको जीतने में कोई कठिनाई न पड़ेगी। हिटलर का सैनिक देखा है आपने? पूरा जर्मनी रीढ़ सीधी करके चल रहा है। जब कोई आशा से भरा होता है तो रीढ़ सीधी हो जाती है। जब कोई निराशा से भरा होता है तो रीढ़ झुक जाती है। बुढ़ापे में सिर्फ इसीलिए रीढ़ नहीं झुक जाती कि शरीर कमजोर हो जाता है। इससे भी ज्यादा इसलिए झुक जाती है कि जीवन निराशा से भर जाता है। मौत सामने दिखाई पड़ने लगती है, भविष्य नहीं रह जाता । महावीर जैसे व्यक्ति की रीढ़ बुढ़ापे में भी नहीं झुकेगी, क्योंकि मौत नहीं है असली सवाल, बुढ़ापे में; मोक्ष का द्वार है, परम आनन्द है। तो रीढ़ नहीं झुकेगी।

आप भी जब स्वस्थ चित्त, प्रसन्न चित्त होते हैं तो और ढंग से खड़े होते हैं। अगर मैं बोल रहा हूं और आपको उसमें कोई रस नहीं आ रहा है तो आप कुर्सी से टिक जाते हैं। अगर आपको कोई रस आ रहा है तो आपकी रीढ़ कुर्सी छोड़ देती है। आप सीधे हो जाते हैं। अगर कोई बहुत संवेदनशील हिस्सा आ गया है फिल्म में देखते समय, कोई बहुत थ्रिलिंग, कोई कंपा देनेवाला हिस्सा हो गया है तो आपकी रीढ़ सीधी ही नहीं होती, आगे झुक जाती है। श्वास रुक जाती है। आपके चित्त में पड़े हुए छोटे-छोटे परिवर्तनों की लहरें आपके शरीर की परिधि तक फैल जाती हैं। ज्योतिषी या हस्तरेखा विद, या मुखाकृति को पढ़नेवाले लोग नब्बे प्रतिशत तो आप पर ही निर्भर होते हैं। आप कैसे उठते, कैसे चलते, कैसे बैठते, आपके चेहरे पर क्या भाव है। आपको भी पता नहीं है, वह सब आपके बाबत बहुत-सी खबरें दे जाती हैं।

आदमी एक किताब है, उसे पढ़ा जा सकता है। और जिसे साधना में उतरना हो उसे खुद अपनी किताब पढ़नी शुरू करनी पड़ती है। सबसे पहले तो पहचान लेना होगा कि मैं किस तरह का आदमी हूं। तो जब क्रोध में आप आईने के सामने खड़े हो जाएं, और देखें, कैसा है चेहरा, क्या है रंग, आंख पर कैसी रेखाएं फैल गयी हैं? जब शांत हों, मन प्रसन्न हो,त्तब भी आईने के सामने खड़े हो जाएं। तब आप अपनी बहुत-सी तस्वीरें देखने में समर्थ हो जाएंगे और एक और मजेदर घटना घटेगी, वह संलीनता के प्रयोग का दूसरा हिस्सा है। जब आप आईने के सामने खड़े होकर अपने क्रोधित ि चत्त का अध्ययन कर रहे होंगे तब आप अचानक पाएंगे कि क्रोध खिसकता चला गया, शांत होता चला गया। क्योंकि जो क्रोध का अध्ययन करने में लग गया, उसका क्रोध से संबंध टूट जाता है, अध्ययन से संबंध जुड़ जाता है। उसकी चेतना का तादात्तमय, 'मैं क्रोध हूं' से टूट गया, मैं अध्ययन कर रहा हूं, इससे जुड़ गया। और जिससे हमारा संबंध टूट गया वह वृत्ति तत्काल क्षीण हो जाती है।

तो आईने के सामने खड़े होकर एक और रहस्य आपको पता चलेगा कि अगर आप क्रोध का निरीक्षण करें तो क्रोध जिन्दा नहीं रह सकता। तत्काल विलीन हो जाता है। और भी एक मजेदार अनुभव होगा कि जब आप बहुत शांत हों और जीवन एक आनंद के फूल की तरह मालूम हो रहा हो किसी क्षण में, कभी सूरज निकला हो सुबह का और उसे देखकर मन प्रफुल्लित हुआ हो; या रात चांद-तारे देखे हों और उनकी छाया और उनकी शांति मन में प्रवेश कर गयी हो; या एक फूल

को खिलते देखा हो और उसके भीतर की बंद शांति आपके प्राणों तक बिखर गयी हो, तब आईने के सा मने खड़े हो जाएं तब एक और नया अनुभव होगा, और वह

232

संलीनता : अंतर-तप का प्रवेश-द्वा र

अनुभव यह होगा कि जब कोई शांति का निरीक्षण करता है, तो क्रोध तो निरीक्षण करने से विलीन हो जाता है, शांति निरीक्षण करने से बढ़ जाती है। गहरी हो जाती है। क्रोध इसलिए विलीन हो जाता है कि आपका क्रोध से संबंध टूट जाता है। क्रोध से संबंधित होने के लिए बेचैन होना जरूरी है, परेशान होना जरूरी है, उद्विग्न होना जरूरी है। अध्ययन के लिये शांत होना जरूरी है। निरीक्षण के लिये, मौन होना जरूरी है। तटस्थ होना जरूरी है। तो संबंध टूट जाता है।
शांति के आप जितने ही निरीक्षक बनते हैं उतने ही आपके और निरीक्षण के लिए जो शांति जरूरी है वह भी जुड़ जाती है। अध्ययन के लिए जो शांति जरूरी है वह भी जुड़ जाती है। तटस्थ होना जरूरी है, वह भी जुड़ जाता है। शान्ति और गहरी हो जाती है। सच तो यह है कि निरीक्षण करने से जो गहरा हो जाए, वही वास्तविक जीवन है। निरीक्षण करने से जो गिर जाए, वह धोखा था। या ऐसा कहें कि निरीक्षण करने से जो बचा रहे वही पुण्य है, और निरीक्षण करने से जो तत्काल विलीन हो जाए वही पाप है। संलीनता का पहला प्रयोग है, राइट आब्जवच्शन, सम्यक निरीक्षण। आप बहुत हैरान होंगे कि आप कितनी तस्वीरें हैं एक साथ।
महावीर ने पृथ्वी पर पहली दफा एक शब्द का प्रयोग किया है जो पश्चिम में अब पुनः पुनरुज्जीवित हो गया है। महावीर ने पहली दफा एक शब्द का प्रयोग किया है — बहुचित्तता — पहली बार। आज पश्चिम में इस शब्द का बड़ा मूल्य है। उनको पता भी नहीं है कि महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले इसका प्रयोग किया था — पालिसाइकिक। पश्चिम में आज इस शब्द का बड़ा मूल्य है। क्योंकि जैसे ही पश्चिम मन को समझने गया, उसने कहा — मन मोनोसाइकिक नहीं है, एक मन नहीं हैं आदमी के भीतर — अनंत मन हैं; पालिसाइकिक है, बहुत मन हैं। महावीर ने ढाई हजार साल पहले कहा कि आदमी बहुचित्तवान है, एक चित्त नहीं है; जैसा हम सोचते हैं। हम निरंतर कहते हैं — मेरा मन। हमें कहना चाहिए — मेरे मन, माई माइंड नहीं, माई माइंड्स।
तो क्या आपके पास एक मनएक ही मन हो तो जीवन और हो जाए, बहुत मन हैं। और ये मन भी ऐसे नहीं हैं कि सिर्फ बहुत हैं, ये विरोधी भी हैं। ये एक दूसरे के दुश्मन भी हैं। इसलिए आप सुबह कुछ, दोपहर कुछ, सांझ कुछ हो जाते हैं। आपको खुद ही समझ में नहीं आता कि यह क्या हो रहा है। जब आप प्रेम में होते हैं तब आप दूसरे ही आदमी होते हैं, और जब आप घृणा में होते हैं तो आप दूसरे ही आदमी होते हैं। इन दोनों के बीच कोई संगति नहीं होती, कोई संबंध नहीं होता। जिसने आपको घृणा में देखा है वह अगर आपको प्रेम में देखे तो भरोसा न कर पाएगा कि आ प वही आदमी हैं। और ध्यान रहे कि सिर्फ घृणा की वजह से नहीं, आपके चेहरे की सब रूप रेखा, आपके शरीर का ढंग, आपका आ भामण्डल, आपका सब बदल गया होगा।
तो पहला तो निरीक्षण करें, ठीक से पहचानें कि आपके पास कितने चित्त हैं। और प्रत्येक चित्त की आपके शरीर पर क्या प्रतिक्रिया है! आपका शरीर प्रत्येक चित्त दशा के साथ कैसा बदलता है! जब आप शान्त होते हैं तो शरीर को हिलाने का भी मन नहीं होता। श्वास भी जोर से नहीं चलती। खून की रच्फतार भी कम हो जाती है। हृदय की धड़कनें भी शांत हो जाती हैं। जब आप अशांत होते हैं तो अकारण शरीर में गति होती है। एक अशांत आदमी कुर्सी पर भी बैठा होगा तो पैर हिलाता होगा। कोई उससे पूछे कि क्या कर रहे हो? कुर्सी पर बैठकर चलने की कोशिश कर रहे हो? वह पैर हिला रहा है। आदमी थोड़ी देर बैठा रहे तो करवटें बदलता रहता है, क्या हो रहा है उसके भीतर? उसके भीतर चित्त इतना बेचैन है

कि वह बेचैनी वह शरीर से रिलीज कर रहा है। अगर वह रिलीज न करे तो पागल हो जायेगा। वह रिलीज उसे करनी पड़ेगी। अगर वह शाम को घण्टेभर जाकर खेल के मैदान पर दौड़ लेता है, खेल लेता है, घण्टे भर घूम आता है तो ठीक, नहीं तो वह बैठे-बैठे, लेटे-लेटे अपने शरीर को गति देगा और वहां से शक्ति को मुक्त करेगा।
लेकिन यह शक्ति व्यर्थ व्यय हो रही है। संलीनता शक्ति संग्रह है, शक्ति संचयन है। और हम कोई संलीनता में नहीं जीते तो

233

□
महावीर-वाणी भाग : 1

अपनी शक्ति को ऐसे ही लुटाए चले जाते हैं। ऐसे ही, व्यर्थ ही, जिसका कोई परिणाम नहीं होनेवाला है; जिससे कुछ उपलब्ध होने वाला नहीं है; जिससे कहीं पहुंचेंगे नहीं। कुर्सी पर बैठकर पैर हिला ते रहते हैं। कोई मंजिल इससे हल नहीं होती। उतनी शक्ति से कहीं पहुंचा जा सकता था, कुछ पाया जा सकता था। चौबीस घण्टे हम शक्ति को अपने अंगों से बाहर फेंक रहे हैं। लेकिन इसका अध्ययन करना पड़ेगा पहले, स्वयं को पहचानना पड़ेगा और आप बहुत हैरान होंगे, आपकी जिंदगी की किताब जब आपके सामने खुलनी शुरू होगी तो आप हैरान होंगे कि कोई रहस्यपूर्ण से रहस्यपूर्ण उपन्या स इतना रहस्यपूर्ण नहीं और अनूठे से अनूठी कथा इतनी च्सटरेंज, इतनी अजनबी नहीं, जितने आप हैं।
और ऐसा ही नहीं है कि क्रोध और अक्रोध में आप अलग स्थिति पाएंगे। आप पाएंगे कि क्रोध के भी स्टेप्स हैं। क्रोध में भी बहुत रंग हैं। कभी आप एक ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी दूसरे ढंग से क्रोधित होते हैं, कभी तीसरे ढंग से क्रोधित होते हैं। और तब तीनों ढंग के क्रोध में आपके शरीर की आकृति अलग-अलग होती है। और तब पर्त-पर्त अपने को आप देखेंगे तो चकित हो जाएंगे कि कितना आपके भीतर छिपा है। यह पहला प्रयोग है — निरीक्षण। इससे आप पहचान पाएंगे कि आपके भीतर क्या हो रहा है? आप जो शक्ति के पुंज हैं, उस शक्ति का आप क्या उपयोग कर रहे हैं?
दूसरी बात — जैसे ही आप समर्थ हो जाएं कि आप क्रोध को देख पाएं वैसे ही आप आईने के सामने पाएंगे कि अपने-आप भी क्रोध शांत होगा, आप एक दूसरा प्रयोग जोड़ें, वह संलीनता का दूसरा प्रयोग है। जब चित्त क्रोध से भरा हो, तब आप आईने के सामने खड़े हो जाएं। निरीक्षण करने के बाद ही यह किया जा सकता है। लम्बे निरीक्षण के बाद ही यह हो सकेगा। आईने के सामने खड़े हो जाएं और अपने तरफ से शरीर के अंगों को वैसा करने की कोशिश करें जैसा शान्ति में होता है। आईने के सामने खड़े हो जाएं। आपको भली-भांति याद है कि शान्ति में चेहरा कैसा होता है। अब क्रोध की स्थिति है। चेहरा क्रोध की धारा में बह रहा है। आप आईने के सामने खड़े होकर उस चेहरे को याद करें जो शान्ति में होता है, और चेहरे को शांति की तरफ ले जाने लगता है। बहुत ही थोड़े दिनों में आप हैरान होंगे कि आप चेहरे को शांति की तरफ ले जाने में समर्थ हो गए हैं। सारी अभिनय की कला, सारी एक्टिंग इस अभ्यास पर निर्भर करती है। जन्मजात किसी को यह प्रतिभा होती है तो वह अभिनय में कुशल मालूम पड़ता है।
लेकिन यह प्रतिभा विकसित की जा सकती है और यह इतनी विकसित की जा सकती है कि जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है। आईने के सामने खड़े होकर, क्रोध भीतर है और आप चेहरे पर शांति की धारा बहा रहे हैं। थोड़े ही दिनों में आप समर्थ हो जाएंगे। और तब आप एक और नया अनुभव कर पाएंगे। और वह यह होगा कि क्रोध मन में दौड़ता, शांति शरीर में दौड़ सकती है। और जब आप इन दोनों में समर्थ हो जाते हैं तो आप तीसरे हो जा ते हैं — न तो आप क्रोध रह जाते, न आप मन रह जाते और न आप शरीर रह जाते। क्योंकि मन क्रोध में है, वह क्रोध से जल रहा है। लेकिन शरीर पर आपने शांति की धारा बहा दी है, वह शांत आकृति से भर गया है। निश्चित ही आप दोनों से अलग और पृथक हो

गए। न तो अब आप अपने को आइडेंटिफाई कर सकते हैं क्रोध से, और न शांति से। दोनों से तादाच्तमय नहीं कर सकते। आ प दोनों को देखनेवाले हो गए।

और जिस दिन आप दो पैदा कर लेते हैं एक साथ, उस दिन आपको पहली दफा एक मुक्ति अनुभव होती है। आप दोनों के बाहर हो जाते हैं। एक के साथ तादाच्तमय आसान है, दो के साथ तादाच्तमय आसान नहीं है। एक के साथ जुड़ जाना आसान है, दो विपरीत चीजों के साथ एक साथ जुड़ जाना बहुत कठिन है, असम्भव है। हां, अलग-अलग समय में हो सकता है कि सुबह आप क्रोध के साथ जुड़ें, दोपहर आप शांति के साथ जुड़ें; यह हो सकता है, अलग-अलग समय में। लेकिन साइमल्टेनियसली, युगपत आप

क्रोध और शांति के साथ जुड़ नहीं सकते। बड़ी मुश्किल होगी। कैसे जुड़ेंगे? जोड़ मुश्किल हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा है। आखिरी क्षण उसके करीब हैं। वह अपने बेटे को बुलाकर सलाह देता है। वह कहता है—मैं जानता हूं कि मैं कितना ही कहूं कि तू धूम्रपान मत करना, लेकिन तू करेगा क्योंकि मेरे पिता ने भी मुझसे कहा था, लेकिन मैंने किया। इसलिए यह सलाह मैं तुझे नहीं दूंगा। मैं जानता हूं कि समझाना चाहता हूं तुझे, अनुभव से कहना चाहता हूं कि शराब मत छूना। लेकिन मेरे पिता ने भी मुझे समझाया था, लेकिन मैंने शराब पी। और मैं जानता हूं कि तू कितना ही कहे कि नहीं, नहीं पिऊंगा, तू पिएगा। मैं कितना ही कहूं कि स्त्रियों के पीछे मत दौड़ना, मत भागना , लेकिन यह नहीं हो सकता। मैं खुद ही भागता रहा हूं। लेकिन एक बात खयाल रखना, एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना, दो स्त्रियों के पीछे एक साथ मत भागना। इतनी तू मेरी सलाह मानना। वन एट ए टाइम, एक स्त्री के पीछे एक ही समय में भागना। एक ही समय में दो स्त्रियों के पीछे मत भागना।

लड़के ने पूछा—क्या यह सम्भव हो सकता है, एक ही समय में दो स्त्रियों के पीछे भागना?

नसरुद्दीन ने कहा—सम्भव हो सकता है, मैं अनुभव से कहता हूं।

लेकिन नरक निर्मित हो जाता है। ऐसे तो एक ही स्त्री नरक निर्मित करने में समर्थ है। इसको उल्टा करके पुरुष भी कहा जा सकता, है,स्त्री को सलाह दी जा रही है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन दो, फिर तो नरक सुनिश्चित है।

लेकिन उसके बेटे ने कहा—आप कहते हैं तो मेरा मन होता है कि दो के पीछे दौड़कर देख लूं।

नसरुद्दीन ने कहा—यह भी मैं जानता हूं, यह भी तू सुनेगा नहीं क्योंकि मैंने भी नहीं सुना था। अच्छा है, दौड़।

उसका बेटा पूछने लगा—आप अभी मना करते थे, अब कहते हैं दौड़!

तो नसरुद्दीन ने कहा—दो स्त्रियों के पीछे एक ही समय में दौड़ने से जितनी आसानी से स्त्रियों से मुक्ति मिल जाती है, उतनी एक-एक के पीछे अलग-अलग दौड़ने से नहीं मिलती।

चित्त में भी अगर दो वृत्तियों के पीछे एक साथ आप दौड़ पैदा कर दें तो आप चित्त की वृत्ति से जितनी आसानी से मुक्त हो जाते हैं उतनी एक वृत्ति के साथ नहीं हो पाते। एक वृत्ति पूरा ही घेर लेती है। दो वृत्तियां कम्पीटीटिव हो जाती हैं आपस में। आप पर उनका जोर कम हो जाता है क्योंकि उनका आपस का संघर्ष गहन हो जाता है। क्रोध कहता है कि मैं पूरे पर हावी हो जाऊं, शान्ति कहती है—मैं पूरे पर हावी हो जाऊं, और आपने दोनों एक साथ पैदा कर दिए। वे दोनों आप पर हावी होने की कोशिश छोड़कर एक दूसरे से संघर्ष में रत हो जाते हैं। और जब क्रोध और शांति आ पस में लड़ रहे हों, तब आपको दूर खड़े होकर देखना बहुत आसान हो जाता है।

संलीनता का दूसरा अभ्यास है, विपरीत वृत्ति को शरीर पर पैदा करना । इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अभिनेता इसे रोज कर रहा है। जिस स्त्री से उसे प्रेम नहीं है, उसको भी वह प्रेम प्रगट कर रहा है।

नसरुद्दीन देखने गया है एक दिन नाटक। उसकी पत्नी उसके पास है। नसरुद्दीन बहुत प्रभावित हुआ। पत्नी भी बहुत प्रभावित हुई है। वह जो नायक है उस नाटक में वह इतना प्रेम प्रकट कर रहा है अपनी प्रेयसी के लिए कि पत्नी ने नसरुद्दीन से कहा कि नसरुद्दीन, इतना प्रेम तुम मेरे प्रति कभी प्रगट नहीं करते। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं भी हैरान हूं। और हैरान इसलिए हूं कि वह जो जिसके प्रति प्रेम प्रगट कर रहा है, वस्तुतः उसकी पत्नी है बीस सा ल से। इतना प्रेम प्रगट किसी और के लिए कर रहा होता तो भी ठीक था। वह उसकी पत्नी है बीस साल से। इसलिये चकित तो मैं भी हूं। ही इज ए रियल एक्टर, वास्तविक, प्रामाणिक अभिनेता है क्योंकि पत्नी के प्रति, बीस साल से जो उसकी पत्नी है, उसके प्रति वह इतना प्रेम प्रगट कर रहा है! गजब का एक्टर है।

हमारा चित्तलेकिन अभ्यास से सम्भव है। शरीर कुछ आ ैर प्रगट करने लगता है, मन कुछ और। तब दो धाराएं टूट जाती हैं। और ध्यान रहे राजनीति का ही नियम नहीं है, डिवाइड एंड रूल, साधना का भी नियम है। विभाजित करो और मालिक हो जाओ। अगर आप शरीर और मन को विभाजित कर सकते हैं तो आप मालिक हो सकते हैं आसानी से। क्योंकि तब संघर्ष शरीर और मन के बीच खड़ा हो जाता है और आप अछूते अलग खड़े हो जाते हैं।

इसलिए संलीनता का दूसरा अभ्यास है,' मन में कुछ, शरीर में कुछ'को आईने के सामने खड़े होकर अभ्यास करें। आईने के सामने इसलिए कह रहा हूं कि आपको आसानी पड़ेगी। एक दफा आसानी हो जाए, फिर तो बिना आईने के भी आप अनुभव कर सकते हैं। जब आपको क्रोध आए—फिर धीरे-धीरे आईने को छोड़ दें—जब आ पको क्रोध आए तब उसको अवसर बनाएं, मेक इट एन अपरचुनिटी। और जब क्रोध आए तब आनंद को प्रगट करें। और जब घृणा आए तब प्रेम को प्रगट करें। और जब किसी का सिर तोड़ देने का मन हो, तब उसके गले में फूलमाला डाल दें। और देखें अपने भीतर, ये दो धाराएं विभाजित—मन को और शरीर को दो हिस्सों में जाने दें, और आप अचानक ट्रांसेंडेंस में, अ तिक्रमण में प्रवेश कर जाएंगे, आप पार हो जाएंगे। न आप क्रोध रह जाएंगे, न आप क्षमा रह जाएंगे। न आप प्रेम रह जाएंगे, न आप घृणा रह जाएंगे। और जैसे ही कोई दोनों के पार होता है, संलीन हो जाता है।

अब इस संलीन का अर्थ समझ लें—एक शब्द हम सुनते हैं, तल्लीन। यह संलीन शब्द बहुत कम प्रयोग में आता है। तल्लीनता हमने सुना है, संलीनता बहुत कम। और अगर भाषा कोश में जाएंगे तो एक ही अर्थ पाएंगे। नहीं एक ही अर्थ नहीं है। महावीर ने तल्लीनता का उपयोग नहीं किया है। तल्लीनता सदा दूसरे में लीन होना है और संलीनता अपने में लीन होना है। तल्लीन का अर्थ है जो किसी और में लीन है—चाहे भक्त भगवान में हो, वह तल्लीन है, संलीन नहीं। जैसा मीरा कृष्ण में—वह तल्लीन है। वह इतनी मिट गयी है कि शून्य हो गयी है, कृष्ण ही रह गए। पर कोई और, कोई दूसरा बिंदु, उस पर स्वयं को सब भांति समर्पित कर दें। वह एक मार्ग है, उस मार्ग की अपनी विधियां हैं। महावीर का वह मार्ग नहीं है। उस मार्ग से भी पहुंचा जाता है। उससे पहुंचने का रास्ता अलग है। महावीर का वह रास्ता नहीं है। महावीर कहते हैं—तल्लीन तो बिलकुल मत होना, किसी में तल्लीन मत होना, इसलिए महावीर परमात्मा को भी हटा देते हैं, नहीं तो तल्लीन होने की सुविधा बनी रहेगी।

महावीर कहते हैं—संलीन हो जाना, अपने में लीन हो जाना। अपने में इतना लीन हो जाना कि दूसरा बचे ही नहीं। तल्लीन का सूत्र है — दूसरे में इतना लीन हो जाना कि स्वयं बचो ही न। संलीन होने का सूत्र है—इतने अपने में लीन हो

जाना कि दूसरा बचे ही न। दोनों से ही एक की उपलब्धि होती है। एक ही बच रहता है। तल्लीन वाला कहेगा—परमात्मा बच रहता है; संलीन वाला कहेगा—आत्मा बच रहती है। वह सिर्फ शब्दों के भेद हैं और विवाद सिर्फ शाब्दिक और व्यर्थ और पंडितों का है। जिन्हें अनुभूति है वे कहेंगे वह एक ही बच रहता है। लेकिन संलीन वाला उसे परमात्मा नाम नहीं दे सकता, क्योंकि दूसरे का उपाय नहीं है। तल्लीनता वाला उसे आत्मा नहीं कह सकता, क्योंकि स्वयं के बचने का कोई उपाय नहीं। लेकिन जो बच रहता है, उसे कोई नाम देना पड़ेगा, अन्यथा अभिव्यक्ति असम्भव है। इसलिए संलीन वाला कहता है—आत्मा बच रहती हैं; तल्लीन वाला कहता है—परमात्मा बच रहता है। जो बच रहता है, वह एक ही है। यह नामों का फर्क है और विधियों के कारण नामों का फर्क है। यह पहुंचने के मार्ग की वजह से नाम का फर्क है।
संलीन का अर्थ है—अपने में लीन हो जाना। कोई अपने में है पूरा, जरा भी बाहर नहीं जाता है। कहीं कोई गति नहीं रही। क्योंकि गति तो दूसरे तक जाने के लिए होती है। अगति हो जाएगी। अपने तक आने के लिए किसी गति की कोई जरूरत नहीं है।

236

संलीनता : अंतर-तप का प्रवेश-द्वा र

वहां तो हम हैं ही। क्रिया नहीं रही, अक्रिया हो गयी क्योंकि क्रिया तो किसी और के साथ कुछ करना हो तो करनी होती है। अपने ही साथ करने के लिए कोई क्रिया नहीं रह जाती। अक्रिया हो जाएगी, अगति हो जाएगी, अचलता आ जाएगी। और जब भीतर यह घटना घटती है तो शरीर पर भी यह भाव फैल जाता है, मन पर भी यह भा व फैल जाता है। यह अतिक्रमण जब होता है, मन और शरीर के पार जब स्वयं की प्रतीति होती है तो सब ठहर जाता है। सब ठहर जाता है—मन ठहर जाता है, शरीर ठहर जाता है। यह महावीर की प्रतिमा संलीनता की प्रतिमा है, सब ठहरा हुआ है। कुछ गति नहीं मालूम पड़ती।
अगर महावीर के हाथ को देखें तो ऐसा लगता है कि बिलकुल ठहरा हुआ है। इसलिए महावीर के हाथ में मसल्स नहीं बनाए गए किसी प्रतिमा में, क्योंकि मसल्स तो गति के प्रतीक होते हैं, क्रिया के प्रतीक होते हैं। तो महावीर की बाहें ऐसी हैं जैसे स्त्रैण हैं। आपने खयाल नहीं किया होगा। किसी जैन तीथच्कर की बाहों पर कोई मसल्स नहीं हैं। मसल्स तो क्रिया के सूचक हो जाते हैं। शरीर को जिस ढंग से बिठाया है, वह ऐसा है जैसे कि फूल अपने में बंद हो जाए, सब पंखुड़ियां बंद हो गयीं। फूल की सुगंध अब बाहर नहीं जाती, अपने भीतर रमती है। इसलिए महावीर का बहुत प्यारा शब्द है—आत्म-रमण—अपने में ही रमना। कहीं नहीं जाना, कहीं नहीं जाना। सब पंखुड़ियां बंद हैं।
तो अगर महावीर के चित्र को देखें, एक फूल की तरह खयाल करें तो फा ैरन महावीर की प्रतिमा में दिखाई पड़ेगा कि सब पंखुड़ियां बंद हो गयी हैं। महावीर अपने भीतर, जैसे फूल के भीतर कोई भंवरा बंद हो गया हो। ऐसी महावीर की सारी चेतना संलीन हो गयी है अपने में। सब सुगंध भीतर। अब कहीं कोई बाहर नहीं जा रहा है। कुछ बाहर नहीं जा रहा है। बाहर और भीतर के बीच सब लेन-देन बंद हो गया है। कोई हस्तांतरण नहीं होता है। न कुछ बाहर से भीतर आता है, न कुछ भीतर से बाहर जाता है। जब शरीर इतनी थिरता में आ जाता है, मन इतनी थिरता में आ जाता है तो श्वास भी बाहर-भीतर नहीं होती, ठहर जाती है! इस क्षण को महावीर कहते हैं—समाधि उत्पन्न होती है, इस संलीन क्षण में अंतर्यात्रा शुरू होती है।
लेकिन संलीनता का अभ्यास करना पड़ेगा। हमारा अभ्यास है बाहर जाने का। भीतर जाने का हमारा कोई अभ्यास नहीं है। हम बाहर जाने में इतने ज्यादा कुशल हैं कि हमें पता ही नहीं चलता आ ैर हम बाहर चले जाते हैं। कुशलता का मतलब ही यही होता है कि पता न चले और काम हो जाए। हम इतने कुशल हैं बाहर जाने में। अब एक ड्राइवर है। अगर वह कुशल

है तो वह गपशप करता रहेगा और गाड़ी चलाता रहेगा। कुशलता का मतलब ही यही है कि गाड़ी चलाने पर ध्यान भी न देना पड़े। अगर ध्यान देना पड़े तो वह अकुशल है। रेडियो सुनता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। मन में हजार बातें सोचता रहेगा, गाड़ी चलाता रहेगा। गाड़ी चलाना सचेतन क्रिया नहीं है।

कालिन विल्सन ने—एक पश्चिम के बहुत योग्य और विचारशील व्यक्ति ने कहा है कि हम उन्हीं चीजों में कुशल होते हैंऔर जब कुशल हो जाते हैं तबहमारे भीतर एक रोबोट, हमारे भीतर एक यंत्र-मानव है—सबके भीतर है। कुशलता का अर्थ है कि हमारी चेतना ने वह काम यंत्र-मानव को दे दिया, हमारे भीतर वह जो रोबोट है, वह करने लगता है; फिर हमें जरूरत नहीं रहती। तो ड्राइवर जब ठीक कुशल हो जाता है तो उसे कार चलानी नहीं पड़ती, उसके भीतर जो रोबोट, जो यंत्र-मानव है वह कार चलाने लगता है। वह तो कभी-कभी बीच में आता है, जब कोई खतरा आ जाता है आ ैर रोबोट कुछ नहीं कर पाता है। एक्सीडेंट का वक्त आया तो वह एकदम मौजूद हो जाता है। रोबोट से काम अपने हाथ में ले लेता है। वह जो भीतर यंत्रवत हमारा मन है उससे काम झटके से हाथ में लेना पड़ता है। जब एक्सीडेंट का मौका आ जाए, कोई गड्ढे में गिरने का वक्त आ जाए, अन्यथा वह रोबोट चलाए रखता है। मनोवैज्ञानिकों ने हजारों परीक्षण से तय किया है कि सभी ड्राइवर रात को अगर बहुत देर तक जागकर गाड़ी चलाते रहे हों,

237

महावीर-वाणी भाग : 1

तो नींद भी ले लेते हैं क्षण दो क्षण को, और गाड़ी चलाते रहते हैं। नींद भी ले लेते हैं। इसलिए रात को जो एक्सीडेंट होते हैं, कोई दो बजे और चार बजे के बीच होते हैं। ड्राइवर को पता भी नहीं चलता कि उसने झपकी ले ली। एक सेकेंड को वह डूब जाता है लेकिन उतनी देर को रोबोट काम को सम्भालता है। वह जो यंत्रवत हमा रा चित्त है, वह काम को सम्भालता है।

जितनी रोबोट के भीतर प्रवेश कर जाए कोई चीज, उतनी कुशल हो जाती है। और हम जन्मों-जन्मों से बाहर जाने के आदी हैं। वह हमारे यंत्र में समाविष्ट हो गयी है। बाहर जाना हमें ऐसा ही है जैसे पानी का नीचे बहना। उसके लिए हमें कुछ करना नहीं पड़ता। भीतर आना बड़ी यात्रा मालूम पड़ेगी। क्योंकि हमारे यंत्र मानव को कोई पता ही नहीं है कि भीतर कैसे आना है। हम इतने कुशल हैं बाहर जाने में कि हम बाहर ही खड़े हैं। हम भूल ही गए हैं कि भीतर आने की भी कोई बात हो सकती है। रोबोट की पतेच हैं, इस यंत्र मानव की पतेच हैं।

आबरी मैनन नेएक भारतीय बाप और आंग्ल मां का बेटा है, आबरी मैनन। उसका पिता सारी जिंदगी इंग्लैंड में रहा। कोई बीस वर्ष की उम्र का था तब इंग्लैंड चला गया। वहीं शादी की, वहीं बच्चा पैदा हुआ। लेकिन आबरी मैनन ने लिखा है कि मेरी मां सदा मेरे पिता की एक आदत से परेशान रही—वह दिनभर अंग्रेजी बोलता था, लेकिन रात सपने में मलयालम—वह रात सपने में अपनी मातृभाषा ही बोलता था। साठ साल का हो गया है, तब भी। चालीस साल निरंतर होश में अंग्रेजी बोलने पर भी, रात सपना तो वह अपनी मातृभाषा में ही देखता था, जैसे कि स्वभावतः स्त्रियां परेशान होती हैं। क्योंकि वह पति सपने में भी क्या सोचता है, इसका भी पता लगाना चाहती हैं। तो आबरी मैनन ने लिखा है कि मेरी मां सदा चिंतित थी कि पता नहीं यह क्या सपने में बोलता है। कहीं किसी दूसरी स्त्री का नाम तो नहीं लेता मलयालम में? कहीं किसी दूसरी स्त्री में उत्सुकता तो नहीं दिखलाता? लेकिन इसका कोई उपाय नहीं था।

सच यह है कि बचपन में जो भाषा हम सीख लेते हैं, फिर दूसरी भाषा उतनी गहरी रोबोट में कभी नहीं पहुंच पाती—कभी नहीं पहुंच पाती। क्योंकि उसकी पहली पर्त बन जाती है। दूसरी भाषा अब कितनी ही गहरी जाए, उसकी पर्त दूसरी ही होगी, पहली नहीं हो सकती। उसका कोई उपाय नहीं है। इसलिए मनसविद कहते हैं कि हम सात साल में जो सीख लेते

हैं, वह हमारी जिंदगीभर कोई पचहत्तर प्रतिशत हमारा पीछा करता है। उससे फिर छुटकारा नहीं है। वह हमारी पहली पर्त बन जाता है।

इसलिए अगर सत्तर साल का बूढ़ा भी क्रोध में आ जाए तो वह सात साल के बच्चे जैसा व्यवहार करने लगता है क्योंकि रोबोट रिग्रेस कर जाता है। इसलिए क्रोध में आप बचकाना व्यवहार करते हैं। प्रेम में भी करते हैं, वह भी ध्यान रखना। जब कोई आदमी एक दूसरे के प्रति प्रेम से भर जाते हैं तो बहुत बचकाना व्यवहार करते हैं। उनकी बातचीत भी बचकानी हो जाती है। एक दूसरे के नाम भी बचकाने रखते हैं। प्रेमी एक दूसरे के नाम बचकाने रखते हैं। रिग्रेस हो गया। क्योंकि प्रेम का जो पहला अनुभव है वह सात साल में सीख लिया गया। अब उसकी पुनरुक्ति होगी। यह जो मैं कह रहा हूं कि हमारा बाहर जाने का व्यवहार इतना प्राचीन है—जन्मों-जन्मों का है कि हमें पता ही नहीं चलता कि हम बाहर जा रहे हैं, और हम बाहर चले जाते हैं। आप अकेले बैठे हैं, फौरन अखबार खींचकर उठा लेते हैं। आपको पता नहीं चलता, आ पका रोबोट आपका यंत्र मानव कह रहा है—खाली कैसे बैठ सकते हैं, अखबार खींचो। उस अखबार को आप सात दफा पढ़ चुके हैं, सुबह से, फिर आठवीं दफे पढ़ रहे हैं, इसका बिना खयाल किए अब आप क्या पढ़ रहे हैं! वह रोबोट भीतर नहीं ले जाता , वह तत्काल बाहर ले जाता है। रेडियो खोलो, बातचीत करो, कहीं भी बाहर जाओ, किसी दूसरे से संबंधित होओ। क्योंकि रोबोट को एक ही बात पता है—दूसरे से संबंधित होना, उसको अपने से संबंधित होना पता ही नहीं। तो इसका जरा ध्यान रखना पड़े, क्योंकि अति ध्यान रखें तो ही इसके बाहर हो सकेंगे।

238

□

संलीनताः अंतर-तप का प्रवेश-द्वा र

और रोबोट ट्रेनिंग से चलता है, उसका प्रशिक्षण है। आ पको पता नहीं कि आप अपने रोबोट से कितना काम ले सकते हैं। आपने अगर जैन मुनियों को अवधान करते देखा है तो आप समझते होंगे, यह बहुत बड़ी प्रतिभा की बात है सिर्फ रोबोट की ट्रेनिंग है। आप कर सकते हैं—छोटी-सी ट्रेनिंग। रोबोट से आप कितने ही काम ले सकते हैं, सिर्फ एक दफा उसे सिखा दें। हम केवल एक ट्रैक पर काम करते हैं। आप टेप रेकार्डर को जानते हैं। टेप रेकार्डर एक ट्रैक का भी हो सकता है, दो ट्रैक का भी हो सकता है, चार ट्रैक का भी हो सकता है। आपके पास चार ट्रैक का टेप रेकार्डर हो जो एक ही पट्टी पर चार ट्रैक पर रिकार्ड करता है, और आपको पता न हो, आप एक पर ही करते रहें, तो आप जिंदगीभर एक पर ही करते रहेंगे, बाकी तीन ट्रैक खाली पड़े रहेंगे। आपके मन के रोबोट के हजारों ट्रैक हैं। आप एक ही साथ हजारों ट्रैक पर काम कर सकते हैं। इसका थोड़ा प्रयोग आपको मैं खयाल दिला दूं, तो आपको बहुत आसानी हो जाएगी।

थोड़े दिन एक छोटा-सा अभ्यास करके देखें। घड़ी रख लें अपने हाथ की खोल के सामने। उसका जो सेकेंड का कांटा है, उस पर ध्यान रखें। बाकी पूरी घड़ी को भूल जाएं, सिर्फ सेकेंड के कांटे को घूमते हुए देखें। वह एक मिनट में, या साठ सेकेंड में एक चक्कर पूरा करेगा। एक मिनट का अभ्यास करें, कोई तीन सप्ताह में अभ्या स आपका हो जाएगा कि आपको घड़ी के और कांटे खयाल में नहीं आएंगे, और आंकड़े खयाल में नहीं आएंगे, अंक खयाल में नहीं आएंगे। डायल धीरे-धीरे भूल जाएगा, सिर्फ वह सेकेंड का भागता हुआ कांटा आपको याद रह जाएगा। जिस दिन आपको ऐसा अनुभव हो कि अब मैं एक मिनट सेकेंड के कांटे पर ध्यान रख सकता हूं, आपने बड़ी कुशलता पायी जिसकी आपको कल्पना भी नहीं हो सकती।

अब आप दूसरा प्रयोग शुरू करें। ध्यान सेकेंड के कांटे पर रखें और भीतर एक से लेकर साठ तक की गिनती बोलें—ध्यान कांटे पर रखें, और भीतर एक, दो, तीन, चार से साठ तक गिनती बोलें, साठ या जितना हो सके, एक मिनट में—सौ हो सके तो सौ। तीन सप्ताह में आप कुशल हो जाएंगे, दोनों काम एक साथ डबल ट्रैक पर शुरू हो

जाएगा। ध्यान कांटे पर भी रहेगा और ध्यान संख्या पर भी रहेगा। अब आप तीसरा काम शुरू करें। ध्यान कांटे पर रखें, भीतर एक सौ तक गिनती बोलते रहें और कोई गीत की कड़ी गुनगुनाने लगें, भीतर।

तीन सप्ताह में आप पाएंगे, तीन ट्रैक पर काम शुरू हो गया। ध्यान कांटे पर भी रहेगा, ध्यान आंकड़ों पर भी रहेगा, संख्या पर भी रहेगा, गीत की कड़ी पर भी रहेगा। अब आप जितने चाहें उतने ट्रैक पर धीरे-धीरे अभ्यास कर सकते हैं। आप सौ ट्रैक पर एक साथ अभ्यास कर सकते हैं। और सौ काम एक साथ चलते रहेंगे—पर्त-पर्त। यही अवधान है। इसका अभ्यास कर लेने पर आप मदारीगिरी कर सकते हैं। जैन साधु करते हैं, वह सिर्फ मदारीगिरी है। उसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन रोबोट को एक दफा आप सिखा दें तो रोबोट करने लगता है।

और एक खतरा यह है कि रोबोट जब करने लगता है तो सिखाना जितना आ सान है, उतना आसान भुलाना नहीं है। सिखाना बहुत आसान है, ध्यान रखना। स्मरण बहुत आसान है, विस्मरण बहुत क ठिन है। लेकिन असम्भव नहीं है। वाश आउट किया जा सकता है, जैसा टेप पर किया जा सकता है। मिटाया जा सकता है। पर ि मटाना बहुत कठिन है। और उससे भी ज्यादा कठिन विपरीत का अभ्यास है। हमारे यंत्र-चित्त का अभ्यास है बाहर जाने के लिए। तो पहले तो यह बाहर जाने का अभ्यास मिटाना पड़ता है, और फिर भीतर जाने का अभ्यास पैदा करना पड़ता है।

तो इसके लिए—और यह संलीनता में जाने के लिए आवश्यक होगा कि जब भी आपका यंत्र-मानव आपसे कहे—बाहर जाओ, आप अगर ध्यान रखेंगे तो आपको पता चलने लगेगा। कार में आप बैठे हैं, बिलकुल सोये हुए आदमी की तरह, अखबार उठा लेते

239

महावीर-वाणी भाग : 1

हैं और पढ़ना शुरू कर देते हैं। आपको खयाल नहीं, आपका यंत्र-मानव कहता है—कैसे अपने में संलीन बैठे हो? अखबार पढ़ो !

यह हाथ बिलकुल नींद में जाता है, अखबार उठाता है, ये आंखें नींद में पढ़ना शुरू कर देती हैं। यह मन नींद में ग्रहण करना शुरू कर देता है। कचरा आप डाल रहे हैं। न डालते तो कुछ हर्ज न था, फायदा हो सकता था। क्योंकि कचरे के डालने में भी शक्ति व्यय होगी। कचरे को सम्भालने में भी शक्ति व्यय होगी। कचरे को भरने में भी मन का रिक्त स्थान भरेगा और व्यर्थ भर जाएगा। यह वैसे ही है जैसे कोई आदमी सड़क पर कचरा उठाकर घर में ला रहा हो। वह कहे—कुछ तो करेंगे, बिना किए कैसे रह सकते हैं। पर घर में लाए गए कचरे को बाहर फेंक देने में बहुत कठिनाई नहीं है, मन में लाए गए कचरे को फिर बाहर फेंकने में बहुत कठिनाई है।

इसलिए पहला ध्यान तो पहला पहरा यही रखना पड़ेगा कि मन जब बाहर जाए तो आप सचेत हो जाएं, और होशपूर्वक बाहर जाएं। अगर अखबार पढ़ना है तो जानकर कि मेरा यंत्र अखबार पढ़ना चाहता है। मैं अखबार पढ़ता हूं, अब मैं अखबार पढूंगा। अखबार पढ़ें होशपूर्वक। तब आप पाएंगे कि अखबार पढ़ने में कोई रस नहीं आ रहा है, क्योंकि रस सिर्फ बेहोशी में आ सकता है। यह बहुत मजा है कि व्यर्थ की चीज में रस सिर्फ बेहोशी में आता है, होश में नहीं आता। आप किसी भी व्यर्थ की चीज में होशपूर्वक रस नहीं ले सकते हैं। बेहोशी में ले सकते हैं। इसलिए जिन लोगों को रस लेने का पागलपन सवार हो जाता है वे नशा करने लगते हैं क्योंकि नशे में रस ज्यादा लिया जा सकता है। नहीं तो रस नहीं लिया जा सकता।

होशपूर्वक, यंत्र-मानव को बाहर जाने की जो चेष्टा है उसे होशपूर्वक देखते रहें और होशपूर्वक ही काम करें। अगर यंत्र-मानव कहता है कि क्या अकेले बैठे हैं, चलें मित्र के घर; तो उससे कहें कि ठीक है, चलते हैं—होशपूर्वक चलते

हैं। तेरी मांग है, हम देखते-देखते हुए चलते हैं। सम्भावना यह है कि आप बीच रास्ते से घर वापस लौट आएं। क्योंकि कहें कि क्या—क्योंकि बड़ा मजा यह है उस मित्र के पास रोज बैठकर बोर होते हैं और कुछ नहीं होता है। वह वही बातें फिर से कहता है कि मौसम कैसा है, कि स्वास्थ्य कैसा है! दो तीन मिनट में बातें चुक जाती हैं। फिर वह वे ही कहानियां सुनाता है जो बहुत बार सुना चुका। फिर वह वे ही घटनाएं बताता है जो बहुत बार बता चुका है, और आप सिर्फ बोर होते हैं। रोज यही खयाल लेकर लौटते हैं कि इस आदमी ने बुरी तरह उबा दिया। लेकिन कल रोबोट कहता है कि मित्र के घर चलो और आपको खयाल नहीं आता कि आप फिर बोर होने चले। अपनी बोर्डम खुद ही खोजते हैं। अगर आप होशपूर्वक जाएंगे तो रास्ते में आपको स्मरण आ जाएगा कि आप कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, क्या मिलेगा? पैर शिथिल पड़ जाएंगे। सम्भावना यह है कि आप वापस लौट आएं।

इस तरह आपके यंत्र-चित्त की बाहर जाने की प्रत्येक क्रिया पर जा गरूक पहरा रखें। एक-एक क्रिया छूटने लगेगी। फिर जो बहुत नेसेसरी हैं, जीवन के लिए अनिवार्य हैं, उतनी ही क्रियाएं रह जाएंगी। गैर अनिवार्य क्रियाएं छूट जाएंगी और तब आप पाएंगे कि शरीर संलीन होने लगा। आप बैठेंगे ऐसे जैसे अपने में ठहरे हुए हैं। जैसे कोई झील शांत है, जिसमें लहर भी नहीं उठती। एक रिपेल भी नहीं जैसे आकाश खाली, एक बदली भी नहीं भटकती। जैसे कभी देखा हो तो आकाश में किसी चील को पंखों को रोककर उड़ते हुए—संलीन। पंख भी नहीं हिलता। चील सिर्फ अपने में ठहरी है, तिरती है, तैरती भी नहीं, तिरती है। जैसे देखा हो किसी बत्तख को कभी किसी झील में, पंख भी न मारते हुए—ठहरे हुए। ऐसा सब आपके शरीर में भी ठहर जाएगा, मन में भी। क्योंकि जैसे शरीर बाहर जाता है ऐसे ही मन भी बाहर जाता है। अगर शरीर बाहर नहीं जा सकता तो मन और ज्यादा बाहर जाता है। क्योंकि पूर्ति करनी पड़ती है। अगर आप मित्र से नहीं मिल सकते तो फिर आंख बंद करके मित्र से मिलने लगते हैं, दिवा-स्वप्न देखने लगते हैं कि मित्र मिल गया, बातचीत हो रही है। तो फिर धीरे-धीरे मन की भी बाहर जाने की आंतरिक कोशिशें हैं, उन पर

भी सजग हो जाएं। और जिस दिन शरीर और मन दोनों के प्रति सजगता होती है, वह जो रोबोट यंत्र है हमारे भीतर, वह बाहर जाने में धीरे-धीरे, धीरे-धीरे रस खो देता है। तब भीतर जाया जा सकता है।

और भीतर जाने में किस चीज में रस लेना पड़ेगा? भीतर जाने में उन चीजों में रस लेना पड़ेगा जिनमें संलीनता स्वाभाविक है। जैसे कि शांति का भाव है तो संलीनता स्वाभाविक है। जैसे सारे जगत के प्रति करुणा का भाव, उसमें संलीनता स्वाभाविक है। क्रोध बाहर ले जाता है, करुणा बाहर नहीं ले जाती। शत्रुता बाहर ले जाती है, मैत्री का भाव बाहर नहीं ले जाता। तो उन भावों में ठहरने से भीतर यात्रा शुरू होती है। पर संलीनता सिर्फ द्वार है। उन सारी बा तों का विचार हम अंतर्तप की छह प्रक्रियाओं में करेंगे। संलीनता तो उन छह के लिए द्वार है, पर संलीन हुए बिना उनमें कोई प्रवेश न हो सकेगा। ये सब इंटीग्रेटेड हैं, ये सब संयुक्त हैं। हमारा मन करता है कि इसको छोड़ दें और उसको कर लें। ऐसा नहीं हो सकेगा। ये बारह अंग आर्गनिक हैं। ये एक दूसरे से संयुक्त हैं। इनमें से एक भी छोड़ा तो दूसरा नहीं हो सकेगा। अब महावीर ने इसके पहले जो पांच अंग कहे वे सब अंग शक्ति संरक्षण के हैं, और छठवां अंग संलीनता का है। जब शक्ति बचेगी तभी तो भीतर जा सकेगी ! शक्ति बचेगी ही नहीं तो भीतर क्या जाएगा। हम करीब-करीब रिक्त और दिवालिए, बैंकरप्ट हैं। बाहर ही शक्ति गंवा देते हैं। भीतर जाने के लिए कोई शक्ति बचती ही नहीं। कुछ बचता ही नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन मरा तो उसने अपनी वसीयत लिखी—उसने वसीयत लिखवा यी, बड़ी भीड़-भाड़ इकट्ठी की, सारा गांव इकट्ठा हुआ, फिर उसने गांव के पंचायत के प्रमुख से कहा—वसीयत लिखो। थोड़े लोग चकित थे। ऐसा कुछ ज्यादा

उसके पास दिखाई नहीं पड़ता था जिसके लिए वह इतना शोरगुल मचाए है। उसने वसीयत लिखवा यी तो उसने लिखवाया कि आधा तो मेरे मरने के बाद मेरी सम्पत्ति में से पत्नी को मिल जाए। फिर इतना हिस्सा मेरे लड़के को मिल जाए इतना हिस्सा मेरी लड़की को मिल जाए फिर इतना हिस्सा मेरे मित्र को मिल जाए, इतना हिस्सा मेरे नौकर को मिल जाए। वह सब उसने हिस्से लिखवा दिए। तो पंच प्रमुख बार-बार कहता था कि ठहरो, वह पूछना चाहता था कि है कितना तुम्हारे पास? और आखिर में उसने कहा कि सबको बांट देने के बाद जो बच जाए वह गांव की मस्जिद को दे दिया जाए।

तो पंच-प्रमुख ने फिर पूछा कि मैं तुमसे बार-बार पूछ रहा हूं कि तुम्हारे पास है कितना?

उसने कहा—है तो मेरे पास कुछ भी नहीं, लेकिन नियमानुसार वसीयत तो लिखानी चाहिए। नहीं तो लोग क्या कहेंगे कि बिना वसीयत लिखाए मर गए !

है कुछ भी नहीं। उसमें से भी वह कह रहा है कि सबको बांटने के बाद जो बच जाए वह मस्जिद को दे दिया जाए। हम भी करीब-करीब दिवालिया मरते हैं। जहां तक अंतः संपत्ति का संबंध है, हम सब दिवालिया मरते हैं। नसरुद्दीन जैसे ही मरते हैं, वह व्यंग्य हम पर भी है।

कुछ नहीं होता पास—कुछ भी नहीं होता। क्योंकि सब हमने व्यर्थ खोया होता है, और व्यर्थ भी ऐसा खोया होता है जैसे कि आपने बाथरूम का नल खुला छोड़ दिया हो और पानी बह रहा हो। इस तरह व्यर्थ होता है। आपके सब व्यक्तित्व के द्वार खुले हुए हैं बाहर की तरफ और शक्ति व्यर्थ खोती चली जाती है। डिस्सीपेट होती है। जो थोड़ी बहुत बचती है, उससे आप सिर्फ बेचैन होते हैं और उससे भी कुछ नहीं करते हैं, उसको बेचैनी में नष्ट करते हैं, परेशानी में नष्ट करते हैं।

तो महावीर ने पहले जो अंग कहे वे शक्ति संरक्षण के हैं। यह जो छठवां अंग कहा, यह संरक्षित शक्ति का अंतर-प्रवाह है। जैसे कोई नदी अपने मूल-उदगम की तरफ वापस लौटने लगे। मूल-स्रोत की तरफ शक्ति का आगमन शुरू हो। बाहर की तरफ

नहीं, कुछ पाने के लिए नहीं, वहां हम चलें जहां हम हैं। जहां से हम आए हैं वहां हम चलें। जहां से हमारे यह जीवन का फैलाव हुआ है, वहां हम चलें। टु बी रूट, जड़ों की तरफ चलें। उस जगह पहुंच जाएं जो हमारा अंतिम हिस्सा है। जिसके पीछे हम नहीं हैं—आखिरी और पीछे। क्योंकि वही हमारा राज है, रहस्य है, वही हम हैं। और उससे हम कितने ही बाहर जाएं, हम चांद-तारों तक पहुंच जाएं, तो भी उसे हम न पा सकेंगे। उसके लिए तो हमें भीतर ही जाना पड़ेगा। उसके लिए तो हमें संलीन ही होना पड़ेगा।

शक्ति बचे, शक्ति भीतर लौटे—पर इस शक्ति को भीतर लौटने के लिए आपको तीन प्रयोग करने पड़ें—अपनी शरीर की गतिविधियों को देखना पड़े, शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों को तोड़ना पड़े, शरीर की गतिविधियों और मन की गतिविधियों के पार होना पड़े। और तब आप अचानक पाएंगे कि आप संलीन होने शुरू हो गए। अपने में डूबने लगे, अपने में डूबने लगे, अपने में उतरने लगे। अपने भीतर, और भीतर, और भीतर, और गहरे में जाने लगे।

इसमें एक ही बात आखिरी आपसे कहूं जो भी अभ्यास करेगा कोई, उसके काम की है। क्योंकि जैसे ही संलीनता शुरू होगी, बड़ा भय पकड़ता है, बहुत भय पकड़ता है। ऐसा लगता है जैसे सफोकेट हो रहे हैं हम, जैसे कोई गर्दन दबा रहा है, या पानी में डूब रहे हैं। संलीन होने का जो भी प्रयोग करेगा वह बहुत भय से भर जाएगा। जैसे ही शक्ति भीतर जानी शुरू होगी, भय पकड़ेगा। क्योंकि यह अनुभव करीब-करीब वैसा ही होगा जैसा मृत्यु का होता है। मृत्यु में भी शक्ति

संलीन होती है। और कुछ नहीं होता। शरीर को छोड़ती है, मन को छोड़ती है, भीतर चलती है, उदगम की तरफ, तब आप तड़फड़ाते हैं कि अब मैं मरा। क्योंकि आप अपने को समझते थे वही जो बाहर जा रहा था। आपने कभी उसको तो जाना नहीं जो भीतर जा सकता है। उससे आपका कोई संबंध नहीं, कोई पहचान नहीं। आप तो अपना एक चेहरा जानते थे बहिगार्मी, अंतर्गामी तो आपको कोई अनुभव न था।

आप कहते हैं—मरा, क्योंकि वह सब बाहर जो जा रहा था, वह बाहर नहीं जा रहा, भीतर लौट रहा है। शरीर से शक्ति डूब रही है भीतर, बाहर नहीं जा रही है। मन अब बाहर नहीं जा रहा है, भीतर डूब रहा है। अब सब भीतर सिकुड़ रहा है, सब भीतर संकुचित हो रहा है, सब केन्द्र पर लौट रहा है। गंगा अपने को पहचानती थी सा गर की तरफ बहती हुई। उसे कभी जाना भी न था कि गंगोत्री की तरफ बहना भी, मैं ही हूं। वह उसे पहचान नहीं है। वह उसका कोई रिकग्निशन नहीं है। तो मृत्यु में जो घबराहट पकड़ती है, वही घबराहट आपको संलीनता में पकड़ेगी—वही घबराहट। मृत्यु का ही अनुभव होगा यह। मर रहे हैं जैसे। मन होगा कि दौड़ो बाहर। कोई भी सहारा पकड़ो और बाहर निकल जाओ। अगर बाहर निकल आ ते हैं तो संलीन न हो पाएंगे।

तो जब भय पकड़े, तब भय के भी साक्षी बने रहना, देखते रहना कि ठीक है। मृत्यु से भी यह अनुभव कठिन होगा क्योंकि मृत्यु तो परवशता में होती है। आप कुछ कर नहीं सकते, छूट रहे होते हैं सहा रे। इसमें आप कुछ कर सकते हैं। आप जब चाहें, तब बाहर आ सकते हैं। यह तो इंटेंशनल है, यह तो आपका संकल्प है भीतर जाने का। मृत्यु में तो आपका संकल्प नहीं होता। मृत्यु में कोई चुनाव नहीं होता। आप मारे जा रहे होते हैं। आप मर नहीं रहे होते। यह स्वेच्छा से मृत्यु का वरण है। यह अपने ही हाथ से मरकर देखना है। यह एक बार भय को छोड़कर, भय के साक्षी होकर, जो हो रहा है, उसकी स्वीकृति को मानकर अगर आप डूब जाएं तो आप सदा के लिए मृत्यु के भय के पार हो जाएंगे। फिर मृत्यु भी आपको भयभीत नहीं करेगी। एक बार आपको अंतर्मुखी ऊर्जा की यात्रा भी, मैं ही हूं, ऐसा अनुभव हो जाए तो फिर मृत्यु का कोई भय नहीं है। फिर आप जानते हैं—मृत्यु है ही नहीं। फिर मृत्यु है ही नहीं।

मृत्यु सिर्फ अंतर्यात्रा के अपरिचय के कारण प्रतीत होती है। बहियार्त्रा के साथ तादात्तमय, अंतर्यात्रा के साथ कोई संबंध नहीं, इसलिए मृत्यु प्रतीत होती है। यह संबंध संलीनता से निर्मित हो जाता है। कहें, आप स्वेच्छा से मरकर देख लेते हैं और पाते हैं कि

नहीं मरता। आप स्वेच्छा से मृत्यु में प्रवेश कर जाते हैं और पाते हैं, मैं तो हूं। मृत्यु घटित हो जाती है, सब बाच्हय छूट जाता है। जो मृत्यु में छूटेगा वह सब छूट जाता है। सब जगत मिट जाता है, शरीर भूल जाता है, मन भूल जाता है फिर भी चैतन्य का दीया भीतर जलता रहता है।

संलीनता के इस प्रयोग को कोई ठीक से करे तो शरीर के बाहर एच्सटरल प्रोजैक्शन या एच्सटरल ट्रेवलिंग सरलता से हो जाती है। जब आपका शरीर भी मिट गया, मन भी मिट गया, सिर्फ आप ही रह गए, सिर्फ होना ही रह गया तब आप जरा-सा खयाल करें, शरीर के बाहर तो आप शरीर के बाहर हो जाएंगे। शरीर आपको सामने पड़ा हुआ दिखाई पड़ने लगेगा।

कभी-कभी अपने आप घट जाता है, वह भी मैं आपसे कह दूं, क्योंकि जो प्रयोग करें उनको अपने आप भी कभी घट जाता है। आपके बिना खयाल, अचानक आप पाते हैं—आप शरीर के बाहर हो गए। तब बड़ी बेचैनी होगी। और लगता है डरकर अब वापस शरीर में लौट सकेंगे कि नहीं लौट सकेंगे। आप अपने पूरे शरीर को पड़ा हुआ देख पाते हैं। पहली

दफा आप अपने शरीर को पूरा देख पाते हैं। आईने में तो प्रतिछवि दिखाई पड़ती है, आप पहली दफा अपने पूरे शरीर को देख पाते हैं बाहर।

और एक बार जिसने बाहर से अपने शरीर को देख लिया, वह शरीर के भीतर होकर भी फिर कभी भीतर नहीं हो पाता है। वह फिर बाहर ही रह जाता है। फिर वह सदा बाहर ही होता है। फिर कोई उपा य ही नहीं है उसके भीतर होने का। भीतर हो जाए तो भी उसका बाहर होना बना रहता है।वह पृथक ही बना रहता है। फिर शरीर पर आए दुख उसके दुख नहीं हैं। फिर शरीर पर घटी हुई घटनाएं उस पर घटी घटनाएं नहीं हैं। फिर शरीर का जन्म उसका जन्म नहीं है, फिर शरीर की मृत्यु उसकी मृत्यु नहीं है।फिर शरीर का पूरा जगत उसका जगत नहीं है और हमारा सारा जगत शरीर का जगत है। इतिहास समाप्त हो गया उसके लिए, जीवन कथा समाप्त हो गई उसके लिए। अब तो एक शून्य में ठहराव है, और समस्त आनंद शून्य में ठहरने का परिणाम है। समस्त मुक्ति शून्य में उतर जाने की मुक्ति है समस्त मोक्ष।

लेकिन हम निरंतर बाहर भाग रहे हैं। यह हमारा बाहर भागना आक्रमण है। महावीर ने शब्द बहुत अच्छा प्रयोग किया है—प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण का अर्थ है—भीतर लौटना; आक्रमण का अर्थ है —बाहर जाना। प्रतिक्रमण का अर्थ है—कमिंग बैक टु द होम, घर वापस लौटना। इसलिए महावीर अहिंसा पर इतना आग्रह करते हैं क्योंकि आक्रमण न घटे चित्त का, तो प्रतिक्रमण नहीं हो पाएगा। संलीनता फलित नहीं होगी। ये सब सूत्र संयुक्त हैं। यह मैं कह रहा हूं इसलिए अलग-अलग कहने पड़ रहे हैं। जीवन में जब यह घटना में उतरने शुरू होते हैं तो ये सब संयुक्त हैं। अनाक्रमण—लेकिन हम सोचते हैं—जब हम किसी की छाती पर छुरा भोंकते हैं तभी आक्रमण होता है। नहीं, जब हम दूसरे का विचा र भी करते हैं तब भी आक्रमण हो जाता है। दूसरे का खयाल भी दूसरे पर आक्रमण है। दूसरे का मेरे चित्त में उपस्थित हो जाना भी आक्रमण है। आक्रमण का मतलब ही यह है कि मैं दूसरे की तरफ बहा। छुरे के साथ गया दूसरे की तरफ, कि आलिंगन के साथ गया दूसरे की तरफ; कि सदभाव से गया कि असदभाव से गया। दूसरे की तरफ जाती हुई चेतना आक्रामक है। मैं दूसरे की तरफ जा रहा हूं, यही आक्रमण है।हम सब जाना चाहते हैं। जाना इसलिए चाहते हैं कि हमारी अपने पर तो कोई मालकियत नहीं है। किसी दूसरे पर मालकियत हो जाए तो थोड़ा मालकियत का सुख मिले। थोड़ा सही, कोई दूसरा मालिक होता है।

मुल्ला नसरुद्दीन गया है एक मनोचिकित्सक के पास और उसने कहा कि मैं बड़ा परेशान हूं—पत्नी से बहुत भयभीत हूं। डरता हूं, मेरे हाथ पैर कंपते हैं। मुंह में मेरा थूक सूख जाता है जैसे ही मैं उसे देखता हूं।

मनोवैज्ञानिक ने कहा—यह कुछ ज्यादा चिंता की बात नहीं है। ज्यादा चिंता की बात तो इससे उल्टी बीमारी है। वह उल्टी बीमारी

बीमारी के लोग पत्नी को देखकर ही हमला करने को उत्सुक हो जाते हैं, सिर तोड़ने को उत्सुक हो जाते हैं, घसीटने को उत्सुक हो जाते हैं, मारने को उत्सुक हो जाते हैं, आक्रामक हो जाते हैं। वे ही असली साइकोपैथ हैं, साइकोपैथिक हैं। यह तो कुछ भी नहीं, यह तो ठीक है। इसमें कुछ घबराने की बात नहीं। यह तो अधिक लोगों के लिए यही है।

मुल्ला बड़ा उत्सुक हो गया, कुर्सी से आगे झुक आया। उसने कहा कि डाक्टर, ऐनी चांस आफ माई कैचिंग दैट डिसी, साइकोपैथी? कोई मौका है कि मुझे वह बीमारी लग जाए? जिसको आप साइकोपैथी कह रहे हैं? मैं भी घर जाऊं और लट्ठ उठाकर सिर खोल दूं उसका? मन तो मेरा भी यही करता है। लेकिन उसके सामने जाकर मेरे सब मंसूबे गड़बड़ हो

जाते हैं। और दिन की तो बात दूर, वषोच से मैं एक दुःस्वप्न, एक नाइट मेयर देख रहा हूं। वह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। कुछ इलाज है?

मनोवैज्ञानिक ने कहा—कौन-सा दुःस्वप्न?

तो उसने कहा—मैं रात निरंतर अपनी पत्नी को देखता हूं, और उसके पीछे खड़े एक बड़े राक्षस को देखता हूं।

मनोवैज्ञानिक उत्सुक हुआ। उसने कहा—इंटरेस्टिंग। और जरा विस्ता र से कहो।

तो नसरुद्दीन ने कहा कि लाल आंखें, जिनसे लपटें निकल रही हैं, तीर बड़े-बड़े, लगता है कि छाती में भोंक दिए जाएंगे। हाथों में नाखून ऐसे हैं जैसे खंजर हों। बड़ी घबराहट पैदा होती है।

मनोवैज्ञानिक ने कहा—घबराने वाला है, भयंकर है।

नसरुद्दीन ने कहा—दिस इज नथिंग, वेट, टिल आई टैल यू अबाउट दी मान्सटर। जरा रुको, जब तक मैं राक्षस के संबंध में न बताऊं तब तक कुछ मत कहो। यह तो मेरी पत्नी है। उसके पीछे जो राक्षस खड़ा रहता है, अभी उसका तो मैंने वर्णन ही नहीं किया। उसने उसका भी वर्णन किया। उसके भयंकर दांत, लगता है कि चपेट डालेंगे, पीस डालेंगे। उसका विशालकाय शरीर, उसके सामने बिलकुल कीड़ा-मकोड़ा हो जाता हूं। और उसकी घिनौनी बा त और उसके शरीर से झरती हुई घिनौनी चीजें और रस ऐसी घबराहट भर देते हैं कि दिनभर वह मेरा पीछा करता है।

मनोवैज्ञानिक ने कहा—बहुत भयंकर, बहुत घबरानेवाला।

नसरुद्दीन ने कहा कि वेट, टिल आई टैल यू दैट दि मान्सटर इज नो वन एल्स दैन मी। जरा रुको, वह राक्षस और कोई नहीं, और घबरानेवाली बात यह है कि जब मैं गौर से देखता हूं तो पाता हूं, मैं ही हूं।

और यह दुःस्वप्न वषोच से चल रहा है। जब तक चित्त आक्रामक है, तब तक दूसरे में भी राक्षस दिखाई पड़ेगा। और अगर गौर से देखेंगे तो आक्रामक चित्त अपने को भी राक्षस ही पाएगा। और हम सब आक्रामक हैं। हम सब दुःस्वप्न में जीते हैं। हमारी जिंदगी एक नाइट मेयर है, एक लंबी सड़ांध है, एक लंबा रक्तपात से भरा हुआ नाटक, एक लंबा नारकीय दृश्य।

मुल्ला मरकर जब स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा तो स्वर्ग के पहरेदार ने पूछा—कहां से आ रहे हो? उसने कहा—मैं पृथ्वी से आ रहा हूं। उस द्वारपाल ने कहा—वैसे तो नियम यही था कि तुम्हें नरक भेजा जाए, लेकिन चूंकि तुम पृथ्वी से आ रहे हो, नरक तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा। नरक तुम्हें काफी सुखद मालूम होगा इसलिए कुछ दिन स्वर्ग में रुक जाओ, फिर तुम्हें नरक भेजेंगे ताकि नरक तुम्हें दुखद मालूम हो सके। तो मुल्ला को कुछ दिनों के लिए स्वर्ग में रोक लिया गया। क्योंकि सब सुख-दुख रिलेटिव हैं। मुल्ला ने बहुत कहा कि मुझे सीधे जाने दो। उस द्वारपाल ने कहा—यह नहीं हो सकता, क्योंकि नर्क तो अभी तुम्हें स्वर्ग मालूम होगा। तुम पृथ्वी से आ रहे हो सीधे। अभी कुछ दिन स्वर्ग में रह लो। जरा सुख अनुभव हो जाए, फिर तुम्हें नरक में डालेंगे। तब तुम्हें सताया जा सकेगा।

244

संलीनता : अंतर-तप का प्रवेश-द्वा र

हम जिसे जिंदगी कह रहे हैं वह एक लंबी नरक यात्रा है। और वह नरक यात्रा का कारण कुल इतना है कि हमारा चित्त आक्रामक है। पर-केंद्रित चित्त आक्रामक होता है, स्व-केंद्रित चित्त अनाक्रमक हो जाता है, प्रतिक्रमण को उपलब्ध हो जाता है। यह प्र तिक्रमण की यात्रा ही संलीनता में डुबा देती है।

आज बाच्हय-तप पूरे हुए, कल से हम अंतर-तप को समझने की कोशिश करेंगे।

रुकें पांच मिनट!

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
 अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
 जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

248

तप के छह बाच्हय अंगों की हमने चर्चा की है, आज से अंतर-तपों के संबंध में बात करेंगे। महावीर ने पहला अंतर-तप कहा है — प्रायश्चित। पहले तो हम समझ लें कि प्रायश्चित क्या नहीं हैं तो आ सान होगा समझना कि प्रायश्चित क्या है? अब कठिनाई और भी बढ़ गयी है क्योंकि प्रायश्चित जो नहीं है वही हम समझते रहे हैं कि प्रायश्चित है। शब्दकोषों में खोजने जाएंगे तो लिखा है कि प्रायश्चित का अर्थ है — पश्चात्ताप, रिपेंटेंस। प्रायश्चित का वह अर्थ नहीं है। पश्चात्ताप और प्रायश्चित में इतना अंतर है जितना जमीन और आसमान में।

पश्चात्ताप का अर्थ है—जो आपने किया है उसके लिए पछतावा; लेकिन जो आप हैं उसके लिए पछतावा नहीं, जो आपने किया है उसके लिए पछतावा। आपने चोरी की है तो आप पछता लेते हैं चोरी के लिए। आपने हिंसा की है तो आप पछता लेते हैं हिंसा के लिए। आपने बेईमानी की है तो पछता लेते हैं बेईमानी के लिए। आ पके लिए नहीं, आप तो ठीक हैं। आप ठीक आदमी से एक छोटी-सी भूल हो गयी थी कर्म में, उसे आपने पश्चात्ताप करके पोंछ दिया।

इसलिए पश्चाताप अहंकार को बचाने की प्रक्रिया है। क्योंकि अगर भूलें आपके पास बहुत इकट्ठी हो जाएं तो आपके अहंकार को चोट लगनी शुरू होगी—कि मैं बुरा आदमी हूं, कि मैंने गाली दी। कि मैं बुरा आदमी हूं, कि मैंने क्रोध किया। आप हैं बहुत अच्छे आदमी—गाली आप दे नहीं सकते हैं, किसी परिस्थिति में निकल गयी होगी। आप पछता लेते हैं और फिर से अच्छे आदमी हो जाते हैं। पश्चात्ताप आपको बदलता नहीं, जो आप हैं वही रखने की व्यवस्था है। इसलिए रोज आप पश्चात्ताप करेंगे और रोज आप पाएंगे कि आप वही कर रहे हैं जिसके लिए कल पछताए थे। पश्चात्ताप आ पके बीइंग, आपकी अन्तरात्मा में कोई अंतर नहीं लाता, सिर्फ आपके कृत्यों में कहीं भूल थी, और भूल भी इसलिए मालूम पड़ती है कि उससे आप अपनी इमेज को, अपनी प्रतिमा को जो आपने समझ रखी है, बनाने में असमर्थ हो जाते हैं।

मैं एक अच्छा आदमी हूं, ऐसी मैं, मेरी अपनी प्रतिमा बनाता हूं। फिर इस अच्छे आदमी के मुंह से एक गाली निकल जाती है, तो मेरे ही सामने मेरी प्रतिमा खंडित होती है। मैं पछताना शुरू करता हूं कि यह कैसे हुआ कि मैंने गाली दी। मैं कहना शुरू करता हूं कि मेरे बावजूद यह हो गया, इन्सपाइट आफ मी। यह मैं चाहता नहीं था और हो गया। ऐसा मैं कर

नहीं सकता हूं और हो गया—किसी परिस्थिति के दबाव में, किसी क्षण के आवेश में। ऐसा मैं हूं नहीं कि जिससे गाली निकले, और गाली निकल गयी। मैं पछता लेता हूं। गाली का जो क्षोभ था वह बिदा हो जाता है। मैं अपनी जगह वापस लौट आता हूं जहां मैं गाली के पहले था।

पश्चात्ताप वहीं ला देता है वापस जहां मैं गाली के पहले था। लेकिन ध्यान रखें, जहां मैं गाली के पहले था, उसी में से गा ली निकली थी। मैं फिर उसी जगह वापस लौट आया। उससे फिर गाली निकलेगी।

फ्रीडी आस्पेंस्की ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी है—दि च्सटरेंज लाइफ आफ इवान ओसोकिन, इवान ओसोकिन का विचित्र जीवन। इवान ओसोकिन एक जादूगर फकीर के पास गया और इवान ओसोकिन ने कहा कि मैं आदमी तो अच्छा हूं। मैंने अपने भीतर आज तक एक भी बुराई न पायी। लेकिन फिर भी मुझसे कुछ भूलें हो गयी हैं। वे भूलें अज्ञानवश हुइच। नहीं जानता था कोई चीज, और भूल हो गयी। रास्ते पर जा रहा हूं, गड्ढे में गिर पड़ा क्योंकि रास्ता अपरिचित था। मैं गिरनेवाला व्यक्ति नहीं हूं। अज्ञान की भूल का मतलब यह होता है, परिस्थिति अज्ञात थी। कोई घटना घट गयी, वह मैं घटाना नहीं चाहता था। कौन गड्ढे में गिरना चाहता है? मैं गिरनेवाला आदमी नहीं हूं। गड्ढा था, अंधेरा था , रास्ता अपरिचित था, या किसी ने धक्का दे दिया, मैं गिर गया। अगर मुझे दुबारा उसी रास्ते पर चलने का मौका मिले तो मैं तुम्हें बता सकता हूं कि मैं उस रास्ते पर चलूंगा और गड्ढे में नहीं गिरूंगा ।

उस फकीर ने कहा कि एक मौका दो मैं तुम्हारी बारह वर्ष उम्र कम किए देता हूं। अब तुम बारह वर्ष बाद आना। और उसने ओसोकिन की उम्र बारह वर्ष कम कर दी। वह एक जादूगर है, उसने उसकी उम्र बारह वर्ष कम कर दी। ओसोकिन उससे वायदा करके गया है कि तुम देखोगे कि बारह वर्ष बाद मैं दूसरा ही आदमी हूं। यही मैं चाहता था कि मुझे एक अवसर और मिल जाए, इसलिए ताकि जो भूलें मुझसे अज्ञान में हो गयी हैं, वे दुबारा न हों।

बारह वर्ष बाद ओसोकिन रोता हुआ उस फकीर के पास आया और उसने कहा—क्षमा करना। वह गलती रास्ते की नहीं थी, मेरी ही थी क्योंकि मैंने फिर वही भूलें दोहराई हैं, मैंने फिर वही किया है जो मैंने पहले किया था। आश्चर्य ! मैं फिर वही जिया हूं जो पहले जिया था।

उस फकीर ने कहा—मैं जानता था, यही होगा। क्योंकि भूलें कर्म में नहीं होतीं—प्राणों की गहराई में, अस्तित्व में होती हैं। उम्र बदल दो तो कर्म फिर से तुम कर लोगे, लेकिन तुम ही करोगे न! यू विल डू इट अगेन एंड यू बीइंग द सेम। तुम वही होओगे, तुम्हीं वही करोगे फिर से; फिर वही हो जाएगा, जो पहले हुआ था।

ईवान ओसोकिन की जिंदगी ही विचित्र नहीं है, इस अर्थ में हम सबकी िजंदगी विचित्र है। हालांकि कोई जादूगर हमारी उम्र कम नहीं करता, लेकिन जिंदगी हर बार हमें न मालूम कितनी बार मौका देती है। ऐसा नहीं है कि क्रोध का मौका आपको एक ही बार आता है और परिस्थिति एक ही बार आती है। नहीं, इसी जिंदगी में हजार बार आती है, वही होती है और फिर आप वही करते हैं। इससे बचने के लिए आप अपने को धोखा देते हैं कि परिस्थिति हर बार िभन्न है। क्योंकि एक बात तो पक्की है, आप वही हैं। अगर परिस्थिति भिन्न नहीं है तो दोष स्वयं पर आ जाएगा। इसलिए आप हर बार कहते हैं—परिस्थिति भिन्न है, इसलिए फिर करना पड़ा। लेकिन जो जानते हैं, वे कहते हैं कि परिस्थिति का सवाल नहीं है, सवा ल आप ही हैं—यू आर द प्राब्लम। और एक जिंदगी नहीं अनेक जिंदगी मिलती हैं, और हम फिर वही दोहराते हैं, फिर वही दोहरा ते हैं, फिर वही दोहराते हैं।

महावीर के पास कोई साधक आता था तो वे उसे पिछले जन्म के स्मरण में ले जाते थे, सिर्फ इसीलिए ताकि वह देख ले कि वह कितनी बार यही सब दोहरा चुका है और यह कहना बंद कर दे कि मेरे कर्म की भूल है और यह जान ले कि भूल मेरी है। पश्चात्ताप, कर्म गलत हुआ, इससे संबंधित है। प्रायश्चित, मैं गलत हूं, इस बोध से संबंधित है। और ये दोनों बातें बहुत भिन्न हैं, इसमें जमीन आसमान का फर्क है। पश्चात्ताप करनेवाला वही का वही बना रहता है आ ेर प्रायश्चित करनेवाले को अपनी जीवन चेतना रूपांतरित कर देनी होती है। सवाल यह नहीं है कि मैंने क्रोध किया तो मैं पछता लूं। सवाल यह है कि मुझसे क्रोध हो सका तो मैं दूसरा आदमी

250

प्रायश्चित : पहला अंतर तप

हो जाऊं, ऐसा आदमी जिससे क्रोध न हो सके—प्रायश्चित का यह अर्थ है। ट्रांसफमच्शन आफ द लेवल आफ द बीइंग। यह सवाल नहीं है कि मैंने कल क्रोध किया था, आज मैं नहीं करूंगा। सवाल यह है—कल मुझसे क्रोध हुआ था, मैं कल के ही जीवन तल पर आज भी हूं। वही चेतना मेरी आज भी है। पश्चात्ताप करनेवाला कल के लिए क्षमा मांग लेगा। हर वर्ष हम मांगते हैं मिच्छामि दुक्कड़म, हर वर्ष हम मांगते हैं, क्षमा कर दे । पिछले वर्ष भी मांगा था , उसके पहले भी क्षमा मांगी थी। कब वह दिन आएगा जब कि क्षमा मांगने का अवसर न रह जाए। कि मांगते ही रहेंगे। और जानते हैं भली-भांति कि जहां से क्षमा मांगी जा रही है वहां कोई रूपांतरण नहीं है। वह आदमी वही है जो पिछले वर्ष था। एक मित्र पिछले पूरे वर्ष से मेरे संबंध में अनूठी कहानियां प्रचाि रत करते हैं। अब यह पर्युषण पूरे हुए तो उनका कल पत्र आया कि मुझे क्षमा कर दें। ऐसा नहीं कि मैंने जाने अनजाने अपराध किए हों, उनके लिए क्षमा कर दें—पत्र में लिखा है, मैंने अपराध किए हैं, उनके लिए क्षमा कर दें, और मैं हृदय की गहराई से क्षमा मांगता हूं। लेकिन मैं जानता हूं कि पत्र लिखने के बाद उन्होंने वही काम पुनः जारी कर दिया होगा। क्योंकि पत्र लिखने से वह रूपांतरण नहीं हो जानेवाला है। क्षमा मांग लेने से आप नहीं बदल जाएंगे, आप फिर वही होंगे। सच तो यह है—जो क्षमा मांग लेने से आप नहीं बदल जाएंगे, आप फिर वही होंगे। सच तो यह है—जो क्षमा मांग रहा है वही आदमी है जिसने अपराध किया है। प्रायश्चित वाला तो हो सकता है क्षमा न भी मांगे, क्योंकि वह अनुभव करे, अब मैं वह आदमी ही नहीं हूं कि जिसने अपराध किया था, अब मैं दूसरा आदमी हूं। वह जाकर इतनी खबर दे दे कि वह आदमी जो तुम्हें गाली दे गया था, मर गया है। मैं दूसरा आदमी हूं। अगर आपके मन को अच्छा लगे तो मैं उसकी तरफ से आपसे क्षमा मांग लूं, क्योंकि मैं उसकी जगह हूं। अन्यथा मेरा कोई लेना देना नहीं है, वह आदमी मर चुका है।

प्रायश्चित का अर्थ है—मृत्यु उस आदमी की जो भूल कर रहा था, उस चेतना की जिससे भूल हो रही थी। पश्चात्ताप का अर्थ है—उस चेतना का पुनर्जीवन जिससे भूल हो रही है। फिर से रास्ता साफ करना, फिर से पुनः वहीं पहुंच जाना जहां हम खड़े थे और जहां से भूल होती थी—उसी जगह फिर खड़े हो जाना। पैर थोड़े डगमगा जाते हैं अपराध करके, भूल करके। फिर उन पैरों को मजबूत करना हो तो क्षमा सहयोगी होती है। ध्यान रहे, लोग इसलिए क्षमा नहीं मांगते कि वे समझ गए हैं कि उनसे अपराध हो गया, वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि यह अपराध का भाव उनकी प्रतिमा को खंडित करता है। वे इसलिए क्षमा नहीं मांगते हैं कि आपको चोट पहुंची है, क्योंकि वे कल फिर चोट पहुंचाना जारी रखते हैं। वे इसलिए क्षमा मांगते हैं कि अपराध के भाव से उनकी प्रतिमा को चोट पहुंची है। वे उसे सुधार लेते हैं। हम सबका एक सेल्फ इमेज है। सच नहीं है वह जरा भी, लेकिन वही हमारा असली है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को कंधे पर लेकर सुबह घूमने निकला है। सुंदर है उसका बेटा। जो भी रास्ते पर देखता है वह रुककर ठहर जाता है और कहता है, सुंदर है। नसरुद्दीन कहता है—दिस इ नथिंग। यू मस्ट सी हि

पिक्चर। यह कुछ नहीं है, इसका चित्र देखो, तब तुम्हें पता चलेगा। जो भी नसरुद्दीन से कहता है—सुंदर है यह तुम्हारा बेटा; वह कहता है—दिस इ नथिंग। यू मस्ट सी हि पिक्चर। यह तो कुछ भी नहीं है। इसकी पिक्चर देखो घर आकर अल्बम में, तब तुमको पता चलेगा।

वह ठीक कह रहा है। हम सब भी जानते हैं कि हम तो कुछ भी नहीं हैं, लेकिन हमारी तस्वीर, वह जो हमारे चित्त के अलबम में है, उसको देखो। उसको ही हम दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। उसको ही हम दिखाने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह तस्वीर बड़ी और है। वह वही नहीं है जो हम हैं। इसलिए जब उस तस्वीर पर कोई दाग पड़ जाता है और हमें लगता है कि दाग पड़ रहा

है तो दाग को हम पोंछ लेते हैं। पश्चात्ताप स्याही सोख का काम करता है। वह प्रायश्चित नहीं है, प्रायश्चित तो तस्वीर को फाड़कर

फेंक देगा और कहेगा—यह मैं हूं ही नहीं, जिसको मैं थोप रहा हूं निरंतर। पश्चात्ताप सिर्फ स्याही के धब्बे को अलग कर देगा। और अगर आप कुशल हुए तो स्याही के धब्बे को इस ढंग से बना देंगे कि वह तस्वीर का हिस्सा और श्रृंगार बन जाए। न कुशल हुए तो पोंछने की कोशिश करेंगे, इसमें थोड़ी-बहुत तस्वीर खराब भी हो सकती है।

अगर आपने रवींद्रनाथ की कभी हाथ से लिखी, हस्तलिखित प्रतिलिपियां, उनकी हस्तलिखित पांडुलिपियां देखी हैं तो आप बहुत चकित होंगे। रवीन्दरनाथ से कहीं अगर कोई भूल अक्षर में हो जाए तो वे उसको ऐसे नहीं काटते थे, वे उसे काटकर वहां एक चित्र बना देते और कागज को सजा देते। तो उनकी पांडुलिपियां सजी पड़ी हैं। जहां उन्होंने काटा है, वहां सजा दिया है। अच्छा है, पांडुलिपि में करना बुरा नहीं है, आंख को सोहता है। लेकिन आदमी जिंदगी में भी यही करता है। वह पश्चात्ताप धब्बों को चित्र बनाने की कोशिश या धब्बों को पोंछ डालने की कोशिश है। पश्चात्ताप प्रायश्चित नहीं है, लेकिन हम सब तो पश्चात्ताप को ही प्रायश्चित समझते हैं।

पश्चात्ताप बहुत साधारण-सी घटना है, जो मन का नियम है। मन के नियम को थोड़ा समझ लें कि पश्चात्ताप पैदा सबको होता है। यह मन का सामान्य नियम है। प्रायश्चित साधना है। अगर महावीर प्रायश्चित का अर्थ पश्चात्ताप करते हों तो यह तो कोई बात ही न हुई।

यह तो सभी को होता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो पछताता न हो। अगर आप खोजकर ले आएं, तो वह आदमी ऐसे ही हो सकता है जैसा महावीर हो। बाकी आदमी मिलना मुश्किल है जो पछताता न हो। पश्चात्ताप तो जीवन का सहज क्रम है। हर आदमी पश्चात्ताप करता है।तो इसको साधना में गिनाने की क्या जरूरत है? पश्चात्ताप साधना नहीं, मन का नियम है। मन का यह नियम है कि मन एक अति से दूसरी अति पर डोल जाता है। तो मन के इस नियम में थोड़े गहरे प्रवेश कर जाएं तो पश्चात्ताप समझ में आ जाए। फिर प्रायश्चित की तरफ ध्यान उठ सकता है।

आपका किसी से प्रेम है तो आप उस आदमी में चुनाव करते हैं और वही-वही देखते हैं जो प्रेम को मजबूत करे—सिलेक्टिव। कोई आदमी किसी आदमी को पूरा नहीं देखता। देख ले तो जिंदगी बदल जाए, उसकी खुद की भी बदल जाए। हम सब चुनाव करते हैं। जिसे मैं प्रेम करता हूं उसमें मैं वे वे हिस्से देखता हूं जो मेरे प्रेम को मजबूत करते हैं और कहते हैं कि मैंने चुनाव ठीक किया है। आदमी प्रेम के योग्य है। प्रेम किया ही जाता ऐसे आदमी से, ऐसा आदमी है। लेकिन यह पूरा आदमी नहीं है। यह मन अपने को चुनाव कर रहा है। जैसे मैं किसी कमरे में जाऊं और सफेद रंगों को चुन लूं और काले रंगों को छोड़ दूं। आज नहीं कल मैं सफेद रंगों से ऊब जाऊंगा क्योंकि मन जिस चीज से भी परिचित

होता जाता है, ऊब जाता है। आज नहीं कल मैं ऊब जाऊंगा इस सौंदर्य की सिलेक्टिव, एक चुनाव की गयी प्रतिमा से। और जैसे मैं ऊबने लगूंगा वैसे ही वह जो असुंदर मैंने छोड़ दिया था, दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। वह तभी तक नहीं दिखता था, वह तो है ही।

सुन्दरतम व्यक्ति में भी असुंदर हिस्से हैं। असुंदरतम व्यक्ति में भी सौंदर्य छिपा है। जीवन बनता ही है विरोध से, जीवन की सारी व्यवस्था ही विरोध पर खड़ी होती है। काले बादलों में ही बिजली नहीं छिपी होती, हर बिजली की चमक के पीछे काला बादल भी होता है। और हर अंधेरी रात के बाद ही सुबह पैदा नहीं होती, हर सुबह के बाद काली रात आ जाती है। हर दुख में खुशी ही नहीं छिपी है, हर खुशी के भीतर से दुख का अंकुर भी निकलेगा। जीवन ऐसे ही बहता है जैसे नदी दो किनारों के बीच बहती है। और एक किनारे के साथ नहीं बह सकती। भला दूसरा किनारा आपको न दिखाई पड़ता हो, या आप न देखना चाहते हों, लेकिन जब इस किनारे से ऊब जाएंगे तो दूसरा किनारा ही आपका डेरा बनेगा।

252

प्रायश्चित : पहला अंतर तप

तो जब आप एक व्यक्ति में सौंदर्य देखना शुरू करते हैं तो आप चुनाव कर लेते हैं एक किनारे का। भूल जाते हैं—नदी दो किनारों में बहती है। दूसरा किनारा भी है। उस दूसरे के किनारे के बिना न तो नदी हो सकती है, न यह किनारा हो सकता है। अकेला किनारा कहीं होता है? किनारे का मतलब यह होता है कि वह दूसरे का जोड़ है। पर आप चुनाव कर लेते हैं। फिर आज नहीं कल सौंदर्य से थक जाएंगे। सब चीजें थका देती हैं, सब चीजें उबा देती हैं। मन चाहता है—रोज नया, रोज नया। फिर पुराना उबाने लगता है। फिर जब पुराना उबा देता है तो जो हिस्से आपने छोड़ दिए थे पहले चुनाव में वे प्रगट होने लगते हैं। दूसरा किनारा दिखाई पड़ता है और जिसके प्रति आप प्रेम से भरे थे, उसी के प्रति घृणा से भर जाते हैं। जिसके प्रति आप श्रद्धा से भरे थे, उसीके प्रति अश्रद्धा से भर जाते हैं। जिसको आप भगवान कहने गए थे उसी को आप शैतान कहने जा सकते हैं। इसमें कोई अड़चन नहीं है। जिससे आपने कहा था—तेरे बिना जी न सकेंगे; उससे ही आप कह सकते हैंअब तेरे साथ न जी सकेंगे।

मन द्वंद्व में चलता है, क्योंकि चुनाव करता है। इसलिए जिसे द्वंद्व के बाहर होना है उसे चुनाव रहित होना पड़े, च्वाइसलैस होना पड़े। चुनता ही नहीं है—काला है तो उसे भी देखता है, सफेद है तो उसे भी देखता है और मान लेता है कि काला हो नहीं सकता सफेद के बिना, सफेद हो नहीं सकता काले के बिना—फिर उस आदमी की दृष्टि में कभी परिवर्तन नहीं होता। मैं चकित होता हूं। सब संबंध परविर्तित होते हैं। एक आदमी मेरे पास आता है, इतनी श्रद्धा और इतनी भक्ति से भरकर आता है कि कभी सोचा भी नहीं जा सकता कि यह आदमी कभी विपरीत चला जाएगा। लेकिन मैं जानता हूं कि इसकी श्रद्धा और भक्ति चुनाव है। यह विपरीत जा सकता है। जब यह विपरीत जाने लगता है तो दूसरे लोग मेरे पास आकर कहते हैं कि यह कैसे संभव है। आपके जो इतना निकट है, आपको जो इतनी भक्ति देता है वह आपके विपरीत जा रहा है। उनको पता नहीं कि यह बिलकुल नियमानुसार हो रहा है। यह बिलकुल नियमानुसार हो रहा है। एक किनारा उसने चुना था, अब वह उस किनारे को छोड़कर दूसरा चुनेगा। और पहले किनारे को जब चुना था तब भी आपने अपने को तर्क दे लिए थे कि मैं सही हूं और दूसरे किनारे को चुनते वक्त भी आप अपने को तर्क दे लेंगे कि आप सही हैं।

और मैं आपसे कहता हूं कि एक किनारे को चुनना गलत है। वह किनारा कौन-सा है, यह सवाल नहीं है। वह तर्क क्या है, यह सवाल नहीं है। जब कोई आकर मुझे भगवान मानने लगता है तब भी मैं जानता हूं, वह एक किनारे को चुन रहा है। वह चुनाव गलत है। एक किनारे को चुन लेना गलत है। यह सवाल नहीं है कि वह क्या तर्क अपने को दे रहा है। वही

आदमी कल मुझे शैतान मान लेगा और तब भी तर्क खोज लेगा! मैं नहीं कहता कि उसका शैतान ही मान लेना गलत है। मैं कहता हूं उसका चुनाव गलत है। वह पूरे को नहीं देख रहा।

चुनेगा तो बदलेगा। जहां तक चुनाव है वहां तक परिवर्तन होगा। जब आ प क्रोध में होते हैं तब आप एक हिस्सा चुन लेते हैं अपने व्यक्तित्व का—वह जो क्रोध करनेवाला है। जब क्रोध निकल जाता है, बिदा हो जाता है तब आप अपने व्यक्तित्व का दूसरा हिस्सा चुनते हैं जो पश्चात्ताप करनेवाला है। क्रोध कर लेते हैं एक हिस्से से, वह एक चुनाव था, आपकी प्रतिमा का एक रूप था। फिर पश्चात्ताप कर लेते हैं, वह आपकी प्रतिमा का दूसरा चुनाव है। किनारों के बीच नाव बहती रहती है। आपकी नदी बहती रहती है। आप यात्रा करते रहते हैं। कभी इस किनारे लगा देते हैं नाव को, कभी उस किनारे लगा देते हैं।

प्रायश्चित दो किनारों के बीच चुनाव नहीं है। प्रायश्चित बहुत अदभुत घटना है। पश्चात्ताप देख लेता है, कर्म की कोई भूल है। प्रायश्चित देखता है, मैं गलत हूं। कर्म नहीं, क्योंकि कर्म क्या गलत होगा! गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं, कर्म कभी गलत नहीं होते। गलत आदमी से गलत कर्म निकलते हैं। बबूल के कांटे गलत नहीं होते, वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। कांटे क्या

गलत होंगे! वे बबूल की आत्मा से निकलते हैं। लेकिन बबूल जब अपने कांटों को देखता है तो कहता है कि दुखी हूं। वृक्ष तो मैं ऐसा नहीं हूं कि मुझसे कांटे निकलें। परिस्थिति ने निकाल दिए होंगे। या अपने को समझाए कि हो सकता है कि कुछ लोगों के भोजन के लिए मैंने ये कांटे निकाले हों—कि ऊंट हैं, बकरियां हैं, वे भोजन कर सकें, नहीं तो भूखे मर जाएंगे। ऐसे मुझमें कांटे का क्या सवाल है! कांटे भी निकलते हैं तो किसी की करुणा से निकलते हैं।

क्रोध भी आता है आपको तो किसी को बदलने के लिए आता है। कि उस आदमी को बदलना पड़ेगा न! दया के कारण आप क्रोध करते हैं। बाप कर रहा है बेटे पर, मां कर रही बेटी पर—दया के कारण, करुणा के कारण कि इसको बदलना है, नहीं तो बिगड़ जाएगा। और मजा यह है कि सब क्रोध के बाद कहीं कोई सुधार दिखाई नहीं पड़ता। सारी दुनिया क्रोध करती आ रही है। सब इस खयाल में क्रोध कर रहे हैं कि नहीं तो लोग बिगड़ जाएंगे, और लोग हैं कि बिगड़ते ही चले जा रहे हैं। कोई किसी में अंतर नहीं दिखाई पड़ता है। नहीं, मालूम ऐसा होता है कि क्रोध का संबंध दूसरे को सुधारना कम, यह दूसरे को सुधारना अपने क्रोध के लिए तर्क खोजना ज्यादा है। यह दूसरा भी कल बड़े होकर यही तर्क खोजेगा और रेशनलाइज करेगा। यह भी अपने बच्चों को ऐसे ही सुधारेगा।

ये जो कर्म हैं, इन पर जिनका ध्यान है वे पश्चात्ताप से आगे नहीं बढ़ेंगे और पश्चात्ताप आगे बढ़ना ही नहीं है—पीछे लौटना है एक कदम, फिर एक कदम वापिस; फिर एक कदम आगे, फिर एक कदम पीछे। फिर क्रोध किया, फिर पैर उठाकर पीछे रख लिया; फिर क्रोध किया, फिर पैर उठाकर पीछे रख लिया। यह एक ही जगह पर दा ौड़ने जैसी क्रिया है, कहीं जाती नहीं। पश्चात्ताप से सजग हों, पश्चात्ताप आपको बदलेगा नहीं; बदलने का धोखा देता है। क्योंकि जब पश्चात्ताप के क्षण में आप होते हैं तो आप अपने सारे अच्छे गुण चुन लेते हैं। जब आप कहते हैं—मिच्छामि दुक्कड़म, तब आप एक प्रतिमा होते हैं साक्षात क्षमा की। मगर आप बाइलिंग्वल हैं, द्विभाषी हैं। वह दूसरी भाषा भीतर छिपी बैठी है। वह अगर दूसरा आदमी कह देगा कि अच्छा आप तो मानते हो लेकिन मैं नहीं मानता क्योंकि मैंने कोई अपराध आपकी तरफ किया नहीं; तो उसी वक्त दूसरी भाषा आपके भीतर सक्रिय हो जाए कि यह आदमी दुष्ट है। मैंने क्षमा मांगी

और इसने क्षमा भी नहीं मांगी। या आप किसी से कहें कि मैं क्षमा मांगता हूं और वह कह दे कि किया क्षमा। तो पीड़ा शुरू हो जाएगी तत्काल। दूसरी भाषा आ जाएगी।

सुना है मैंने कि एक चूहा अपने बिल के बाहर घूम रहा था। अचानक पैरों की आवाज सुनी—परिचित थी, बिल्ली की मालूम पड़ती थी—घबराकर अपने बिल के भीतर चला गया। लेकिन जैसे ही भीतर गया , चकित हुआ। बाहर तो कुत्ता भोंक रहा था — भों-भों। चूहा बाहर आया। तत्काल बिल्ली के मुंह में चला गया। चा रों तरफ देखा, कुत्ता कहीं भी नहीं था। चूहे ने पूछा कि तू मुझे मार डाल, उसमें कोई हर्जा नहीं, लेकिन एक बात और मरते हुए प्राणी की एक जिज्ञासा को पूरा कर दे। वह कुत्ता कहां गया? बिल्ली ने कहा—यहां कोई कुत्ता नहीं है। यू नो, इट पेइ टु बी बाइलिंग्वल। मैं कुत्ते की आवाज करती हूं, हूं बिल्ली एण्ड इट पेइ। तुम फंस गए मेरे चक्कर में, नहीं तो तुम फंसते नहीं। द्विभाषी हूं, कुत्ते की भाषा बोलती हूं, हूं बिल्ली। इससे चूहे बड़ी आसानी से फंसते हैं।

हम सब बाइलिंग्वल हैं, द्विभाषी हैं, दो-दो भाषा जानते हैं। बोलने की भाषा और है, होने की भाषा और है। पूरे वक्त दो किनारों के बीच चलता रहता है। पश्चात्ताप करके आप बड़े प्रसन्न होते हैं, जैसा क्रोध करके बहुत दुखी और विषाद को उपलब्ध होते हैं। क्रोध करके विषाद आता है कि ऐसा बुरा आदमी मैं नहीं था। पश्चात्ताप करके चित्त प्रफुल्लित होता है, देखो कितना अच्छा आदमी हूं। अहंकार पुनर्प्रतिष्ठित हुआ। नहीं, प्रायश्चित का अर्थ—भूल कर्म में नहीं है, भूल मुझमें है, गलत मैं हूं।

254

प्रायश्चित : पहला अंतर तप

मुल्ला नसरुद्दीन अपने क्लब के बाहर निकल रहा है। एक आदमी एक कोट को पहनने की कोशिश कर रहा है क्लाक रूम से। मुल्ला उससे कहता है कि आप बड़े गलत आदमी हैं। मुल्ला से उसने कहा —मैंने तो कुछ किया ही नहीं! मैं अपना कोट पहन रहा हूं। मुल्ला ने कहा—इसीलिए तो मैं कहता हूं कि आप गलत आदमी हैं। यह कोट मुल्ला नसरुद्दीन का है। उस आदमी ने कहा—यह मुल्ला नसरुद्दीन कौन है? मुल्ला ने कहा—यह मुल्ला नसरुद्दीन मैं हूं, आप मेरा कोट पहन रहे हैं। तो उस आदमी ने कहा कि नासमझ! ऐसा क्यों नहीं कहता कि मैं गलत कोट पहन रहा हूं, ऐसा क्यों कहता है कि मैं गलत आदमी हूं। मुल्ला ने कहा, गलत आदमी ही गलत कोट पहनते हैं।

जब आप कोई गलत काम करते हैं तो आप चाहते हैं कोई ज्यादा से ज्यादा इतना कहे कि आपसे गलत काम हो गया। वह यह न कहे कि आप गलत आदमी हैं, क्योंकि काम की तो बड़ी छोटी सीमा है, एक क्षण में निपट जाएगा। आप! आप तो पूरे जीवन पर आरोपित हैं। अगर कोई कहे—आप गलत हैं, तो यह जीवनभर के लिए निन्दा हो गयी। अगर कर्म गलत है, एक क्षण की बात है, इससे विपरीत कर्म किया जा सकता है। किए को अनकिया किया जा सकता है, डन को अनडन किया जा सकता है। किए के लिए माफी मांगी जा सकती है। किए के विपरीत किया जा सकता है। कर्म के ऊपर दोष देने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन वही आदमी प्रायश्चित को उपलब्ध होता है। जो कहता—गलत कोट मैं नहीं पहन रहा, मैं गलत आदमी हूं। लेकिन तब प्राणों में बड़ा मंथन होता है।

तब सवाल यह नहीं है कि मैंने कौन-कौन-से काम गलत किए; तब सवाल यह है कि चूंकि मैं गलत हूं इसलिए मैंने जो भी किया होगा, वह गलत होगा। तब चुनाव भी नहीं है कि कौन-सा गलत किया और मैंने कौन-सा ठीक किया। जब मैं गलत हूं तो मैंने जो भी किया होगा वह गलत किया होगा। बेहोश आदमी शराब पिए हुए रास्ते पर लड़खड़ाता है। वह यह नहीं कहता कि मेरे कौन-कौन-से पैर लड़खड़ाए, या कहेगा? और कौन-से पैर मेरे ठीक पड़े और कौन-से पैर मेरे लड़खड़ाए? जब वह होश में आएगा तब वह कहेगा कि मैं बेहोश था, मेरे सभी पैर लड़खड़ाए। वे जो ठीक पड़ते मालूम

पड़ते थे वे भी गलती से ही ठीक पड़े होंगे क्योंकि ठीक पड़ने का तो कोई उपाय नहीं, क्योंकि मैं शराब पिए था। हम भीतर एक गहरे नशे में होते हैं, और वह गहरा नशा यह है कि हम, एक अर्थ में हम हैं ही नहीं, बिलकुल सोए हुए हैं।

प्रायश्चित को महावीर ने क्यों अंतर-तप का पहला हिस्सा बनाया? क्योंकि वही व्यक्ति अंतर्यात्रा पर निकल सकेगा जो कर्म की गलती को छोड़कर स्वयं की गलती देखना शुरू करेगा। देखिए, तीन तरह के लोग हैं—एक वे लोग हैं जो दूसरे की गलती देखते हैं; एक वे लोग हैं जो कर्म की गलती देखते हैं; एक वे लोग हैं जो स्वयं की गलती देखते हैं। जो दूसरे की गलती देखते हैं वे तो पश्चात्ताप भी नहीं करते। जो कर्म की गलती देखते हैं वे पश्चात्ताप करते हैं। जो स्वयं की गलती देखते हैं, वे प्रायश्चित में उतरते हैं। जब दूसरा ही गलत है तब तो पश्चात्ताप का कोई सवाल ही नहीं है।

लेकिन ध्यान रहे, दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। इस अर्थ में कभी गलत नहीं होता। इसे बड़ा कठिन होगा समझना कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता। अंतर्यात्रा के पथिक को यह समझ लेना होगा कि दूसरा कभी भी गलत नहीं होता है। आप कहेंगे—आप कैसी बात कर रहे हैं क्योंकि मैं गलत होता हूं तो मैं दूसरे के लिए तो दूसरा हूं ही! और अगर दूसरा गलत नहीं होता तो फिर तो मैं कैसे गलत होऊंगा? जब मैं कह रहा हूं—दूसरा कभी गलत नहीं होता तो इसलिए कह रहा हूं इसलिए नहीं कि दूसरा गलत नहीं होता, दूसरा गलत होता है, लेकिन स्वयं के लिए, आप गलत होते हैं स्वयं के लिए दूसरे के लिए आप गलत नहीं हो सकते।

आप महावीर के पास जाएं तब आपको तत्काल पता चल जाएगा। आप गाली दें, महावीर में गाली ऐसे गूंजेगी जैसे किसी घाटी में

गूंजे और विलीन हो जाए। आप महावीर को क्रोधित न करवा पाएंगे। और तब बड़े हैरानी की बात है कि अगर आप क्रोधी आदमी हैं तो आपको और ज्यादा क्रोध आएगा कि दूसरा आदमी क्रोधित तक नहीं हुआ। तो और क्रोध आएगा। जीसस को सूली पर लटकाना पड़ा क्योंकि यह आदमी उन लोगों के सामने अपना दूसरा गाल करता रहा, जो चांटा मारने आए थे। उनका क्रोध भयंकर होता चला गया। अगर यह भी उनको एक चांटा मार देता तो जीसस को सूली पर लटकाने की कोई जरूरत न पड़ती। बात निपट गयी होती। समान तल पर आ गए होते। फिर तो कोई कठिनाई न थी।

एनी बीसेंट ज्रेकृष्णमूर्ति को कैम्बिज और आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के अलग-अलग कालेजों में भर्ती कराने के लिए घूम रही थी, पढ़ने के लिए। लेकिन कोई कालेज का प्रिंसिपल कृष्णमूर्ति को लेने को राजी नहीं हुआ। जिस कालेज में भी एनी बीसेंट गयी, एनी बीसेंट ने कहा कि यह साक्षात भगवान का अवतार है, यह दिव्य पुरुष है। इनमें वर्ल्ड टीचर, जगत-गुरु का जन्म होने को है।

उन प्रिंसिपल्स ने कहा कि क्षमा करें, इतनी विशिष्टता आप उन्हें दे रही हैं कि हम कालेज में भर्ती नहीं कर सकेंगे। एनी बीसेंट ने कहा—क्यों? तो उन्होंने कहा—इसलिए भर्ती न कर सकेंगे कि एक तो इस बच्चे को परेशानी होगी इतनी महत्ता का बोझ लेकर चलने में, और दूसरे लड़के भी इसको परेशान करेंगे। इसको कठिनाई पड़ेगी इतनी गरिमा लेकर चलने में, और दूसरे लड़के इसको परेशान करेंगे। यह शांति से न पढ़ पाएगा, शांति से न जी पाएगा। इसलिए हम इसे न लेंगे।

लेकिन सभी प्रिंसिपलों ने एक खास कालेज का नाम बताया कि आप वहां चली जाओ, वह कालेज भर्ती कर लेगा।

एनी बीसेंट बहुत हैरान थी, फिर आखिर जब कोई कालेज में जगह नहीं मिली क्योंकि वह कालेज अच्छा कालेज नहीं था, जिसका लोग नाम लेते थे, उसकी प्रतिष्ठा नहीं थी। एनी बीसेंट को जब कोई उपाय न रहा तो वह कृष्णमूर्ति को लेकर उस कालेज में गयी। उस कालेज के प्रिंसिपल ने कहा—खुशी से भर्ती हो जाओ, मजे से भर्ती हो जाओ; बिका

इन अवर कालेज एवरीवन इज ए गाड। एवरीवन विल ट्रीट यू इक्वली। कोई दिक्कत न आएगी। इधर सभी लड़के भगवान हैं हमारे कालेज में। कोई कठिनाई न आएगी बल्कि तुमको दिक्कत यही हो सकती है कि कई इसमें बिगर गाड्स हैं, वे तुमको दबाएंगे, तुमको छोटा गाड सिद्ध करेंगे। तुम जरा इसके लिए सावधान रहना। बाकी और कोई अड़चन नहीं है। दे विल ट्रीट यू इक्वली। समान व्यवहार करेंगे।

यह जो, हम जो व्यवहार कर रहे हैं दूसरे से, वह दूसरे पर कम निर्भर है, हम पर ज्यादा निर्भर है। हमें लगता ऐसा ही है कि दूसरे पर निर्भर है, वही हमारी भ्रांति है, वह हम पर ही निर्भर है। हम ही उसे उकसाते हैं जाने अनजाने। और जब दूसरा उसे करने लगता है तो लगता है वह दूसरे से आ रहा है। अब जिस कालेज में हरेक लड़का अपने को भगवान समझता है, उस कालेज में कोई दिक्कत नहीं है प्रिंसिपल को। वह कहता है—कोई अड़चन न आएगी। लेकिन जिस का लेज में ऐसा नहीं है, उसका प्रिंसिपल भयभीत हो रहा है कि इससे अड़चन खड़ी होगी। आसान नहीं होगा यह, कृष्णमूर्ति का यहां रहना। यह अड़चन बनेगी।

महावीर के पास आप जाएंगे तो आपको कठिनाई आएगी, अगर महावीर आ पके साथ समानता का व्यवहार करेंगे तो कठिनाई न आएगी। आप गाली दें महावीर को और महावीर भी आपको गाली दे दें तो आप ज्यादा प्रसन्न घर लौटेंगे क्योंकि बराबर सिद्ध हुए। अगर महावीर गाली न दें और मुस्कुरा दें तो आप रातभर बेचैन रहेंगे घर कि यह आदमी कुछ ऊपर मालूम पड़ता है, इसको नीचे लाना पड़ेगा। तो इसलिए कई बार तो ऐसा हुआ है कि बहुत साधुओं ने सिर्फ इसलिए गाली दी कि आपको उनको नीचे लाने की व्यर्थ कोशिश न करनी पड़े। आप हैरान होंगे, यह जगत बहुत अजीब है। कई साधुओं को इसलिए आपके साथ दुर्व्यवहार करना पड़ा ताकि आपको उनके साथ दुर्व्यवहार न करना पड़े। रामकृष्ण गाली देते थे, ठीक मां-बहन की गाली देते थे। और ढेर फक्कड़ साधु गालियां देते रहे, पत्थर मारते रहे, और सिर्फ इसलिए कि आ पको कष्ट न उठाना पड़े उनको फांसी वगैरह देने का—आप पर

दया करके, यही समझकर।

और यह बड़े मजे की बात है, अब तक ऐसे किसी साधु को फांसी नहीं दी गयी, जिसने गाली दी हो और पत्थर फेंके हों। यह आपको पता है? पूरे इतिहास में मनुष्य जाति के! सुकरात को जहर पिला देते हैं, महावीर को पत्थर मारते हैं, बुद्ध को परेशान करते हैं। हत्या की अनेक कोशिशें की जाती हैं बुद्ध की—चट्टान सरका दी जा ती है, पागल हाथी छोड़ दिया जाता है। जीसस को सूली पर लटकाते हैं, मंसूर को काट डालते हैं। लेकिन ऐसा एक भी उल्लेख नहीं है कि आपने उस साधु के साथ दुर्व्यवहार किया हो जिसने आपके साथ दुर्व्यवहार किया हो। यह बड़े मजे की बात है। यह बड़ा ऐ तिहासिक तथ्य है। बात क्या है? असल में जो आपको गाली देता है, यू ट्रीट हिम इक्वली। बात खत्म हो गयी। वह आदमी इतना ऊपर नहीं, जिसको फांसी-वांसी लगानी पड़े, नीचे लाना पड़े। अपने ही जैसा है, चलेगा। तो कई कुशल साधु सिर्फ इसलिए गाली देने को मजबूर हुए कि आपको नाहक परेशानी में न पड़ना पड़े, क्योंकि फांसी लगाने में परेशानी साधु को कम होती है, आपको ज्यादा होती है। बड़ा इंतजाम करना पड़ता है।

दूसरा गलत नहीं है इस स्मरण से ही अंतर्यात्रा शुरू होती है। अगर दूसरा गलत है, तब तो अंतर्यात्रा शुरू ही नहीं होगी। दूसरा गलत है या नहीं, यह सवाल नहीं है; दूसरा गलत है, यह दृष्टि गलत है। दूसरा गलत है या नहीं, इस तर्क में आप पड़ेंगे तो कभी दूसरा सही मालूम पड़ेगा, कभी गलत मालूम पड़ेगा। चुनाव शुरू हो जाएगा । दूसरा सही है या गलत है, यह साधक की दृष्टि नहीं है। मैं गलत हूं या नहीं, यह ठहराना साधक की दृष्टि नहीं है। मैं गलत हूं, यह सुनिश्चित

मानकर चल पड़ना साधक की दृष्टि है। प्रायश्चित तब शुरू होता है जब मैं मानता हूं, मैं गलत हूं। सच तो यह है कि जब तक मैं हूं तब तक मैं गलत होऊंगा ही। होना ही गलत है, वह जो अस्मिता है, वह जो इगो—'मैं हूं'—वही मेरी गलती है। मेरा होना ही मेरी गलती है। जब तक 'मैं नहीं' न हो जाऊं तब तक प्रायश्चित फलित नहीं होगा। और जिस दिन मैं नहीं हो जाता हूं, शून्यवत हो जाता हूं उसी दिन मेरी चेतना रूपांतरित होती है और नए लोक में प्रवेश करती है।
फिर भी ऐसा नहीं है कि ऐसी रूपांतरित चेतना में आपको गलतियां न मिल जाएं। क्योंकि गलतियां आप अपने कारण खोजते हैं। एक बात पक्की है कि ऐसी चेतना को आप में गलतियां मिलनी बंद हो जाएंगी। इसलिए तो ऐसी चेतनाएं आपसे कह सकीं कि आप परमात्मा हैं, आप शुद्ध आत्मा हैं, आपके भीतर मोक्ष छिपा है। द किंगडम आफ गाड इज विदिन यू। इसलिए जीसस जुदास के पैर पड़ सके। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि जुदास ने तीस रुपये में जीसस को बेच दिया है सूली पर लटकाने के लिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई अंतर ही नहीं पड़ता क्योंकि जिस आदमी ने अपने को बदला हुआ पाया, उसको फिर किसी में कहीं कोई गलती नहीं दिखाई पड़ती। और ज्यादा से ज्यादा अगर उसे कुछ दिखाई पड़ता है तो इतना ही दिखाई पड़ता है कि आप बेहोश हो, और बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराना। बेहोश आदमी जो भी करता है, गलत होता है, लेकिन होशवाला आदमी बेहोश आदमी को क्या गलत ठहराए!।
बहुत मजेदार घटनाएं घटती हैं, और होशवाले आदमियों ने अपने संस्मरण नहीं लिखे, वे लिखें तो बड़े अदभुत होंगे। बेहोश आदमियों के बीच जीना होशवाले आदमी को इतना च्सटरेंज मामला है, इतना विचित्र है, लेकिन किसी ने अपना संस्मरण लिखाया नहीं क्योंकि आप उस पर भरोसा न कर सकेंगे कि ऐसा हो सकता है। ऐसे ही जैसे आपको एक पागलखाने में बंद कर दिया जाए और आप पागल न हों, तब जो जो घटनाएं आपके जीवन में घटेंगी उनसे विचित्र घटनाएं कहीं भी नहीं घट सकतीं। और अगर आप बाहर आकर कहेंगे तो कोई भरोसा नहीं कर सकता कि ऐसा हो सकता है। पागल भरोसा नहीं करेंगे क्योंकि वे पागल हैं। गैर पागल भरोसा नहीं करेंगे क्योंकि उन्हें पागलों का कोई पता नहीं। और आप दोनों हालत में रह लिए, आप पागल नहीं थे और पागलों के बीच में

257

महावीर-वाणी भाग : 1

रहे।
एक वृद्ध साधक—सरल, सीधे आदमी हैं। कोई सोच भी नहीं सकता कि उनमें कहीं कोई पर्तें दबी होंगी, सबके भीतर पर्तें दबी हैं। वे गहरे ध्यान में अभी आजोल आश्रम में थे। एक दिन ध्यान में अच्छी गहराई में गए, और गहराई में गए इसीलिए यह घटना घटी, नहीं तो घटती नहीं; अन्यथा सीधा-सादापन था। उन्होंने आनंद मधु को बाहर निकलकर सुबह कहा कि मैं इसी वक्त बम्बई जा रहा हूं। मुझे रजनीश की आज ही हत्या कर देनी है। मेरा उनसे इस जन्म में कोई संबंध नहीं, सिवाय इसके कि उन्होंने मुझसे संन्यास लिया है। वह भी एक क्षणभर का मिलना हुआ, इससे ज्यादा कोई संबंध नहीं। पिछले जन्मों को याद करने की मैंने बहुत कोशिश की, कोई याद नहीं पड़ता है कि उनसे मेरा कोई संबंध रहा हो। शांत, सीधे आदमी हैं। समस्त जीवन को छोड़कर साधना की दिशा में गए, और गहरे गए, इसलिए यह घटना घटी। नहीं तो ऊपर से तो शांत, सीधे हैं। तो क्या हुआ? मधु परेशान हुई। वे एकदम तैयार हैं, हत्या करने जाना है। सामने ही मेरा चित्र रखा था, वह चित्र उसने सामने रख दिया और कहा—पहले इसे फाड़ डालें, पहले इस चित्र की हत्या कर दें फिर आप जाएं। चित्त दूसरे किनारे पर तत्काल चला गया, वे बेहोश होकर गिर पड़े। रोए, पछताए। कुछ किया नहीं है अभी, वह चित्र भी नहीं फाड़ा।

गहरे तल पर कहीं हिंसा का कोई आवरण सबके भीतर है। तो जितने गहरे जाएंगे, उतना हिंसा का आवरण मिलेगा। और हिंसा जब शुद्ध प्रगट होती है तो अकारण प्रगट होती है। अशुद्ध हिंसा है जो कारण खोजकर प्रगट होती है। अकारण मैं कहता हूंजब आप कारण खोजकर क्रोधित होते हैं, तो उसका मतलब है क्रोध अभी बहुत गहरे तल पर नहीं है आपके। जब गहरे तल पर क्रोध होता है, तब आप अकारण क्रोधित होते हैं। अभी तो कारण मिलता है तब क्रोधित होते हैं, तब आप क्रोधित होते हैं इसलिए फौरन कारण खोजते हैं। गहरी पर्तें हैं।

अभी एक युवक मेरे पास अपनी हिंसा पर प्रयोग कर रहा था। अब हर भाव की सात पर्तें होती हैं मनुष्य के भीतर सात शरीरों की पर्तें होती हैं—सेवन बाडी की, वैसे हर भाव की सात पर्तें होती हैं। ऊपर से गाली दे लेते हैं, ऊपर से पश्चात्ताप कर लेते हैं, इससे कुछ नहीं हो जाता है। भीतर की पर्तें वैसी की वैसी बनी रहती हैं—सुरक्षित। और जितने गहरे उतरते हैं उतने अकारण भाव प्रगट होने शुरू होते हैं। जब गहरी सातवीं पर्त पर पहुंचते हैं तो कोई कारण नहीं रह जाता।

उस युवक को हिंसा ही तकलीफ थी। अपने पिता की हत्या करने का खयाल है, अपनी मां की हत्या करने का खयाल है। अब मैं जानता था जो अपनी मां और पिता की हत्या करने के खयाल से भरा है, अगर वह मेरा शिष्य बना तो मैं फादर इमेज हो जाऊंगा। आज नहीं कल वह मेरी हत्या करने के खयाल से भरेगा। क्योंकि गुरु को भक्तों ने जब कहा है कि गुरु पिता है और गुरु माता है और गुरु ब्रह्म है, अकारण नहीं कहा है। फादर इमेज, गुरु जो है। जब एक व्यक्ति किसी के चरणों में सिर रखता है और उसे गुरु मान लेता है, तो वही पिता हो गया, वही मां हो गया। लेकिन ध्यान रहे, पिता के प्रति उसके जो खयाल थे वही अब इस पर आरोपित होंगे। उसका, जिन्होंने कहा है—तुम पिता हो, तुम माता हो उन्हें कुछ पता नहीं। जब एक आदमी मुझसे आकर कहता है कि आप ही माता, आप ही पिता, आप ही ब्रह्म, आप ही सब कुछ; तब मैं जानता हूं, अब मैं फंसा।

फंसा इसलिए कि अब तक इसकी जितनी भी धारणाएं थीं, अब मेरी तरफ होंगी। इसको कोई भी पता नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं—पागलखाने में होने का अनुभव कैसा होता है, इसको कुछ भी पता नहीं। यह तो बहुत सदभाव से कह रहा है, बहुत आनंद भाव से, अहोभाव से। इसमें क्या बुराई हो सकती है। कितनी श्रद्धा से साष्टांग वह युवक मेरे चरणों में पड़ा है और कहता है कि आप ही सब कुछ हैं। लेकिन कल ही वह मुझे सब बताकर के गया है कि वह ि पिता की हत्या करना चाहता है। मैं जानता हूं आज

नहीं कल। अभी कल मुझे एक मित्र ने आकर खबर दी कि वह कहता है कि मेरी हत्या कर देगा। तो वे घबरा गए—जिनको खबर मिली वे। उन्होंने कहा कि यह क्या मामला है, पागलों के बीच रहने का?

एक और मजेदार घटना अभी घट रही है, तो आपको कहूं। एक युवती मेरे पास ध्यान कर रही थी—और यह घटना इतनी महिलाओं को घटी है कि कह देना अच्छा होगा क्योंकि कहीं न कहीं इस संबंध में खबर पहुंचेगी। और पागल आपको कोई खबर दें तो आप भी उतने ही पागल होने से जल्दी भरोसा कर लेते हैं, पकड़ लेते हैं। अब एक महिला दिल्ली में रहती है, वह मुझे वहां से लिखती है कि रात दो बजे, रात आप सशरीर मुझसे संभोग करते हैं, दिल्ली में आकर, ठीक है! दिल्ली में रहती है, इसलिए कोई झंझट नहीं है, इसलिए कोई अड़चन नहीं है।

एक महिला ने मुझे आकर कहा कि मुझे पक्का स्मरण आने लगा है कि मैं पिछले जन्म की आपकी पत्नी हूं। मैंने कहा—होगा, अब इसमें छिपाने जैसी बात नहीं है, बड़े गौरव की बात है।तो जाकर उसने और को बताया, उसने दूसरी

महिला को बताया। यह महिला तो ग्रामीण है, ज्यादा समझदार नहीं है, भोली-भाली है। जिसको बताया वह तो यूनिवर्सिटी की ग्रेज्युएट है, पढ़ी लिखी महिला है, बड़े परिवार की है। वह महिला मेरे पास आयी और उसने कहा कि यह क्या नासमझी की बात कर रही है, वह औरत। यह नहीं हो सकता, यह बिलकुल गलत है। तो मैंने कहा कि तुमने ठीक सोचा, उसे समझा देना।

उसने कहा—मैंने उसे समझाया, लेकिन वह मानने को राजी नहीं है। वह कहती है मुझे पक्का भरोसा है, मुझे स्मरण है। मैंने उसे बहुत समझाया, उस दूसरी स्त्री ने मुझे कहा—लेकिन वह मानने को रा जी नहीं है। लेकिन यह बात गलत है, यह प्रचलित नहीं होनी चाहिए। भूल से मैंने एक बात पूछ ली उससे, तो बड़ी मुश्किल हो गयी। भूल से मैंने उस स्त्री से पूछा कि मान लो वह मानने को राजी नहीं होती तो तेरा क्या पक्का प्रमाण है कि वह गलत कहती है। वह बोली—इसलिए कि पिछले जन्म में तो मैं आपकी औरत थी। इसलिए दो दो कैसे हो सकती हैं। अब कुछ कहने का मामला ही न रहा, अब बात ही खत्म हो गयी। अब इससे बड़ा प्रमाण हो भी क्या सकता है? पागलों के बीच बड़ा मुश्किल है, बड़ा मुश्किल है, अत्यंत कठिन है।

तो मैंने कहा—वह स्त्री तो दिल्ली में है, इसलिए कोई दिक्कत नहीं है। अभी एक अमरीकन लड़की मेरे पास ध्यान कर रही थी दो महीने से। उसने मुझे चार-छह महीने के बाद कहा कि जब आपके पा स आकर बैठती हूं, आंखें बंद करती हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि आप मुझसे संभोग कर रहे हैं। मैंने कहा—कोई फिक्र न करो, संभोग का जो भाव आए, उसको भी भीतर ले जाने की कोशिश करो। वह जो ऊर्जा उठे, उसको भी ऊपर की यात्रा पर ले जाओ। तो उसने मुझसे कहा कि आप मुझे हर दो दिन में कम-से-कम दस दस मिनट पास बैठने का मौका दे दें, क्योंकि यह इतना रसपूर्ण है कि संभोग में भी मुझे रस चला गया।

मेरे सामने दो ही विकल्प हैं, या तो मैं उसको इनकार कर दूं, क्योंकि यह खतरा मोल लेना है। लेकिन यह भी मैं देख रहा हूं कि उसको इनकार करना भी गलत है क्योंकि उसे सच में ही परिवर्तन हो रहा है। और अगर संभोग अंतर्मुखी हो जाए तो बड़ी क्रांति घटित होती है।

वह दो महीने मेरे पास प्रयोग करती थी, लेकिन मैंने उससे कहा, ध्यान रखना, इन दो महीने में भूलकर भी शारीरिक संभोग मत करना। वह अपने पति के साथ है। मैंने पूछा कि कितने संभोग करती हो? उसने कहा—सप्ताह में कम-से-कम दो तीन, इससे कम में तो नहीं चल सकता। वह पति तो मानने को राजी नहीं है। तो मैंने कहा कि संभोग चल रहा है, वहां तक तो ठीक है, कल तू गर्भवती हो जाए तो मैं जिम्मेवार न हो जाऊं! यह होनेवाला है। उसने कहा—नहीं, यह कैसी बात?

और यही हुआ। अभी कल मुझे किसी ने आकर खबर दी कि उसका पति कहता है कि वह मुझसे गर्भवती हो गयी है। ये बड़े

259

महावीर-वाणी भाग : 1

मजे की बातें हैं। लेकिन पागलों के बीच जीना भी बड़ा क ठिन है। उनके बीच जीना अति कठिन है। इतनी भीड़ है उनकी। पर उनको मैं गलत नहीं कहता। उनको मैं गलत नहीं कहता।

गलत वे नहीं हैं, सिर्फ बेहोश हैं। वे क्या कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं है, वे क्या कर रहे हैं, उन्हें पता नहीं। क्या हो रहा है, वह उन्हें पता नहीं। वे क्या प्रोजेक्ट कर रहे हैं, क्या सोच रहे हैं, क्या मान रहे हैं, इसका उन्हें कोई पता नहीं है। तो वे बिलकुल बेहोश हैं। वह युवती मेरे एक मित्र के घर में ठहरी तो मुझे दूसरे मित्रों ने कहा कि निकलवाओ वहां से। मैंने

कहा—यह तो सवाल ही नहीं है। अभी तो वह और मुसीबत में है, उसे वहां से निकलवाना ठीक नहीं है, उसे वहां रहने दो। तकलीफ होगी। उसे वहां रहने दो। किसी ने कहा—पुलिस को दे देना चाहिए। मैंने कहा—यह बिलकुल पा गलपन की बात है। पुलिस क्या करेगी? पुलिस का क्या लेना-देना है उस बात से? अब वह जो युवक कहता फिरता है कि मेरी हत्या कर दें, अगर वह कल मेरी हत्या कर दे तो भी गलत नहीं है। तो भी गलत नहीं है। सिर्फ बेहोश है, सोया हुआ है। और वह सोने में जो भी कर सकता था, कर रहा है।

ध्यान रहे, हमारे चित्त की दो दशाएं हैं—एक सोयी हुई चेतना है हमा री और एक जाग्रत चेतना है। प्रायश्चित जाग्रत चेतना का लक्षण है, पश्चात्ताप सोयी हुई चेतना का लक्षण है। यह युवक कल आकर मुझसे माफी मांग जाएगा, इसका कोई मतलब नहीं है। आज जो कह रहा है उसका भी कोई मतलब नहीं है, कल यह माफी मांग जाएगा उसका भी कोई मतलब नहीं है। इससे कोई संबंध नहीं है। यह माफी मांगना भी उसी नींद से आ रहा है, यह क्रोध भी उसी नींद से आ रहा है। यह स्त्री गर्भवती समझ रही है मेरे द्वारा हो गयी। यह जिस नींद से आ रहा है, कल उसी नींद से कुछ आ ैर भी आ सकता है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। गलत, सही इसमें चुनाव नहीं है, ये सिर्फ सोए हुए लोग हैं। और सोया हुआ आदमी जो कर सकता है, वह कर रहा है।

अभी सोए हुए आदमी के प्रति पश्चात्ताप की शिक्षा से कुछ भी न होगा ।इसे स्मरण दिलाना जरूरी है कि यह सवाल नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो, सवाल यह है कि तुम क्या हो? तुम भीतर क्या हो, तुम उसी को बाहर फैलाए चले जाते हो। और वही तुम देखने लगते हो। और जितना कोई गहरा उतरेगा उतनी ही अकारण भावनाएं प्रक्षिप्त होती हैं और सजीव और साकार मालूम होने लगती हैं। और जब वह साकार मालूम होने लगती हैं तो फिर ठीक हैं, जो हम देखना चाहते हैं वह हम देख लेते हैं। ध्यान रहे, हम वह नहीं देखते जो है, हम वह देख लेते हैं जो हम देखना चाहते हैं या देख सकते हैं। ध्यान रहे, हम वह नहीं सुनते जो कहा जाता है, हम वह सुन लेते हैं जो हम सुनना चाहते हैं, या हम सुन सकते हैं। हम चुनाव कर रहे हैं।जिंदगी अनंत है, उसमें से हम चुनाव कर रहे हैं। हम भी अनंत हैं, उसमें से भी हम चुनाव कर रहे हैं। कभी हम चुन लेते हैं क्रोध करने की वृत्ति; कभी चुन लेते हैं पश्चात्ताप की वृत्ति, कभी घृणा की, कभी प्रेम की, और हम दोनों हालत में सोए आदमी हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

एक रात जोर से शराबघर के मालिक की टेलीफोन की घंटी बजने लगी—दो बजे रात, गुस्से में परेशान, नींद टूट गयी। घंटी उठायी, फोन उठाया। पूछा, कौन है? उसने कहा, मुल्ला नसरुद्दीन। क्या चाहते हो दो बजे रात? उसने कहा, मैं यही पूछना चाहता हूं कि शराब घर खुलेगा कब? व्हेन डू यू ओपन। उसने कहा, यह भी कोई बात है, तू रोज का ग्राहक। दस बजे सुबह खुलता है, यह भी दो बजे रात फोन करके पूछने की कोई जरुरत है? वह गुस्से में फोन पटककर फिर सो गया। चार बजे फिर फोन की घंटी बजी। उठाया। कौन है? उसने कहा, मुल्ला नसरुद्दीन। कब तक खोलोगे दरवाजे? मालिक ने कहा, मालूम होता है तू ज्यादा पी गया है या पागल हो गया है। अभी चा र ही बजे हैं, दस बजे खुलनेवाला है।अगर तू दस बजे आया भी तो तुझे घुसने नहीं दूंगा। आई विल नाट अलाउ यू इन। मुल्ला ने कहा, हू वांट्स टु कम इन। आइ वांट टु गो आउट। मैं तो भीतर बंद हूं। और खोलो जल्दी, नहीं तो मैं पीता चला जा रहा हूं। अभी तो मुझे पता चल रहा है कि बाहर भीतर में फर्क है।

थोड़ी देर में वह भी पता नहीं चलेगा। अभी तो मुझे फोन नंबर याद है। थोड़ी देर में वह भी नहीं रहेगा। अभी तो मैं बता सकता हूं, मैं मुल्ला नसरुद्दीन हूं। थोड़ी देर में वह भी नहीं बता सकूंगा । जल्दी खोलो।

हम सब ऐसी तंद्रा में हैं, जहां पता भी नहीं चलता कि बाहर क्या है, भीतर क्या है। मैं कौन हूं, यह भी पता नहीं चलता। कहां जाना चाह रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। कहां से आ रहे हैं, यह भी पता नहीं चलता। क्या प्रयोजन है, किसलिए जी रहे हैं? कुछ पता नहीं चलता है। एक बेहोशी है—एक गहरी बेहोशी। उस बेहोशी में हाथ पैर मारे चले जाते हैं। उस हाथ पैर मारने को हम कर्म कहते हैं। कभी किसी को गलत लग जाता है तो माफी मांग लेते हैं; कभी किसी को लगने से कोई प्रसन्न हो जाता है तो कहते हैं—प्रेम कर रहे हैं। कभी लग जाता है, चोट खा जाता है, वह आदमी नाराज हो जाता है तो कह देते हैं—माफ करना, गलती हो गयी। हाथ वही है, अंधेरे में मारे जा रहे हैं। कभी ठीक, कभी गलत, ऐसा लगता मालूम पड़ता है, लेकिन हाथ बेहोश हैं, वे सदा ही गलत हैं।

प्रायश्चित में उतरना हो तो जान लेना कि मैं गलत हूं; मैं सोया हुआ हूं। गलत का मतलब, सोया हुआ हूं, बेहोश हूं। मुझे कुछ भी पता नहीं है कि मेरे पैर कहां पड़ रहे हैं, क्यों पड़ रहे हैं। आ पको पता है, आप क्या कर रहे हैं? कभी एक दफा झकझोरकर अपने को खड़े होकर आपने सोचा है दो मिनट कि क्या कर रहे हैं इस ि जंदगी में आप? यह क्या हो रहा है आपसे? इसीलिए आए हैं? यही है अर्थ? अगर जोर से झकझोरा तो एक सेकेंड के लिए आपको लगेगा कि सारी जिंदगी व्यर्थ मालूम पड़ती है।

प्रायश्चित में वही उतर सकता है जो अपने को झकझोरकर पूछ सके कि क्या है अर्थ? इस जिंदगी का मतलब क्या है जो मैं जी रहा हूं? यह सुबह से शाम तक का चक्कर; यह क्रोध और घृणा का चक्कर; यह प्रेम और घृणा का चक्कर; यह क्षमा और दुश्मनी का चक्कर यह सब क्या है? यह धन और यह यश और यह अहंकार और यह पद और मर्यादा, यह सब क्या है? इसमें कोई अर्थ है? कि मैंने जो कुछ भी किया है इसमें मैं किसी तरफ बढ़ रहा हूं, कहीं पहुंच रहा हूं? कोई यात्रा हो रही है? कोई मंजिल करीब आती मालूम पड़ रही है? या मैं चक्कर की तरफ घूम रहा हूं? इन छह बाच्हय तपों के बाद यह आसान हो जाएगा। संलीनता के बाद यह आसान हो जाता है कि जब आपकी शक्ति आपके भीतर बैठ गयी है, तब आ प झकझोर सकते हैं और पूछ सकते हैं उसको जगाकर कि यह मैं क्या कर रहा हूं? यह ठीक है? यही है? यह कर लेने से मैं तृप्त हो जाऊंगा, संतुष्ट हो जाऊंगा?

आप मर जाएंगे, आपको लगता है—जब तक जीते हैं—बड़ी जगह खाली हो जाएगी। कितने काम बंद हो जाएंगे! कितना विराट चक्कर आप चला रहे थे, लेकिन कब्रिस्तान भरे पड़े हुए हैं, ऐसे लोगों से जो सोचते थे कि उनके बिना दुनिया न चलेगी। दुनिया ही न चलेगी, सब शांत, चांद सूरज सब रुक जाएंगे।

मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने पूछा है कि अगर दुनिया मिट जाए तो तुम्हारा क्या खयाल है? तो उसने पूछा कि कौन-सी दुनिया? दो तरह से दुनिया मिटती है। उस आदमी ने कहा, हद हो गयी ! यह कोई नया सिद्धांत निकाला है तुमने? दुनिया एक ही तरह से मिट सकती है। नसरुद्दीन ने कहा—दो तरह से मिटेगी—एक दिन, जिस दिन मैं मरूंगा, दुनिया मिटेगी। और एक दुनिया मिट जाए, वह दूसरा ढंग है।

हम सब यही सोच रहे हैं कि जिस दिन मैं मरूंगा, दुनिया मिट जाएगी।

मुल्ला मर गया, उसे लोग कब्र में विदा करके वापस लौट रहे हैं। तो रास्ते पर एक अजनबी मिला है और उस अजनबी ने पूछा कि व्हाट वाज द कम्पलेंट? मर गया नसरुद्दीन, तकलीफ क्या थी? शिकायत क्या थी? जिस आदमी से पूछा, उसने कहा—देयर वा नो कम्पलेंट, देयर इ नो कम्पलेंट। एवरीवन इ कम्पलीटली, थारोली सैटिस्फाइड। कोई शिकायत नहीं है। सब संतुष्ट हैं।

मर गया, अच्छा हुआ। गांव का उपद्रव छूटा।
नसरुद्दीन ऐसा नहीं सोच सकता था कभी। वह तो कह रहा था, एक दफा दुनिया तब मरेगी, जब मैं मरूंगा। प्रलय तो हो गयी असली, जिस दिन मैं मर गया।
हम सब जो कर रहे हैं, सोच रहे हैं, उस करने में कोई बड़ा भारी प्राण है, कोई बहुत बड़ा अर्थ है — पानी पर लकीरें खींच रहे हैं और सोच रहे हैं; रेत पर नाम लिख रहे हैं और सोच रहे हैं; का गजों के महल बना रहे हैं और सोच रहे हैं। खो जाते हैं आप किसी को पता भी नहीं चलता कि कब खो गए। मिट जाते हैं आप किसी को पता भी नहीं चलता कि कब मिट गए। संलीनता के बाद साधक अपने भीतर रुककर पूछे कि मैं जो कर रहा हूं इसका कोई भी अर्थ है? मैं जो हूं इसका कोई अर्थ है? मैं कल मिट जाऊंगा, एवरीवन विल बी कम्पलीटली सैटिस्फाइड, सब लोग संतुष्ट होंगे।
एक दफा दिल्ली में एक सर्कस के दो शेर छूट गए। भागे तो रास्ते पर सा थ छूट गया। सात दिन बाद मिले तो एक तो सात दिन से भूखा था, बहुत परेशान था, एक पुलिया के नीचे छिपा रहा था। कुछ नहीं मिला उसको, खाने को भी कुछ नहीं मिला, परेशान हो गया। और छिपे-छिपे जान निकल गयी। दूसरा लेकिन तगड़ा, स्वस्थ दिखाई पड़ रहा था, मजबूत दिखाई पड़ रहा था। पहले सिंह ने पूछा कि मैं तो बड़ी मुसीबत में दिन गुजार रहा हूं। किसी तरह सर्कस वापस पहुंच जाऊं, इसका ही रास्ता खोज रहा हूं। वह रास्ता भी नहीं मिल रहा है। मर गए, सात दिन भूखे रहे। तुम तो बड़े प्रसन्न, ताजे और स्वस्थ दिखाई पड़ रहे हो। कहां छिपे रहे?
उसने कहा—'मैं तो पार्लियामेंट हाउस में छिपा था।'
'खतरनाक जगह तुम गए? वहां इतना पुलिस का पहरा है, वहां भोजन कैसे मिला?'
उसने कहा—'मैं रोज एक मिनिस्टर को प्राप्त करता रहा।'
'यह तो बहुत डेंजरस काम है। फंस जाओगे।'
तो उसने कहा कि नहीं, जैसे ही मिनिस्टर नदारद होता है, एवरीवन इ कंपलीटली सैटिस्फाइड। कोई झंझट नहीं होती है। नो वन लिसिन्स हिम। कोई कभी भी अनुभव नहीं करता। वह जगह इतनी बढ़िया है कि वहां जितने लोग हैं, किसी को भी प्राप्त कर जाओ, बाकी लोग प्रसन्न होते हैं। तुम भी वहीं चले चलो। वहां अपने दो क्या पूरे सर्कस के सब शेर आ जाएं तो भी भोजन है और काफी दिन तक रहेगा क्योंकि भोजन खुद पार्लियामेंट हाउस में आने को उत्सुक है, पूरे मुल्क से भोजन आता ही रहेगा। इधर हम कितना ही कम करें, भोजन खुद उत्सुक है। खर्च करके परेशानी उठाकर आता रहेगा। भोजन, उनके लिए भोजन ही है जिनको आप एम्रप्री वगैरह कहते हैं। भोजन हैं। पार्लियामेंट हाउस में तस्वीरें लटक रही हैं उन सब लोगों की जो सोचते हैं उनके बिना दुनिया रुक जाएगी, चांद-तारे गति बंद कर देंगे। कुछ नहीं रुकता। कुछ पता ही नहीं चलता इस जगत में आप कब खो जाते हैं।
निश्चित ही आपके किए हुए का कोई भी मूल्य नहीं है, जिसका पता चलता हो। पर दूसरे के लिए मूल्य हो या न हो, यह पूछना साधक के लिए जरूरी है कि मेरे लिए कोई मूल्य है? यह जो कुछ भी कर रहा हूं, इसकी क्या आंतरिक अर्थवत्ता है? व्हाट इ इट्स इनर सिग्नीफिकेंस? इसकी महत्ता और गरिमा क्या है भीतर? यह खयाल आ जाए तो आप प्रायश्चित की दुनिया में प्रवेश करेंगे।
प्रायश्चित की दुनिया क्या है, यह मैं आपसे कहूं। प्रायश्चित की दुनिया यह है कि मैं जैसा भी हूं, सोया हुआ हूं, मैं अपने को जगाने का निर्णय लेता हूं। प्रायश्चित जागरण का संकल्प है। पश्चात्ताप, सोए में की गयी गलतियों का सोए में ही क्षमा याचना है, क्षमा मांगना है। प्रायश्चित सोए हुए व्यक्तित्व को जगाने का निर्णय है, संकल्प है। मैंने जो भी किया है आज तक, वह गलत था क्योंकि मैं गलत हूं। अब मैं अपने को बदलता हूं—कमोच को नहीं, एक्शन को नहीं, बीइंग को। अब मैं अपने को बदलता हूं, अब मैं दूसरा होने

की कोशिश करता हूं। क्या प्रायश्चित का यह अर्थ आपके खयाल में आता है? यह खयाल में आए तो आप साधक बन जाएंगे। यह खयाल में न आए तो आप साधारण गृहस्थ होंगे। पश्चात्ताप करते रहेंगे और वही काम दोहराते रहेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर के लोगों ने यह देखकर कि इसके तर्क बड़े पा गल होते जा रहे हैं, कुछ अजीब बातें कहता है। कहता है लाजिकल, कहता तर्कयुक्त है। पागल का भी अपना लाजिक होता है। ध्यान रहे, कई दफे तो पागल बड़े लाजीशियन होते हैं। बड़े तर्कयुक्त होते हैं। अगर आपने किसी पागल से तर्क किया है तो एक बात पक्की है—एक बात पक्की है कि आप उसे कनव्हिंस न कर पाएंगे। इस बात की सम्भावना है कि वह आपको कनव्हिंस कर ले। मगर इसकी कोई सम्भावना नहीं कि आप उसको कनव्हिंस कर पाएं। क्योंकि पागल का तर्क एब्सल्यूट होता है, पूर्ण होता है।
मुल्ला के तर्क ऐसे होते जा रहे हैं कि घर के लोग, मित्र, परेशान हो गए हैं। एक दिन मुल्ला गांव के धर्मशास्त्री से बात कर रहा है। धर्मशास्त्री ने कहा—कोई सत्य ऐसा नहीं है जिसे हम पूर्णता से घोषणा कर सकें। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि जो आप कह रहे हैं क्या यह पूर्ण सत्य है? उसने कहा—निश्चित, डेफिनेटिली। मुल्ला ने कहा—सब गड़बड़ हो गया। आप यह कह रहे हैं—'किसी सत्य को हम पूर्णता से घोषित नहीं कर सकते और अब आप ही कह रहे हैं—'यह सत्य पूर्ण है'।
मुल्ला को मनोचिकित्सक के पास ले जाया गया क्योंकि गांवभर परेशान हो गया है उसके तकोच से। मनोचिकित्सक ने सालभर इलाज किया। कहते हैं कि सालभर में मुल्ला ठीक हो गया। जिस दिन मुल्ला ठीक हुआ, मनोचिकित्सक ने बड़ी खुशी मनायी। और उसने कहा—आज तुम ठीक हो गए हो, यह मेरी बड़ी सफलता है क्योंकि तुम जैसे आदमी को ठीक करना असम्भव कार्य था। इस जिंदगी में किसी को ठीक न किया तो चलेगा। चलो इस खुशी में हम बाहर चलें—फूल खिले हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं, सूरज निकला है, सुबह सुंदर है—इस खुशी में हम थोड़ा पहाड़ की तरफ चलें।
वे दोनों पहाड़ की तरफ गए। मुल्ला हांफने लगा, और चिकित्सक है कि भागा चला जा रहा है तेजी से। आखिर मुल्ला ने कहा कि रुको भई। बहुत हो गया। अगर हमारा दिमाग खराब होता तो हम तुम्हा रे साथ दौड़ भी लेते। लेकिन अब ठीक हो गया हूं। तुम्हीं कहते हो, तो अब इतना ज्यादा नहीं। तो उस चिकित्सक ने कहा — मील के पत्थर को देखो, कितने दूर आए। अभी कोई ज्यादा दूर नहीं आए। मुल्ला ने देखा और कहा—दस मील। उस चिकित्सक ने कहा—इट इ नाट सो बैड। टु ईच इट कम्स टु ओनली फाइव माइल्स। पांच मील हमको, पांच मील तुमको। लौटने में ज्यादा दिक्कत नहीं है। मतलब यह है कि नसरुद्दीन तो ठीक हो गए, सालभर में चिकित्सक पागल हो गया। दस मील है लौटना, कोई हर्जा नहीं, पांच-पांच मील पड़ता है एक-एक के हिस्से में। ज्यादा बुरा नहीं है।
पागल को राजी करना मुश्किल है। सम्भावना यही है कि पागल आपको रा जी कर ले। क्योंकि पागल पूरा अपनी तरफ तर्क का जाल बनाकर रखता है। रीन्स नहीं हैं वे, रेशनलाइजेशन हैं, तर्काभा स हैं। तर्क नहीं हैं वे, तर्काभास हैं। लेकिन वह बनाकर रखता है।
रूजवेल्ट की पत्नी ने एक संस्मरण लिखा है, इलनौर रूजवेल्ट ने। रूजवेल्ट राच्षटरपति हुआ उसके पहले गवर्नर था अमरीका के एक राज्य में। गवर्नर की पत्नी होने की हैसियत से इलनौर रूजवेल्ट एक दिन पागलखाने के निरीक्षण को गयी। एक आदमी ने दरवाजे पर उसका स्वागत किया। उसने समझा कि वह सुपरिन्टेंडेंट है। वह आदमी उसे ले गया। उसने तीन घण्टे पागलखाने के एक-एक पागल के संबंध में जो केस, हिच्सटरी, जो ब्यौरा दिया, विवरण दिया, इलनौर हैरान हो गयी। उसने चलते वक्त उससे कहा कि तुम आश्चर्यजनक हो — तुम्हारी जानकारी, पागलपन के संबंध में तुम्हारा अनुभव, तुम्हारा अध्ययन। तुम जितने बुद्धिमान आदमी से

महावीर-वाणी भाग : 1

मैं कभी मिली नहीं।

उस आदमी ने कहा—माफ करिए, आप कुछ गलती में हैं। आई एम नाट ए सुपरिन्टेंडेंट, आई एम वन आफ इन्मेट्स। मैं कोई सुपरिन्टेंडेंट नहीं। सुपरिन्टेंडेंट आज बाहर गया है। मैं तो इसी पागलखाने में एक पागल हूं।

इलनौर ने कहा—तुम और पागल! तुम जैसा स्वस्थ आदमी मैंने नहीं देखा। किसने तुम्हें पागल किया है?

उसने कहा—यही तो मैं समझा रहा हूं, आज सात साल हो गए समझाते, लेकिन कोई सुनता नहीं। कोई मानने को राजी नहीं। अब कोई पागल कहे, मैं पागल नहीं, कौन मानने को राजी है। सुपरिन्टेंडेंट कहता है कि सभी पागल यही कहते हैं कि हम पागल नहीं हैं। इसमें क्या खास बात है?

रूजवेल्ट की पत्नी ने कहा—यह तो बहुत बुरा मामला है। तुम घबराओ मत, मैं जाकर गवर्नर को आज ही कहूंगी, कल ही तुम्हारी छुट्टी हो जाएगी। तुम एकदम स्वस्थ आदमी हो साधारण नहीं, असाधारण रूप से बुद्धिमान आदमी हो। तुमको कौन पागल कहता है? अगर तुम पागल हो तो हम सब पागल हैं।

पागल ने कहा—यही तो मैं समझाता हूं, लेकिन कोई मानता नहीं।

इलनौर ने कहा कि तुम बिलकुल बेफिक्र रहो। मैं आज ही जाकर बात करती हूं। कल सुबह ही तुम मुक्त हो जाओगे। नमस्कार करके, धन्यवाद देकर इलनौर मुड़ी, उस पागल ने उचककर जोर से लात मा री इलनौर की पीठ पर। सात-आठ सीढ़ियां वह नीचे धड़ाम से जाकर गिरी। बहुत घबराकर उठी।

उसने कहा—तुमने यह क्या किया? यह तुमने किया क्या?

उस पागल ने कहा—जस्ट टु रिमाइंड यू। भूल मत जाना। गवर्नर को कह देना कि कल सुबहजस्ट टु रिमाइंड यू।

मगर वह तीन घण्टे पर पानी फिर गया। तो तीन घण्टे जो वह बोल रहा था , उसमें क्या वह ठीक बोल सकता है? सवाल यह है। क्या उस तीन घण्टे में वह ठीक बोल सकता है? नहीं, वह ठीक बोलने का सिर्फ आभास पैदा कर सकता है—आभास, फैलिसी। तर्काभास पैदा कर सकता है। लेकिन असलियत यह नहीं हो सकती कि जो वह बोल रहा है वह ठीक हो। ऐसा दिखाई पड़ सकता है कि बिलकुल ठीक है। आप पकड़ न पाएं कि उसमें गलती कहां है, यह दूसरी बात है। लेकिन कोई न कोई घड़ी वह प्रगट कर देगा।

सोया हुआ आदमी भी इसी तरह कर रहा है। दिनभर बिलकुल ठीक है, जरा क्रोध नहीं कर रहा है। अचानक एक रसीद कर देता है चांटा अपने लड़के को कि तू देर से क्यों आया? आप नहीं समझते, आप कहते हैं यह आदमी बिलकुल ठीक है, बाकी वक्त तो ठीक ही रहता है। यह इसका चांटा बताता है कि बाकी वक्त यह सिर्फ तर्काभास पैदा करता है। यह ठीक नहीं रहता, यह ठीक रह नहीं सकता। क्योंकि उस ठीक आदमी से जो यह निकल रहा है, यह निकल नहीं सकता। एक आदमी एकदम छाती में छुरा मार देता है, किसी को हम कहते हैं कल तक बिलकुल भला आदमी था—एकदम भला आदमी था। माना कि बिलकुल भला था, लेकिन वह आभास था। सोया हुआ आदमी अच्छे का सिर्फ आभास पैदा करता है। बुरा होना उसकी नियति है। वह उससे प्रगट होगा ही। क्षण दो क्षण रोक सकता है, इधर-उधर डांवांडोल कर सकता है, लेकिन वह उससे प्रगट होगा ही।

क्या आपको पता है कि आप अपने को पूरे वक्त संभालकर चलते हैं? जो आपके भीतर है उसको दबाकर चलते हैं? जो आप कहना चाहते हैं वह नहीं कहते, कुछ और कहते हैं। जो आप बताना चाहते हैं नहीं बताते, कुछ और बताते हैं। लेकिन कभी-कभी वह उभर जाता है। हवा का कोई झोंका और कपड़ा उठ जाता है, भीतर जो है वह दिख जाता है, कोई परिस्थिति। तब आप कहते हैं,

प्रायश्चित : पहला अंतर तप

यह कर्म की भूल है, परिस्थिति की नहीं। परिस्थिति ने तो केवल अवसर दिया है कि आपके भीतर जो आप छिपा-छिपाकर चल रहे थे वह प्रगट हो गया।

प्रायश्चित तब शुरू होगा जब आप जैसे हैं, अपने को वैसा जानें। छिपाएं मत, ढांकें मत, तो आप पाएंगे, आप उबलते हुए लावा हैं, ज्वालामुखी हैं। ये सब बहाने हैं आपके, ये टीम-टाम हैं। ये ऊपर से चिपकाये हुए पलस्तर हैं, ये बहुत पतले हैं। यह सिर्फ दिखावा है। इस दिखावे के भीतर जो आप हैं, उसको आप स्वीकार करें।

प्रायश्चित का पहला सूत्र—जो आप हैं—बुरे भले, निंदा-योग्य, पा पी, बेईमान—एक्सेप्ट इट। आप ऐसे हैं। तथ्य की स्वीकृति प्रायश्चित है। तथ्य गलती से हो गया, इसको पोंछ देना पश्चात्ताप है। तथ्य हुआ, होता ही है मुझसे; जैसा मैं आदमी हूं, यही मुझसे होता—इसकी स्वीकृति प्रायश्चित का प्रारंभ है। स्वीकार, आ ैर पूर्ण स्वीकार, कहीं भी कोई चुनाव नहीं। क्योंकि चुनाव आपने किया तो आप बदलते रहेंगे। आज यह, कल वह, परसों वह, आपकी बदलाहट जारी रहेगी। प्रायश्चित पूर्ण स्वीकार है, मैं ऐसा हूं। मैं चोर हूं, तो मैं चोर हूं। मैं बेईमान हूं तो मैं बेईमान हूं । नहीं जरूरत है कि आप घोषणा करने जाएं कि मैं बेईमान हूं क्योंकि अकसर ऐसा होता है कि अगर आप घोषणा करें कि मैं बेईमान हूं तो लोग समझेंगे कि बड़े ईमानदार हैं। मुझे लोगों ने भगवान कहना शुरू किया। मैं चुप रहा बहुत दिन तक, मैंने सोचा कि मैं कहूं कि भगवान नहीं हूं तो उनका और पक्का भरोसा बैठ जाएगा कि यही तो लक्षण है भगवान का, कि वह इनकार करे। वह इनकार करे कि मैं नहीं हूं।

हमारा मन बड़ा अजीब है। अगर आपको किसी को सच में ही बेईमानी करके धोखा देना हो तो आप पहले उसको बता दें कि मैं बहुत बुरा आदमी हूं, मैं बहुत बेईमान हूं। वह आप पर ज्यादा भरोसा करेगा, आप बेईमानी ज्यादा आसानी से कर सकेंगे। और जब आप घोषणा करते हैं कि बेईमान हूं तब देखना कि इसमें कोई रस तो नहीं आ रहा है, क्योंकि दूसरे के सामने घोषणा में इसमें भी रस आ सकता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि लियो टालस्टाय ने अपनी आत्मकथा में जितने पाप लिखे हैं, उतने उसने किए नहीं थे। उसमें बहुत से पाप कल्पित हैं, जो उसने घोषणा करने के लिए लिखे। किए नहीं थे, आप सोच सकते हैं? पुण्यों की कोई घोषणा करे कि मैंने इतना दान किया तो आप कहेंगे कि यह घोषणा हो सकती है। लेकिन कोई कहे कि मैंने इतनी चोरी की, यह भी घोषणा हो सकती है? कोई ऐसा करेगा? आपने कभी सोचा है कि कोई अपने पाप की भी चर्चा करेगा, इतने जोर से? नहीं, पापी करते हैं। लेकिन टालस्टाय जैसे लोग नहीं करते। जेलखाने में आप जाइए, जिसने दस रुपए की चोरी की है, वह कहता है दस लाख का डाका डाला। क्योंकि दस की भी कोई चोरी करने का मतलब है? तो दस के ही चोर हैं! यह कोई मतलब नहीं है।

एक कैदी कारागृह में प्रविष्ट हुआ। दूसरे कैदी ने, जो वहां सीखचों से टिककर बैठा था, उसने कहा—कितने दिन की सजा? उसने कहा कि चालीस साल की सजा। तो उसने कहा कि तू दरवाजे के पास बैठ। हम दीवार के पास रहेंगे। पहले आदमी ने पूछा, 'क्यों?' उसने कहा—हमको पचहत्तर साल की सजा मिली है। तो तेरा मौका पहले आएगा निकलने का। सिक्खड़ मालूम पड़ता है। चालीस साल की कुल! छोटा-मोटा काम किया! हमको पचहत्तर सा ल की सजा है। हम दीवार के पास रहेंगे, तू दरवाजे के पास। तेरा मौका निकलने का पहले आएगा। चालीस साल ही का तो मा मला है। हमको और आगे पैंतीस साल रहना है। इसका मतलब है कि उन्होंने मास्टरी सिद्ध कर दी कि अब तू इस कमरे में शिष्य बनकर रह।

तो जेलखानों में तो घोषणा चलती है। लेकिन यह कभी खयाल नहीं आता साधारणतः कि साधु-संतों ने भी जितने पापों की चर्चा की है, उतने वस्तुतः किए हैं। या पाप की घोषणा में भी रस हो सकता है?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं — रस हो सकता है। इस हिसाब से हिसाब नहीं लगाए गए हैं कभी। गांधी की आत्मकथा का कभी न

265

प्रायश्चित : पहला अंतर तप

हो, कोई नहीं, कोई आकाश में सुनने वाला नहीं जिससे तुम कहो कि मेरे पाप क्षमा कर देना। कोई क्षमा करेगा नहीं, कोई है नहीं।चिल्लाना मत, घोषणा से कुछ भी न होगा। दया की भिक्षा मत मांगना , क्योंकि कोई दया नहीं हो सकती। कोई दया करनेवाला नहीं है।

प्रायश्चित—नहीं, दूसरे के समक्ष नहीं, अपने ही समक्ष अपने नरक की स्वीकृति है। और जब पूर्ण स्वीकृति होती है भीतर, तो उस पूर्ण स्वीकृति से ही रूपांतरण शुरू हो जाता है। यह बहुत कठिन मा लूम पड़ेगा कि पूर्ण स्वीकृति से क्यों शुरू हो जाता है? जैसे ही कोई व्यक्ति अपने को पूरा स्वीकार करता है—उसकी पुरानी इमेज, उसकी पुरानी प्रतिमा खण्ड-खण्ड होकर गिर जाती है, राख हो जाती है। और अब वह जैसा अपने को पाता है, ऐसा अपने को क्षणभर भी देख नहीं सकता, बदलेगा ही और उपाय नहीं है। जैसे घर में आग लग गई हो और पता चल गया कि आग लग गई, तब आप यह न कहेंगे कि अब हम सोचेंगे, बाहर निकलना है कि नहीं। तब आप यह न कहेंगे कि गुरु खोजेंगे, कि मार्ग क्या है? तब आप यह न कहेंगे कि पहले बाहर कुछ है भी पाने योग्य कि हम घर छोड़कर निकल जाएं और बाहर भी कुछ न मिले। ये सब उस आदमी की बातें हैं जिसके मन में कहीं-न-कहीं खयाल बना है कि घर में कोई आग नहीं लगी। एक बार दिख जाएं लपटें चारों तरफ, आदमी बाहर हो जाता है। जम्प, छलांग लग जाती है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी का आपरेशन हुआ। तो जब उसे आपरेशन की टेबल पर लिटाया गया तो खिड़कियों के बाहर वृक्षों में फूल खिले हुए हैं, इंद्रधनुष फैला हुआ है। जब उसका आपरेशन हो गया और उसके मुंह से कपड़ा उठाया गया तो उसने देखा कि सब पदच बंद हैं, खिड़कियां, द्वार-दरवाजे बंद हैं, तो उसने मुल्ला से पूछा कि सुंदर सुबह थी, क्या सांझ हो गई या रात हो गई? इतनी देर लग गई? मुल्ला ने कहा—रात नहीं हुई है, पांच मिनट हुआ। तो उसने कहा—ये दरवाजे क्यों बंद हैं? तो मुल्ला ने कहा—बाहर के मकान में आग लग गई है। और हम डरे कि अगर कहीं तू होश में आए और एकदम देखे आग लगी, तो समझे कि नरक में पहुंच गए हैं। इसलिए हमने खिड़कियां बंद कर दीं कि नरक में आग जलती रहती है तो तू कहीं यह न सोच ले कि मर गए, खत्म। कभी ऐसा हो जाता है कि सोच लिया कि मर गए तो आदमी मर भी जाता है। तो मुल्ला ने कहा—यह मैंने बंद की हैं खिड़कियां, और मकान में आग लग गयी है बाहर।

मुल्ला के खुद के जीवन में ऐसा घटा कि वह बेहोश हो गया और लोगों ने समझा कि मर गया। उसकी अर्थी बांध ही रहे थे कि वह होश में आ गया। लोगों ने कहा—अरे, तुम मरे नहीं! मुल्ला ने कहा—मैं मरा नहीं, और जितनी देर तुम समझ रहे थे कि मैं मर गया, उतनी देर भी मैं मरा हुआ नहीं था। मुझे पता था कि मैं जिंदा हूं। तो उन्होंने कहा—तुम बिलकुल बेहोश थे, तुम्हें पता कैसे हो सकता है। क्या तुम्हें पता था? क्या प्रमाण तुम्हारे भीतर था कि तुम जिंदा हो? उसने कहा—प्रमाण यह था कि मैं भूखा था, मुझे भूख लगी थी। अगर स्वर्ग में पहुंच गया होता तो कल्पवृक्ष के नीचे भूख खत्म हो गई होती। और पैर में मुझे ठंडक लग रही थी। अगर नरक में पहुंच गया होता तो वहां ठंडक कहां है, और दो ही जगहें हैं जाने को। मुझे पता था कि मैं जिंदा हूं।

मुल्ला के गांव का एक नास्तिक मर गया—वह अकेला नास्तिक था। वह मर गया तो मुल्ला उसको बिदा करने गया। वह लेटा हुआ है। सूट सुंदर उसे पहना दिया गया था, टाई-वाई बांध दी गयी थी—सब बिलकुल तैयार। मुल्ला ने बड़े दुख

से कहा, पुअर मैन! थारोली ड्रेस्ड ऐंड नो व्हेअर टु गो? नास्तिक था, न नरक जा सकता था, न स्वर्ग। क्योंकि मानता ही नहीं। तो मुल्ला ने कहा—इतने बिलकुल तैयार लेटे हो, गरीब बेचारा और जाना उसको कहीं भी नहीं है।
वह जो हमारे भीतर आग है, नरक है, जहां हम खड़े ही हैं। नरक जाने को जगह नहीं है कोई, वहां हम खड़े हुए हैं, वह हमारी
स्थिति है। स्वर्ग कोई स्थान नहीं है। इसलिए महावीर पहले आदमी हैं इस पृथ्वी पर जिन्होंने कहा कि स्वर्ग और नरक मनोदशाएं

267

महावीर-वाणी भाग : 1

हैं, माइंड स्टेट्स हैं, चित्तदशाएं हैं। मोक्ष कोई स्थान नहीं है इसलिए महावीर ने कहा कि वह स्थान के बाहर है—बियाण्ड स्पेस। वह कोई स्थान नहीं है, वह सिर्फ एक अवस्था है। लेकिन जहां हम खड़े हैं, वह नरक है। इस नरक की प्रतीति जितनी स्पष्ट हो जाए उतने आप प्रायश्चित में उतरेंगे। और जितनी प्रगाढ़—इनटेंस हो जाए, कि आग जलने लगे आपके चारों तरफ तो छलांग लग जाएगी। और रूपांतरण शुरू हो जाएगा।
उस छलांग के पांच सूत्र हम कल से धीरे-धीरे शुरू करेंगे। यह पहला सूत्र है और ठीक से समझ लेना जरूरी है। संलीनता जैसे अंतिम सूत्र है बाच्ह्य-तप का, और कीमती है, उसके बाद ही प्रा यश्चित हो सकता है। प्रायश्चित बहुत कीमती है क्योंकि वह पहला सूत्र है अंतर-तप का। अगर आप प्रायश्चित नहीं कर सकते तो अंतर-तप में कोई प्रवेश नहीं है, वह द्वार है।

आज इतना ही।
रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें!

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

270

अंतर-तप की दूसरी सीढ़ी है विनय। प्रायश्चित के बाद ही विनय के पैदा होने की सम्भावना है। क्योंकि जब तक मन देखता रहता है दूसरे के दोष, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। जब तक मनुष्य सोचता है कि मुझे छोड़कर शेष सब गलत हैं, तब तक विनय पैदा नहीं हो सकती। विनय तो पैदा तभी हो सकती है जब अहंकार दूसरों के दोष देखकर अपने को भरना बंद कर दे। इसे हम ऐसा समझें कि अहंकार का भोजन है दूसरों के दोष देखना। वह अहंकार का भोजन है। इसलिए यह नहीं हो सकता है कि आप दूसरों के दोष देखते चले जाएं और अहंकार विसर्जित हो जाए। क्योंकि एक तरफ आ प भोजन दिए चले जाते हैं और दूसरी तरफ अहंकार को विसर्जित करना चाहते हैं, यह न हो सकेगा। इसलिए महावीर ने बहुत वैज्ञानिक क्रम रखा है—प्रायश्चित पहले, क्योंकि प्रायश्चित के साथ ही अहंकार को भोजन मिलना बंद हो जाता है।

वस्तुतः हम दूसरे के दोष देखते ही क्यों हैं? शायद इसे आपने कभी ठीक से न सोचा होगा कि हमें दूसरों के दोष देखने में इतना रस क्यों है? असल में दूसरों का दोष हम देखते ही इसलिए हैं कि दूसरों का दोष जितना दिखाई पड़े, हम उतने ही निर्दोष मालूम पड़ते हैं। ज्यादा दिखाई पड़े दूसरे का दोष तो हम ज्यादा निर्दोष मालूम पड़ते हैं। उस पृष्ठभूमि में, जहां दूसरे दोषी होते हैं हम अपने को निर्दोष देख पाते हैं। अगर दूसरे निर्दोष दिखाई पड़ें तो हम दोषी दिखाई पड़ने लगेंगे। तो हम दूसरों की शक्लें जितनी काली रंग सकते हैं, उतनी रंग देते हैं। उनकी काली रंगी शक्लों के बीच हम गौर वर्ण मा लूम पड़ते हैं। अगर दूसरों के पास गौर वर्ण हो—सबके पास, तो, हम सहज ही काले दिखाई पड़ने लगेंगे।

दूसरे को दोषी देखने का जो आंतरिक रस है वह स्वयं को निर्दोष ि सद्ध करने की असफल चेष्टा है; क्योंकि निर्दोष कोई अपने को सिद्ध नहीं कर सकता। निर्दोष कोई हो सकता है, सिद्ध नहीं कर सकता। सच तो यह है कि सिद्ध करने की कोशिश में ही निर्दोष न होना छिपा है। निर्दोषता—सिद्ध करने की कोशिश भी नहीं है। कोई यदि आपको किसी के संबंध में कोई पुण्य खबर दे तो मानने का मन नहीं होता। कोई आपसे कहे कि दूसरा व्यक्ति बहुत सज्जन, भला, साधु है तो मानने का मन नहीं होता। मन एक भीतरी रेिस्टेंस, एक भीतरी प्रतिरोध करता है। मन भीतर से कहता—ऐसा हो नहीं सकता। इस भीतर की लहर पर थोड़ा ध्यान करें, अन्यथा विनय कभी उपलब्ध न होगी।

जब कोई किसी दूसरे की शुभ चर्चा करता है तो मन मानने को नहीं होता । भीतर एक लहर कंपित होती है और कहती है कि प्रमाण क्या है कि दूसरा सज्जन है, साधु है? वह प्रमाण की तलाश इसलिए है ताकि अप्रमाणित किया जा सके कि दूसरा साधु नहीं, सज्जन नहीं।

271

महावीर-वाणी भाग : 1

लेकिन कभी आपने इसके विपरीत बात देखी है? अगर कोई किसी के संबंध में निंदा करे तो आपका मन एकदम मानने को आतुर होता है। आप निंदा के लिए प्रमाण नहीं पूछते हैं। अगर कोई आदमी कहे कि फलां आदमी ब्रह्मचारी है; तो आप पूछते हैं—प्रमाण क्या है? लेकिन कोई आदमी कहे फलां आदमी व्यभिचारी है; आपने प्रमाण पूछा है? नहीं, फिर तो कोई जरूरत नहीं रह जाती प्रमाण की। कहना पर्याप्त है। किसी ने कहा तो पर्याप्त है।

और ध्यान रहे, अगर कोई कहे कि दूसरा आदमी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध है तो आप बड़े मन को मसोसकर मान सकते हैं, प्रसन्नता से नहीं। और जब आप दूसरे को कहेंगे, तो जितने जोर से उसने कहा था उस जोर में कमी आ जाएगी। तीन

चार आदमियों में यात्रा करते-करते वह ब्रह्मचर्य खो जाएगा। लेकिन अगर किसी ने कहा—फलां आदमी व्यभिचारी है तो जब आप दूसरे से कहते हैं, तो आपने खयाल किया है—आप कितना गुणित करते हैं उसे? कितना मल्टीप्ला य करते हैं? जितना रस उसने लिया था, उससे दुगुना रस आप दूसरे को सुनाकर लेते हैं। पांच आदमियों तक पहुंचते-पहुंचते पता चलेगा कि उससे ज्यादा व्यभिचारी आदमी दुनिया में कभी पैदा नहीं हुआ था। पांच आदमियों के बीच पाप इतनी बड़ी यात्रा कर लेगा ।

इस मन के आंतरिक रस को देखना, समझना जरूरी है। तो विनय की साधना का पहला सूत्र तो है कि हमारे अहंकार के सहारे क्या हैं? हम किस सहारे से अविनीत बने रहते हैं? वे सहारे न गिरे तो विनय उत्पन्न नहीं होगा। निंदा में रस मालूम होता है, स्तुति में पीड़ा मालूम होती है। और इसलिए अगर आपको किसी मजबूरी में किसी की स्तु ति करनी पड़ती है तो आप बहुत शीघ्र उसके सामने से हटकर, तत्काल कहीं जाकर उसकी निंदा करके बैंक बैलेंस बराबर कर लेते हैं। देर नहीं लगती। संतुलन पर ला देते हैं तराजू को बहुत शीघ्र। जब तक संतुलन न आ जाए तब तक मन को चैन नहीं पड़ता। लेकिन इससे उल्टा इतने आसानी से नहीं होता। जब आप किसी को गालियां देकर जाते हैं तो तत्काल आप संतुलन स्थापित नहीं करते कि कहीं जाकर उसके गुणों की भी चर्चा कर लें। मन की सहज इच्छा यह है कि दूसरे निन्दित हों। तो दूसरों के दोष तो हम हजा रों मील से देख पाते हैं, अपना दोष इतने निकट रहकर भी नहीं देख पाते।

मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने गांव के मेयर को कई बार फोन किया, एक स्त्री बहुत अभद्र व्यवहार कर रही है मेरे साथ। अपनी खिड़की में इस भांति खड़ी होती है कि उसकी मुद्राएं आमंत्रण देती हैं, आ ैर कभी-कभी अर्धनग्न भी वह खिड़की से दिखाई पड़ती है। इसे रोका जाना चाहिए। यह समाज की नीति पर हमला है। कई बार फोन किया तो मेयर मुल्ला के घर आया।

मुल्ला अपनी चौथी मंजिल पर ले गया, खिड़की के पास कहा—देखिए, वह सामने का मकान, उसी में वह स्त्री रहती है। मकान नदी के उस पार कोई आधा मील दूर था। उस मेयर ने कहा—वह स्त्री उस मकान में रहती है और उस मकान की खिड़कियों से आपको टेम्पटेशंस पैदा करती है? उधर से आपको उकसाती है? यहां से तो ि खड़की भी ठीक से नहीं दिखाई पड़ रही, वह स्त्री कैसे दिखाई पड़ती होगी? मुल्ला ने कहा—ठहरो—उसके देखने का ढंग—स्टूल पर चढ़ो, यह दूरबीन हाथ में लो, तब दिखाई पड़ेगी। लेकिन दोष उस स्त्री का ही है जो आधा मील दूर है!

और फिर एक दिन ऐसा भी हुआ कि मुल्ला ने अपने गांव के मनोचिकित्सक के दरवाजे को खटखटाया। भीतर गया, पूरा नग्न था।

मनोचिकित्सक भी चौंका। नीचे से ऊपर तक देखा।

मुल्ला ने कहा कि मैं यही पूछने आया हूं और वही भूल आप कर रहे हैं। मैं सड़कों पर से निकलता हूं तो लोग न मालूम पागल हो गए हैं, मुझे घूर-घूरकर देखते हैं। ऐसी क्या मुझमें कमी है या ऐसी क्या भूल है कि लोग जिससे मुझे घूर-घूरकर देखते हैं। मनोवैज्ञानिक खुद ही घूर-घूरकर देख रहा था, क्योंकि मुल्ला निपट नग्न खड़ा था। मुल्ला ने कहा—यह पूरा गांव पागल हो गया है,

मालूम पड़ता है। जहां से भी निकलता हूं, वहीं लोग घूर- घूरकर देखते हैं। आपका विश्लेषण क्या है?

मनोवैज्ञानिक ने कहा—ऐसा मालूम पड़ता है कि आप अदृश्य वस्त्र पहने हुए हैं, दिखाई न पड़नेवाले वस्त्र पहने हुए हैं। शायद उन्हीं वस्त्रों को देखने के लिए लोग घूर-घूरकर देखते होंगे।

मुल्ला ने कहा—बिलकुल ठीक है। तुम्हारी फीस क्या है?

मनोवैज्ञानिक ने सोचा ऐसा आदमी, इससे फीस ठीक से ले लेनी चाहिए। उसने सौ रुपए फीस के बताए।

मुल्ला ने खीसे में हाथ डाला, नोट गिने, दिए। मनोवैज्ञानिक ने कहा लेकिन हाथ में कुछ भी नहीं है।

मुल्ला ने कहा—यह अदृश्य नोट हैं। ये दिखाई नहीं पड़ते। घूर-घूरकर देखो तो दिखाई पड़ सकते हैं।

आदमी खुद नग्न घूमता हो बाजार में तो भी शक होता है कि दूसरे लोग घूर-घूरकर क्यों देखते हैं? और अपने घर से वह दूरबीन लगाकर आधा मील दूर किसी की खिड़की में देख सकता है और कह सकता है कि वह स्त्री मुझे प्रलोभित कर रही है। हम सब ऐसे ही हैं। हम सबका ताल-मेल ऐसा ही है व्यक्तित्व का। तो विनय तो कैसे पैदा होगी? विनय के पैदा होने का कोई उपाय नहीं है। अहंकार ही पैदा होगा। जब कोई किसी की हत्या भी कर देता है तो वह यह नहीं मानता कि हत्या में मैं अपराधी हूं। वह मानता है कि उस आदमी ने ऐसा काम ही किया था कि हत्या करनी पड़ी। दोषी वही है।

मुल्ला ने तीसरी शादी की थी। तीसरी पत्नी घर में आयी तो दो बड़ी-बड़ी तस्वीरें देखकर उसने पूछा कि ये तस्वीरें किसकी हैं? मुल्ला ने कहा—मेरी पिछली दो पत्नियों की। मुसलमान घर में तो चार पत्नियां तो हो ही सकती हैं। उसने पूछा—लेकिन वे हैं कहां? मुल्ला ने कहा—अब वे कहां? पहली मर गयी मशरूम पायजँनिंग से। उसने कुकुरमुत्ते खा लिए जोजहरीले थे। उसने पूछा—और दूसरी कहां है? मुल्ला ने कहा—वह भी मर गयी। फ्रैक्चर आफ द स्कल, खोपड़ी के टूट जाने से। बट द फाल्ट वाजँ हर। शी वुड नाट ईट मशरूम्स। भूल उसकी ही थी। मैं कितना ही कहूं वह मशरूम खाने को, वह कुकुरमुत्ते खाने को राजी नहीं होती थी। तो खोपड़ी के टूटने से मर गयी। खोपड़ी मुल्ला ने तोड़ी, क्योंकि वह मशरूम नहीं खाती थी। मगर दोष उसका ही था, भूल उसकी ही थी।

भूल सदा दूसरे की है। भूल शब्द ही दूसरे की तरफ तीर बनकर चलता है। वह कभी अपनी होती ही नहीं। और जब अपनी नहीं होती तो विनय का कोई भी कारण नहीं है। तो अहंकार, यह दूसरे की तरफ जाते हुए तीरों के बीच में निश्चिंत खड़ा होता है, बलशाली होता है। सघन होता है।

इसलिए महावीर ने प्रायश्चित को पहला अंतर-तप कहा है कि पहले तो यह जान लेना जरूरी होगा कि न केवल मेरे कृत्य गलत हैं बल्कि मैं ही गलत हूं। तीर सब बदल गए, रुख बदल गया। वे दूसरे की तरफ नहीं जाते, अपनी तरफ मुड़ गए। ऐसी स्थिति में हम्बलनेस, विनय को साधा जा सकता है। फिर भी महावीर ने निरअहंकारिता नहीं कही। महावीर कह सकते थे निरअहंकार, लेकिन महावीर ने इगोलैसनैस नहीं कही; कहा विनय। क्योंकि निरअहंकार नकारात्मक है और उसमें अहंकार की स्वीकृति है। अहंकार को इनकार करने के लिए भी उसका स्वीकार है। और जिसे हमें इनकार करने के लिए भी स्वीकार करना पड़े, उसका इनकार किया नहीं जा सकता। जैसे कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं मर गया हूं क्योंकि मैं मर गया हूं, यह कहने के लिए मैं हूं जिंदा, इसे स्वीकार करना पड़ेगा। जैसे कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं घर के भीतर नहीं हूं क्योंकि मैं घर के भीतर नहीं हूं, यह कहने के लिए भी मुझे घर के भीतर होना पड़ेगा।

निरअहंकार की साधना में यही भूल होती है कि अहंकारी मैं हूं, यह स्वीकार करना पड़ता है और इस अहंकार को निरअहंकार में बदलने की कोशिश करनी पड़ती है। बहुत डर तो यही है कि वह अहंकार ही अपने ऊपर निरअहंकार के वस्त्र ओढ़ लेगा और कहेगा

—देखो, मैं निरअहंकारी हूं। अहंकार है ही कहां मुझमें। अहंकार यह भी कह सकता है कि अहंकार मुझमें नहीं है। तब वह विनय नहीं रह जाती, वह अहंकार का ही एक रूप है—प्रच्छन्न, छिपा हुआ, गुप्त, और पहले प्रगट रूप से

ज्यादा खतरनाक है। इसलिए निरअहंकार नहीं कहा है जानकर; क्योंकि कोई भी अंतर-तप अगर निषेधात्मक रूप से पकड़ा जाए तो सूच्म हो जाएगी वह बीमारी जिसको आप हटाने चले थे, मिटाना कठिन होगा। हां, विनय आ जाए तो आ प निरअहंकारी हो जाएंगे। लेकिन निरअहंकारी होने की कोशिश अहंकार को नष्ट नहीं कर पाती। अहंकार इतने विनम्र रूप ले सकता है जिसका हिसाब लगाना कठिन है। अहंकार कह सकता है—मैं तो कुछ भी नहीं, आपके पैरों की धूल हूं। और तब भी इस घोषणा में बच सकता है। इसलिए बहुत बारीक और बहुत सूच्म भेद है।

विनय है पाजिँटिव। महावीर विधायक जोर दे रहे हैं कि आपके भीतर वह अवस्था जन्मे जहां दूसरा दोषी नहीं रह जाता। और जिस क्षण मुझे अपने दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं, उस क्षण विनय बहुत-बहुत रूपों में बरसती है। एक तो जो व्यक्ति अपने दोष नहीं देखता वह दूसरे के दोष बहुत कठोरता से देखता है। जिस व्यक्ति को अपने दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं वह दूसरे के दोषों के प्रति बहुत सदय हो जाता है; क्योंकि वह जानता है, मेरे भीतर भी यही है।

सच तो यह है कि जिस आदमी ने चोरी न की हो उस आदमी को चोरी के संबंध में निर्णय का अधिकार नहीं होना चाहिए। क्योंकि वह समझ ही नहीं पाएगा कि चोरी मनुष्य कैसी स्थितियों में कर लेता है। लेकिन हम चोर को कभी चोर का निर्णय करने को न बैठाएंगे। हम उसको बिठाएंगे जिसने कभी चोरी नहीं की है। उससे जो भी होगा वह अन्याय होगा। अन्याय इसलिए होगा कि वह अति कठोर होगा। वह जो सदयता आनी चाहिए—अपने भीतर की कमजोरी को जानकर दूसरे की कमजोरी भी स्वाभाविक है—ऐसा जो सहृदय भाव आना चाहिए वह उसके भीतर नहीं होगा। इसलिए जानकर आप हैरान होंगे कि तथाकथित जिन्हें हम पापी कहते हैं वे ज्यादा सहृदय होते हैं। और जिन्हें हम महात्मा कहते हैं, वे इतने सहृदय नहीं होते। महात्माओं में ऐसी दुष्टता का और ऐसी कठोरता का ि छपा हुआ जहर मिलेगा, जैसा कि पापियों में खोजना कठिन है।

यह बहुत उल्टा दिखाई पड़ता है, लेकिन इसके पीछे कारण है। यह उल्टा नहीं है। पापी दूसरे पापियों के प्रति सदय हो जाता है क्योंकि वह जानता है—मैं ही कमजोर हूं तो मैं किसकी कमजोरी की निंदा करने जाऊं! इसलिए किसी पापी ने दूसरे पापी के लिए नरक का आयोजन नहीं किया। पुण्यात्मा करते हैं। उनका मन नहीं मानता कि उनको छोड़ा जा सके। और इस बात की पूरी सम्भावना है कि उनके पुण्य करने में रस केवल इतना ही हो कि वे पापियों को नीचा दिखा सकते हैं। अहंकार ऐसे रस लेता है।

तो एक तो जैसे ही तीर अपनी तरफ मुड़ जाते हैं चेतना के, और अपनी भूलें, सहज भूलें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं, वैसे ही दूसरे की भूलों के प्रति एक अत्यंत सदय भाव आ जाता है। तब हम जानते हैं कि दूसरे को दोषी कहना व्यर्थ है। इसलिए नहीं कि वह दोषी न होगा या होगा, इसलिए कि दोष इतने स्वाभाविक हैं। मुझमें भी हैं। आ ैर जब स्वयं में दोष दिखाई पड़ने शुरू होते हैं तो दूसरों से अपने को श्रेष्ठ मानने का कोई कारण नहीं रह जाता।

लेकिन जैन शास्त्र जो परिभाषा करते हैं विनय की वह बड़ी और है। वे कहते हैं—जो अपने से श्रेष्ठ हैं, उनका आदर विनय है। गुरुजनों का आदर, माता-पिता का आदर, श्रेष्ठ-जनों का आदर, साधुओं का आदर, महाजनों का आदर, लोकमान्य पुरुषों का आदर—इनका आदर विनय है। यह बिलकुल ही गलत है, यह आमूल गलत है। यह जड़ से गलत है। यह बात ठीक नहीं है। यह इसलिए ठीक नहीं है कि जो व्यक्ति दूसरे को श्रेष्ठ देखेगा वह किसी को अपने से निकृष्ट देखता ही रहेगा। यह असंभव है कि आपको कोई व्यक्ति श्रेष्ठ मालूम पड़े और कोई व्यक्ति ऐसा न मालूम पड़े जो आपसे निकृष्ट है क्योंकि तराजू में एक पलड़ा नहीं होता है।

आप दूसरे को जब तक श्रेष्ठ देख सकते हैं, यू कैन कम्पेयर, आप तुलना कर सकते हैं। आप कहते हैं कि यह आदमी श्रेष्ठ है क्योंकि मैं चोरी करता हूं, यह आदमी चोरी नहीं करता। लेकिन तब आप इस बात को देखने से कैसे बचेंगे कि कोई आदमी आपसे भी ज्यादा चोर हो। आप कह सकते हैं—यह आदमी साधु है, लेकिन तब आप यह देखने से कैसे बचेंगे कि दूसरा आदमी असाधु है। जब तक आप साधु को देख सकते हैं, तब तक असाधु को देखना पड़ेगा। और जब तक आप श्रेष्ठ को देख सकते हैं तब तक अश्रेष्ठ आपकी आंखों में मौजूद रहेगा। तुलना के दो पलड़े होते हैं।

इसलिए मैं नहीं मानता हूं कि महावीर का यह अर्थ है कि अपने से श्रेष्ठजनों को आदर क्योंकि फिर निकृष्टजनों को अनादर देना ही पड़ेगा। यह बहुत मजेदार बात है। यह हमने कभी नहीं सोचा। हम इस तरह सोचते नहीं। और जीवन बहुत जटिल है और हमारा सोचना बहुत बचकाना है। हम कहते हैं श्रेष्ठजनों को आदर। लेकिन निकृष्ट जन फिर दिखाई पड़ेंगे। जब आप सीढ़ियों पर खड़े हो गए तब पक्का मानना, कि आपको जब आपसे आगे कोई सीढ़ी पर दिखाई पड़ेगा तो जो पीछे है वह कैसे दिखाई न पड़ेगा। और अगर पीछे का दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा तो जो आपके आगे है, वह आपसे आगे है यह आपको कैसे मालूम पड़ेगा? वह पीछे की तुलना में ही आगे मालूम पड़ता है। अगर दो ही आदमी खड़े हैं तो कौन आगे है, कौन है आगे?

मुल्ला के जीवन में बड़ी प्रीतिकर एक घटना है। कुछ विद्यार्थियों ने आकर मुल्ला को कहा कि कभी चलकर हमारे विद्यापीठ में हमें प्रवचन दो।

मुल्ला ने कहा—चलो अभी चलता हूं, क्योंकि कल का क्या भरोसा? और शिष्य बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। मुल्ला ने अपना गधा निकाला, जिस पर वह सवारी करता था, लेकिन गधे पर उल्टा बैठ गया। बा जार से यह अदभुत शोभा यात्रा निकली। मुल्ला गधे पर उल्टा बैठा, विद्यार्थी पीछे।

थोड़ी देर में विद्यार्थी बेचैन होने लगे। क्योंकि सड़क के लोग उत्सुक होने लगे और मुल्ला के साथ-साथ विद्यार्थी भी फंस गए। लोग कहने लगे—यह क्या मामला है? यह किस पागल के पीछे जा रहे हो? तुम्हारा दिमाग खराब है?

आखिर एक विद्यार्थी ने हिम्मत जुटाकर कहा कि मुल्ला, यह क्या ढंग है बैठने का? आप कृपा करके सीधे बैठ जाएं। तुम्हारे साथ हमारी भी बदनामी हो रही है।

मुल्ला ने कहा—लेकिन मैं सीधा बैठूंगा तो बड़ी अविनय हो जाएगी।

उसने कहा—कैसे अविनय?

मुल्ला ने कहा—अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके बैठूं तो तुम्हारा अपमान होगा, और अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके न बैठूं तो तुम मेरे आगे चलो और मेरा गधा पीछे चले तो मेरा अपमान होगा। दिस इज द ओनली वे टु कम्प्रोमाइज। कि मैं गधे पर उल्टा बैठूं, तुम्हारे आगे चलूं, हम दोनों के मुंह आमने-सामने रहें। इसमें दोनों की इज्जत की रक्षा है। और लोगों को कहने दो जो कह रहे हैं। हम अपनी इज्जत बचा रहे हैं दोनों।

ये जो हमारी विनय की धारणाएं हैं, श्रेष्ठजन कौन है, आगे कौन चल रहा है, यह निश्चित ही निर्भर करेंगी कि पीछे कौन चल रहा है। और जितना आप अपने श्रेष्ठजन को आदर देंगे, उसी मात्रा में आप अपने से निकृष्ट जन को अनादर देंगे। मात्रा बराबर होगी, क्योंकि जिंदगी प्रति वक्त संतुलन करती है। अन्यथा बेचैनी पैदा हो जाती है। तो जब आप एक साधु खोजेंगे, तो निश्चित रूप से आप एक असाधु को खोजेंगे, और तुलना बराबर हो जाएगी। जब भी आप एक भगवान खोजेंगे, तब आप एक भगवान खोजेंगे जिसकी निंदा आपको अनिवार्य होगी। जो लोग महावीर को भगवान मानते हैं, वे बुद्ध को भगवान नहीं मान सकते; वे कृष्ण को भगवान नहीं मान

सकते। जो लोग कृष्ण को भगवान मानते हैं, वे लोग महावीर को, बुद्ध को भगवान नहीं मान सकते। क्यों नहीं मान सकते? नहीं मान सकते इसलिए कि संतुलन करना पड़ता है जिंदगी में। एक को पल्ले पर भगवान रख दिया तो दूसरे को रखना पड़ेगा जो भगवान नहीं है—दूसरे पल्ले पर। तभी संतुलन पूरा होगा

जैन अगर किताबें भी लिखते हैं बुद्ध के बाबत—क्योंकि बुद्ध और महा वीर समकालीन थे और उनकी शिक्षाएं कई अथोच में समान मालूम पड़ती हैं—तो मैंने अब तक एक हिम्मतवर जैन नहीं देखा जिसने बुद्ध को भगवान लिखने की हिम्मत की हो। अगर साथ-साथ लिखते भी हैं तो वे लिखते हैं—भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध। बड़े मजे की बात है। बहुत हिम्मतवर हैं ये लोग जो महात्मा बुद्ध लिखते हैं। लेकिन उनकी भी हिम्मत नहीं जुट पाती कि वे भगवान बुद्ध कह सकें। भगवान कृष्ण कहना तो बहुत ही मुश्किल मामला है, क्योंकि शिक्षाएं बहुत विपरीत हैं। तो कृष्ण को तो जैनों ने नरक में डाल रखा है। उनके हिसाब से इस समय कृष्ण नरक में हैं। क्योंकि युद्ध इसी आदमी ने करवाया।

और हिंदुओं ने तो महावीर की कोई गणना ही नहीं की, एक किताब में उल्लेख नहीं किया महावीर का। यानी नरक में डालने योग्य भी नहीं माना। आप यह समझना। कोई हिसाब ही नहीं रखा। अगर बौद्धों के ग्रंथ नष्ट हो जाएं तो जैनों के पास अपने ही ग्रंथों के सिवाय महावीर का हिंदुस्तान में कोई उल्लेख नहीं होगा। हिंदुओं ने तो गणना भी नहीं की कि यह आदमी कभी हुआ भी है। इस भांति महावीर जैसा आदमी पैदा हो, हिंदुस्तान में पैदा हो, चारों तरफ हिंदुओं से भरे समाज में पैदा हो और हिंदुओं का एक भी शास्त्र उल्लेख न कर पाए, यह जरा सोचने जैसा मामला है।

इसलिए जब पहली दफा पाश्चात्य विद्वानों ने महावीर पर काम शुरू किया तो उन्हें शक हुआ कि यह आदमी कभी हुआ नहीं होगा। क्योंकि हिंदुओं के ग्रंथों में कोई उल्लेख न हो, यह असम्भव है। तो उन्होंने सोचा कि शायद यह बुद्ध का ही खयाल है जैनों को। यह बुद्ध को ही माननेवाले दो तरह के लोग हैं, और बुद्ध और महावीर को वह जो विशेषण दिए गए वह कई जगह समान हैं। जैसे बुद्ध को भी जिन कहा गया है, महावीर को भी जिन—जिसने अपने को जीत लिया। महावीर को भी बुद्ध पुरुष कहा गया है, बुद्ध को भी बुद्ध कहा गया है। तो शायद, यह बुद्ध का ही भ्रम है। इसलिए पश्चिम के विद्वानों ने तो महावीर को मानने से इनकार कर दिया—कर देने का कारण था कि हिन्दू बड़ा समाज है। इसमें कहीं कोई खबर ही नहीं कि महावीर हुए!

ध्यान रहे, जैनों को कृष्ण को स्वीकार करना पड़ा—भला नरक में डालना पड़ा हो। अस्वीकार करना मुश्किल था। इतना बड़ा व्यक्ति था, इतने बड़े समाज का आदर और सम्मान था। लेकिन हिंदू चाहें तो निगलेक्ट कर सकते हैं, उपेक्षा कर सकते हैं, कोई जरूरत नहीं है उल्लेख करने की। पर आश्चर्यजनक है यह कि एक को भगवान कोई मान ले तो फिर दूसरे को मानना बड़ा कठिन हो जाता है। कठिनाई यही हो जाती है कि तौल खड़ी हो गयी, अब दूसरे को दूसरे पलड़े पर रखना पड़ेगा और संतुलन बराबर बिठाना होगा।

हम सब संतुलन बिठा रहे हैं। हम सब तुलनाएं कर रहे हैं। इसलिए यह आश्चर्यजनक घटना घटती है कि इस पृथ्वी पर इतने-इतने अदभुत लोग पैदा होते हैं, लेकिन उन अदभुत लोगों में से हम एक का ही फायदा उठा पाते हैं—एक का ही, सबका नहीं उठा पाते। सबके हम हकदार हैं। हम बुद्ध के उतने ही वसीयतदार हैं जितने कृष्ण के, जितने मुहम्मद के, जितने क्राइस्ट के, जितने नानक के या कबीर के। लेकिन नहीं, हम वसीयत छोड़ देंगे। हम तो एक के हकदार होंगे, शेष सबको इनकार कर देंगे। हमें इनकार करना पड़ेगा, क्योंकि हम जब स्वीकार करते हैं श्रेष्ठ को, तो हमें किसी को निकृष्ट की जगह रखना पड़ेगा, नहीं तो श्रेष्ठ को तौलने का मापदण्ड कहां होगा। इससे विनय पैदा नहीं होती।

जो आदमी कहता है कि मैं महावीर के प्रति विनयपूर्ण हूं, लेकिन बुद्ध के प्रति नहीं, वह समझ ले कि वह विनीत नहीं है। और यह

विनय : परिणति निरअहंकारिता की

भी अपने अहंकार को भरने का ही एक ढंग है क्योंकि महा वीर से अपने को जोड़ रहा हूं, महावीर भगवान हैं तो मैं भगवान से जुड़ता हूं। और तब दूसरे जो लोग बुद्ध से अपने को जोड़कर अहंकार को भर रहे हैं, उनके अहंकार से मेरी टक्कर शुरू हो जाती है। तो मुझे अड़चन होने लगती है कि बुद्ध कैसे भगवान हो सकते हैं। क्योंकि अगर बुद्ध भगवान हैं तो बुद्ध को माननेवाले भी श्रेष्ठ हो जाते हैं। भगवान तो सिर्फ महावीर ही हैं, और उनको माननेवाले श्रेष्ठ हैं, आर्य हैं। वे ही नमक हैं इस पृथ्वी पर, बाकी सब फीके हैं। सारी दुनिया में यही पागलपन पैदा होता है। यह हमारे अहंकार से पैदा हुआ रोग है। विनय का यही अर्थ नहीं है कि आप अपने से श्रेष्ठ को आदर दें।

दूसरी बात यह भी ध्यान रखने की है कि अगर श्रेष्ठ है वह आदमी, इसलिए आप आदर देते हैं तो आपके आदर देने में कोई गुण कहां रहा? इसे भी थोड़ा खयाल में ले लें। अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है, तो आदर आपको देना पड़ता है, आप देते नहीं। आपका क्या गुण है? देने में आपका क्या रूपांतरण हो रहा है? अगर एक व्यक्ति श्रेष्ठ है तो आपको आदर देना पड़ता है। ध्यान रहे, आदर देना पड़ता है। वह मजबूरी बन जाती है। वह आपका गुण नहीं है। आपका गुण न हो अगर, तो आपका अंतर-तप कैसे होगा? अंतर-तप तो आपके भीतरी गुणों को जगाने की बात है।

अगर मुझे कोहिनूर सुंदर लगता है, तो वह कोहिनूर का सौंदर्य होगा। लेकिन जिस दिन मुझे सौंदर्य कंकड़-पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगे उतना ही, जितना कोहिनूर में दिखता है—सड़क पर पड़े हुए पत्थर में भी दिखाई पड़ने लगे, उस दिन अब कोहिनूर का गुण न रहा, अब मेरा गुण हुआ। जिस दिन मुझे सबके प्रति विनय मालूम होने लगे, बिना तौल के, उस दिन गुण मेरा है। और जब तक मैं तौल-तौलकर आदर देता हूं, तब तक मेरा गुण नहीं है, मजबूरी है। जो श्रेष्ठ है उसे आदर देना पड़ता है। श्रेष्ठ को आदर देने के लिए आपको कुछ प्रयास, कोई श्रम, कोई परिवर्तन नहीं करना होता है। वह आ पका तप कैसे हुआ? वह श्रेष्ठ व्यक्ति का भला तप रहा हो कि वह श्रेष्ठ कैसे हुआ, लेकिन आप उसको आदर देते हैं तो वह आपका तप कैसे हुआ, आपकी साधना कैसे हुई? सूरज निकलता है तो आप नमस्कार कर लेते हैं। फूल खिलता है तो आप गीत गा देते हैं। आप इसमें कहां आते हैं! आपके बिना भी फूल खिल जाता और आपके गीत से कुछ फूल ज्यादा नहीं खिलता और आपके बिना भी सूरज निकल जाता, और आपके नमस्कार से सूरज की चमक नहीं बढ़ती। आपका कहां इसमें मूल्य है? आप इसमें कहां आते हैं? आप इसमें कहीं भी नहीं आते।

मुल्ला नसरुद्दीन मनोवैज्ञानिक से सलाह लेता था, निरंतर। क्योंकि उसे निरंतर चिंताएं, तकलीफें, मन में न मालूम कैसे जाल खड़े हो जाते थे। सबके होते हैं। उसने मनोवैज्ञानिक को जाकर कहा कि मैं बहुत परेशान हूं, मुझे इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स है, हीनता की ग्रंथि सताती है। सुल्तान निकलता है रास्ते से तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूं। एक महाकवि गांव में आकर गीत गाता है तो मुझे लगता है कि मैं हीन हूं। नगर सेठ की हवेली ऊंची उठती चली जाती है तो मुझे लगता है, मैं हीन हूं। एक तार्किक तर्क करने लगता है तो मुझे लगता है, मैं हीन हूं। मैं इस हीनता की ग्रंथि से मुक्त कैसे होऊं? उस मनोवैज्ञानिक ने कहा—डोंट सफर अननेसेसरिली। यू आर नाट सफरिंग फ्राम इनफिरियारिटी काम्प्लेक्स, यू आर इनफिरियर। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा—आपको हीनता की ग्रंथि से परेशानी नहीं हो रही है, आप हीन हैं। इसमें कोई बीमारी नहीं है, यह तथ्य है।

ध्यान रहे, जब आप किसी के सामने तथ्य की तरह हीन होते हैं, तो आ पको आदर देना पड़ता है। यह कोई आप देते नहीं है। अब एक कालिदास शाकुंतल पढ़ता हो और आपको आदर देना पड़े, और एक तानसेन सितार बजाता हो और आपका सिर झुक जाए तो आप इस भूल में मत पड़ना कि आपने आदर दिया है। आपको आदर देना पड़ा है। लेकिन हमारा मन, जहां हमें देना पड़ता है वहां यह मानता है कि हमने दिया है, यह भी अपने अहंकार की पुष्टि है, मैंने दिया है आदर।

तो महावीर यह नहीं कह सकते कि श्रेष्ठजनों के प्रति आदर, क्योंकि वह होता ही है। उसका कोई मूल्य ही नहीं। बिना किसी भेदभाव के आदर, तब विनय पैदा होती है। श्रेष्ठ का सवाल नहीं है—जीवन के प्रति आदर, अस्तित्व के प्रति आदर, जो है उसके प्रति आदर। वह है, यही क्या कम है! एक पत्थर है, एक फूल है, एक सूरज है, एक आदमी है, एक चोर है, एक साधु है, एक बेईमान है—ये हैं। इनका होना ही पर्याप्त है। और इनके प्रति जो आदर है, अगर यह आदर सम्भव हो जाए तो आपका अंतर-तप है। तब यह गुण आपका है। तब आप परिवर्तित होते हैं।

फिर दूसरी बात यह कैसे तय करेंगे कि कौन श्रेष्ठ है। अगर यह जो शास्त्र कहते हैं—श्रेष्ठ, महाजन, गुरुजन कैसे श्रेष्ठ कहेंगे? कौन है गुरु? कौन है गुरु? क्या है उपाय जांचने का आपके पास? कैसे तौलिएगा? क्योंकि अनेक लोग महावीर के पास आकर लौट जाते हैं और कह जाते हैं कि ये गुरु नहीं हैं। अनेक लोग क्राइस्ट को सूली पर लटका देते हैं यह मानकर कि आवारा, लफंगा है। इसको हटाना दुनिया से जरूरी है, नुकसान पहुंचा रहा है।

और ध्यान रहे, जिन लोगों ने जीसस को सूली दी थी वे उस समय के भले और श्रेष्ठजन थे—अच्छे लोग थे, न्यायाधीश थे, धर्मगुरु थे, धनपति थे, राजनेता थे। उस समय के जो भले लोग थे उन्होंने ही जीसस को सूली दी थी। और उनकी सूली देना, देने में अगर हम तौलने चले तो वे ठीक ही मालूम पड़ते हैं, क्योंकि जीसस वेश्याओं के घर में ठहर गए थे। अब जो आदमी वेश्याओं के घर में ठहर गया हो वह आदमी श्रेष्ठ कैसे हो सकता है। क्योंकि जीसस शराबघरों में बैठकर शराबियों से दोस्ती कर लेते थे और जो शराबघरों में बैठता हो, उसका क्या भरोसा? क्योंकि जीसस उन लोगों के घरों में ठहर जाते थे जो बदनाम थे; तो बदनाम आदमियों से जिसकी दोस्ती हो, वह आदमी तो अपने संग-साथ से पहचाना जाता है। जो अंत्यज थे, समाज से बाच्हय कर दिए गए थे, उनके बीच भी जीसस की मैत्री थी, निकटता थी। तो यह आदमी भला कैसे था? फिर यह आदमी आ ती हुई परंपरा का विरोध करता था, मंदिर के पुरोहितों का विरोध करता था। यह कहता था कि जो साधु दिखाई पड़ रहे हैं, ये साधु नहीं हैं। तो यह आदमी भला कैसे था? तो उस समाज के भले लोगों ने इस आदमी को सूली पर लटका दिया, और आज हम जानते हैं कि बात कुछ गड़बड़ हो गयी।

सुकरात को जिन लोगों ने जहर दिया था वे समाज के श्रेष्ठजन थे। कोई बुरे लोगों ने जहर नहीं दिया था। अच्छे लोगों ने जहर दिया था। और इसीलिए दिया था कि सुकरात की मौजूदगी समाज की नैतिकता को नष्ट करने का कारण बन सकती है। क्योंकि सुकरात संदेह पैदा कर रहा था। तो जो भले जन थे वे चिंतित हुए। वे चिंतित हुए कि इससे कहीं नयी पीढ़ी नष्ट न हो जाए। तो सुकरात को जहर देने के पहले उन्होंने एक विकल्प दिया था कि सुकरात अगर तुम एथेंस छोड़कर चले जाओ और व्रत लो कि अब दुबारा एथेंस में प्रवेश नहीं करोगे तो हम तुम्हें मुक्त छोड़ दे सकते हैं। लेकिन हम तुम्हें एथेंस के समाज को नष्ट नहीं करने देंगे। या तुम यह वायदा करो कि तुम अब एथेंस में शिक्षा नहीं दोगे, तो हम तुम्हें एथेंस में ही रहने देंगे। लेकिन तुम अब जबान बंद रखोगे क्योंकि तुम्हारे शब्द नयी पीढ़ी को नष्ट कर रहे हैं। जो लोग थे, वे भले थे। स्वभावतः वे नयी पीढ़ी के लिए चिंतित थे। सब भले लोग नयी पीढ़ी के लिए चिंतित होते हैं। और उनकी चिंता से नयी पीढ़ी रुकती नहीं, बिगड़ती ही चली जाती है।

धनी कौन है, श्रेष्ठ कौन है? धन है जिसके पास वह? पांडित्य है जिसके पास वह? यश है जिसके पास वह? तो फिर यश जिस रास्तों से यात्रा करता है उन रास्तों को देखें तो पता चलेगा, यश बहुत अश्रेष्ठ रास्तों से उपलब्ध होता है। लेकिन सफलता सभी अश्रेष्ठताओं को पोंछ डालती है। धन कोई साधु मागोच से उपलब्ध नहीं होता है। लेकिन उपलब्धि पुराने इतिहास को नया रंग दे देती है। कौन है श्रेष्ठ? समाज उसे श्रेष्ठ कहता है जो समाज के रीति, नियम मानता है। लेकिन इस जगत में जिन लोगों को हम पीछे श्रेष्ठ कहते हैं वे वे ही ल

विनय : परिणति निरअहंकारिता की

लेकिन अपने समाज में नहीं थे। क्योंकि वे समाज के रीति- नियम तोड़ रहे थे, वे बगावती थे, वे दुश्मन थे समाज के।

और आज भी जो महावीर को श्रेष्ठ कहता है, अगर कोई बगावती होगा खड़ा तो उसको कहेगा, यह आदमी खतरनाक है। इसलिए मरे हुए तीथच्कर ही आदृत होते हैं। जीवित हुआ तीथच्कर को आदृत होना बहुत मुश्किल है। क्योंकि जीवित तीथच्कर बगावती होता है। मरा हुआ तीथच्कर मरने की वजह से धीरे-धीरे स्वीकृत हो जाता है। एस्टाब्लिशमेंट का, स्थापित, न्यस्त मूल्यों का, हिस्सा हो जाता है। फिर कोई कठिनाई नहीं रह जाती। अब महावीर से क्या कठिनाई है? महावीर से जरा भी कठिनाई नहीं है।

महावीर नग्न खड़े थे और महावीर के शिष्य कपड़े की दुकानें कर रहे हैं पूरे मुल्क में। कोई कठिनाई नहीं है। महावीर के शिष्य जितना कपड़ा बेचते हैं कोई और नहीं बेचता। मेरे तो एक निकट संबंधी हैं, उनकी दुकान का नाम है, दिगंबर क्लाथ शाप। दिगंबर क्लाथ शाप? नंगों की कपड़ों की दुकान? महावीर सुनें तो बड़े हैरान होंगे कि और कोई नाम नहीं मिला तुम्हें? अब कोई दिक्कत नहीं, इससे दिक्कत ही नहीं आती कि दिगंबर और क्लाथ शाप में कोई विरोध है। लेकिन अगर महावीर नंगे दुकान के सामने खड़े हो जाएं तो विरोध साफ दिखाई पड़ेगा कि यह आदमी नंगा खड़ा है, हम कपड़े बेच रहे हैं। हम इसके शिष्य हैं, बात क्या है? अगर नग्न होना पुण्य है तो कपड़े बेचना पाप हो जाएगा, क्योंकि दूसरों को कपड़े पहनाना अच्छी बात नहीं है। फिर नाहक उनको पाप में ढकेलना है। नहीं, लेकिन मरे हुए महावीर से बाधा नहीं आती। खयाल ही नहीं आता। जब मैंने उन्हें याद दिलाया, उन्होंने कहा—आश्चर्य, हम तो तीस साल से यह बोर्ड लगाए हुए हैं और हमें कभी खयाल ही नहीं आया कि दिगंबर में और कपड़े में कोई विरोध है।

नहीं, खयाल ही नहीं आता। मुर्दा तीथच्कर हमारी व्यवस्था में सम्मि लित हो जाता है। हम उसको, उसकी नोकों को झाड़ देते हैं; उसकी बगावत को गिरा देते हैं; शब्दों पर नया रंग पालिश कर देते हैं, फिर वह ठीक है। लेकिन जिसको इतिहास पीछे से श्रेष्ठ कहता है उसका अपना समय उसे हमेशा उपद्रवी कहता है। किसको आदर? फिर श्रेष्ठ को जांचने का मार्ग भी तो कोई नहीं है। महाजन कौन है! महाजनों येन गतः स पंथा—जिस मार्ग पर महाजन जाते हैं, वही मार्ग है।

लेकिन महाजन कौन है? मुहम्मद महाजन हैं? महावीर को माननेवाला कभी नहीं मान पाएगा कि यह आप क्या बात कर रहे हैं। तलवार लिए हुए हाथ में जो आदमी खड़ा है, वह महाजन है? कौन है महा जन? मुहम्मद को माननेवाला कभी न मान पाएगा कि महावीर महाजन हैं। क्योंकि वह कहता है— जो आदमी बुराई के खिलाफ तलवार भी नहीं उठाता, वह आदमी नपुंसक है, क्लीव है। जब इतनी बुराई चलती है तो तलवार उठनी चाहिए। नहीं तो तुम क्या हो, तुम मुदच हो। धर्म तो जीवंत होना चाहिए। धर्म के हाथ में तो तलवार होगी, इसलिए मुहम्मद के हाथ में तलवार है। हालांकि तलवार पर ि लखा है 'शांति मेरा संदेश है'। इस्लाम का मतलब शांति होता है। इस्लाम शब्द का मतलब शांति होता है। जैनी यह कभी सोच ही नहीं सकता कि इस्लाम और शांति, इनका कोई संबंध है? लेकिन मुहम्मद कहते हैं—जो शांति तलवार की धार नहीं बन सकती, वह बच नहीं सकती। बचेगी कैसे?

कौन है श्रेष्ठ? कैसे तौलिएगा? इसलिए हमने तौलने का एक सरल रास्ता निकाला है, जिसमें तौलना नहीं पड़ता। हम जन्म से तौलते हैं। अगर मैं जैन घर में पैदा हुआ तो महावीर श्रेष्ठ; मुसलमान घर में पैदा हुआ तो मुहम्मद श्रेष्ठ। यह तौलने से बचने की तरकीब है। यह ऐसा उपाय खोजना है जिसमें मुझे तौलना ही नहीं पड़ता। अब जन्म तो हो गया, वह नियति बन गयी। उससे तुल जाती है बात कि श्रेष्ठ कौन है। आप सब इसी तरह तौल रहे हैं कि कौन श्रेष्ठ है, किसको आदर देना है! जब आप जैन साधु को आदर देते हैं तो आप यह जानकर आदर देते हैं कि वह साधु है या यह जानकर आदर देते हैं कि वह जैन है।

साधु को तौलने का उपाय कहां है? कैसे तौलिएगा? एक मुंहपट्टी निकालकर अलग कर दे और

महावीर-वाणी भाग : 1

पछताएंगे कि इस आदमी का पैर क्यों छुआ? मुंहपट्टी नीचे रख दे—अपने मंदिर में, अपने स्थानक में ठहरने न देंगे। मुंह पट्टी लगा ले—स्वागत! आप मुंहपट्टी को देख रहे हैं कि आदमी को? लगता ऐसा है कि मुंहपट्टी ही असली चीज है। यानी ऐसा नहीं कहना चाहिए, आदमी मुंहपट्टी लगाए हुए है, ऐसा कहना चाहिए कि मुंहपट्टी आदमी को लगाए हुए है। क्योंकि असली चीज मुंहपट्टी है। आखिर में निर्णय वही करती है। आदमी तो निर्णायक है नहीं। अगर बुद्ध भी आ जाएं आपके मंदिर में तो आप उनको उतना आदर नहीं देंगे जितना मुंहपट्टी लगाए हुए एक बुद्धू को देंगे। क्योंकि मुंहपट्टी कहां है?

यह तरकीबें हमने क्यों खोजी हैं? इसका कारण है। क्योंकि कोई मापदंड का उपाय नहीं है। इनसे हम रास्ता बना लेते हैं। तौलने का कोई उपाय नहीं है, यह आपकी मजबूरी है। यह आदमी की मजबूरी है कि श्रेष्ठ कौन है, इसके लिए कोई तराजू नहीं है। तो हम फिर ऊपरी चिन्ह बना लेते हैं, उनसे तौलने में आसानी हो जाती है। पीछे के आदमी की हम बकवास छोड़ देते हैं। हमारे लिए तो निपटारा हो गया कि यह आदमी साधु है, पैर छुओ, घर जाओ, विनय करो।

लेकिन, महावीर इस तरह की बचकानी बात नहीं कह सकते। यह चाइल्डिश है। महावीर यह नहीं कह सकते हैं कि तुम श्रेष्ठ को आदर देना, क्योंकि श्रेष्ठ को आदर कैसे दोगे? श्रेष्ठ कौन हैं, तुम कैसे जानोगे? और जब तुम श्रेष्ठ को जानने जाओगे तो तुम्हें निकृष्ट को जानना पड़ेगा। और जब तुम श्रेष्ठ की परीक्षा करोगे तो तुम कैसे परीक्षा करोगे? उसके सब पापों का हिसाब-किताब रखना पड़ेगा कि रात में पानी तो नहीं पी लेता; कि छिपाकर कुछ खा तो नहीं लेता; कि साबुन की बटिया तो नहीं अपने झोले में दबाए हुए है; टूथपेस्ट तो नहीं करता है; यह सब रखना पड़ेगा पता! यह सब पता रखना पड़ेगा आैर यह सब पता वही रख सकता है जिसका निंदा में रस हो, जो दूसरे को निकृष्ट सिद्ध करने चला हो। यह वह आदमी नहीं कर सकता जो विनयपूर्ण है। इससे क्या प्रयोजन है उसे कि कौन आदमी टूथपेस्ट रखता है कि नहीं रखता है। इसका चिंतन ही बताता है कि यह जो आदमी सोच रहा है उसमें विनय नहीं है। महावीर यह नहीं कहते।

महावीर यह कहते हैं कि विनय एक आंतरिक गुण है। बाहर से उसका कोई संबंध नहीं है। अनकंडीशनल है, बेशर्त है। वह यह नहीं कहता कि तुम ऐसे होओगे तो मैं आदर दूंगा। वह यह कहता है कि तुम हो, पर्याप्त है। मैं तुम्हें आदर दूंगा क्योंकि आदर आंतरिक गुण है और आदर मनुष्य को अंतरात्मा की तरफ ले जाता है। मैं तुम्हें आदर दूंगा बेशर्त। तुम शराब पीते हो कि नहीं पीते हो, यह सवाल नहीं है; तुम जीवन हो, यह काफी है। और यह पूरा अस्तित्व तुम्हें िजला रहा है। सूरज तुम्हें रोशनी दे रहा है, वह इनकार नहीं करता कि तुम शराब पीते हो। हवाएं आक्सीजन देने से मुकरती नहीं कि तुम बेईमान हो। आकाश कहता नहीं कि हम तुम्हें जगह नहीं देंगे क्योंकि तुम आदमी अच्छे नहीं हो। जब यह पूरा अस्तित्व तुम्हें स्वीकार करता है तो मैं कौन हूं जो तुम्हें अस्वीकार करूं! तुम हो, इतना काफी है। मैं तुम्हें आदर देता हूं। मैं तुम्हें सम्मान देता हूं।

यह जीवन के प्रति सहज सम्मान का नाम विनय है—अकारण, खोजबीन के बिना, क्योंकि खोजबीन हो नहीं सकती। वह जो करता है, वह आदमी विनीत नहीं होता—बेशर्त। अगर मैं कहूं कि तुम मेरी शतेच पूरी करो इतनी, तब मैं तुम्हें आदर दूंगा; तो मैं उस आदमी को आदर नहीं दे रहा हूं। मैं अपनी शतोच को आदर दे रहा हूं। और जो आदमी मेरी शतेच पूरी करने को राजी हो जाता है वह आदर योग्य नहीं है, वह गुलाम है। वह आदर पाने के लिए ही बेचारा शतेच पूरी करने को राजी है। हम अपने साधुओं से कहते हैं, तुम ऐसा करो, पैदल चलो, इधर मत जाओ, उधर मत जाओ तो हम तुम्हें आदर देंगे—ये सब अनकही शतेच हैं। अगर वह उनमें गड़बड़ करता है, आदर विलीन हो जाता है। अगर इनको मानकर चलता है, आदर जारी रहता है। और इसलिए एक दुर्घटना घटती है कि साधुओं में जो प्रतिभा होनी चाहिए वह धीरे-धी□

विनय : परिणति निरअहंकारिता की

क्योंकि जड़ बुद्धि ही आपके इतने नियमों को मान सकते हैं, बुद्धिमान आपके इतने नियमों को नहीं मान सकता।

इसीलिए यह दुर्घटना घटती है कि जब भी सच में कोई साधु पुरुष पैदा होता है तो उसे नया धर्म खड़ा करना पड़ता है क्योंकि कोई पुराने धर्म में उसके लिए जगह नहीं होती। इसका कारण है। अब एक नानक पैदा हो जाए तो उसका नया धर्म अनिवार्यतया खड़ा हो जाता है, क्योंकि कोई पुराना धर्म उसको जगह न देगा; क्योंकि वह कोई के नियम जबर्दस्ती इसलिए मानने को राजी न होगा कि आप आदर देंगे। वह कहता है—आदर की क्या जरूरत है? मैं अपने ढंग से जिऊंगा जो मुझे ठीक लगता है। तब उसका ठीक लगना किसी पुराने धर्म को ठीक नहीं लगेगा, क्योंकि पुराने धर्म किन्हीं और लोगों के आसपास निर्मित हुए हैं, उनके ठीक होने का ढंग और था।

अब मुसलमान सोच ही नहीं सकते कि नानक में भी कोई समझ हो सकती है। वे मर्दाना को बगल में लिए गांव-गांव गीत गाते फिरते हैं। संगीत की दुश्मनी है इस्लाम में। मस्जिद में संगीत प्रवेश नहीं कर सकता। मस्जिद के सामने से नहीं निकल सकता। और यह आदमी मर्दाना को लिए हुए—और जगह-जगह। मर्दाना मुसलमान था जो नानक के साथ साज बजाता था तो मुसलमानों ने उसको भी डिसओन कर दिया क्योंकि यह आदमी कैसा है! मुसलमान हो ही नहीं सकता। संगीत से तो दुश्मनी है।

मुहम्मद के लिए संगीत में कोई रस न रहा होगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह भी हो सकता है कि मुहम्मद को संगीत के माध्यम से निम्न वासनाएं जगती हुई मालूम हुई होंगी और उन्होंने इनकार कर दिया। लेकिन सभी को ऐसा होता है, यह जरूरी नहीं है। किन्हीं के भीतर संगीत से श्रेष्ठतम का जन्म होना शुरू होता है।

तो मुहम्मद का अपना अनुभव आधार बनेगा। मुहम्मद को सुगंध बहुत पसंद थी। इसलिए मुसलमान अभी भी ईद के दिन बेचारे इत्र एक दूसरे को लगाते देखेंगे। अभी भी सुगंध से मुसलमानों को प्रेम है। वह प्रेम सिर्फ परंपरा है। मुहम्मद को बहुत पसंद है। असल में मुहम्मद, ऐसा मालूम पड़ता है कि सुगंध मुहम्मद को वहीं ले जाती थी, जहां कुछ लोगों को संगीत ले जाता है। सुगंध भी एक इंद्रिय है; जैसा संगीत कान का रस है, वैसे सुगंध नाक का रस है। लेकिन मालूम होता है कि मुहम्मद सुगंध से बड़ी ऊंचाइयों पर उड़ जाते थे। और उनके लिए सुगंध का कोई एसोसिएशन गहरा बन गया होगा।

सम्भव है, जब पहली दफा उन्हें इलहाम हुआ, जब उन्हें पहली दफा प्रभु की प्रतीति हुई, या प्रभु का संदेश उतरा तब पहाड़ के आसपास फूल खिले होंगे। सुगंध उसके साथ जुड़ गयी होगी। जरूर कोई ऐसी घटना—फिर सुगंध उनके लिए द्वार बन गयी। जब वे सुगंध में होंगे, तब वह द्वार खुल जाएगा।

लेकिन यही बात संगीत में हो सकती है, लेकिन यही बात नृत्य में हो सकती है, यही बात अनेक-अनेक रूपों में हो सकती है, पर, मुहम्मद हों तो शायद समझ भी जाएं, मुहम्मद तो हैं नहीं, वह तो पीछे चलनेवाला आदमी है, वह कहता है कि संगीत नहीं बजने देंगे, क्योंकि संगीत इनकार है।

तो फिर नानक को मुसलमान कैसे स्वीकार करें? हिंदू भी स्वीकार नहीं कर सकते नानक को। क्योंकि नानक गृहस्थ हैं। वे संन्यासी नहीं हैं। पत्नी है, घर है, कपड़े भी वे साधारण पहनते हैं—गृहस्थ। गृहस्थ को हिंदू कैसे स्वीकार करें? ज्ञानी तो संन्यासी होता है।

फिर नानक और भी गड़बड़ करते हैं। सभी जाननेवाले लोग एक अर्थ में डिस्टबिंग होते हैं, क्योंकि पुरानी सब व्यवस्था से वे फिर नए होते हैं। वे गड़बड़ यह करते हैं कि वे काबा भी चले जाते हैं, वे मस्जिद में भी ठहर जाते हैं। तो हिंदू कैसे मानें कि जो आदमी मस्जिद में भी ठहर जाता है, वह आदमी धार्मिक हो सकता है! मंदिर में ही ठहरना चाहिए।

जो विनय श्रेष्ठ की किन्हीं धारणाओं को मानकर चलती है वह सिर्फ अंधी होगी, परंपरागत होगी, रूढ़िगत होगी, वह क्रांतिकारी नहीं होती है। उससे अंतर-आविर्भाव नहीं होता है। अंतर-आविर्भाव जब होता है तो आदर सहज होता है—वह पत्थर के प्रति भी होता

है, पौधे के प्रति भी होता है, अस्तित्व के प्रति भी होता है। इससे कोई संबंध नहीं कि वह कौन है और क्या है, कोई शर्त नहीं है। वह है, बस इतना काफी है।

ऐसी विनय की जो स्थिति है वह प्रायश्चित के बाद ही सध सकती है। और सध जाए तो जीवन में आनंद का हिसाब नहीं रह जाता। क्यों? क्योंकि जितना दूसरों का दोष देखते हैं, मन को उतना ही दुख होता है। और जितने दूसरों के दोष देखते हैं उतने ही अपने दोष नहीं दिखते और नहीं दिखनेवाले दुश्मन भीतर छिपकर काम तो चौबीस घण्टे करते हैं, बहुत दुख पैदा करवाते हैं। जब दूसरे में कोई दोष नहीं दिखता तो दूसरे से दुख आना बंद हो जाता है। जब कोई आदमी मुझ पर क्रोध करता है तो अगर मैं यह नहीं मानता कि यह उसका दोष है, या बुराई है; इतना मानता हूं कि ऐसा उससे घटित हो रहा है, तो फिर मैं उसके क्रोध से दुखी नहीं होता। अगर मैं जा रहा हूं और एक वृक्ष की शाखा मेरे ऊपर गिर जाए तो खड़े होकर वृक्ष को गाली नहीं देता—हालांकि कुछ लोग देते हैं। बिना गाली दिए वे मान ही नहीं सकते, वृक्ष को भी गाली दे देते हैं। पर वे भी मानेंगे गाली देने के बाद कि बेकार थी बात, सिर्फ आदतवश थी। क्योंकि वृक्ष को क्या पता कि मैं निकल रहा हूं, क्या प्रयोजन मुझे मा रने का; चोट पहुंचाने का क्या अर्थ है!

वृक्ष को हम गाली नहीं देते क्योंकि हम मान लेते हैं कि वृक्ष को हमसे कोई प्रयोजन नहीं है। शाखा टूटनी थी, हवा का झोंका भारी था, तूफान तेज था, वृक्ष जरा-जीर्ण था, गिर गया, संयोग की बात कि हम नीचे थे। जो आदमी विनयपूर्ण होता है, जब आप उसको गाली देते हैं तब भी वह ऐसा ही मानता है कि मन में उसके क्रोध भरा होगा, परेशान होगा चित्त, जरा-जीर्ण होगा, गाली निकल गयी; संयोग की बात कि हम पास थे। और कोई पास होता, किसी और पर निकलती। मगर इससे विनय में कोई बाधा नहीं पड़ती। इससे दुख भी नहीं आता। इससे यह भी नहीं होता कि ऐसा उसने क्यों किया? ऐसा तो तभी होता है जब हम मानते हैं कि उसे कुछ और करना चाहिए था जो उसने नहीं किया।

विनीत आदमी मानता है, वही होता है जो हो रहा है। वही हो सकता है जो हो रहा है—स्वीकार है वह। पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। जीसस जुदास के पैर पड़ लेते हैं उसी रात, जिस रात पकड़े जाते हैं। जुदास के पैर पड़ना, जुदास का हाथ लेकर चूमना। कोई पूछता है कि आप यह क्या कर रहे हैं? और आपको पता है और हमें भी थोड़ी-थोड़ी खबर है कि यह आदमी दुश्मनों के साथ मिला है। जीसस कहते हैं—इससे क्या फर्क पड़ता है! यह क्या करेगा और क्या करता है, यह सवाल नहीं है। यह है, यही काफी आनंद है। फिर शायद दुबारा इससे मिलने का मौका न भी मिले। मैं बच जाऊं तो भी न मिले क्योंकि यह आदमी शायद फिर निकट आने का साहस न जुटा पाए। मैं न बचूं, तब तो सवाल नहीं। मैं कल मर जाऊं तो मेरा यह संबंध, और मेरा इसका पैर को छूना इसे याद रहेगा। वह शायद इसके किसी काम पड़ जाए। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह क्या करेगा। यह इररिलेवेंट है।

विनय के लिए यह बात असंगत है कि आप क्या करते हैं, आप हैं, इतना काफी है। विनय बेशर्त सम्मान है। श्वीत्जर ने ठीक शब्द उपयोग किया है महावीर के विनय का। अगर ठीक शब्द हम पकड़ें इस सदी में तो श्वीत्जर से मिलेगा। श्वीत्जर ने एक किताब लिखी है—'रेव्हरेंस फार लाइफ', जीवन के प्रति सम्मान। तो यह नहीं है कि एक तितली को बचा लेंगे और एक बिच्छू को न बचाएंगे। श्वीत्जर दोनों को बचाने की कोशिश करेगा। माना कि बिच्छू को बचाने में बिच्छू डंक मार सकता है, यह उसका स्वभाव है। इसके कारण सम्मान में कोई अंतर नहीं पड़ता। हम बिच्छू से यह नहीं कहते कि तुम डंक न मारोगे तो ही हम सम्मान देंगे। हम जानते हैं कि बिच्छू का डंक मारना स्वभाव है। वह डंक मार सकता है। श्वीत्जर उसको भी बचाने की कोशिश करेगा; क्योंकि जीवन के प्रति एक सम्मान का भाव है। और जीवन के प्रति सम्मान हो तो आपके दुख असम्भव हैं, क्योंकि सब दुख आप शतोच के कारण लेते हैं। ध्यान रहे सब दुख सशर्त हैं। आपकी

नहीं रह जाता। और जब आप दुख नहीं पाते तो जो आप पा ते हैं वही आनंद है।

जीसस ने कहा है, अपने शत्रुओं को भी प्रेम करो। नीत्शे ने जीसस के इस वक्तव्य पर आलोचना करते हुए लिखा है कि इसका तो मतलब यह हुआ कि आप शत्रु को तो देखते ही हैं; शत्रु को प्रेम करो, शत्रुता तो दिखाई ही पड़ती है शत्रु में। और जब शत्रुता दिखाई पड़ती है तो प्रेम कैसे करोगे? उसका वक्तव्य तर्कपूर्ण है, लेकिन सम्यक नहीं है। नीत्शे जो कह रहा है वह तर्कयुक्त है, फिर भी सत्य नहीं। जीसस अगर उत्तर दे सकें तो वे यही कहेंगे कि माना कि शत्रुता दिखती है, लेकिन फिर भी प्रेम करो क्योंकि शत्रुता जहां दिखती है वह उसका व्यवहार है और जो उसके भीतर छिपा है वह उसका अस्तित्व है। हमारा सम्मान अस्तित्व के लिए है। वह बेशर्त है। माना कि वह गाली दे रहा है, पत्थर मार रहा है, हत्या करने की कोि शश कर रहा है, वह ठीक है। यह वह कर रहा है, यह वह जाने।

इस संबंध में यह भी आपको याद दिला दूं, उपयोगी होगा कि महावीर, बुद्ध या कृष्ण इन सबकी चिंतना में बहुत-बहुत फासले हैं, बहुत भेद हैं—होंगे ही। जब भी किसी व्यक्ति से सत्य उतरेगा तो वह नए आकार लेता है, उस व्यक्ति के आकार लेता है। निराकार सत्य तो उतर नहीं सकता। जब किसी से उतरता है तो उस व्यक्ति का आका र ले लेता है। लेकिन एक बहुत अदभुत बात है, इस पृथ्वी पर भारत में पैदा हुए समस्त धर्म एक सिद्धांत के मानने में सहमत हैं, वह है कर्म। बाकी सब मामले में भेद है। बड़े-बड़े मामलों में भेद है। परमात्मा है या नहीं? हिंदू कहेंगे, है, जैन कहेंगे, नहीं है। आत्मा है या नहीं? तो जैन और हिंदू कहते हैं, है; बुद्ध कहते हैं, नहीं है। इतने बड़े मामलों में फासला है। लेकिन एक मामले में, जो हमारी नजर में भी नहीं आता और जो इन सबसे ज्यादा कीमती है, इसीलिए उसमें फासला नहीं है। वह सेंट्रल है, केंद्रीय है। परिधि पर झगड़े हो सकते हैं। वह है, कर्म का विचार। उसमें कोई फर्क नहीं है। ये सारे धर्म इस देश में पैदा हुए हैं, कर्म के विचार से रा जी हैं। बुद्ध जो आत्मा से नहीं मानते, परमात्मा को नहीं मानते, वे भी कहते हैं, कर्म है। महावीर परमात्मा को नहीं मानते, वे भी कहते हैं, कर्म है। हिंदू परमात्मा को भी मानते हैं, आत्मा को भी मानते हैं, वे भी कहते हैं, कर्म है।

यह कर्म की, इस विनय के संदर्भ में एक बात आपको याद दिला देनी जरूरी है कि जब भी कोई कुछ कर रहा है वह अपने कमोच के कारण कर रहा है, आपके कारण नहीं। और जो आप कर रहे हैं वह अपने कमोच के कारण कर रहे हैं, उसके कारण नहीं। अगर यह खयाल में आ जाए तो वह विनय सहज ही उतर आएगी। एक आदमी गाली दे रहा है, तो दो वजह हो सकती है इसके विश्लेषण में। एक आदमी मेरे पास आता है और मुझे गाली देता है तो इसे मैं दो तरह से जोड़ सकता हूं कि या तो वह इसलिए गाली देता है कि वह मुझे गाली देने योग्य आदमी मानता है। गाली को मैं अपने से जोड़ूं । और एक रास्ता यह है कि आदमी इसलिए गाली देता है कि उसके अतीत के सब कमोच ने वह स्थिति पैदा कर दी है कि उसमें गाली पैदा होती है। तब मैं अपने से नहीं जोड़ता, उसके कमोच से जोड़ता हूं।

अगर मैं अपने से जोड़ता हूं तो बहुत मुश्किल है विनय को साधना। कैसे सधेगी? यह आदमी सामने गाली दे रहा है, इसके प्रति मैं कैसे आदर करूं? मन यह कहेगा कि अगर कोई गाली दे, तुम आदर करो तो तुम उसको गाली देने के लिए और निमंत्रण दे रहे हो। अगर कोई गाली दे और हम उसे आदर करें तो हम उसको और प्रोत्साहन दे रहे हैं। तर्क निरंतर यह कहता है कि हम प्रोत्साहन दे रहे हैं। इससे तो वह और गाली देगा। और यह भी हम मान लें कि हमें गाली देगा तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन हमारे प्रोत्साहन से वह दूसरों को भी गाली देगा। क्योंकि आदमी को रस लग जाए और उसे पता चल जाए कि गाली देने से आदर मिलता है तो हमें दें, तब तक भी ठीक, लेकिन वह दूसरों को भी देगा। अगर किसी आदमी को यह पता चल जाए कि यहां मारपीट करने से लोग सम्मान देते हैं, □

महावीर-वाणी भाग : 1

लिए उत्सुक होता।

इसलिए तो मुहम्मद कहते हैं कि उसको वहीं ठीक कर दो जो गड़बड़ करे। नहीं तो अगर तुमने उसको आदर दिया, दूसरा चांटा — गाल उसके सामने कर दिया, वह अपना चांटा कहीं भी घुमाने लगेगा, किसी को भी लगाने लगेगा इसी आशा में कि अब दूसरा चांटा और मिलने का मौका मिलेगा। दूसरा गाल सामने आता होगा। लेकिन कर्म दूसरी तरह से भी जोड़ा जा सकता है; जो न इस्लाम जोड़ सका, न ईसाइयत जोड़ सकी। इसलिए इस्लाम और ईसाइयत में एक बहुत मौलिक आधार की कमी है। बहुत मौलिक आधार की कमी है। और वह कमी है, कर्म के विचार की।

इसलिए जीसस ने इतने प्रेम की बातें कहीं, और इतना अहिंसात्मक उपदेश दिया, लेकिन ईसाइयत ने सिर्फ तलवार चलायी और खून बहाया। खैर, मुहम्मद के मामले में तो यह भी हम कह सकते हैं कि तलवार उनके खुद के हाथ में थी, इसलिये अगर मुसलमानों ने तलवार उठायी तो उसमें एक संगति है। लेकिन जीसस के मामले में तो यह भी नहीं कहा जा सकता। उस आदमी के हाथ में तो कोई तलवार न थी। लेकिन ईसाइयत ने इस्लाम से कम हत्याएं नहीं कीं। इस सारी दुनिया को, पृथ्वी को रंग देनेवाले लोग खून से, ईसाइयत और इस्लाम से आए।

बात क्या होगी? भूल क्या होगी? क्या कारण होगा? जीसस जैसा आदमी जिसने इतने प्रेम की बातें कही, उसकी भी परंपरा इतनी उपद्रवी सिद्ध हुई, इसका कारण क्या है? इसका कारण है, न तो जीसस और न मुहम्मद, दोनो में से कोई भी कर्म को व्यक्ति की स्वयं की अंतर-श्रृंखला से नहीं जोड़ पाया। वहीं भूल हो गयी। वह भूल गहरी हो गयी। और जितनी दुनिया वैज्ञानिक होती जाएगी उतनी वह भूल साफ दिखाई पड़ेगी।

इसे ऐसा सोचें कि जब भी आप क्रोध करते हैं तो असल में आप दूसरे पर क्रोध नहीं करते। दूसरा सिर्फ निमित्त होता है। आप क्रोध को संग्रहीत किए होते हैं अपने ही कमोच में, अपने ही कल की यात्रा से। वह क्रोध आपके भीतर भरा होता है जैसे कि कुएं में पानी भरा होता है और कोई बाल्टी डालकर खींच लेता है। कोई गाली डालकर आपके क्रोध को बाहर निकाल लेता है, बस। वह निमित्त ही बनता है। तो निमित्त पर इतना क्या क्रोध? कुआं क्यों बाल्टी को गाली दे कि तुझमें पानी है। पानी तो कुएं से ही आता है, बाल्टी सिर्फ लेकर बाहर दिखा देती है। तो विनयपूर्ण आदमी धन्यवाद देगा उसको जिसने गाली दी। क्योंकि अगर वह गाली न देता तो अपने भीतर के क्रोध का दर्शन न होता। वह बाल्टी बन गया। उसने क्रोध बाहर निकालकर बता दिया।

इसलिए कबीर कहते हैं—निंदक नियरे राखिए, आंगन कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो, उसको तो अपने घर के बगल में ठहरा लेना; क्योंकि वह बाल्टी डालता रहेगा और तुम्हारे भीतर की चीजें निकालकर तुम्हें बताता रहेगा। अकेले पड़ गए, पता नहीं कुएं में पानी भरा रहे और भूल जाए कुआं कि मुझमें पानी है क्योंकि कुएं को भी पता तभी चलता है जब बाल्टी कुएं से पानी खींचती है। और अगर फूटी बाल्टी हो तो और ज्यादा पता चलता है। निंदक, सब फूटी बाल्टी जैसे ही होते हैं। भयंकर पानी की बौछार कुएं में होने लगती है। तो कुएं को पहली दफा नींद टूटती है और पता चलता है कि क्या हो रहा है। कुआं खुद सोया रहेगा अगर बाल्टी न हो, पता भी न चलेगा।

इसलिए लोग जंगल भागते हैं। वह बाल्टियों से बचने की कोशिश है। लेकिन उससे पानी नष्ट नहीं हो जाएगा, जंगल आप कितना ही भाग जाएं। जंगल के कुएं को कम पता चलता होगा क्योंकि कभी-कभी कोई यात्री बाल्टी डालता होगा। या अगर रास्ता निर्जन हो और कोई न चलता हो तो कुएं को पता ही नहीं चलता होगा कि मेरे भीतर पानी है। ऐसे ही जंगल में बैठे साधु को हो जाता है। कभी कोई निकलने वाला कुछ गलत सही बातें कर दे, तो शायद बाल्टी पड़ती है। अगर रास्ता बिलकुल निर्जन हो इसलिए साधुविनय ः परिणति निरअहंकारिता की

निर्जन रास्ता खोजता है, निर्जन स्थान खोज लेता है। अगर इसीलिए खोज रहा है तो गलती कर रहा है। अगर यही कारण है कि मेरे भीतर जो भरा है वह दिखाई न पड़े किसी के कारण, तो गलती कर रहा है, भयंकर गलती कर रहा है।

महावीर कहते हैं कि दूसरा अपने कमोच की श्रृंखला में नया कर्म करता है। तुमसे उसका कोई भी संबंध नहीं है। इतना ही संबंध है कि तुम मौके पर उपस्थित थे और उसके भीतर विस्फोट के लिए निमित्त बने। इस बात को दूसरी तरह

भी सोच लेना है कि तुम भी जब किसी के लिए विस्फोट करते हो तब वह भी निमित्त ही है। तुम ही अपनी श्रृंखला में जीते और चलते हो।

इसे हम ऐसा समझें तो शायद समझना आसान पड़ जाए। दस आदमी एक ही मकान में हैं, एक आदमी बीमार पड़ जाता है, उसे च्फलू पकड़ लेता है। चिकित्सक उससे कहता है कि वायरस है। लेकिन दस आदमी भी घर में हैं, उनमें से नौ को नहीं पकड़ा है। तो चिकित्सक की कहीं बुनियादी भूल तो मालूम पड़ती है। वायरस इसी आदमी को खोजता है, इसका मतलब केवल इतना है कि वायरस निमित्त बन सके, लेकिन इस आदमी के भीतर बीमारी संग्रहीत है। नहीं तो बाकी नौ लोगों को वायरस क्यों नहीं पकड़ रहा है? कोई दोस्ती है, कोई दुश्मनी है! बाकी नौ लोगों को नहीं, इस आदमी को क्यों पकड़ लिया? इस आदमी को इसलिए पकड़ लिया है कि इस आदमी के भीतर वह स्थिति है जिसमें वायरस निमित्त बनकर और च्फलू को पैदा कर सकता है। बाकी नौ के भीतर वह स्थिति नहीं है। तो वायरस आता है, चला जाता है। वह उनके भीतर च्फलू पैदा नहीं कर पा ता।

तो अब सवाल यह है—च्फलू वायरस पैदा करता है? अगर ऐसा आप देखते हैं तो आप महावीर को कभी न समझ पाएंगे। महावीर कहते हैं—च्फलू की तैयारी आप करते हैं, वायरस केवल मेनिफैस्ट करता है, प्रगट करता है। तैयारी आप करते हैं, जिम्मेवार आप हैं। जिम्मेवारी सदा मेरी है। आसपास जो घटित होकर प्रगट होता है वह सिर्फ निमित्त है, उससे क्रोध का कोई कारण नहीं होता। धन्यवाद दिया भी जा सकता है; अनुग्रह माना भी जा सकता है; क्रोध का कोई का रण नहीं रह जाता। और तब आप में अहंकार के खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाती।

ध्यान रहे, जहां क्रोध है, वहां भीतर अहंकार है। और जहां क्रोध नहीं, वहां भीतर अहंकार नहीं है। क्योंकि क्रोध सिर्फ अहंकार के बीच डाली गयी बाधाओं से पैदा होता है, और किसी कारण पैदा नहीं होता। अगर आपके अहंकार को तृप्ति मिलती जाए, आप कभी क्रोधी नहीं होते। अगर सारी दुनिया आपके अहंकार को तृप्त करने को राजी हो जाए तो आप कभी क्रोधी न होंगे। आपको पता ही नहीं चलेगा कि क्रोध भी कोई चीज थी। लेकिन अभी कोई आपके मार्ग में बाधा डालने को खड़ा हो जाए, आपको क्रोध प्रगट होने लगेगा। क्रोध जो है, अहंकार अवरुद्ध जब होता है तब पैदा होता है।

लेकिन अब तो क्रोध का कोई कारण ही न रहा। अगर मैं यह मानता हूं कि आप अपने कमोच से चलते हैं, मैं अपने कमोच से चलता हूं, हम राह पर कहीं-कहीं मिलते हैं—किसी क्रास, किसी चौरस्ते पर मुलाकात हो जाती है, लेकिन फिर भी आप अपने से ही बोलते हैं, मैं अपने से ही बोलता हूं। मैं अपने से ही व्यवहार करता हूं, आ प अपने से ही व्यवहार करते हैं। कहीं प्रगट जगत में हमारे व्यवहार एक दूसरे से तालमेल खा जाते हैं। पर वह सिर्फ निमित्त है। उसके लिए किसी को जिम्मेवार ठहराने का कोई कारण नहीं, तो फिर क्रोध का भी कोई कारण नहीं। और क्रोध का कोई कारण न हो तो अहंकार बिखर जाता है, सघन नहीं हो पाता है।

विनय बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया है। दोष दूसरे में नहीं है, दूसरा मेरे दुख का कारण नहीं है। दूसरा श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ नहीं है। दूसरे से मैं कोई तुलना नहीं करता। दूसरे पर मैं कोई शर्त नहीं बांधता कि इस शर्त को पूरा करोगे तो मेरा आदर, मेरा प्रेम तुम्हें मिलेगा, सम्मान मिलेगा। मैं बेशर्त जीवन को सम्मान देता हूं। और प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म से चल रहा है। तो अगर मुझसे कोई भूल होती है तो मैं अपने भीतर अपने कर्म की श्रृंखला में खोजूं। अगर दू

महावीर-वाणी भाग : 1

है। अगर एक आदमी मेरी छाती में आकर छुरा भोंक जाता है, तो भी यह कर्म उसका है, इससे मेरा कोई भी संबंध नहीं है। छाती में छुरा जरूर मेरे भुंक जाता है लेकिन इससे मेरा फिर भी कोई संबंध नहीं है। यह काम उसका ही है, वही जाने। वही इसके फल पाएगा, नहीं पाएगा, यह उसकी बात है। यह मेरा काम ही नहीं है, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है।

महावीर इतना जरूर कहते हैं कि अगर यह मेरी छाती में छुरा भुंकता है, तो इससे मेरा इतना ही संबंध हो सकता है कि मेरी पिछली यात्रा में मैंने यह तैयारी करवायी हो कि मेरी छाती में छुरा भुंके। इसका मेरी छाती में जाना मेरे पिछले कमोच की कुछ तैयारी होगी। बस, उससे मेरा संबंध है। लेकिन उस आदमी का मेरी छाती में भोंकना, इससे मेरा कोई

संबंध नहीं है। इससे उसकी अपनी अंतर्यात्रा का संबंध है। यह बात साफ-साफ दिखाई पड़ जाए तो हम पैरेलल अंतर्धाराएं हैं कमोच की, समांतर दौड़ रहे हैं। और प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर से जी रहा है। लेकिन जब-जब हम जोड़ लेते हैं अपने से दूसरे की धारा को, तभी कष्ट शुरू होता है।

विनय केवल इस बात की सूचना है कि मैं अपने से अब किसी को जोड़ता नहीं। इसलिए विनय को महावीर ने अंतर-तप कहा है। क्योंकि वह स्वयं को दूसरों से तोड़ लेना है। बिना पता चले चीजें टूट जाती हैं। और जब मेरे और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं रह जाता—प्रेम का नहीं, घृणा का नहीं—संबंध ही नहीं रह जाता, सिर्फ निमित्त के संबंध रह जाते हैं; तब न कोई श्रेष्ठ है, न कोई अश्रेष्ठ है। न कोई मित्र है, न कोई शत्रु है। न कोई मेरा बुरा करने की कोशिश कर सकता है, न कोई मेरा भला करने की कोशिश कर रहा है।

महावीर कहते हैं कि जो कुछ मैं अपने लिए कर रहा हूं, मैं ही कर रहा हूं—भला तो भला, बुरा तो बुरा; मैं ही अपना नरक हूं, मैं ही अपना स्वर्ग हूं, मैं ही अपनी मुक्ति हूं। मेरे अतिरिक्त कोई भी निर्णायक नहीं है, मेरे लिए। तब एक हम्बलनैस, एक विनम्र भाव पैदा होता है जो अहंकार का रूप नहीं, अहंकार का अभाव है। जो अहंकार का डायल्यूट फार्म नहीं है, जो अहंकार का तरल, बिखरा हुआ, फैला हुआ आकार नहीं है—अहंकार का अभाव है।

तो यह आखिरी बात खयाल में ले लें। विनम्रता यदि साधी जाएगी—जैसा हम साधते हैं कि इसको आदर दो, उसको आदर दो; इसको मत दो, उसको मत दो; आदर का भाव जन्माओ; विनम्र रहो; अहंकारी मत बनो, निरअहंकारी रहो—तो जो विनम्रता पैदा होगी, इट विल बी ए फार्म आफ इगो, वह अहंकार का ही एक रूप होगी। उससे समाज को थोड़ा फायदा होगा। क्योंकि आपका अहंकार कम प्रगट होगा, दबा हुआ प्रगट होगा, ढंग से प्रगट होगा, सुसंस्कृत होगा, कल्चर्ड होगा। लेकिन आपको कोई फायदा नहीं होगा।

इसलिए समाज की उत्सुकता इतनी ही है कि आप विनम्रता का आवरण ओढ़े रहें। बस समाज को इससे कोई मतलब नहीं है। समाज की औपचारिक व्यवस्था इतने से चल जाती है कि आप विनम्रता ओढ़े रहें। रहें भीतर अहंकारी, समाज का कोई मतलब नहीं है। लेकिन धर्म को इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि आप बाहर क्या ओढ़े हुए हैं। धर्म को प्रयोजन है, आप भीतर क्या हैं? व्हाट यू आर?

तो महावीर की जो विनय है वह समाज की व्यवस्था की विनय नहीं है—कि पिता को, कि गुरु को, कि शिक्षक को, कि वृद्ध को आदर दो। महावीर यह भी नहीं कहते कि मत दो। मैं भी नहीं कह रहा हूं कि आप मत दो, बराबर दो। वही समाज का खेल है, जस्ट ए गेम, और जितना समझदार आदमी, उसको उतना ही खेल है।

एक मित्र अभी परसों ही आए और कहने लगे लड़के का यज्ञोपवीत होना है। और जब से आपको सुना तो लगता है यह तो बिलकुल बेकार है। लेकिन पत्नी जिद्द पर है, पिता जिद्द पर हैं, पूरा परिवार जिद्द पर है कि यह होकर रहेगा। तो मैं बाधा डालूं कि न डालूं?

तो मैंने कहा कि अगर बिलकुल बेकार है तो बाधा क्या डालनी! अगर कुछ थोड़ा सार्थक लगता है तो बाधा डालो। अगर तुम्हें लगता है, कि यज्ञोपवीत का यह जो संस्कार-विधि होगी, यह बिलकुल बेकार है, इतनी बेकार अगर लगने लगी है तो ठीक है। जैसे घर के लोग सिनेमा

पिता को मजा आ रहा है, मां को मजा आ रहा है, पत्नी मजा ले रही है, तो हर्जा क्या है इस खेल को चलने में? चलने दो। इस खेल को खेलो। अगर तुम जिद्द करते हो कि नहीं चलने देंगे तो तुम भी इसको खेल नहीं मानते, तुम भी समझते हो बड़ी कीमती चीज है। तुम भी सीरियस हो, तुम भी गंभीर हो कि अगर नहीं होगा तो कुछ फायदा होगा। जिस चीज के होने से फायदा नहीं हो रहा है, उसके न होने से क्या खाक फायदा होगा। जिसके होने तक से फायदा नहीं हो रहा है, उसके न होने से क्या फायदा हो सकता है? तो मैंने उनसे कहा, चीज इतनी बेकार है कि तुम बाधा मत डालना।

बोले, आप और यह कहते हैं! मैं तो यही समझा कि आप कहेंगे कि टूट पड़ो, बिलकुल होने ही मत देना।

मैं क्यों कहूंगा, ऐसा फिजूल काम, और इतना रस आ रहा हो घर के लोगों को तो—सो इनोसेंट गेम—इतना सरल खेल कि एक लड़के के गले में माला-वाला डालनी है, सिर घुटाना—तो खेलने दें; इसमें क्या हर्ज है? और आदमी बच्चों जैसे हैं, उनको खेल चाहिए ही। अगर खेल न हो तो जिंदगी उदास हो जाती है। इसलिए हम जन्म को भी खेल बनाते; फिर यज्ञोपवीत का खेल खेलते; फिर शादी आती है, उसका खेल चलता। मर जाता है आदमी, तब भी हम खेल बंद नहीं करते। अर्थी निकालते, वह भी उत्सव है, समारोह है, बैंड बाजा आदमी को आखिर तक पहुंचा आता है। बस एक लंबा खेल है। पर आदमी बिना खेल के नहीं जी सकता है। इसलिए जिन समाजों में खेल कम हो गए हैं वहां जीना मुश्किल हो गया है, क्योंकि आदमी तो वही का वही है। तो महावीर जैसा आदमी बिना खेल के जी सकता है। लेकिन बिना खेल के कोई तभी जी सकता है जब उसे वास्तविक जीवन का पता चल जाए। वास्तविक जीवन का पता न हो तो इस जीवन को, जिसे हम जीवन कह रहे हैं, यह तो बिना खेल के नहीं जिया जा सकता है। इसमें खेल रखने ही पड़ेंगे।

पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हो गयी, तीन सौ साल में पश्चिम के विचा रक लोगों ने, जिनको मैं बहुत विचारशील नहीं कहूंगा चाहे वाल्तेयर हों और चाहे बर्ट्रेन्ड रसेल हों, उन सबने पश्चिम के सब खेल निंदित कर दिए और कहा कि सब खेल बेकार हैं। यह क्या कर रहे हो? यह सब गड़बड़ है। इसमें क्या फायदा है? फायदा कोई बता न सका । अगर आप बच्चों से पूछें कि तुम यह जो खेल खेल रहे हो, इसमें क्या फायदा है? अगर आप बच्चों से पूछें कि तुम गेंद इस कोने से उस कोने फेंकते हो, उस कोने से इस कोने में फेंकते हो, इसमें क्या फायदा है? क्या फायदा है! तो मुश्किल में पड़ जाएंगे, फायदा तो बता नहीं सकेंगे। फायदा नहीं बता सकेंगे तो आप कहेंगे, बंद करो। क्योंकि जब फायदा ही नहीं तो क्यों खेलना है।

बच्चे बंद कर देंगे, लेकिन मुश्किल में पड़ जाएंगे, क्योंकि बच्चे क्या करेंगे? वह जो शक्ति बचेगी, उसका क्या होगा? वह जो खेलने में निकल जाता था, वह अब उपद्रव में निकलेगा। सारी दुनिया में बच्चों ने जितने खेल कम कर दिए हैं—सब स्कूलों ने बच्चों के खेल छीन लिए। अब बच्चों ने नए खेल निकाले हैं। आप समझते हैं वह उपद्रव है। वे सिर्फ खेल हैं। वे गेंद फेंककर मजा ले लेते हैं, अब नहीं फेंकने देते तो वे पत्थर फेंककर चीजें तोड़ रहे हैं। वह मामला वही है। आपने सब खेल छीन लिए तो उनको नए खेल ईजाद करने पड़ रहे हैं और वे नए खेल महंगे पड़ रहे हैं। वे बच्चों के खेल अच्छे थे। बच्चे एक दूसरे को मार डालते थे, मुकदमा चला देते थे, कोई न्यायाधीश बन जाता था। वे सब खेल हमने छीन लिए। सब बच्चे हमारे, बच्चे होने के समय ही गंभीर और बूढ़े होने लगे। लेकिन खेल तो उनके भीतर जो ऊर्जा है, वह खेल मांग रही है।

पश्चिम में यह दिक्कत खड़ी हुई, सारी फेस्टिविटी नष्ट कर दी है। तो वाल्तेयर से लेकर बर्ट्रेन्ड रसेल तक के बीच पश्चिम में सारे उत्सव का भाव चला गया। सब चीज बेकार—यह भी नहीं हो सकता, यह भी नहीं हो सकता, और जिंदगी वही की वही। अब बड़ी मुश्किल हो गई, शादी का उत्सव बेकार। इसमें क्या फायदा है, यह तो रजिच्सटरी के आफिस में हो सकता है, यह बैंड बाजा क्यों बजाना? लेकिन आपको पता नहीं, वह जो आदमी

महावीर-वाणी भाग : 1

करवाएगा तो घर आकर पाएगा—कुछ भी नहीं हुआ। यह तो बिलकुल बेकार निकल गया मामला। सिर्फ दस्तखत ही करके आ गए रजिस्टर पर, यह शादी है! तो जो शादी सिर्फ दस्तखत करने से बन सकती है वह दस्तखत करने से किसी दिन टूट जाएगी। उसमें कोई मूल्य नहीं है।

वह शादी एक खेल था जिसमें हम बच्चों को दिखाते थे कि भारी मामला है। कोई छोटा मामला नहीं, तोड़ा नहीं जा सकता। इतना बड़ा मामला है। उसमें इतना शोरगुल मचाते थे, उसको घोड़े पर बिठाते, उसको राजा बना देते, छुरे लटका देते, बैंड बाजा बजा देते, भारी उत्सव मचता। उसको भी लगता कि कुछ हुआ है। कुछ ऐसा हो रहा है जिसको वापस लौटाना मुश्किल है। फिर इस सबके पीछे होता तो वही जो रजिच्सटरी के आफिस में होता है। लेकिन इस सबके पहले जो हो गया है वह एक रूप, एक खेल—वह खेल इतना भारी था कि उसको लौटाना मुश्किल था। और उसकी जिंदगी में

याद रहता । शादी चाहे कुछ भी बन जाए बाद में, लेकिन वह जो शादी के पहले हुआ था वह उसे याद रहता। वह बार-बार सपने उसके देखता , वही घोड़े पर बैठना, वही राजा की पोशाक। और अब आज लड़का कहता है, इससे क्या होगा? यह पगड़ी मैं क्यों बांधू? मत बांधो, लेकिन पत्नी जो हाथ लगेगी, वह छोटी लगेगी, क्योंकि खेल उसके पहले का पूरा नहीं हो पाया, बिना खेल के मिल गई है।

नसरुद्दीन की जब पहली दफा शादी हुई, वह सुहागरात को गया। रात आ गई, चांद निकल आया, पूर्णिमा का चांद। नसरुद्दीन खिड़की पर बैठा है। दस बज गए, ग्यारह बज गए, बारह बज गए। पत्नी बिस्तर में लेट गई। उसने एक दफे कहा—अब सो भी जाओ, सो भी जाओ।

नसरुद्दीन ने बारह बजे कहा कि बकवास बंद। मेरी मां कहा करती थी कि सुहागरात की रात इतनी आनंद की रात है कि चूकना मत, तो मैं तो इधर खिड़की पर बैठकर एक क्षण भी चूकना नहीं चाहता हूं। तू सो जा। कहीं नींद लग गयी और चूक गए! तो मैं तो पूरी रात जगूंगा इसी खिड़की पर बैठा हुआ। मुझे तो यह पता लगाना है जो मां ने कहा कि सुहागरात की रात बड़ी आनंद की होती है। तो आज की रात मैं फालतू बातों में नहीं खो सकता। तू सो जा। तुझे अगर बा तचीत करनी है तो कल।

इसके मन में सुहागरात की एक धारणा थी। आज ठीक उल्टी हालत है। आज सुहागरात जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती।

मैंने सुना है—एक युवक अपनी सुहागरात से, हनीमून से वापस लौटा। ि मत्रों ने पूछा कि कैसी थी सुहागरात? उसने कहा—जस्ट लाइक बिफोर। अब तो सुहागरात का अनुभव पहले ही उपलब्ध है। उसने कहा —जस्ट लाइक बिफोर, नथिंग न्यू! कुछ नया नहीं है।

पुरानी बुद्धिमत्ता महत्वपूर्ण थी। वह बच्चों जैसे आदमियों के ि लए बनाए गये खेलों का इंतजाम था। उन खेलों के बीच आदमी जी लेता था। मैं नहीं कहता, खेल तोड़ दें। खेल जारी रखें। बड़े बूढ़ों को आदर देना जारी रखें, गुरुजनों को आदर दें, साधुओं को आदर दें। खेल जारी रखें। इससे कुछ नुकसान नहीं हो रहा है किसी का। लेकिन उसको विनय मत समझ लें। वह विनय नहीं है। मैं नहीं कहता नसरुद्दीन से कि तू खिड़की पर मत बैठ और चांद को मत देख। लेकिन मैं उससे यह कहता हूं कि इसे सुहागरात मत समझ। सुहागरात नहीं है। तू चांद देख। विनय बहुत और बात है।

लेकिन हम ऐसे जिद्दी हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। जैसे नसरुद्दीन था । दूसरी शादी की उसने। गया सुहागरात पर। बड़ा इठलाकर, अकड़कर चल रहा है। फिर पूर्णिमा है। बड़ा आनंदित है वह। रास्ते पर कोई मित्र मिल गया, उसने कहा—बड़े आनंदित हो। नसरुद्दीन ने कहा कि मेरी सुहागरात है। उस आदमी ने चारों तरफ देखा। लेकिन तुम्हारी पत्नी दिखाई नहीं पड़ती। उसने कहा — आर यू मैड? पहली दफे उसको लेकर आया, उसने सब रात खराब कर दी। इस बार उसको घर ही छोड़ आया हूं। रातभर बकवास करती रही—सो जाओ, यह करो, वह करो। पता नहीं रा त कब चुक गई। और मेरी मां कहती थी कि सुहागरात । इस बार तो उसको घर ही छोड़ आया हूं, अकेले आया हूं। सुहागरात चूकनी नहीं है।

कभी-कभी शब्द मां ने जरूर कहा था और ठीक ही कहा था। लेकिन नसरुद्दीन जो समझे हैं, वह नहीं कहा था। परंपरा जो समझती है शब्द वही हैं जो महावीर ने कहे थे, लेकिन परंपरा जो समझ लेती है, वह नहीं कहा था। विनय आविर्भाव होता है अंतस का और उसकी मैंने यह वैज्ञानिक प्रक्रिया आपसे कही। यह पूरी हो तो ही आविर्भाव होता है। हां, आप अपने को जो विनीत करने की कोशिश कर रहे हैं, वह जारी रखें। वह एक खेल है, वह अच्छा खेल है। उससे जिंदगी सुविधा से चलती है, कन्वीनियंटली। बाकी उससे कोई आप जीवन के सत्य को उपलब्ध नहीं होते हैं।

आज इतना ही।

फिर कल आगे सूत्र पर बात करेंगे। लेकिन पांच मिनट बैठें!

वैयावृत्य और स्वाध्याय

सोलहवां प्रवचन

दिनांक 2 सितम्बर, 1971; प्रथम पर्युषण व्याख्यानमा ला, पाटकर हाल, बम्बई

291

धम्म-सूत्र

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं,
अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसन्ति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है। (कौन सा धर्म?) अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म। जिस मनुष्य का मन उक्त धर्म में सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

292

तीसरा अंतर-तप महावीर ने कहा है, वैयावृत्य। वैया वृत्य का अर्थ होता है—सेवा। लेकिन महावीर सेवा से बहुत दूसरे अर्थ लेते हैं। सेवा का एक अर्थ है मसीही, क्रिश्चियन अर्थ है। आ ैर शायद पृथ्वी पर ईसाइयत ने, अकेले धर्म ने सेवा को प्रार्थना और साधना के रूप में विकसित किया। लेकिन महावीर का सेवा से वैसा अर्थ नहीं है। ईसाइयत का जो अर्थ है, वही हम सबको ज्ञात है। महावीर का जो अर्थ है, वह हमें ज्ञात नहीं है। और महावीर के अनुयायियों ने जो अर्थ कर रखा है वह अति सीमित, अति संकीर्ण है।

परंपरा वैयावृत्य से इतना ही अर्थ लेती रही है, वह सुविधापूर्ण है इसलिए। वृद्ध साधुओं की सेवा, रुग्ण साधुओं की सेवा—ऐसा परंपरा अर्थ लेती रही है। ऐसा अर्थ लेने के कारण हैं, क्योंकि साधु यह सोच ही नहीं सकता कि वह असाधु की सेवा करे। जो साधु नहीं हैं, वे ही साधु की सेवा करने आते हैं। जैनों में तो प्रचलित है कि जब वे साधु का दर्शन करने जाते हैं तो उनको आप पूछें—कहां जा रहे हैं? तो वे कहते हैं—सेवा के लिए जा रहे हैं। धीरे-धीरे साधु का

दर्शन करना भी सेवा के लिए जाना ही हो गया। इसलिए गृहस्थ साधु से जाकर पूछेगा—कुशल तो है, मंगल तो है, कोई तकलीफ तो नहीं? कोई असाता तो नहीं, वह इसीलिए पूछ रहा है कि कोई सेवा का अवसर मुझे दें तो मैं सेवा करूं।

साधु की सेवा, ऐसा वैयावृत्य का अर्थ ले लिया गया। निश्‍चित ही साधु, तथाकथित साधु का इस अर्थ में हाथ है। क्योंकि महावीर ने—किसकी सेवा, यह नहीं कहा है। तो यह अर्थ महावीर का नहीं है। जो अर्थ है उसमें वृद्ध साधु और रुग्ण साधु और साधु की सेवा भी आ जाएगा। लेकिन यही इसका अर्थ नहीं है। दूसरा सेवा का जो प्रचलित रूप है आज, वह ईसाइयत के द्वारा दिया गया अर्थ है। और भारत में विवेकानंद से लेकर गांधी तक ने जो भी सेवा का अर्थ किया है, वह ईसाइयत की सेवा है। और अब जो लोग थोड़े अपने को नयी समझ का मानते हैं वे महावीर की सेवा से भी वैसा अर्थ निकालने की कोशिश करते हैं।

पंडित बेचरदास दोशी ने महावीर-वाणी पर जो टिप्पणियां की हैं, उनमें उन्होंने सेवा से वही अर्थ निकालने की कोशिश की है, जो ईसाइयत का है। उन्होंने अर्थ निकालने की कोशिश की है, जो ईसाइयत का है। असल में ईसाइयत अकेला धर्म है जिसने सेवा को केन्द्रीय स्थान दिया है। और इसलिए सारी दुनिया में सेवा के सब अर्थ ईसाइयत के अर्थ हो गए। और विवेकानंद कितना पश्‍चिम को प्रभावित कर पाए, इसमें संदेह है, लेकिन विवेकानंद ईसाइयत से अत्याधिक प्रभावित हुए, यह असंदिग्ध है। विवेकानंद से कितने लोग प्रभावित हुए इसका कोई बहुत निश्‍चित मामला नहीं है। वे एक सेंसेशन की तरह अमरीका में उठे और खो गए। लेकिन विवेकानंद स्थायी रूप से ईसाइयत से प्रभावित होकर भारत वापस लौटे। और ि ववेकानंद ने जो रामकृष्ण मिशन को गति दी, वह ठीक ईसाई

मिशनरी की नकल है। उसमें हिंदू विचारणा नहीं है।

और फिर विवेकानंद से गांधी तक या विनोबा तक जिन लोगों ने भी सेवा पर विचार किया है, वे सभी ईसाइयत से प्रभावित हैं। असल में गांधी हिंदू घर में पैदा हुए तो मन होता है मानने का कि वे हिंदू थे। लेकिन उनके सारे संस्कार—नब्बे प्रतिशत संस्कार जैनों से मिले थे। इसलिए मानने को मन होता है कि वे मूलतः जैन थे। लेकिन उनके मस्तिष्क का सारा परिष्कार ईसाइयत ने किया। गांधी पश्‍चिम से जब लौटे तो यह सोचते हुए लौटे कि क्या उन्हें हिंदू धर्म बदलकर ईसाई हो जाना चाहिए। और उन पर जिन लोगों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है—इमर्सन का, थोरो का, या रस्किन का—ईसाइयत की धारा से सेवा का विचार उनका केन्द्र था—उन सबका। तो इसलिए वैयावृत्य पर थोड़ा ठीक से सोच लेना जरूरी है, क्योंकि ईसाइयत की सेवा की धारणा ने और सेवा की सब धारणाओं को डुबा दिया है।

दो तीन बातें—एक तो ईसाइयत की जो सेवा की धारणा है और वही इस वक्त सारी दुनिया में सबकी धारणा है। वह धारणा फ्यूचर ओरिएंटेड है, वह भविष्य उन्मुख है। ईसाइयत मानती है कि सेवा के द्वारा ही परमात्मा को पाया जा सकता है। सेवा के द्वारा ही मुक्ति होगी। सेवा एक साधन है, साध्य मुक्ति है। तो सेवा का जो ऐसा अर्थ है वह सप्रयोजन है, विद परपज है। वह परपजलैस नहीं है, वह निष्प्रयोजन नहीं है। चाहे मैं सेवा कर रहा हूं धन पाने के लिए, चाहे यश पाने के लिए और चाहे मोक्ष पाने के लिए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं कुछ पाने के लिए सेवा कर रहा हूं। वह पाना बुरा भी हो सकता है, अच्छा भी हो सकता है, यह दूसरी बात है। नैतिक हो सकता है, अनैतिक हो सकता है, यह दूसरी बात है। एक बात निश्‍चित है कि वैसी सेवा की धारणा वासनाप्रेरित है।

इसलिए ईसाइयत की जो सेवा है वह बहुत पैशोनेट है। इसलिए ईसाइयत के प्रचारक के सामने दुनिया के धर्म का कोई प्रचारक टिक नहीं सकता। नहीं टिक सकता इसलिए कि ईसाई प्रचारक एक पैशन, एक तीव्र वासना से भरा हुआ है।

उसने सारी वासना को सेवा बना दिया है। इसलिए नकल करने की कोशिश चलती है। दूसरे धर्मो के लोग ईसाइयत की नकल करते हैं, पोच निकल जाती है वह नकल, उसमें से कुछ निकलता नहीं। क्योंकि कम-से-कम कोई भारतीय धर्म ईसाइयत की धारणा को नहीं पकड़ सकता। उसका कारण यह है कि भारतीय मन सोचता ही ऐसा है कि जिस सेवा में प्रयोजन है वह सेवा ही न रही। महावीर कहते हैं—जिस सेवा में प्रयोजन है, वह सेवा ही न रही। सेवा होनी चाहिए निच्षपरयोजन। उससे कुछ पाना नहीं है।

लेकिन अगर कुछ भी न पाना हो तो करने की सारी प्रेरणा खो जाती है। नहीं, महावीर बहुत उल्टी बात कहते हैं। महावीर कहते हैं—सेवा जो है, वह पास्ट ओरिएंटेड है, अतीत से जन्मी है; भविष्य के लिए नहीं है। महावीर कहते हैं—अतीत में जो कर्म हमने किए हैं, उनके विसर्जन के लिए सेवा है। इसका कोई प्रयोजन नहीं है आ गे। उससे कुछ मिलेगा नहीं। बल्कि कुछ गलत इकट्ठा हो गया है, उसकी निर्जरा होगी, उसका विसर्जन होगा। यह दृष्टि बहुत उल्टी है। महावीर कहते हैं कि अगर मैं आपके पैर दाब रहा हूं या गांधी जी, परचुरे शास्त्री कोढ़ी के पैर दाब रहे हैं—गांधी भला सोचते हों कि वे सेवा कर रहे हैं, महावीर सोचते हैं कि वे अपने किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हैं। यह बड़ी उल्टी बात है। गांधी भला सोचते हों कि वे कोई पुण्य कार्य कर रहे हैं, महावीर सोचते हैं कि वे अपने किए पाप का प्रायश्चित कर रहे हैं। यह परचुरे शास्त्री को उन्होंने कभी सताया होगा किसी जन्म की किसी यात्रा में। यह उसका प्रतिफल है। सिर्फ किए को अनकिया कर रहे हैं, अनडन करते हैं।

इसमें कोई गौरव नहीं हो सकता। ध्यान रहे, ईसाइयत की सेवा गौरव बन जाती है और इसलिए अहंकार को पुष्ट करती है। महावीर की सेवा गौरव नहीं है क्योंकि गौरव का क्या कारण है, वह सिर्फ पा प का प्रायश्चित है। इसलिए अहंकार को तृप्त नहीं करती है, अहंकार को भर नहीं सकती। सच तो यह है कि महावीर ने जो सेवा की धारणा दी है, बहुत अनूठी है। उसमें अहंकार को खड़े होने का उपाय

294

□

वैयावृत्य और स्वाध्याय

नहीं है।

नहीं तो मैं कोढ़ी के पैर दाब रहा हूं तो मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूं—अकड़ भीतर पैदा होती है। मैं बीमार को कंधे पर टांग कर अस्पताल ले जा रहा हूं तो मैं कुछ विशेष कार्य कर रहा हूं, मैं कुछ पुण्य अर्जन कर रहा हूं। महावीर कहते हैं—कुछ पुण्य अर्जन नहीं कर रहे हो, इस आदमी को तुम किसी गड्ढे में किसी दिन गिराए होओगे, सिर्फ पूरा कर रहे हो अस्पताल पहुंचाकर। इसे तुमने कभी चोट पहुंचायी होगी, अब तुम मल्हम पट्टी कर रहे हो। यह पास्ट ओरि एंटेड है। यह तुम्हारा किया हुआ ही, तुम पश्चात्ताप कर रहे हो, प्रायश्चित कर रहे हो, उसे पोंछ रहे हो। लिखे हुए को पोंछ रहे हो, नया नहीं लिख रहे हो। इसमें कुछ गौरव का कारण नहीं है।

निश्चित ही ऐसी सेवा करनेवाला अपने को सेवक न मान पाएगा। तो महा वीर कहते हैं—जिस सेवा में सेवक आ जाए वह सेवा नहीं है। बिना सेवक बने अगर सेवा हो जाए, तो ही सेवा है।यह जरा क ठिन पड़ेगा हमें समझना। क्योंकि रस तो सेवक का है, रस सेवा का नहीं है। अगर कोढ़ी के पैर दाबते वक्त आसपास के लोग कहें — अच्छा, तो किसी पाप का प्रक्षालन कर रहे हो! तो कोढ़ी के पैर दाबने का सब मजा चला जाए। हम चाहते हैं कि लोग तस्वीर निका लें, अखबारों में छापें और कहें कि महासेवक है यह आदमी। यह कोढ़ियों के पैर दाब रहा है।

नीत्शे ने संत फ्रांसिस की एक जगह बहुत गहरी मजाक की है। संत फ्रांसिस ईसाई सेवा के साकार प्रतीक हैं। संत फ्रांसिस को कोई कोढ़ी मिल जाता तो न केवल उसे गले लगाते, बल्कि उसके कोढ़ से भरे हुए ओंठों को चूमते भी।

फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा है कि संत फ्रांसिस, अगर मेरे वश में होता तो मैं तुमसे पूछता कि कोढ़ी के ओंठ चूमते वक्त तुम्हारे मन को क्या हो रहा है? और मैं कोढ़ियों से कहता कि बजाय संत फ्रांसिस को मौका देने के कि वे तुम्हें चूमें, जहां वे तुम्हें मिल जाएं, तुम उन्हें चूमो। कोढ़ियों से कहता कि जहां भी संत फ्रांसिस मिल जाएं, छोड़ो मत। उन्हें पकड़ो, गले लगाओ और चूमो। और तब देखो कि संत फ्रांसिस के चेहरे पर क्या परिणाम होते हैं।

जरूरी नहीं है कि नीत्शे जैसा सोचता है वैसा संत फ्रांसिस के चेहरे पर परिणाम हो, क्योंकि वह आदमी गहरा था। लेकिन यह बात बहुत दूर तक सच है कि जो आदमी कोढ़ी के पास उसको चूमने जाता है वह किसी बहुत गरिमा के भाव से भरकर जा रहा है, वह कोई काम कर रहा है जो बड़ा कठिन है, असंभव है। असल में वह वासना के ि वपरीत काम करके दिखला रहा है। कोढ़ी के ओंठ से दूर हटने का मन होगा, चूमने का मन नहीं होगा। और वह चूमकर दिखला रहा है। वह कुछ कर रहा है, कोई कृत्य।

महावीर कहेंगे—अगर इस करने में थोड़ी भी वासना है—इस करने में अगर थोड़ी भी वासना है, अगर इस करने में इतना भी मजा आ रहा है कि मैं कोई विशेष कार्य कर रहा हूं, कोई असाधारण कार्य कर रहा हूं तो मैं फिर नए कमोच का संग्रह कर रहा हूं। फिर सेवा भी पाप बन जाएगी, क्योंकि वह भी कर्म बंधन लाएगी। अगर मैं कुछ कर रहा हूं, किए हुए को अनकिया कर रहा हूं तो फिर भविष्य में कोई कर्म बंधन नहीं है। अगर मैं कोई फ्रेश ऐक्ट, कोई नया कृत्य कर रहा हूं कि कोढ़ी को चूम रहा हूं तो फिर मैं भविष्य के लिए पुनः आयोजन कर रहा हूं, कमोच की श्रृंखला का।

महावीर कहते हैं—पुण्य भी अगर भविष्य-उन्मुख है तो पाप बन जाता है। यह बड़ा मुश्किल होगा समझना। पुण्य भी अगर भविष्य उन्मुख है तो पाप बन जाता है, क्यों? क्योंकि वह भी बंधन बन जाता है। महावीर कहते हैं—पुण्य भी पिछले किए गए पापों का विसर्जन है। तो महावीर एक मैटा-मैथाफिजिक्स या मैटा-मैथमेटिक्स की बात कर रहे हैं, परा गणित की। वे यह कह रहे हैं जो मैंने किया है उसे मुझे संतुलन करना पड़ेगा। मैंने एक चांटा आपको मा र दिया है तो मुझे आपके पैर दबा देने पड़ेंगे। तो वह जो विश्व का जागतिक गणित है उसमें संतुलन हो जाएगा। ऐसा नहीं कि पैर दबाने से मुझे कुछ नया मिलेगा, सिर्फ पुराना कट जाएगा। और

जब मेरा सब पुराना कट जाए; मैं शून्यवत हो जाऊं; कोई जोड़ मेरे हिसाब में न रहे; मेरे खाते में दोनों तरफ बराबर हो जाएं आंकड़े; जो मैंने किया वह सब अनकिया हो जाए; जो मैंने लिया वह सब दिया हो जाए; च्ण और धन बराबर हो जाएं और मेरे हाथ में शून्य बच रहे तो महावीर कहते हैं—वह शून्य अवस्था ही मुक्ति है।

अगर ईसाइयत की धारणा हम समझें तो सेवा शून्य में नहीं ले जाती, धन में ले जाती है, प्लस में। आपका प्लस बढ़ता चला जाता है, आपका धन बढ़ता चला जाता है। आप जितनी सेवा करते हैं उतने धनी होते चले जाते हैं। उतना आपके पास पुण्य संग्रहीत होता है। और इस पुण्य का प्रतिफल आपको स्वर्ग में, मुक्ति में, ईश्वर के द्वारा मिलेगा। जितना आप पाप करते हैं, आपके पास च्ण इकट्ठा होता है और इसका प्रतिफल आपको नरक में, दुख में, पीड़ा में मिलेगा । महावीर कहते हैं—मोक्ष तो तब तक नहीं हो सकता जब तक च्ण या धन कोई भी ज्यादा है। जब दोनों बराबर हैं और शून्य हो गए, एक दूसरे को काट गए, तभी आदमी मुक्त होता है, क्योंकि मुक्ति का अर्थ ही यही है कि अब न मुझे कुछ लेना है और न मुझे कुछ देना है। इसको महावीर ने निर्जरा कहा है।

और निर्जरा के सूत्रों में वैयावृत्य बहुत कीमती है। तो महावीर इसलिए नहीं कहते कि दया करके सेवा करो क्योंकि दया ही बंधन बनेगा। कुछ भी किया हुआ बंधन बनता है। महावीर यह नहीं कहते कि करुणा करके सेवा करो कि देखो

यह आदमी कितना दुखी है, इसकी सेवा करो। महावीर यह नहीं कहते कि यह इतना दुखी है इसलिए सेवा करो। महावीर कहते हैं कि अगर तुम्हारा कोई पिछला कर्म तुम्हारा पीछा कर रहा हो तो सेवा करो और छुटकारा पा लो। इसका मतलब? इसका मतलब यह हुआ कि तुम अपने को सेवा के लिए खुला रखो, पैशोनेट सेवा नहीं। निकलो मत झंडा लेकर सुबह से कि मैं सेवा करके लौटूंगा, ऐसा नहीं। घोषणा करके मत तय कर रखो कि सेवा करनी ही है। जिद्द मत करो, राह चलते हो, कोई अवसर आ जाए तो खुला रखो। अगर सेवा हो सकती हो तो अपने को रोको मत।

इसमें फर्क है। एक तो सेवा करने जाओ प्रयोजन से, सक्रिय हो जाओ, सेवक बनो, धर्म समझो सेवा को। महावीर कहते हैं—खुला रखो, कहीं सेवा का अवसर हो, और सेवा भीतर उठती हो तो रोको मत, हो जाने दो। और चुपचाप विदा हो जाओ। पता भी न चले किसी को कि तुमने सेवा की। तुमको स्वयं भी पता न चले कि तुमने सेवा की, तो वैयावृत्य है।

वैयावृत्य का अर्थ है—उत्तम सेवा। साधारण सेवा नहीं। ऐसी सेवा जिसमें पता भी नहीं चलता कि मैंने कुछ किया। ऐसी सेवा जिसमें बोध है कि मैंने कुछ किया हुआ अनकिया, अनडन, कुछ था जो बांधे था, उसे मैंने छोड़ा। इस आदमी से कोई संबंध थे जो मैंने तोड़े। लेकिन अगर इसमें रस ले लिया तो फिर संबंध निर्मित होते हैं—फिर संबंध निर्मित होते हैं। और रस एक तरह का शोषण है—यह भी समझ लेना चाहिए—महावीर की दृष्टि में अगर एक आदमी दुख है और पीड़ित है और मैं उसकी सेवा करके स्वर्ग जाने की चेष्टा कर रहा हूं तो मैं उसके दुख का शोषण कर रहा हूं। मैं उसके दुख को साधन बना रहा हूं। अगर वह दुखी न होता तो मैं स्वर्ग न जा पाता। इसे ऐसा सोचें थोड़ा। तब इसका मतलब यह हुआ कि जिसके दुख के माध्यम से आप स्वर्ग खोज रहे हैं, यह तो बहुत मजेदार मामला है। इस गणित में थोड़े गहरे उतरना जरूरी है।

एक आदमी दुखी है और आप सेवा करके अपना सुख खोज रहे हैं, तो आ प उसके दुख को साधन बना रहे हैं। यही तो सारी दुनिया कर रही है। यह तो सारी दुनिया कर रही है। एक धनपति अगर धन चूस रहा है तो आप उससे कहते हैं कि दूसरे लोग दुखी हो रहे हैं। आप उनके दुख पर सुख इकट्ठा कर रहे हैं। लेकिन एक पुण्यात्मा, दीन की, दुखी की सेवा कर रहा है और अपना स्वर्ग खोज रहा है, तब आपको खयाल नहीं आता कि वह भी किसी गहरे अथोच में यही कर रहा है। सिक्के अलग हैं, इस जमीन के नहीं—परलोक के, पुण्य के। बैंक बैलेंस वह यहां नहीं खोल पाएगा, लेकिन कहीं खोल रहा है। कहीं किसी बैंक में जमा होता चला जाएगा।

नहीं, महावीर कहते हैं—दूसरे के दुख का शोषण नहीं, क्योंकि शोषण कैसे सेवा हो सकता है? दूसरा दुखी है तो उसके दुख में मेरा हाथ हो सकता है। उस हाथ को मुझे खींच लेना है, उसी का नाम सेवा है। वह मेरे कारण दुखी न हो, इतना हाथ मुझे खींच लेना है। इसके दो अर्थ हुए—मेरे कारण कोई दुखी न हो, ऐसा मैं जियूं। और अगर मुझे कोई दुखी मिल जाता है तो मेरे कारण अतीत में वह दुख पैदा न हुआ हो, ऐसा मैं व्यवहार करूं कि अगर मेरा कोई भी हाथ हो तो हट जाए। इसमें कोई पैशन नहीं हो सकता; इसमें कोई त्वरा और तीव्रता नहीं हो सकती; इसमें कोई रस नहीं हो सकता करने का क्योंकि यह सिर्फ न करना है; यह सिर्फ मिटाना और पोंछना है।

इसलिए महावीर की सेवा समझी नहीं जा सकी क्योंकि हम सब पैशोनेट हैं। अगर धर्म भी हमको पागलपन न बन जाए तो हम धर्म भी नहीं कर सकते। अगर मोक्ष भी हमारी जिद्द न बन जाए तो हम मोक्ष भी नहीं जा सकते। अगर पुण्य भी किसी अर्थ में शोषण न हो तो हम पुण्य भी नहीं कर सकते, क्योंकि शोषण हमारी आदत है; शोषण हमारे जीवन का

ढंग है। व्यवस्था है हमारी। और वासना हमारा व्यवहार है। जिस चीज में हम वासना जोड़ दें वही हम कर सकते हैं, अन्यथा हम नहीं कर सकते। तो अगर सेवा धन वासना हो जाए तो हम सेवा भी कर सकते हैं। इसलिए सेवा के लिए आपको उन्मुख करनेवाले लोग कहते हैं कि सेवा से क्या-क्या मिलेगा, दान से क्या-क्या मिलेगा। सवाल यह नहीं है कि दान क्या है, सेवा क्या है। सवाल क्या है कि आपको क्या-क्या मिलेगा, आप क्या-क्या पा सकोगे। वे आपको स्वर्ग की पूरी झलक दिखाते हैं। आपसे कुछ भी करवाना हो तो आपकी वासना को प्रज्ज्वलित करना पड़ता है। आपकी वासना प्रज्ज्वलित न हो तो आप कुछ भी नहीं करने को राजी हैं।

जीसस से मरने के पहले जीसस के एक शिष्य ने पूछा कि घड़ी आ गयी पा स, सुनते हैं हम कि आप नहीं बच सकेंगे। एक बात तो बता दें। यह तो पक्का है कि आप ईश्वर के हाथ के पास सिंहासन पर बैठेंगे। हम लोगों की जगह क्या होंगी? हम कहां बैठेंगे? वह जो ईश्वर का राज्य होगा, सिंहासन होगा, आप तो पड़ोस में बैठेंगे, यह पक्का है। हम लोगों की क्रम संख्या क्या होगी? कौन कहां बैठेगा , किस नम्बर से बैठेगा? जब भी आदमी कोई त्याग करता है तो पहले पूछ लेता है कि फल क्या होगा? इतना छोड़ता हूं, मिलेगा कितना? और ध्यान रहे, जब छोड़ने में मिलने का खयाल हो, तो वह छोड़ना है? वह बागर्चनिंग है, वह सौदा है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि आपको क्या मिलेगा—मोक्ष मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा, धन मिलेगा, प्रेम ि मलेगा, आदर मिलेगा, इससे कोई सवाल नहीं पड़ता—मिलेगा कुछ।

महावीर कहते हैं—सेवा से मिलेगा कुछ भी नहीं, कुछ कटेगा। कुछ ि मलेगा नहीं, कुछ कटेगा। कुछ छूटेगा, कुछ हटेगा। सेवा को अगर हम महावीर की तरह समझें तो वह मेडीसिनल है, दवाई की तरह है। दवाई से कुछ मिलेगा नहीं, सिर्फ बीमारी कटेगी। ईसाइयत की सेवा टानिक की तरह है, उसमें कुछ मिलेगा। उसका भविष्य है। महावीर की सेवा मेडीसिन की तरह है, उससे बीमारी भर कटेगी, मिलेगा कुछ नहीं।

यह भेद इतना गहरा है, और इस भेद के कारण ही जैन परंपरा सेवा को जन्मा न पायी। नहीं तो जीसस से पांच सौ वर्ष पहले महावीर ने सेवा की बात की थी और उसे अंतर-तप कहा था जो जैन परंपरा उसे जगा न पायी, जरा भी न जगा पायी। क्योंकि कोई पैशन न था, उसमें कोई त्वरा नहीं पैदा होती थी। फिर कुछ कटेगा, कुछ मिटेगा, कुछ छूटेगा, कुछ कमी ही हो जाएगी उल्टी। पापी के भी पाप का ढेर थोड़ा कम हो तो उसको भी लगता है कुछ कम हो रहा है। समथिंग इज ि मसिंग। मेरे पास जो था उसमें कमी हो गयी। बीमार भी लंबे दिनों की बीमारी के बाद जब स्वस्थ होता है तो लगता है सम थिंग इज मिसिंग, कुछ खो रहा है। इसलिए जो लंबे दिनों तक बीमारी रह जाए और बीमारी में रस ले ले, वह कितना ही कहे, स्वस्थ होना चाहता है, भीतर कहीं कोई हिस्सा कहता है, मत होओ।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं—सत्तर प्रतिशत बीमार इसलिए बीमार बने रहते हैं कि बीमारी में उन्हें रस पैदा हो गया है, वे बीमारी को

बचाना चाहते हैं। आप कहते हैं—अगर बीमारी को बचाना चाहते हैं तो चिकित्सक के पास क्यों जाते हैं, दवा क्यों लेते हैं? यही तो मनुष्य का द्वंद्व है कि वह दोहरे काम एक साथ कर सकता है। इधर दवा ले सकता है, उधर बीमारी को बचा सकता है। क्योंकि बीमारी के भी रस हैं और कई बार स्वास्थ्य से ज्यादा रसपूर्ण हैं। जब आप बीमार पड़ते हैं तो सारा जगत आपके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो जाता है। कितना चाहा कि जब आप स्वस्थ होते हैं तब जगत सहानुभूतिपूर्ण हो जाए, लेकिन तब कोई सहानुभूतिपूर्ण नहीं होता है। जब आप बीमार होते हैं तो घर के लोग प्रेम का व्यवहार करते हुए मालूम पड़ते हैं। जब आप बीमार होते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि आप सेंटर हो गए सारी दुनिया के। सारी दुनिया

परिधि पर है, आप केन्दर पर हैं। नर्सें घूम रही हैं; डाक्टर चक्कर लगा रहे हैं; परिवार आपके इर्द-गिर्द घूम रहा है; मित्र आ रहे हैं; देखनेवाले आ रहे हैं। आप ध्यान रखते हैं कि कौन देखने नहीं आया।

मेरे एक मित्र का लड़का मर गया। जवान लड़का मर गया। उनकी उम्र तो सत्तर वर्ष है। छाती पीटकर रो रहे थे। जब मैं पहुंचा तो पास में उन्होंने टेलीग्राम का ढेर लगा रखा था। जल्दी से मैंने उनसे एक-दो मिनट बात की। लेकिन मैंने देखा उनकी उत्सुकता बात में नहीं है, टेलीग्राम मैं देख जाऊं, इसमें है। तो उन्होंने वे टेलीग्राम मेरी तरफ सरकाए और कहा कि प्रधानमंत्री ने भी भेजा है और राच्षटरपति ने भी भेजा है। जब तक मैंने टेलीग्राम सब न देख लिए तब तक उनको तृप्ति न हुई। बड़े दुख में हैं। लेकिन दुख में भी रस लिया जाता है। ये टेलीग्राम वे फाड़कर न फेंक सके, ये टेलीग्राम वे भूल न सके, इनका वे ढेर लगाए रहे।

पंद्रह दिन बाद जब मैं गया तब वह ढेर और बड़ा हो गया था। ढेर लगाए हुए थे। अपने पास ही रखे रहते थे। कहते थे, आत्महत्या कर लूंगा, क्योंकि अब क्या जीना। जवान लड़का मर गया, मरना मुझे चाहिए था। कहते थे, आत्महत्या कर लूंगा, वह तारों का ढेर बढ़ाते जाते थे। मैंने कहा—कब करिएगा? पंद्रह दिन हो गए हैं। जितने दिन बीत जाएंगे उतना मुश्किल होगा करना। तो उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे कोई दुश्मन को देखे। उन्होंने कहा—आप क्या कहते हैं, आप और ऐसे! ऐसी बात कहते हैं! क्योंकि वह आत्महत्या करने के लिए इसलिए कह रहे थे पंद्रह दिन से निरंतर कि जब आत्महत्या की कोई भी सुनता था तो बहुत सहानुभूति प्रगट करता था। मैंने कहा—मैं सहानुभूति प्रगट न करूंगा। इसमें आप रस ले रहे हैं। उसी दिन से वे मेरे दुश्मन हो गए।

इस दुनिया में सच कहना दुश्मन बनाना है। इस दुनिया में किसी से भी सच कहना दुश्मन बनाना है। झूठ बड़ी मित्रताएं स्थापित करता है। कभी एक दफा देखें, चौबीस घण्टे तय कर लें, सच ही बोलेंगे! आप पाएंगे सब मित्र बिदा हो गए। चौबीस घण्टा, इससे ज्यादा नहीं। पत्नी अपना सामान बांध रही है; लड़के बच्चे कह रहे हैं, नमस्कार—मित्र कह रहे हैं कि तुम ऐसे आदमी थे! सारा जगत शत्रु हो जाएगा।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह बैठकर अपना अखबार पढ़ रहा है। और जैसा अखबार पर सभी पत्नियां नाराज होती हैं, ऐसा उसकी पत्नी भी नाराज हो रही थी कि क्या सुबह से तुम अखबार लेकर बैठ जा ते हो! एक जमाना था कि तुम सुबह से मेरे सूरत की बातें करते थे और अब तुम कुछ बात नहीं करते हो। एक वक्त था कि तुम कहते थे कि तेरी वाणी कोयल जैसी मधुर है; अब तुम कुछ भी नहीं कहते। मुल्ला ने कहा—है तेरी वाणी मधुर, मगर बकवास बंद कर, मुझे अखबार पढ़ने दे। है तेरी वाणी मधुर, पर बकवास बंद कर, मुझे अखबार पढ़ने दो।

दोहरा है आदमी। मजबूरी है उसकी क्योंकि सीधा और सच्चा होने नहीं देता समाज। महंगा पड़ जाएगा। इसलिए झूठ को पोंछता चला जाता है।

मुल्ला ने जब तीसरी शादी की, तो तीसरे दिन रात को पत्नी ने कहा कि अगर तुम बुरा न मानो तो मैं अपने नकली दांत निकालकर रख दूं, क्योंकि रात मुझे इनमें नींद नहीं आती। मुल्ला ने कहा — थैंक्स, गुडनेस। नाउ आई कैन पुट आफ माई फाल्स लैग, माई

विग, माई ग्लास-आय एण्ड रिलैक्स। तो मैं अब अपनी लकड़ी की टांग अलग कर सकता हूं, और अपने झूठे बाल अलग कर सकता हूं और कांच की आंख रख सकता हूं और विश्राम कर सकता हूं। धन्य भाग, हे परमात्मा! तूने

अच्छा बता दिया। नहीं तो हम भी तने थे, तीन दिन से हम खुद भी कहां सो पा रहे हैं! वह भी नहीं सो पा रही है। क्योंकि वे झूठे दांत सोने कैसे देंगे?

हम सब एक दूसरे के सामने चेहरे बनाए हुए हैं, जो झूठे हैं। लेकिन ि रलैक्स कैसे करें। सत्य रिलैक्स कर जाता है, लेकिन सत्य में जीना कठिन पड़ता है। इसलिए दोहरा हम जीते हैं। एक कोने में कुछ, एक कोने में कुछ, और सब चलाते हैं। बीमारी में रस है, यह कोई बीमार स्वीकार करने को राजी नहीं होता, लेकिन बीमारी में रस है। इतना रस स्वास्थ्य में भी नहीं आता है जितना बीमारी में आता है। इसलिए स्वास्थ्य को कोई बढ़ा-चढ़ाकर नहीं बताता, बीमारी को सब लोग बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं।

यह जो हमारा चित्त है, यह द्वंद्व से भरा है। इसलिए हम करते कुछ मालूम पड़ते हैं, कर कुछ और रहे होते हैं। कहते हैं—गरीब पर बड़ी दया आ रही है, लेकिन उस दया में भी रस लेते मालूम पड़ते हैं। अगर दुनिया में कोई गरीब न रह जाए तो सबसे ज्यादा तकलीफ उन लोगों को होगी जो गरीब की सेवा करने में पैशोनेट रस ले रहे हैं। वे क्या करेंगे? अगर दुनिया नैतिक हो जाए तो साधु जो समाज को नैतिकता समझाते फिरते हैं, ये ऐसे उदास हो जाएंगे जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। ऐसा कभी होता नहीं है इसलिए मौका नहीं आता। एक दफा आप मौका दें और नैतिक हो जाएं, और जब साधु कहे कि आप चोरी मत करो; आप कहें, हम करते ही नहीं। कहे, झूठ मत बोलो; आप कहें, हम बोलते ही नहीं। कहे, बेईमानी मत करो; आप कहें, हम करते ही नहीं। वह कहे, दूसरे की स्त्री की तरफ मत देखो; आप कहें, बिलकुल अंधे हैं। देखने का सवाल ही नहीं है। तो आप साधु के हाथ से उसका सारा काम छीने ले रहे हैं। पूरी जड़ें उखाड़ ले रहे हैं। अब साधु क्या करेगा?

साधु क्या करेगा? यह कठिन होगा समझना, लेकिन साधु-असाधु के रोगों पर जीता है। वह पैरासाइट है। वह जो असाधु चारों तरफ दिखाई पड़ते हैं, उन पर ही साधु जीता है। वह पैरासाइट है। अगर दुनिया सच में साधु हो जाए तो साधु एकदम काम के बाहर हो जाए। उसको कोई काम नहीं बचता। और कुछ आश्चर्य न होगा जो साधु आप को समझा रहे थे, अगर समझाने में उनको रस था —यही कि समझाते वक्त आदमी गुरु हो जाता है, ऊपर हो जाता है, सुपीि रयर हो जाता है उससे जिसे समझाता है। इसलिए समझाने का रस है। अगर समझाने में रस था, अगर समझाने में आपके अज्ञान का शोषण था, अगर समझाने में आप सीढ़ी थे उसके ज्ञान की तरफ बढ़ने के, तो इसमें कोई हैरानी न होगी कि जिस दिन सारे लोग साधु हो जाएं, उस दिन जो साधुता की समझा रहा था, ईमानदारी की समझा रहा था, वह बेईमानी के राज बताने लगे कि बेईमानी के बिना जीना मुश्किल है। चोरी करनी ही पड़ेगी, असत्य बोलना ही पड़ेगा, नहीं तो मर जाओगे। जीवन में सब रस ही खो जाएगा।

अगर उसको समझाने में ही रस आ रहा था तब अगर वह सच में ही साधु था, समझाना उसका रस न था, शोषण न था। तो वह प्रसन्न होगा, आनंदित होगा। वह कहेगा—समझाने की झंझट भी मिटी। लोग साधु हो गए, अब बात ही खत्म हो गयी। अब मुझे समझाने का उपद्रव भी न रहा। अगर सेवा में आपको रस आ रहा था कि आ प कहीं जा रहे थे—स्वर्ग, सुख में, आदर में, प्रतिष्ठा में, सम्मान में—अगर सेवा करवाने को कोई भी न मिले तो आप बड़े उदास और दुखी हो जाएंगे। लेकिन अगर सेवा वैयावृत्य थी, जैसा महावीर मानते हैं तो आप प्रसन्न होंगे कि अब आपका ऐसा कोई भी कर्म नहीं बचा है कि जिसके कारण आपको किसी की सेवा करनी पड़े। आप प्रसन्न होंगे, प्रफुल्लित होंगे, प्रमुदित होंगे, आनंदित होंगे। आप कहेंगे धन्यभाग, निर्जरा हुई।

यह भेद है। सेवा में कोई रस नहीं है। सेवा केवल मेडिसिनल है। जो किया है उसे पोंछ डालना है, मिटा देना है। ध्यान रहे, जो व्यक्ति सेवा करेगा दूसरे की, कहेगा

महावीर-वाणी भाग : 1

मांगेगा, वृद्ध होने पर सेवा मांगेगा। क्योंकि ये एक ही तर्क के दो हिस्से हैं। लेकिन महावीर की सेवा करने की जो धारणा है, उसमें सेवा मांगी नहीं जाएगी। क्योंकि सेवा कभी इस दृष्टि से की नहीं गयी, मांगी भी नहीं जाएगी। मांगने का

कोई कारण नहीं है। और अगर कोई सेवा न करेगा तो उससे क्रोध भी पैदा नहीं होगा, उससे कष्ट भी मन में नहीं आएगा। उसे ऐसा भी नहीं लगेगा कि इस आदमी ने सेवा क्यों नहीं की।

इसलिए जो लोग भी सेवा करते हैं वे बड़े टार्च मास्टर्स होते हैं। अगर आप सेवकों के आश्रम में जाकर देखें, जो कि सेवा करते हैं, तो आप एक और मजेदार बात देखेंगे कि वह सेवा लेते भी हैं, उतनी ही मात्रा में। और उतनी ही सख्ती से। सख्ती उनकी भयंकर होती है। जरा-सी बात चूक नहीं सकते। और कभी-कभी अत्यंत हिंसात्मक हो जाते हैं। यह बहुत मजे की बात है कि आप जितने सख्त अपने पर होते हैं उससे कम सख्त अपने पर होते हैं उससे कम सख्त आप किसी पर नहीं होते। आप ज्यादा ही सख्त होंगे। कभी-कभी बहुत छोटी-छोटी बातों में बड़ी अजीब घटना घटती है।

गांधीजी नोआखाली में यात्रा पर थे। कठिन था वह हिस्सा, एक-एक गांव खून और लाशों से पटा था। एक युवती उनकी सेवा में है, वह उनके साथ चल रही है। एक गांव से अड्डा उखड़ा है, दोपहर वहां से चले हैं, सांझ दूसरे गांव पहुंचे हैं। लेकिन गांधीजी स्नान करने बैठे हैं। देखा तो उनका पत्थर, जिससे वे पैर घिसते थे, वह पीछे छूट गया पिछले गांव में। रात उतर रही है, अंधेरा उतर रहा है। उन्होंने उस लड़की को बुलाया और कहा कि यह भूल कैसे हुई? क्योंकि गांधी तो कभी भूल नहीं करते हैं इसलिए किसी की भूल बर्दाश्त नहीं कर सकते। वापस जाओ, वह पत्थर लेकर आओ। नोआखा ली, चारों तरफ आगें जल रही हैं, लाशें बिछी हैं। वह अकेली लड़की, रोती, घबराती, छाती धड़कती वापस लौटी।

उस पत्थर में कुछ भी न था। वैसे पचास पत्थर उसी गांव से उठाए जा सकते थे। लेकिन डिसीप्लेनेरियन, अनुशासन! जो आदमी अपने घर पर पक्का अनुशासन रखता है वह दूसरों की गर्दन दबा लेता है। क्योंकि खुद नहीं भूलते कोई चीज। दूसरा कैसे भूल सकता है? तब दिखने वाला ऊपर से जो अनुशासन है, गहरे में हिंसा हो जा ता है। यह भी कोई बात थी! आदमी भूल सकता है, भूलना स्वाभाविक है। और कोई बड़ा कोहिनूर हीरा नहीं भूल गया है। पैर ि घसने का पत्थर भूल गया है। लेकिन सवाल पत्थर का नहीं है, सवाल सख्ती का है, सवाल नियम का है। नियम का पालन होना चाहिए।

अगर आप अनुशासन, सेवा, नियम, मर्यादा, इस तरह की बातें माननेवाले लोगों के पास जाकर देखें तो आपको दूसरा पहलू भी बहुत शीघ्र दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। जितने सख्त वे अपने पर हैं उससे कम सख्त वे दूसरे पर नहीं है। जब आप किसी के पैर दाब रहे हैं, तब आप किसी दिन पैर द

वैयावृत्य और स्वाध्याय

को, किए गए कर्म को अनकिया करना हो, बस इतना—तो तप है।

और क्यों इसको अंतर-तप कहते हैं महावीर! इसलिए अंतर-तप कहते हैं, कि यह करना कठिन है। वह सेवा सरल है जिसमें कोई रस आ रहा हो। इस सेवा में कोई भी रस नहीं है, सिर्फ लेना-देना ठीक करना है। इसलिए तप है और बड़ा आंतरिक तप है। क्योंकि हम कुछ करें और कर्ता न बनें, इससे बड़ा तप क्या होगा? हम कुछ करें और कर्ता न बनें; इससे बड़ा तप क्या होगा? सेवा जैसी चीज करें जो कोई करने को राजी नहीं है—कोढ़ी के पैर दबाएं और फिर भी मन में कर्ता न बनें तो तप हो जाएगा और बहुत आंतरिक तप हो जाएगा।

आंतरिक क्यों कहते हैं? आंतरिक इसलिए कहते हैं कि सिवाय आपके आै र कोई न पहचान सकेगा। बात भीतरी है। आप ही जा सकेंगे; लेकिन आप बिलकुल जांच लेंगे, कठिनाई नहीं होगी। जो व्यक्ति भी भीतर की जांच में संलग्न हो जाता है वह ऐसे ही जान लेता है। जब आपके पैर में कांटा गड़ता है तो आप कैसे जानते हैं कि दुख हो रहा है! और जब कोई आलिंगन से आपको अपने गले लगा लेता है तो आप कैसे जानते हैं कि हृदय प्रफुल्लित हो रहा है! आै र जब कोई आपके चरणों में सिर रख देता है तो आपके भीतर जो लहर दौड़ जाती है वह आप कैसे जान लेते हैं? नहीं, उसके लिए बाहर कोई खोजने की जरूरत नहीं, आंतरिक मापदंड आपके पास है।

तो जब सेवा करते वक्त आपको किसी तरह भी भविष्य उन्मुखता मालूम पड़े, तो समझना कि महावीर ने उसे सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर कोई पुण्य का भाव पैदा हो, तो कहना, तो जानना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर ऐसा लगे कि मैं कुछ कर रहा हूं, कुछ विशिष्ट, तो समझना कि महावीर ने उस सेवा के लिए नहीं कहा है। अगर यह कुछ भी पैदा न हो और सेवा सिर्फ ऐसे हो जैसे तख्ते पर लिखी हुई कोई चीज को किसी ने पोंछकर मिटा दिया है। तख्ता खाली हो गया है और भीतर खाली हो गए, तो आप अंतर-तप में प्रवेश करते हैं।

महावीर ने वैयावृत्य के बाद ही जो तप कहा है, वह है स्वाध्याय—चाैथा तप। निश्‍चित ही, अगर सेवा का आप ऐसा प्रयोग करें तो आप स्वाध्याय में उतर जाएंगे, स्वयं के अध्ययन में उतर जाएंगे। लेकिन स्वाध्याय से बड़ा गौण अर्थ लिया जाता रहा है—वह है शास्त्रों का अध्ययन, पठन, मनन। महावीर अध्ययन ही कह सकते थे, स्वाध्याय कहने की क्या जरूरत थी? उसमें 'स्व' जोड़ने का क्या प्रयोजन था? अध्ययन काफी था। स्वयं का अध्ययन, स्वाध्याय का अर्थ होता है। शास्त्र का अध्ययन नहीं। लेकिन साधु शास्त्र खोल बैठे हैं सुबह से, उनसे पूछिए—क्या कर रहे हैं? वे कहते हैं—स्वाध्याय करते हैं। शास्त्र निश्‍चित ही किसी और का होगा। स्वाध्याय शास्त्र नहीं बन सकता। अगर खुद का ही लिखा शास्त्र पढ़ रहे हैं तो बिलकुल बेकार पढ़ रहे हैं। क्योंकि खुद का ही लिखा हुआ है, अब उसमें और पढ़ने को क्या बचा होगा? जानने को क्या है?

स्वाध्याय का अर्थ है—स्वयं का अध्ययन। बड़ा कठिन है। शास्त्र पढ़ना तो बड़ा सरल है। जो भी पढ़ सकता है, वह शास्त्र पढ़ सकता है। पठित होना काफी है, लेकिन स्वाध्याय के लिए पठित होना काफी नहीं है। क्योंकि स्वाध्याय बहुत जटिल मामला है। आप बहुत काम्प्लेक्स हैं, आप बहुत उलझे हुए हैं। आप एक ग्रंथियों का जाल हैं। आप एक पूरी दुनिया हैं, हजार तरह के उपद्रव हैं वहां। उस सबके अध्ययन का नाम स्वाध्याय है। तो अगर आप अपने क्रोध का अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय कर रहे हैं। हां, क्रोध के संबंध में शास्त्र में क्या लिखा है, उसका अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं। अगर आप अपने राग का अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय कर रहे हैं। राग के संबंध में शास्त्र में क्या लिखा है, उसका अध्ययन कर रहे हैं तो स्वाध्याय नहीं कर रहे हैं। और आपके भीतर सब मौजूद है, जो भी किसी शास्त्र में लिखा है वह सब आपके भीतर मौजूद है। इस जगत में जितना भी जाना गया है, वह प्रत्येक आदमी के भीतर मौजूद है। और इस जगत में जो भी कभी जाना जाएगा वह प्रत्येक आदमी के भीतर आज भी मौजूद

301

है। आदमी एक शास्त्र है—परम शास्त्र है, द अल्टीमेट च्सिकरप्चर। इस बात को समझें तो महावीर का स्वाध्याय समझ में आएगा।

मनुष्य परम शास्त्र है। क्योंकि जो भी जाना गया है, वह मनुष्य ने जाना। जो भी जाना जाएगा वह मनुष्य जानेगा। काश, मनुष्य स्वयं को ही जान ले, तो जो भी जाना गया है और जो भी जाना जा सकता है वह सब जान लिया जाता है। इसलिए महावीर ने कहा है—एक को जानने से सब जान लिया जाता है। स्वयं को जानने से सर्व जान लिया जाता है। इसके कई आयाम हैं। पहली तो बात यह है कि जानने योग्य जो भी है उसके हम दो हिस्से कर सकते हैं—एक तो आब्जेक्टिव, वस्तुगत; दूसरा सब्जेक्टिव, आत्मगत। जानने में दो घटनाएं घटती हैं—जाननेवाला होता है और जानीजाने वाली चीज होती है। विषय होता है जिसे हम जानते हैं, और जाननेवाला होता है जो जानता है। विज्ञान का संबंध विषय से है, आब्जेक्ट से है, वस्तु से है। जिसे हम जानते हैं उसे जानने से है। धर्म का संबंध उसे जानने से है जिससे हम जानते हैं; जो जानता है उसे जानने से है।

ज्ञाता को जानना धर्म है और ज्ञेय को जानना विज्ञान है। ज्ञेय को हम कितना ही जान लें तो ज्ञाता के संबंध में तो भी पता नहीं चलता । कितना ही हम जान लें चांद-तारे, सूरजों के संबंध में तो भी अपने संबंध में कुछ पता नहीं चलता। बल्कि एक बड़े मजे की बात है कि जितना हम वस्तुओं के संबंध में ज्यादा जान लेते हैं उतना ही हमें वह भूल जाता है, जो जानता है। क्योंकि जानकारी बहुत इकट्ठी हो जाए तो ज्ञाता छिप जाता है। आप इतनी चीजों के संबंध में जानते हैं कि आपको खयाल ही नहीं रहता कि अभी जानने को कुछ शेष बच रहा है इसलिए विज्ञान बढ़ता जाता है रोज, जानता जाता है रोज। कितने प्रकार के मच्छर हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक प्रकार के मच्छर की क्या खूबियां है, विज्ञान जानता है। कितने प्रकार की वनस्पतियां हैं, विज्ञान जानता है। प्रत्येक वनस्पति में क्या-क्या छिपा है, विज्ञान जानता है। कितने सूरज हैं, कितने तारे हैं, कितने चांद हैं, विज्ञान जानता है।

आइंस्टीन ने मरते वक्त कहा कि अगर मुझे दुबारा जीवन मिले तो मैं एक संत होना चाहूंगा। क्यों? जो खाट के आसपास इकट्ठे थे, उन्होंने पूछा—क्यों? तो आइंस्टीन ने कहा—जानने योग्य तो अब एक ही बात मालूम पड़ती है कि वह जो जान रहा था, वह कौन है? जिसने जान लिया कि चांद-तारे कितने हैं, लेकिन होगा क्या? दस हैं कि दस हजार हैं, कि दस करोड़ हैं कि दस अरब हैं, इससे होगा क्या। दस हैं, ऐसा जाननेवाला भी वहीं खड़ा रहता है, दस करोड़ हैं, ऐसा जाननेवाला भी वहीं खड़ा रहता है; दस अरब हैं, ऐसा जाननेवाला भी वहीं खड़ा रहता है। जानकारी से जाननेवाले में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। लेकिन एक भ्रम जरूर पैदा होता है कि मैं जाननेवाला हूं।

महावीर ऐसे जाननेवाले को मिथ्या ज्ञानी कहते हैं। कहते हैं—जाननेवा ला जरूर है, लेकिन मिथ्या जाननेवाला है। ऐसी चीजें जाननेवाला है जिसे बिना जाने भी चल सकता था, और ऐसी चीज को छोड़ देनेवाला है जिसके बिना जाने नहीं चल सकता। जो कीमती है, वह छोड़ देते हैं हम और जो गैरकीमती है वह जान लेते हैं हम। आ खिर में जानना इकट्ठा हो जाता है और जाननेवाला खो जाता है। मरते वक्त हम बहुत कुछ जानते हैं, सिर्फ उसे ही नहीं जानते जो मर रहा है। अदभुत है यह बात कि आदमी अपने को नहीं जानता! इसलिए महावीर ने स्वाध्याय को कीमती अंतर-तपों में गिना है

स्वाध्याय चौथा अंतर-तप है। इसके बाद दो ही तप बच जाएंगे और उन दो तपों के बाद एक्सप्लोजन, विस्फोट घटित होता है। तो स्वाध्याय बहुत निकट की सीढ़ी है विस्फोट के। जहां क्रांति घ टित होती है, जहां जीवन नया हो जाता है, जहां आपका पुनर्जन्म होता है, नया आदमी आपके भीतर पैदा होता है, पुराना समाप्त होता है। स्वाध्याय बहुत करीब आ गया। अब दो ही सीढ़ी बचती हैं और। इसलिए शास्त्र-अध्ययन स्वाध्याय का अर्थ नहीं हो सकता। शास्त्र-अध्ययन कितना कर रहे हैं लोग, लेकिन कहीं कोई क्रांति घटित नहीं मालूम होती। कहीं कोई विस्फोट नहीं होता है। सच तो यह है कि जितना आदमी शास्त्र को जानता है, उतना ही स्वयं को जानने की

जरूरत कम मालूम पड़ती है। क्योंकि उसे लगता है कि सब जो भी जाना जा सकता है, मुझे मालूम है। महावीर क्या कहते हैं; बुद्ध क्या कहते हैं, क्राइस्ट क्या कहते हैं, वह जानता है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, वह जानता है—बिना जाने! यह मिरेकल है—बिना जाने! उसे कुछ भी पता नहीं है कि आत्मा क्या है! उसे कोई स्वाद नहीं मिला कभी आत्मा का।उसने परमात्मा की कभी कोई झलक नहीं पायी। उसने मुक्ति के आकाश में कभी एक पंख नहीं मारा। उसके जीवन में कोई किरण नहीं उतरी जिससे वह कह सके कि यह ज्ञान हैं, जिससे प्रकाश हो गया हो। सब अंधेरा भरा है और फिर भी वह जानता है कि सब जानता हूं! इसे महावीर मिथ्या ज्ञान कहते हैं।

शास्त्र से जो मिलता है वह सत्य नहीं हो सकता, स्वयं से जो मिलता है वही सत्य होता है। यद्यपि स्वयं से मिला गया शास्त्र में लिखा जाता है—स्वयं से मिला गया शास्त्र में लिखा जाता है, लेकिन शास्त्र से जो मिलता है वह स्वयं का नहीं होता। शास्त्र कोई और लिखता है। वह किसी और की खबर है जो आकाश में उड़ा। वह किसी और की खबर है जिसने प्रकाश के दर्शन किए। वह किसी और की खबर है जिसने सागर में डुबकी लगाई। लेकिन आप किनारे पर बैठकर पढ़ रहे हैं। इसको मत भूल जाना कि किनारे पर बैठकर आप कितना ही पढ़ें, सागर में डुबकी लगानेवाले के वक्तव्य से आपकी डुबकी नहीं लग सकती। मगर डर यह है कि शास्त्र में डुबकी लगा लेते हैं लोग। और जो शास्त्र में डुबकी लगा लेते हैं वे भूल ही जाते हैं कि सागर अभी बाकी है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि शास्त्र में डुबकी ऐसी लग जाती है कि वह भूल ही जाता है कि सागर भी आगे है। तो शास्त्र सागर की तरफ ले जानेवाला कम ही सिद्ध होता है, सागर की तरफ जाने में रुकावटवाला ज्यादा सिद्ध होता है। इसलिए महावीर शास्त्राध्ययन को स्वाध्याय नहीं कहते।

इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर शास्त्र के अध्ययन को इनकार कर रहे हैं। लेकिन वह स्वाध्याय नहीं है। इसको अगर खयाल में रखा जाए तो शास्त्र का अध्ययन भी उपयोगी हो सकता है। उपयोगी हो सकता है। अगर यह खयाल में रहे कि शास्त्र का सागर सागर नहीं; और शास्त्र का प्रकाश प्रकाश नहीं; और शास्त्र का आकाश आकाश नहीं; और शास्त्र का परमात्मा परमात्मा नहीं; और शास्त्र का मोक्ष मोक्ष नहीं—अगर यह स्मरण रहे, और यह स्मरण रहे कि किसी ने जाना होगा, उसने शब्दों में कहा है; लेकिन शब्दों में कहते ही सत्य खो जाता है, केवल छाया रह जाती है—यह स्मरण रहे तो शास्त्र को फेंककर किसी दिन सागर में छलांग लगाने का मन आ जाएगा। अगर यह स्मरण न रहे, सागर ही बन जाए शास्त्र, सत्य ही बन जाए शास्त्र, शास्त्र में ही सब भटकाव हो जाए तो सागर को छिपा लेगा शास्त्र।

और इसलिए कई बार अज्ञानी कूद जाते हैं परमात्मा में और ज्ञानी वंचित रह जाते हैं। तथाकथित ज्ञानी, द सो काल्ड नोअर्स, वे वंचित रह जाते हैं। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि अज्ञानी तो अंधकार में भटकते ही हैं, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। स्वाध्याय का अर्थ है—स्वयं में उतरो और अध्ययन करो। पूरा जगत भीतर है। वह सब्जेक्टिव, वह आत्मगत जगत पूरा भीतर है। उसे जानने चलो, लेकिन रुख बदलना पड़ेगा।इसलिए स्वाध्याय का पहला सूत्र है—रुख। वस्तु के अध्ययन को छोड़ो, अध्ययन करनेवाले का अध्ययन करो।

जैसे उदाहरण के लिए, आप मुझे सुन रहे हैं। जब आप मुझे सुन रहे हैं तो आपने कभी खयाल किया है कि जितनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे उतना ही आपको भूल जाएगा कि आप सुननेवाले हैं। ि जतनी तल्लीनता से आप मुझे सुनेंगे उतना ही आपके स्मरण के बाहर हो जाएगा कि आप भी यहां मौजूद हैं जो सुन रहा है। बोलनेवा ला प्रगाढ़ हो जाएगा, सुननेवाला भूल जाएगा। हालांकि आप बोलनेवाले नहीं, सुननेवाले हैं। जब आप सुन रहे हैं तब दो घटनाएं घट रही हैं। शब्द जो आपके पास आ रहे हैं, आपसे बाहर हैं; और आप जो भीतर हैं। शब्द महत्वपूर्ण हो जाएंगे सुनते वक्त और सुननेवाला गौण हो जाएगा। और अगर आप पूरी तरह तल्लीन हो गए तो बिलकुल भूल जाएगा। सेल्फ-फागच्टफुलनैस हो जाएगी, आत्म विस्मरण हो जाएगा।

मेरे पास लोग आते हैं। जब कोई मेरे पास आता है और वह कहता है—आज आप बहुत अच्छा बोले, तो मैं जानता हूं कि आज क्या हुआ। आज यह हुआ कि वह अपने को भूल गए, और कुछ नहीं हुआ —आत्म-विस्मरण हुआ। आज घण्टेभर उनको अपनी याद न रही इसलिए वे कह रहे हैं कि बहुत अच्छा बोले। घण्टेभर उनका मनोरंजन इतना हुआ कि उनको अपना पता भी न रहा। पंद्रह वर्ष से निरंतर सुबह-सांझ मैं बोलता रहा हूं। एक भी आदमी नहीं है

वह, जो आकर कहता हो—कि आप आज बहुत ठीक बोले। वह कहता है—बहुत अच्छा बोले हैं। क्योंकि अगर ठीक बोले तो कुछ करना पड़ेगा। अच्छा बोले तो हो चुकी है बात। नहीं कहता कोई आदमी मुझसे कि सत्य बोले—सुखद बोले! सत्य बोले, तो बेचैनी पैदा होगी। सुखद बोले, बात खत्म हो गई। सुख मिल चुका। लेकिन सुख आपको कब मिलता है वह मैं जानता हूं। जब भी आप अपने को भूलते हैं तभी सुख मिलता है—चाहे सिनेमा में भूलते हों; चाहे संगीत में भूलते हों; चाहे कहीं सुनकर भूलते हों; चाहे पढ़कर भूलते हों; चाहे सेक्स में भूलते हों; चाहे शराब में भूलते हों। आपका सुख मुझे भलीभांति पता है कि कब मिलता है—जब आप अपने को भूलते हैं, तभी मिलता है।

लेकिन जब आप अपने को भूलते हैं तभी स्वाध्याय बंद होता है; जब आ प अपने को स्मरण करते हैं तब स्वाध्याय शुरू होता है। तो जब मैं बोल रहा हूं—एक प्रयोग करें, यहीं और अभी सिर्फ बोलनेवा ले पर ही ध्यान मत रखें, ध्यान को दोहरा कर दें, डबल एरोड, दोहरे तीर लगा दें ध्यान में—एक मेरी तरफ और एक अपनी तरफ। सुननेवा ले का भी स्मरण रहे, वह जो कुर्सी पर बैठा है, वह जो आपकी हड्डी-मांस-मज्जा के भीतर छिपा है, जो कान के पीछे खड़ा है, जो आंख के पीछे देख रहा है, उसका भी स्मरण रहे। रिमेंबर, उसको स्मरण रखें।

कोई फिक्र नहीं कि उसके स्मरण करने में अगर मेरी कोई बात चूक भी जाए, क्योंकि मेरी इतनी बातें सुन लीं उनसे कुछ भी नहीं हुआ, और चूक जाएगा तो कोई हर्ज होनेवाला नहीं है। लेकिन उसका स्मरण रखें, वह जो भीतर बैठा है, सुन रहा है, देख रहा है, मौजूद है। उसकी प्रेजेंस अनुभव करें। हड्डी, मांस, कान, आंख के भीतर वह जो ि छपा है, वह अनुभव करें, वह मालूम पड़े। ध्यान उस पर जाए तो आप हैरान होंगे, तब आपको जो मैं कह रहा हूं वह सुखद नहीं, सत्य मालूम पड़ना शुरू होगा।

और तब जो मैं कह रहा हूं वह आपके लिए मनोरंजन नहीं, आत्म-क्रांति बन जाएगा। और तब जो मैं कह रहा हूं, आपने सिर्फ सुना ही नहीं, जिया भी, जाना भी। क्योंकि जब आप भीतर की तरफ उन्मुख होकर खड़े होंगे तो आपको पता लगेगा कि जो मैं कह रहा हूं वह आपके भीतर छिपा पड़ा है। उससे ताल-मेल बैठना शुरू हो जाएगा। जो मैं कह रहा हूं वह आपको दिखाई भी पड़ने लगेगा कि ऐसा है। अगर मैं कह रहा हूं कि क्रोध जहर है, तो मेरे सुनने से वह जहर नहीं हो जाएगा, लेकिन अगर आप अपने प्रति जाग गए उसी क्षण और आपने भीतर झांका, तो आपके भीतर काफी जहर इकट्ठा है क्रोध का—रिजर्वायर है, वह दिखाई पड़ेगा। अगर वह दिख जाए मेरे बोलते वक्त तो मैंने जो कहा वह सत्य हो गया। क्योंकि उसका पैरेलल, वास्तविक सत्य मेरे शब्द के पास जो होना चाहिए था, वह आपके अनुभव में आ गया। तब शब्द कोरा शब्द न रहा, तब आपके भीतर सत्य की प्रतीति भी हुई।

सुनते वक्त बोलनेवाले पर कम ध्यान रखें, सुननेवाले पर ज्यादा ध्यान रखें—सुननेवालों पर नहीं, सुननेवाले पर। सुननेवालों पर भी लोग ध्यान रख लेते हैं। देख लेते हैं आस-पास कि किस-किस को जंच रहा है। मुझे वैसे लोग भी आकर कहते हैं आज बहुत ठीक हुआ। मैं उनसे पूछता हूं—क्या बात हुई? वे कहते हैं — कई लोगों को जंचा। वे आसपास देख रहे हैं कि किस किसको जंच रहा है। और कई लोग ऐसे हैं, जब तक दूसरों को न जंचे, उनको नहीं जंचता। बड़ा म्यूचुअल नानसेंस—पारस्परिक मूर्खता चलती है। देख लेते हैं आसपास कि जंच रहा है तो उनको भी जंचता है। और उनको पता नहीं है कि बगलवाला उनको देखकर, उसको भी जंचता है।

304

वैयावृत्य और स्वाध्याय

हिटलर अपनी सभाओं में दस आदमी बिठा देता था जो वक्त पर ताली बजाते थे, और दस हजार आदमी साथ बजाते थे। जब हिटलर ने पहली दफा अपने दस मित्रों को कहा कि तुम भीड़ में दूर-दूर खड़े होकर ताली बजाना तो उन्होंने

कहा—हम बजाएंगे तो बड़े बेहूदे लगेंगे। दस आदमी ताली बजाएंगे, दस हजार में और कोई नहीं बजाएगा! हिटलर ने कहा कि मैं आदमियों को जानता हूं। पड़ोस के आदमी को देखकर वे बजाते हैं। तुम फिक्र छोड़ो। तुम सिर्फ जस्ट स्टार्ट, बजेगी ताली। हिटलर के इशारे पर वे ताली बजाते थे। वे चकित हुए कि दस हजार आदमी ताली बजा रहे हैं। क्यों? क्या हो गया? इन्फेक्शन है। पड़ोस का बजा रहा है, जरूर कोई बात होगी। और जब आप बजाते हैं, तो आपका पड़ोसवाला सोचता है कि जरूर कोई बात कीमती होगी। लोग ऐसा न समझें — बुद्धू है, अपनी समझ में नहीं आया। वे भी बजा रहे हैं। दस आदमी दस हजार लोगों को ताली बजवा लेते हैं।

कभी खयाल में नहीं आता कि आप क्या कर रहे हैं? आप जो कपड़े पहने हुए हैं, वे किसी दूसरे आदमी ने आपको पहनवा दिए हैं, क्योंकि उसने पहने हुए थे। नहीं, सुननेवालों पर ध्यान नहीं, सुननेवाले पर ध्यान, स्वयं पर ध्यान भूल जाएं सुननेवालों को। उनकी कोई जरूरत नहीं है बीच में आकर खड़े होने की। रास्ते पर चल रहे हैं तो भीड़ दिखाई पड़ती है, दुकानें दिखाई पड़ती हैं; एक आदमी भर नहीं दिखाई पड़ता है, वह जो चल रहा है। वह भर मौजूद नहीं होता । उसका आपको पता ही नहीं होता जो चल रहा है। और सब होते हैं। बड़ी अदभुत अनुपस्थिति है! हम अपने से अनुपस्थित हैं। यह अनुपस्थिति को तोड़ने का नाम ही स्वाध्याय है। टु बी प्रेजेंट टु वनसेल्फ।

गुरजिएफ ने इसे सेल्फ रिमेंबरिंग कहा है, स्व-स्मृति कहा है—स्वयं का स्मरण। कोई भी काम ऐसा न हो पाए, कोई भी बात ऐसी न हो पाए, कोई भी घटना ऐसी न घटे जिसमें मेरे भीतर जो चेतना है वह विस्मृत हो जाए। उसका होश मुझे बना रहे। तो फिर शराब भी कोई पी रहा हो और अगर होश बनाए रखे अपने भीतर कि मैं शराब पी रहा हूं और मैं, मैं मौजूद हूं, तो शराब भी बेहोश नहीं कर पाएगी, और नहीं तो पानी भी बेहोश कर देता है। अगर यह स्मरण बना रहे कि मैं हूं तो शराब एक तरफ पड़ी रह जाएगी और वह चेतना निरंतर अलग खड़ी रहेगी। यह अलग खड़ा रहना चेतना का हम पानी के साथ भी नहीं कर पाते, शराब के साथ तो बहुत दूर होता है। जब हम पीते हैं पानी तो प्यास होती है, पानी होता है, पीनेवाला नहीं होता है। होना चाहिए। पीनेवाला पहले, प्यास बाद में, पानी और बाद में, तो स्वाध्याय शुरू हो गया।

स्वाध्याय का अर्थ है—मेरे जीवन का कोई कृत्य, कोई विचार, कोई घटना मेरी अनुपस्थिति में न घट जाए। मैं मौजूद रहूं—क्रोध हो तो मैं मौजूद रहूं, घृणा हो तो मैं मौजूद रहूं, काम हो तो मैं मौजूद रहूं। कुछ भी हो तो मैं मौजूद रहूं। मेरी मौजूदगी में घटे।

और महावीर कहते हैं कि बड़ा अदभुत है, जब तुम मौजूद होते हो तो जो गलत है वह नहीं घटता। स्वाध्याय में गलत घटता ही नहीं। जब मैंने कहा—शराब पीते वक्त अगर आप मौजूद हों, तो आप यह मत समझना कि आपको शराब पीने की सलाह दे रहा हूं कि मजे से पियो, मौजूद रहो। मौजूद किसको रहना है, लेकिन पीना तो जारी रख सकते हैं! मैं आपसे यह कह रहा हूं कि अगर शराब पीते वक्त आप मौजूद रहे तो हाथ से गिलास छूटकर गिर जाएगा, शराब पीना असंभव है, क्योंकि जहर सिर्फ बेहोशी में ही पिये जा सकते हैं।

जब मैं आपसे कहता हूं—क्रोध करते वक्त मौजूद रहो तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मजे से करो क्रोध और मौजूद रहो। बस शर्त इतनी है कि मौजूद रहो, और क्रोध करो, फिर कोई हर्ज नहीं है। मैं आपसे यह कह रहा हूं कि क्रोध करते वक्त अगर आप मौजूद रहे तो दो में से एक ही हो सकता है, या तो क्रोध होगा या आप होंगे। दोनों साथ मौजूद नहीं हो सकते। जब आप क्रोध करते वक्त मौजूद होंगे तो क्रोध खो जाएगा, आप होंगे। क्योंकि आपकी मौजूदगी में क्रोध जैसी रद्दी चीजें नहीं आ सकतीं। जब घर का मालिक जगा

305

महावीर-वाणी भाग : 1

हो तो चोर प्रवेश नहीं करते। जब आप जगे हों तब क्रोध घुस जाए, यह हिम्मत क्रोध कर सकता है! आप जब सोए होते हैं तभी क्रोध प्रवेश कर सकता है। वह आपके उस कमजोर क्षण का ही उपयोग कर सकता है, जब आप बेहोश हैं। जब आप होश में हैं तो क्रोध नहीं होगा।

इसलिए महावीर जब कहते हैं कि होशपूर्वक जियो, अप्रमाद से जियो, जा गते हुए जियो, तो मतलब केवल इतना ही है कि जागकर जीने में जो-जो गलत है वह अपने आप गिर जाएगा। और यह अनुभव आपको होगा स्वाध्याय से कि गलत इसलिए हो रहा था कि मैं सोया हुआ था। गलत के होने का और कोई कारण नहीं है, नो रीजन एट आल। सिर्फ एक ही कारण है कि आप सोए हुए हैं।

इसलिए महावीर ने कहा—क्षण में भी मुक्ति हो सकती है। इसी क्षण भी मुक्ति हो सकती है। अगर कोई पूरा जाग जाए, तो गलत इसी वक्त गिर जाता है। तो महावीर यह भी नहीं कहते कि कल के लिए भी रुकना जरूरी है। यह दूसरी बात है कि आप न जाग पाएं तो कल के लिए रुकना पड़े। अगर समग्रता से क्रोध इसी क्षण में जाग जाए तो सब गिर गया कचरा। जिससे हमें लगता था कि हम बंधे हैं, जिससे लगता था जन्मों-जन्मों का कर्म और पाप—वह सब गिर गया।

स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि एक ही पाप है—मूर्च्छा, और एक ही पुण्य है—जाग्रत। और स्वाध्याय से यह पता चलेगा कि जब भी हम सोए होते हैं तो जो भी हम करते हैं, वह गलत होता है—ऐसा नहीं कि कुछ गलत होता है, कुछ ठीक होता है—जो भी हम करते हैं वह गलत होता है। और जब हम जागे होते हैं तो ऐसा नहीं कि कुछ गलत और कुछ सही हो सकता है—जो भी होता है वह सही होता है। तो महावीर ने यह नहीं कहा है कि तुम सही करो; महावीर ने कहा है, जागकर करो, होशपूर्वक करो, स्मृतिपूर्वक करो। क्योंकि स्मृतिपूर्वक गलत होता ही नहीं, ऐसे ही जैसे अंधेरे में मैं टटोलूं और दीवार से सिर टकरा जाए और दरवाजा न मिले और प्रकाश हो जाए तो दरवाजा मिल जाए, दीवार से टकराना न पड़े।

तो महावीर यह नहीं कहते कि बिना टकराए हुए निकलो। महावीर कहते हैं, रोशनी कर लो और निकल जाओ। क्योंकि अंधेरे में टकराओगे ही। मोक्ष भी खोजोगे तो टकराओगे। परमात्मा को भी खोजोगे तो टकराओगे। अंधेरे में तो कुछ भी करोगे तो टकराओगे, क्योंकि अंधेरा है। और अंधेरे का कोई और कारण नहीं है क्योंकि हम आब्जेक्ट फोकस्ड हैं, हम वस्तुओं पर सारा ध्यान लगाए हुए हैं। वह ध्यान ही रोशनी है। वस्तुओं पर पड़ती हैं तो वस्तुएं चमकने लगती हैं।

कभी आपने खयाल किया, रोज रास्ते से निकलते हैं। आपके पास साइकिल भी नहीं है। तो कार देखकर आपके मन में ऐसा खयाल नहीं आता कि कार खरीद लें। इसलिए कार पर आपका बहुत ध्यान नहीं पड़ता। हां कभी-कभी पड़ता है जब कार बगल से कीचड़ उछाल देती है आपके ऊपर निकलते वक्त, तब ध्यान जाता है। ऐसे ध्यान नहीं जाता। आपका फोकस कार पर नहीं बैठता, और जब तक कार पर आपके ध्यान का आपका फोकस नहीं बैठता, तब तक का र को लेने की वासना नहीं उठती।

लेकिन आज आपको लाटरी मिल गयी—लाख रुपए मिल गए। अब आप उसी सड़क से गुजरिए, आप हैरान होंगे, आपका फोकस बदल गया। आज आप वह चीजें देखते हैं जो कल आपने देखी नहीं थीं। कल आपके पास साइकिल भी नहीं थी तो कभी-कभी साइकिल पर फोकस लगता था कि कभी दो सौ रुपए इकट्ठे हो जाएं तो एक साइकिल खरीद लें। कभी-कभी रात सपने में साइकिल पर बैठकर निकल जाते थे। कभी-कभी साइकिल पर बैठा हुआ आदमी ऐसा लगता था कि पता नहीं कैसा आनंद ले रहा होगा। लेकिन फोकस की सीमा है। कार वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा नहीं जगती थी, सिर्फ क्रोध जगता था। साइकिल वाले आदमी से प्रतिस्पर्धा जगती थी, क्रोध नहीं जगता था—ऐप्रोचेबल था। सीमा के भीतर था, हम भी हो सकते थे साइकिल पर, जरा वक्त की बात थी।

वैयावृत्य और स्वाध्याय

लेकिन आज आपको लाख रुपए मिल गए हैं, आज साइकिल पर आ पका ध्यान ही नहीं जमता, आज साइकिल खयाल में नहीं आती कि साइकिल भी चल रही है। आज एकदम कारें दिखाई पड़ती हैं। आज कारों में पहली दफा फर्क मालूम पड़ते हैं कि कौन-सी कार बीस हजार की है, कौन-सी पचास हजार की है, कौन-सी लाख की है। यह फर्क कभी नहीं दिखाई पड़ा था, कार—कार थी। यह फर्क कभी नहीं दिखाई पड़ा था, यह फर्क आज दिखाई पड़ेगा फोकस में। आज चेतना उस तरफ बह रही है, आज लाख रुपए जेब में हैं। आज वे लाख रुपए उछलना चाहते हैं। आज वे लाख कहते हैं लगाओ ध्यान कहीं। ये लाख रुपए कैसे बैठे रहेंगे, वे कहीं जाना चाहते हैं। वे गति करना चाहते हैं। आज आपका ध्यान दूसरी ही चीजों को पकड़ेगा। आज मकान दिखाई पड़ेंगे जो लाख में खरीदे जा सकते हैं। कार दिखाई पड़ेगी। दुकानों में चीजें दिखाई पड़ेंगी जो आपको कभी नहीं दिखाई पड़ीं थी। सदा थीं, पर आपको कभी दिखाई नहीं पड़ी थीं। बात क्या है? आपको वही दिखाई पड़ता है जिस तरफ आ पका ध्यान होता है। वह नहीं दिखाई पड़ता है जिस तरफ आपका ध्यान नहीं होता।

हमारा सारा ध्यान बाहर की तरफ है, इसलिए भीतर अंधेरा है। आता भीतर से ही है यह ध्यान, लेकिन भीतर अंधेरा है क्योंकि ध्यान वस्तुओं की तरफ है। स्वाध्याय का अर्थ है—इस रोशनी को भीतर की तरफ मोड़ लो—भीतर देखना शुरू करना। कैसे देखेंगे? तो एक दो उदाहरण ध्यान में ले लें। एक आदमी आता है और आपको गा ली देता है। जब वह गाली देता है तब दो घटनाएं घट रही हैं। वह आदमी गाली दे रहा है, यह घट रही है, आब्जेक्टिव है, बाहर है। वह आदमी बाहर है, उसकी गाली बाहर है। आपके भीतर क्रोध उठ रहा है, यह दूसरी घटना घट रही है। यह भीतर है, यह सब्जेक्टिव है। आप कहां ध्यान देते हैं? उसकी गाली पर ध्यान देते हैं तो स्वाध्याय नहीं हो पाएगा। अपने क्रोध पर ध्यान देते हैं, स्वाध्याय हो जाएगा।

एक सुंदर स्त्री रास्ते पर दिखाई पड़ी, कामवासना भीतर उठ गयी। आप उस स्त्री का पीछा करते हैं, ध्यान में, तो स्वाध्याय नहीं हो पाएगा। आप उस स्त्री को छोड़ते हैं और भीतर जाते हैं और देखते हैं कि कामवासना किस तरह भीतर उठ रही है, तो स्वाध्याय शुरू हो जाएगा। जब भी कोई घटना घटती है उसके दो पहलू होते हैं—आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव, वस्तुगत और आत्मगत। जो आत्मगत पहलू है, उस पर ध्यान को ले जाने का नाम स्वाध्याय है। जो वस्तुगत पहलू है उस पर ध्यान को ले जाने का नाम मूर्च्छा है। लेकिन हम सदा बाहर ध्यान ले जाते हैं।

जब कोई हमें गाली देता है तो हम उसकी गाली को कई बार दोहराते हैं कि किस तरह दी, उसके चेहरे का ढंग क्या था, क्यों दी, वह आदमी कैसा है, हम उसका पूरा इतिहास खोजते हैं। जो बातें हमने उस आदमी में पहले कभी नहीं देखी थीं, वह हम सब देखते हैं कि नहीं, वह आदमी ऐसा था ही, पहले से ही पता था, अपनी भूल थी, खयाल न किया। वह गाली कभी भी देता, वह औरों को भी गाली दिया है। फलां आदमी ने यह कहा था कि वह आदमी गाली देता है। आप उस आदमी पर सारी चेतना को दौड़ा देंगे और जरा भी खयाल न करेंगे कि आप आदमी कैसे हैं भीतर, भीतर क्या हो रहा है? उसकी छोटी-सी गाली आपके भीतर क्या कर गयी है।

हो सकता है, वह आदमी तो गाली देकर घर सो गया हो मजे में। आप रा तभर जग रहे हैं और सोच रहे हैं। हो सकता है, उसने गाली यों ही दी हो, मजाक ही किया हो। कुछ लोग गाली मजाक तक में दे रहे हैं। उसे खयाल ही न हो कि उसने गाली दी है।

मेरे गांव में, मेरे घर के सामने एक बूढ़ा मिठाईवाला था। वह बहरा भी था, और गाली, तकियाकलाम थी। मतलब चीजें भी खरीदे तो बिना गाली दिए नहीं खरीद सकता था किसी से। तो अकसर यह हो जाता था कि वह घासवाली से घास खरीद रहा है और गाली दे रहा है। और वह घासवाली कह रही है कि लेना हो तो ले लो, मगर गा ली तो मत दो! तो वह अपने को गाली देकर कहता है कि कौन साला गाली दे रहा है? उसको पता ही नहीं है। वह कहता है—कौन साला गाली दे रहा है? गाली दे ही कौन रहा है? वह गाली

दे रहा है, वह इसमें भी अब वह अपने को ही गाली दे रहा है। और अपने को तो कोई गाली नहीं देना चाहता है!

नहीं, इसका कोई बोध नहीं है, गाली इतनी सहज हो गयी है कि जो आदमी आपको गाली दे गया, हो सकता है उसे पता ही न हो। आप जो व्याख्याएं निकाल रहे हैं वह आप ही निकाल रहे हैं। भीतर जाएं कृपा करके, उस आदमी की फिक्र छोड़ें। भीतर देखें कि उस आदमी ने गाली दी तो मेरे भीतर क्या-क्या व्याख्या पैदा होती है, उसकी गाली की। वह व्याख्या उस आदमी के संबंध में कुछ भी नहीं कहती, सिर्फ आपके संबंध में कुछ कहती है कि आप आदमी कैसे हैं।

अगर आपको गाली दी जाए तो आपके भीतर क्या-क्या होगा, इसको देखें। आप क्या-क्या व्याख्या करते हैं, आपके भीतर क्रोध कैसे उठता है, आप उससे क्या-क्या प्रतिकार लेना चाहते हैं? हत्या करना चाहते हैं; गाली देना चाहते हैं; गर्दन दबाना चाहते हैं; क्या करना चाहते हैं? इस पूरे को उतर जाएं देखने। आप अनुभवी होकर बाहर लौटेंगे। आप इस स्वाध्याय से ज्ञानी होकर बाहर लौटेंगे।

इसके दो मजे होंगे—एक तो आपकी अपने संबंध में जानकारी बढ़ गयी होगी। और साथ ही आपको यह भी पता चल गया होगा कि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उसने गाली दी, महत्वपूर्ण यह है कि मैंने कैसा अनुभव किया। और मजा यह है कि आप उसका गाली का उत्तर देने अब कभी न जाएंगे। क्योंकि आप बदल गए होंगे इस ज्ञान से, इस स्वाध्याय से, आप वही आदमी नहीं रह गए जिसको गाली दी गयी थी। समथिंग हैज बीन एडेड, समथिंग हैज बीन रिवील्ड। नया कुछ जुड़ गया। सुबह आप दूसरे आदमी होंगे। हो सकता है, आप उससे क्षमा मांग आएं। हो सकता है, आप पाएं कि उसने गाली ठीक ही दी। हो सकता है, आप पाएं कि उसकी गाली उतनी मजबूत न थी जितनी होनी चाहिए थी, जितना बुरा मैं आदमी हूं। हो सकता है कि आप उससे जाकर कहें कि तेरी गाली बिलकुल ठीक थी और अण्डर एस्टिमेटेड थी—यानी मैं आदमी जरा ज्यादा बुरा हूं। यह सब हो सकता है। या हो सकता है, सुबह आप पाएं कि उसकी गाली पर सिर्फ आपको हंसी आ रही है, और कुछ भी नहीं हो रहा है।

यह स्वाध्याय है, यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। आपके जीवन की प्रत्येक छोटी-सी वृत्ति में, छोटी-सी लहर में इसका उपयोग करें। यह शास्त्र आपके भीतर का खुलना शुरू हो जाएगा। पहले इस शास्त्र में गंदगी ही गंदगी मिलेगी, क्योंकि वही हमने इकट्ठी की है, वही हमारा संग्रह है। लेकिन जितनी वह गंदगी मिलेगी उतने आप स्वच्छ होते चले जाएंगे। क्योंकि गंदगी बचाना हो तो गंदगी को न जानना जरूरी है, और गंदगी को मिटाना हो तो जानना ही एकमात्र सूत्र है। जितना आप छिपाए रखते हैं अपनी गंदगी को, वह उतनी ही गहरी बनती जाती है, मजबूत होती चली जाती है। जब आप खुद ही उसको उखाड़ने लगते हैं और देखने लगते हैं तो उसकी पर्तें टूटने लगती हैं, उसकी जड़ें उखड़ने लगती हैं।

जाएं भीतर और आप पाएंगे कि बहुत गंदगी है लेकिन जितनी गंदगी आ पको दिखाई पड़ेगी, एक और मजेदार और विपरीत घटना घटेगी और आपको लगेगा आप उतने ही स्वच्छ होते जा रहे हैं। जितने भीतर जाएंगे, उतनी गंदगी कम होती जाएगी। और इसलिए एक मजा और आने लगेगा कि भीतर गंदगी कम होती जाती है तो और भीतर जाने का रस और आनंद आने लगता है। भीतर कंकड़-पत्थर नहीं, हीरे-जवाहरात दिखाई पड़ने लगते हैं, तो दौड़ तेज हो जाती है। और एक घड़ी आएगी कि आप जब सच में भीतर पहुंचेंगे — सच में भीतर, क्योंकि यह जो भी है, यह भी बाहर और भीतर के बीच में है। इसे हम भीतर कह रहे हैं सिर्फ इसलिए कि स्वाध्याय के लिए इसे भीतर समझना जरूरी है।

जितने आप भीतर जाएंगे, जिस दिन आप सेंटर पर पहुंचेंगे, केंद्र पर पहुंचेंगे, उस दिन कोई गंदगी नहीं रह जाएगी। उस दिन आप पाएंगे कि जीवन में उस स्वच्छता का अनुभव हुआ है जिसका अब कोई अंत नहीं है। आपने वह ताजगी पा

ली जो अब बूढ़ी नहीं होगी। आपने उस निर्दोषता के तल को छू लिया जिसको कोई कालिमा स्पर्श नहीं कर सकती है। आप उस प्रकाश को पा लिए जहां कोई

वैयावृत्य और स्वाध्याय

अंधकार प्रवेश नहीं करता है।

लेकिन यह क्रमशः भीतर उतरना। इसलिए स्वाध्याय को महावीर ने अंतिम नहीं कहा, चौथा तप कहा है। अभी और भी कुछ करने को भीतर शेष रह जाता है। उन दो तपों के संबंध में हम आगे आने वा ले दो दिनों में बात करेंगे। पांचवां तप है ध्यान, छठवां तप है कायोत्सर्ग। पर स्वाध्याय के बिना कोई ध्यान में नहीं जा सकता। इसलिए महावीर ने जो सीढ़ियां कही हैं, वे अति वैज्ञानिक हैं।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं—ध्यान में जाना है। मैं उनकी कठिनाई जानता हूं। वे स्वाध्याय में नहीं जाना चाहते, क्योंकि स्वाध्याय बहुत पीड़ादायी है। और ध्यान में क्यों जाना चाहते हैं? क्योंकि किताबों में पढ़ लिया है, गुरुओं को कहते सुन लिया है कि ध्यान में जाने से बड़ा आनंद आता है।

लेकिन जो अपने अर्जित दुख में जाने को तैयार नहीं है वह अपने स्वभा व के आनंद में जा नहीं सकता है। पहले तो दुख से गुजरना पड़ेगा; तभी, तभी सुख की झलक मिलेगी। नरक से गुजरे बिना कोई स्वर्ग नहीं है। क्योंकि हमने नरक निर्मित कर लिया है, हम उसमें खड़े हैं। प्रत्येक आदमी यह चाहता है कि नरक में से एकदम स्वर्ग मिल जाए, यहीं। इस नरक को मिटाना न पड़े और स्वर्ग मिल जाए। यह नहीं हो सकता। क्योंकि स्वर्ग तो यहीं मौजूद है, लेकिन हमारे बनाए हुए नरक में छिप गया है, ढंक गया है। ध्यान रहे, स्वर्ग स्वभाव है और नरक हमारा एचीवमेंट, हमारी उपलब्धि है। बड़ी मेहनत करके हमने नरक को बनाया है, बड़ा श्रम उठाया है। उसे गिराना पड़ेगा। स्वाध्याय उसे गिराने के लिए कुदाली का काम करता है। जैसे कोई मकान को खोदना शुरू कर दे।

आज इतना ही।

पर पांच मिनट रुकें, धुन में भागीदार हों और फिर जाएं।